उत्तराध्ययन सूत्र

(अन्वयार्थ सहित)

अनुवादक —
पं. श्री घेवरचन्दजी बाँठिया 'वीरपुत्र'
न्यायतीर्थ व्याकरणतीर्थ सिद्धांत शास्त्री

प्रकाशक—

अखिल भारतीय साधुमार्गी
जैन संस्कृति-रक्षक संघ
सैलाना (म. प्र.)

प्रथमावृत्ति
२०००

वीर संवत् २५००
विक्रम संवत् २०३१
अक्टूबर सन् १९७४

स्वल्प मूल्य ५—००

प्राप्ति स्थान

१—श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति-रक्षक संघ
सैलाना (मध्य-प्रदेश)

२— " एदुन बिल्डिंग, पहली धोबी तलाब लेन
बम्बई २

३— " सराफा बाजार, जोधपुर (राजस्थान)

निवेदन

उत्तराध्ययन सूत्र की यह अन्वयार्थ युक्त नई आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है। इसके पूर्व तीन आवृत्तियाँ भावार्थ युक्त थी। वे सामान्य स्वाध्यायियों के लिए तो अति उपयुक्त थीं और उनका आदर भी सर्वत्र हुआ था। किन्तु जो भव्यात्मा अर्थयुक्त सीखना चाहते हैं, उनके लिये तो अन्वयार्थ ही उपयोगी हो सकता है। इसकी माँग और आग्रह भी था। अतएव संवार पं. श्री घेवरचन्दजी सा. बाँठिया 'वीरपुत्र' द्वारा अनुवादित और श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था बीकानेर से प्रकाशित उत्तराध्ययन की आवृत्ति रूप इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

इसकी लागत ७) रु. प्रति है, किन्तु उदारमना धर्मबन्धुओं की उदार सहायता से कम मूल्य रु. ५) रखा है।

कागज अत्यधिक मँहगा है, महँगा ही नहीं, अलभ्य भी हो गया है। प्राप्त करने में कितनी ही अड़चनें खड़ी हुई और हो रही है यह भुक्तभोगी जानते हैं। सच्चाई का निर्वाह करना असंभव हो गया है। मिले उस भाव, बिना बीजक या अल्प रकम के बीजक से लेना पड़ता है। स्याही आदि सामग्री और पारिश्रमिक भी बढ़े हुए हैं। ऐसी विकट स्थिति में

सा हत्य में लागत कितनी होती है, यह सब समझ सकते हैं। यहाँ प्रूफ-संशोधन एवं अन्य व्यवस्था कार्य तो निःशुल्क ही होता। इसलिये लागत कम ही होती है। हमारा दृष्टिकोण सदैव स्वल्प मूल्य रखने का ही रहा। उदार हृदय धर्मप्रिय महानुभाव, हमारी भावना का आदर कर सहयोग देते हैं और इससे यह संघ कुछ सेवा कर सकता है।

इस आवृत्ति की १५०० पुस्तकों में द्रव्यसहायता एक उदार धर्मप्रिय महानुभाव से प्राप्त हुई है और ५०० प्रतियों की धर्मप्रिय महानुभाव श्रीमान् सेठ छगनलालजी अचलाजी फर्म श्रीमान् सेठ पीराजी छगनलालजी मु. झाब जिला जालोर से प्राप्त हुई है। अतएव आप धन्यवाद के पात्र हैं।

सैलाना — विनयावनत—

३-१०-७४ — अध्यक्ष—मानकलाल पोरवाड़

कार्याध्यक्ष—जशवंतलाल शाह

प्रधान मन्त्री—रतनलाल डोशी

मन्त्री – बाबूलाल सराफ

अस्वाध्याय

निम्न लिखित चौंतीस कारण टाल कर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बधी १० अस्वाध्याय	कालमर्यादा
१ बड़ा तारा टूटे तो	एक प्रहर
२ उदय अस्त के समय लालदिशा............	जबतक रहे
३ अकाल में मेघ-गर्जना हो तो.............	दो प्रहर
४ " बिजली चमके तो..........	एक प्रहर
५ " बिजली कड़के तो	दो प्रहर
६ शुक्ल पक्ष की १-२-३-की रात	प्रहर रात्रि तक
७ आकाश में यक्ष का चिन्ह हो......	जब तक दिखाई दे।
८-९ काली और सफेद धूंअर...........,	जब तक रहे
१० आकाश-मण्डल धूलि से आच्छादित हो.......	"

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३ हड्डी, रक्त और मांस, ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हों तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली हो तो १२ वर्ष तक।

१४ अशुचि की दुर्गन्ध आवे या दिखाई दे तब तक
१५ श्मशान भूमि-...... सौ हाथ से कम दूर हो तो
१६ चन्द्रग्रहण-खण्ड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर।
१७ सूर्य ग्रहण " १२ " १६ "
१८ राजा का अवसान होने पर। जब तक नया राजा घोषित न हो।
१९ युद्ध स्थान के निकट........ जब तक युद्ध चले।
२० उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो। जब तक पड़ा रहे।
२१-२५ आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, और चैत्र की पूर्णिमा।.......... दिन रात
२६-३० इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा। "
३१-३४ प्रातः, मध्यान्ह, संध्या और अर्द्धरात्रि। १-१ मुहूर्त्त।

उपरोक्त अस्वाध्याय को टाल कर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा दीपक के उजाले में नहीं बांचना चाहिए।

नोट--मेघ-गर्जनादि में अकाल, आर्द्रा नक्षत्र से पूर्व और स्वांति के बाद का माना गया है।

	मूल्य
१ मोक्षमार्ग ग्रंथ	६-००
२ भगवती सूत्र भाग १	अप्राप्य
३ भगवती सूत्र भाग २	"
४ भगवती सूत्र भाग ३	५-००
५ भगवती सूत्र भाग ४	५-००
६ भगवती सूत्र भाग ५	५-००
७ भगवती सूत्र भाग ६	५-००
८ भगवती सूत्र भाग ७	७-००
९ उत्तराध्ययन सूत्र	५-००
१० उववाइय सुत्त	२-००
११ जैन स्वाध्याय माला	अप्राप्य
१२ दशवैकालिक सूत्र	१-५०
१३ अंतगडदसा सूत्र	१-२५
१४ स्त्री प्रधान धर्म	अप्राप्य
१५ सुखविपाक सूत्र	०-२०
१६ प्रतिक्रमण सूत्र	०-२५
१७ सामायिक सूत्र	०-१०
१८ सूयगडांग सूत्र	अप्राप्य
१९ सिद्धस्तुति	"
२० जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	"
२१ जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	"
२२ नन्दी सूत्र	२-५०
२३ आलोचना पंचक	०-२०
२४ संसार-तरणिका	अप्राप्य
२५ सम्यक्त्व-विमर्श (हिन्दी)	"
२६ जीव-धड़ा	०-२०

२७ पच्चीस बोल

२८ लघुदण्डक

२९ महादण्डक

३० तेतीस बोल

३१ एक सौ दो बोल का बासठिया

३२ गुणस्थान स्वरूप

३३ गति-आगति

३४ कर्म-प्रकृति

३५ नव तत्त्व

३६ समर्थ समाधान भाग १

३७ समर्थ समाधान भाग २

३८ रजनीश दर्शन

३९ शिविर व्याख्यान

४० मंगल-प्रभातिका

४१ समकित के ६७ बोल

४२ समिति-गुप्ति

४३ स्तवन-तरंगिणी

४४ विनयचन्द चौबीसी और शांति प्रकाश

४५ तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय

४६ સમ્યક્ત્વવિમર્શ ગુજરાતી

४७ भवनाशिनी भावना

४८ तीर्थंकर-चरित्र भाग १

४९ तीर्थंकरों का लेखा

५० सार्थ सामायिक सूत्र

छप रहा है

१ प्रश्नव्याकरण सूत्र

※ णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ※

श्री उत्तराध्ययन सूत्र

विनयश्रुत नामक प्रथम अध्ययन

संजोगा विप्पमुक्कस, अणगारस्स भिक्खुणो ।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे ॥१॥

अन्वयार्थ—संजोगा—मातापितादि बाह्य संयोग और रागद्वेष कषायादि आभ्यन्तर संयोग से, विप्पमुक्कस्स—रहित, अणगारस्स—घरबार के बन्धनों से मुक्त, भिक्खुणो—भिक्षा से निर्वाह करने वाले साधु का, विणयं—विनय, पाउकरिस्सामि—प्रकट करूँगा । अतः सावधान हो कर, आणुपुव्वि—अनुक्रम से, मे— मुझ से, सुणेह—सुनो ॥१॥

आणाणिद्देसकरे, गुरुणमुववायकारए ।
इंगियागारसंपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चइ ॥२॥

अन्वयार्थ—अणाणिद्देसकरे—गुरु आज्ञा को स्वीकार करने वाला, गुरुणं—गुरुजनों के, उववायकारए—समीप रहने वाला, इंगियागार संपण्णे—इंगित और आकार से गुरु के भाव को समझने वाला, से—साधु, विणिए त्ति—विनीत, वुच्चइ—

कहा जाता है ॥२॥

आणाऽणिद्देसकरे, गुरुणमणुववायकारए ।
पडिणीए असंबुद्धे, अविणीए त्ति वुच्चइ ॥३॥

अन्वयार्थ—आणाऽणिद्देसकरे—गुरु आज्ञा न मानने वाला, **गुरुणं**—गुरु के, **अणुववायकारए**—समीप रहने वाला, **पडिणीय**—उनके प्रतिकूल कार्य करने वाला तथा, **असंबुद्धे**—तत्वज्ञान रहित अविवेकी, से—साधु, **अविणीए त्ति**—अविनीत, **वुच्चइ**—कहलाता है ॥३॥

जहा सुणी पूईकण्णी, णिक्कसिज्जइ सव्वसो ।
एवं दुस्सीलपडिणीए, मुहरी णिक्कसिज्जइ ॥४॥

अन्वयार्थ—**जहा**—जैसे, **पूईकण्णी**—सड़े कानों वाली, **सुणी**—कुत्ती, **सव्वसो**—सभी स्थान से, **णिक्कसिज्जइ**—निकाली जाती है, **एवं**—इसी प्रकार, **दुस्सील**—दुष्ट स्वभाव वाला, **पडिणीए**—गुरुजनों के विरुद्ध आचरण करने वाला, **मुहरी**—वाचाल साधु सभी स्थानों (गच्छ-संघ आदि) से, **णिक्कसिज्जइ**—निकाला जाता है ॥४॥

कणकुंडगं चइत्ताणं, विट्ठं भुंजइ, सूयरो ।
एवं सीलं चइत्ताणं, दुस्सीले रमइ मिए ॥५॥

अन्वयार्थ—जैसे, **सूयरो**—सूअर, **कणकुंडगं**—चावल के कुंडे को, **चइत्ताणं**—छोड़ कर, **विट्ठं**—विष्ठा, **भुंजइ**—खाता है, **एवं**—इसी प्रकार, **मिए**—मृग के समान अज्ञानी

साधु भी, सीलं-सदाचार को, चइत्ताणं त्यागकर, दुस्सीले--दुःशील (दुष्ट आचार) में, रमइ—रत रहता है ॥५॥

भावार्थ—यहाँ अविनीत साधु सूअर और मृग की उपमा दी है। सूअर का उदाहरण है जैसे मृग तृण-घास आदि के प्रत्यक्ष सुख को देखता किन्तु पास के दुःखों का विचार नहीं करता, इसी प्रकार अविनीत साधु भी वर्तमान के सुखों को देखता है, किन्तु अविनय के बुरे एवं दुःखदायी फल का विचार नहीं करता।

सुणिया भावं साणस्स, सूयरस्स णरस्स य।
विणए ठविज्ज अप्पाणं, इच्छंतो हियमप्पणो ॥६॥

अन्वयार्थः—साणस्स—सड़े कानों वाली कुत्ती, य—और सूयरस्स—सूअर के साथ, णरस्स—अविनीत मनुष्य की भावं—दृष्टान्तों को सुणिया—सुन कर, अप्पणो—अपना हियं—ऐहिक और पारलौकिक हित, इच्छंतो—चाहने वाला व्यक्ति, अप्पाणं—अपनी आत्मा को, विणए—विनय में, ठविज्ज—स्थापित करे ॥६॥

तम्हा विणयमेसिज्जा, सीलं पडिलभेज्जओ।
बुद्धपुत्त णियागट्ठी, ण णिक्कसिज्जइ कण्हुइ ॥७॥

अन्वयार्थ—तम्हा—इसलिए अविनय के दोषों को जान कर, णियागट्ठी—मोक्ष के अभिलाषी, बुद्धपुत्त—गुरु महाराज के लिये पुत्र के समान प्रिय साधु को, विणयं—विनय की

एसिज्जा—एषणा—आराधना करनी चाहिए, जओ—जिससे सीलं—सदाचार की, पडिलभे—प्राप्ति हो ऐसा विनीत साधु, कण्हुई—कहीं से भी, ण णिक्कसिज्जइ—नहीं निकाला जाता, वह कहीं भी अपमानित नहीं होता ॥७॥

णिसंते सियाऽमुहरी, बुद्धाणं अंतिए सया ।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा, णिरट्ठाणि उ वज्जए ॥८॥

अन्वयार्थ—साधु को चाहिए कि वह, **सया**—सदा, **णिसंते**—अतिशय शान्त और, **अमुहरी**—वाचालता रहित कम बोलने वाला, **सिया**—हो तथा, **बुद्धाणं**—आचार्यादि के **अंतिए**—समीप, **अट्ठजुत्ताणि**—मोक्ष अर्थ वाले आगमों को, **सिक्खिज्जा**—सीखे, **उ**—और, **णिरट्ठाणि**—निरर्थक—मोक्ष अर्थ से रहित ज्योतिष, वैद्यक तथा स्त्री-कथादि का, **वज्जए**—त्याग करे ॥८॥

अणुसासिओ ण कुप्पिज्जा, खंतिं सेविज्ज पंडिए ।
खुड्डेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं च वज्जए ॥९॥

अन्वयार्थ—**अणुसासिओ**—यदि कभी गुरु महाराज कठोर वचनों से शिक्षा दे तो भी, **पंडिए**—बुद्धिमान् विनीत शिष्य को, **ण कुप्पिज्जा**—क्रोध न करना चाहिए किन्तु, **खंतिं**—क्षमा—सहनशीलता, **सेवेज्ज**—धारण करनी चाहिए, **खुड्डेहिं**—दुःशील क्षुद्र व्यक्तियों के अर्थात् द्रव्य बाल और भाव बाल व्यक्तियों के, **सह**—साथ, **संसग्गिं**—संसर्ग-परिचय न करना चाहिए, **य**—और, **हासं**—हास्य तथा, **कीडं**—क्रीड़ा का

सर्वथा, वज्जए—त्याग कर देना चाहिए ॥९॥

मा य चंडालियं कासी, बहुयं मा य आलवे।
कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगओ।१०।

अन्वयार्थ—चंडालियं—साधु को क्रोधादि वश असत्यभाषण, मा—नहीं, कासी—करना चाहिए, य—और, कालेण-यथासमय, अहिज्जित्ता—शास्त्रादि का अध्ययन कर के, तओ—उसके बाद, एगओ—अकेला यानी रागद्वेष रहित हो कर एकान्त में, झाइज्ज—चिन्तन-मनन करे ॥१०॥

आहच्च चंडालियं कट्टु, ण णिण्हविज्ज कयाइ वि।
कडं कडे त्ति भासिज्जा, अकडं णो कडे त्ति य ॥११॥

अन्वयार्थ—आहच्च—यदि कभी, चंडालियं—क्रोधादि वश असत्य वचन, कट्टू— मुख से निकल जाय तो उसे, कयाइ वि— कभी भी, ण णिण्हविज्ज— छिपावे नहीं किन्तु, कडं—किये हुए को, कडेत्ति—किया है इस प्रकार, य—और, अकडं—नहीं किये हुए को, णो कडे—नहीं किया, त्ति— इस प्रकार, भासिज्ज—कहे अर्थात् किये हुए दोष को सरल भाव से स्वीकार कर ले ॥११॥

मा गलियस्सेव कसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो।
कसं वा दट्ठुमाइण्णे, पावगं परिवज्जए ॥१२॥

अन्वयार्थ—गलियस्स— जैसे अड़ियल घोड़ा, पुणो पुणो— बार-बार, कसं—चाबुक की मार खाये बिना सवार

की इच्छानुसार प्रवृत्ति नहीं करता, इव---इसी प्रकार विनीत शिष्य को हर समय, **वयणं**— गुरु महाराज को कहने का, **मा इच्छे**— अवसर न देना चाहिए किन्तु **व**— जिस प्रकार **आइण्णेव**---जातिवंत विनीत घोड़ा, **कसं**---चाबुक को,**दट्ठुं**-- देखते ही सवार की इच्छानुसार प्रवृत्ति करता है, उसी प्रकार विनीत शिष्य को गुरु का इंगिताकार समझ कर उनके मनोभाव के अनुसार प्रवृत्ति करनी चाहिए और,**पावगं**—पाप का सर्वथा, **परिवज्जए**—त्याग कर देना चाहिए ॥१२॥

अणासवा थूलवया कुसीला, मिउंपि चंडं पकरंति सीसा।
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयंपि ॥

अन्वयार्थ---**अणासवा**—गुरु की आज्ञा को न मानने वाले, **थूलवया**—कठोर वचन कहने वाले तथा,**कुसिला**—दुष्ट आचार वाले,**सीसा**—अविनीत शिष्य,**मिउंपि**– शान्त स्वभाव वाले गुरु को भी, **चंड**—क्रोधी, **पकरंति**—बना देते हैं, किन्तु, **चित्ताणुया**—जो गुरु के चित के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले और, **लहु**--शीघ्र ही, **दक्खोववेया**—विना विलम्ब गुरु का कार्य करने वाला है, **ते**—वे विनीत शिष्य, **हु**—निश्चय ही, **दुरासयंपि**—उग्र स्वभाव वाले गुरु को भी, **पसायए**—प्रसन्न कर लेते हैं ॥१३॥

णापुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा णालियं वए।
कोहं असच्चं कुव्विज्जा, धारिज्ज पियमप्पियं ॥१४॥

अन्वयार्थ—**अपुट्ठो**—विनीत शिष्य, विना पूछे **किंचि**—

कुछ भी, ण वागरे—न बोले, वा—और, पुट्ठो—पूछने पर, अलियं—असत्य, ण वए—न बोले। कोहं—यदि कभी क्रोध उत्पन्न हो जाय तो उसका अशुभ फल सोच कर, असच्चं—उसे असत्य अर्थात् निष्फल, कुव्विज्जा—कर देवे तथा, अप्पियं—अप्रिय लगने वाले गुरु के कठोर वचन को भी हितकारी जान कर, पियं—प्रिय—समझे एवं, धारिज्जा—धारण करे ॥१४॥

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ।१५।

अन्वयार्थ—अप्पा—आत्मा अर्थात मन और इन्द्रियों का, चेव—ही, दमेयव्वो—दमन करना चाहिए, खलु—क्योंकि, अप्पा—आत्मा का, दुद्दमो—दमन करना बड़ा कठिन है, अप्पा—आत्मा को, दंतो—दमन करने वाला, अस्सि—इस, लोए—लोक में, य—और, परत्थ—परलोक में, सुही—सुखी, होइ—होता है ॥१५॥

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य ।
माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहि वहेहि य ॥१६॥

अन्वयार्थ—परेहिं—परवश हो कर दूसरों से, वहेहिं—वध, य—और, बंधणेहिं—बन्धनों, मा दम्मंतो—दमन किये जाने की अपेक्षा, अहं—मुझे अपनी इच्छा से ही, तवेण—तप, य—और, संजमेण—संयम, मे—अपनी, अप्पा—आत्मा का, दंतो—दमन करना वरं—श्रेष्ठ है ॥१६॥

पडिणीयं य बुद्धाणं, वाया अदुव कम्मुणा।
आवी वा जइ वा रहस्से, णेव कुज्जा कयाइ वि ।१७।

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को चाहिए कि वह, आवी वा—प्रकट में—लोगों के सामने, जइ वा—अथवा, रहस्से—एकान्त में, वाया—वचन से, अदुव—और, कम्मुणा—कार्य से, कयाइ वि—कभी भी, बुद्धाणं—गुरु महाराज के, पडिणीयं—विपरीत आचरण, णेव—नहीं, कुज्जा—करे ॥१७॥

ण पक्खओ ण पुरओ, णेव किच्चाण पिट्ठओ ।
ण जुंजे उरुणा उरुं, सयणे ण पडिस्सुणे ॥१८॥

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को चाहिए कि वह, किच्चाण—आचार्य महाराज के, ण पक्खओ—लगता हुआ—पास में बराबर न बैठे, ण पुरओ—उनके आगे भी न बैठे और, णेव पिट्ठओ—पीछे भी अविनीतपन से न बैठे तथा, ण—गुरु महाराज के इतना निकट भी न बैठे कि, उरुणा—अपने घुटने से, उरुं—उनके घुटने का, जुंजे—स्पर्श हो तथा सयणे—शय्या पर सोते या बैठे हुए ही, ण पडिस्सुणे—गुरु महाराज के वचन नहीं सुने किन्तु आसन से नीचे उतर कर उत्तर देवे । १८॥

णेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिंडं च संजए ।
पाए पासारिए वावि, ण चिट्ठे गुरुणंतिए ॥१९॥

अन्वयार्थ—संजए—विनीत साधु, पल्हत्थियं—पलाठी

मार कर, य--अथवा, पक्खपिंड--पक्षपिंड कर के, णेव कुज्जा--न बैठे, वावि--और, गुरुणंतिए--गुरु महाराज के सामने, पाए--पाँव, पसारिए--पसार कर भी ण चिट्ठे--न बैठे ॥ १९ ॥

भावार्थ--अपनी छाती के निकट घुटनों को खड़ा कर के उनको वस्त्र से बांध कर बैठना पल्हथी--पलाठी कहलाता है और उन्हें दोनों भुजाओं द्वारा बांध कर बैठना 'पक्खपिंड'--पक्षपिंड कहलाता है। शिष्य गुरु महाराज के सामने इन आसनों से नहीं बैठे।

आयरिएहिं वाहितो, तुसिणीओ ण कयाइ वि।
पसायपेही णियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरुं सया ॥२०॥

अन्वयार्थ--आयरिएहिं--आचार्य महाराज द्वारा, वाहितो--बुलाया जाने पर विनीत शिष्य को चाहिये कि वह, कयाइ वि--कभी भी, तुसिणीओ--चुपचाप बैठा, ण--न रहे, किन्तु पसायपेही--गुरु की कृपा चाहने वाला, णियागट्ठी--मोक्षार्थी साधु, सया--सदैव, गुरुं--गुरु महाराज के समीप, उवचिट्ठे--विनय के साथ उपस्थित होवे ॥ २० ॥

आलवंते लवंते वा, ण णिसीएज्ज कयाइ वि।
चइत्ता आसणं धीरो, जओ जत्तं पडिस्सुणे ॥२१॥

अन्वयार्थ--आलवंते--गुरु महाराज के एक बार बुलाने पर, वा--अथवा, लवंते--बार बार बुलाने पर, कयाइ वि--

कभी भी, ण णिसीएज्ज---बैठा न रहे, किन्तु, धीरो---विनीत-धैर्यशील साधु, आसणं---आसन, चइत्ता-चइऊण---छोड़ कर, जत्तं---गुरु महाराज के वचनों को यतनापूर्वक, जओ---सावधान हो कर, पडिस्सुणे --सुने ॥ २१ ॥

आसणगओ ण पुच्छिज्जा, णेव सिज्जागओ कया ।
आगम्मुक्कुडुओ संतो, पुच्छिज्जा पंजलीउडो ॥२२॥

अन्वयार्थ---गुरु महाराज से कुछ पूछना हो तो शिष्य को चाहिये कि वह, आसणगओ---आसन पर बैठा हुआ, कया---कभी, ण---नहीं, पुच्छिज्जा---पूछे और, ण---न, सिज्जागओ---शय्या पर रहा हुआ, एव---ही पूछे किन्तु, आगम्म---गुरु के समीप आकर, उक्कुडुओ संतो---उत्कटुक आसन से (घुटनों के बल बैठ कर) पंजलीउडो---विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर, पुच्छिज्जा---पूछे ॥२२॥

एवं विणयजुत्तस्स, सुयं अत्थं च तदुभयं ।
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुयं ॥२३॥

अन्वयार्थ---गुरु को चाहिए कि, एवं---इस प्रकार, विणय-जुत्तस्स---विनय से युक्त, सीसस्स---शिष्य के, पुच्छमाणस्स---पूछने पर, सुयं---सूत्र, अत्थं---अर्थ, य--- और, तदुभयं---सूत्र अर्थ दोनों, जहासुयं---जैसा गुरु महाराज से सुना हो उसी प्रकार, वागरिज्ज---कहे ॥२३॥

मुसं परिहरे भिक्खू, ण य ओहारिणीं वए ।
भासा दोसं परिहरे, मायं य वज्जए सया ॥२४॥

अन्वयार्थ--भिक्खू--साधु, सया--सदा, मुसं--झूठ का, रिहरे--सभी प्रकार से त्याग करे, य--और, ओहारिणी--नश्चयकारिणी भाषा, ण वए--न बोले, भासादोसं--भाषा के सावद्य आदि दोषों को, परिहरे--छोड़े, य--और, मायं--माया एवं क्रोधादि का वज्जए--त्याग करे ॥२४॥

ण लविज्ज पुट्ठो सावज्जं, ण णिरट्ठं ण मम्मयं ।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्संतरेण वा ॥२५॥

अन्वयार्थ--पुट्ठो--कोई बात पूछने पर साधु, अप्पणट्ठा--अपने लिये, वा--अथवा, परट्ठा--दूसरे के लिये या, उभयस्स--अपने और दूसरे (दोनों) के लिये, अंतरेण वा--सप्रयोजन, सावज्जं--सावद्य भाषा, ण लविज्जा--न बोले, णणिरट्ठ--निरर्थक वचन न कहे और, ण मम्मयं--मर्मभेदी वचन भी न कहे ॥२५॥

समरेसु अगारेसु, संधीसु य महापहे ।
एगो एगित्थिए सद्धिं, णेव चिट्ठे ण संलवे ॥२६॥

अन्वयार्थ--समरेसु--लोहारशाला में, अगारेसु--सूने घरों में, संधीसु--दो घरों के बीच में, य--और, महापहे--राजमार्ग में, एगो--अकेला साधु, एगित्थिए--अकेली स्त्री के, सद्धि--साथ, णेव चिट्ठे--न खड़ा रहे और, ण संलवे--न बातचीत ही करे ॥२६॥

भावार्थ--जहाँ दोष की संभावना हो अथवा प्रवचन की

लघुता होती हो, वैसे स्थानों में एकान्त न होते हुए भी, साधु को स्त्री संपर्क से वचना चाहिये ।

जं मे बुद्धाणुसासंति, सीएण फरुसेण वा ।
मम लाभुत्ति पेहाए, पयओ तं पडिस्सुणे ॥२७॥

अन्वयार्थ-**वुद्धा**-आचार्यादि गुरुजन, **मे**--मुझे, **सीएण**-कोमल, **वा**--अथवा, **फरुसेण**--कठोर वचनों से, **जं**—जो, **अणुसासंति**—शिक्षा देते हैं, इसमें **मम**—मेरा ही, **लाभुत्ति**--लाभ है, इस प्रकार, **पेहाए**--विचार कर शिष्य को चाहिए कि वह, **पयओ**—सावधान हो कर, **तं**--उस शिक्षा को, **पडिस्सुणे**--अंगीकार करे ॥२७॥

अणुसासणमोवायं, दुक्कडस्स य चोयणं ।
हियं तं मण्णए पण्णो, वेस्सं होइ असाहुणो ॥२८॥

अन्वयार्थ—**ओवायं**--कोमल तथा कठोर, शब्द रूपी उपाय से दी गई, **अणुसासणं**—गुरुजनों की शिक्षा, **य**—और, **दुक्कडस्स**—पापकार्यों से निवर्तन के लिये, **चोयणं**—की गई प्रेरणा को, **पण्णो**—वुद्धिमान् विनीत शिष्य, **हियं**—हित-कारी, **मण्णए**—मानता है, किन्तु **असाहुणो**—अविनीत शिष्य के लिये, **तं**—वही शिक्षा, **वेस्सं**—द्वेषोत्पादक, **होई**—होती है ॥ २८ ॥

हियं विगयभया बुद्धा, फरुसं पि अणुसासणं ।
वेस्सं तं होइ मूढाणं, खंतिसोहिकरं पयं ॥२९॥

अन्वयार्थ—विगयभया—सात प्रकार के भय से रहित, वुद्धा—तत्वज्ञाता शिष्य, खंतिसोहिकरं—क्षमा और शुद्धि करने वाले, पयं—ज्ञानादि गुणों के स्थान रूप, फरुसंपि—कठोर भी, अणुसासणं—गुरु महाराज की शिक्षा को, हियं—हितकारी मानते हैं, किन्तु तं—वही शिक्षा, मूढाणं—अज्ञानी-अविनीत शिष्यों के लिये वेसं—द्वेष उत्पन्न करने वाली, होई—होती है ॥२९॥

आसणे उवचिट्ठेज्जा, अणुच्चेऽकुक्कुए थिरे ।
अप्पुट्ठाई णिरुट्ठाई, णिसीएज्जऽप्पकुक्कुए ॥३०॥

अन्वयार्थ—शिष्य को चाहिये कि, अणुच्चे—गुरु महाराज से नीचे तथा अल्प मूल्य वाले, अकुए—चरचर शब्द न करने वाले, थिरे—स्थिर, आसणे—आसन पर, अप्पकुक्कुए—हाथ पाँव आदि न हिलाते हुए, उवचिट्ठेज्जा—बैठे और, अप्पुट्ठाई—विना प्रयोजन, णिरुट्ठाई णिसीएज्ज—उठे-बैठे नहीं और प्रयोजन होने पर भी बार-बार उठे बैठे नहीं ॥३०॥

कालेण णिक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे ।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ॥३१॥

— भिक्खू—साधु, कालेण—समय पर, णिक्खमे—भिक्षादि के लिये निकले, य—और, कालेण—समय हो जाने पर, पडिक्कमे—लौट आवे, अकालं—अकाल को विवज्जित्ता—वर्ज कर, काले—नियत समय पर, कालं—उस काल की क्रिया का, समायरे—आचरण करे ॥३१॥

और, ण णीए—न अधिक नीचे स्थान, इसी प्रकार, णासण्णे—न अधिक निकट और, णाइदूरओ—न अधिक दूर खड़े हो कर भिक्षा ग्रहण करे किन्तु, संजए—साधु उचित स्थान पर खड़ा हो कर, परकडं—गृहस्थ के लिए बनाया हुआ, फासुयं—प्रासुक, पिंडं—आहार, पडिगाहिज्ज—ग्रहण करे ॥३४॥

अप्पपाणे ऽप्पबीयम्मि, पडिच्छण्णम्मि संवुडे ।
समयं संजए भुंजे, जयं अपरिसाडियं ॥३५॥

अन्वयार्थ—अप्पपाणे—द्वीन्द्रियादि प्राणियों से रहित, अप्पबीयम्मि—शाली आदि बीज रहित, पडिच्छण्णम्मि—ऊपर से ढके हुए और, संवुडे—चारों ओर से घिरे हुए स्थान में, संजए—संयमी साधु, समयं—दूसरे साधुओं के साथ, जयं—यतनापूर्वक, अपरिसाडियं—आहार का कण न गिराते हुए, भुंजे—उपभोग करे ॥३५॥

सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिण्णे सुहडे मडे ।
सुणिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्जं वज्जए मुणी ॥३६॥

अन्वयार्थ—आहार करते समय साधु इस प्रकार न बोले सुकडित्ति—'अच्छा बनाया,' सुपक्कित्ति—'अच्छा पकाया,' सुच्छिण्णे—'शाक-पत्रादि का छेदन अच्छा किया,' सुहडे—'शाकादि के तीखेपन आदि को अच्छा दूर किया,' मडे—'सत्तू आदि में घृतादि का खूब समावेश किया,' सुणिट्ठिए—'यह भोजन रसोत्कर्षता को प्राप्त है,' सुलट्ठित्ति—' यह

आहार रसादि सभी प्रकार से सुन्दर है' इस प्रकार, मुणी—मुनि, सावज्जं—सावद्य वचनों का, वज्जए—त्याग करे ॥३६॥

रमए पंडिए सासं, हयं भद्दं व वाहए।
बालं साम्मइ सासंतो, गलिअस्सं व वाहए ॥३७॥

अन्वयार्थ—व—जैसे, भद्दं—भद्र, हयं—घोड़े को, सासं—सिखाता हुआ, वाहए—सवार प्रसन्न होता है, उसी प्रकार, पंडिए—विनीत शिष्यों को शिक्षा देता हुआ गुरु, रमए—प्रसन्न होता है और, व—जैसे, गलिअस्सं—दुष्ट घोड़े को, सासंतो—शिक्षा देता हुआ, वाहए—सवार खेदित होता है उसी प्रकार, बालं—अविनीत शिष्य को शिक्षा देता हुआ गुरु, सम्मइ—खेदित होता है ॥३७॥

खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहा य मे।
कल्लाण मणुसासंतो, पावदिट्ठित्ति मण्णइ ॥३८॥

अन्वयार्थ—कल्लाणं—कल्याणकारी, अणुसासंतो—शिक्षा देने पर, पावदिट्ठि—पाप-दृष्टि अविनीत शिष्य, त्ति—इस प्रकार, मण्णइ—मानता है जैसे कि, मे—मेरे लिये, खड्डुया—ये वचन ठोले रूप हैं, मे—मेरे लिये, चवेडा—ये थप्पड़ रूप हैं, य—और, मे—मेरे लिये, अक्कोसा—ये आक्रोश रूप, य—तथा, वहा—वध रूप हैं ॥३८॥

पुत्तो मे भाय-णाइत्ति, साहू कल्लाण मण्णइ।
पावदिट्ठि उ अप्पाणं, सासं दासित्ति मण्णइ ॥३९॥

—साहू—विनीत साधु, सासं—गुरु महाराज की शिक्षा को, कल्लाण—कल्याणकारी, मण्णइ—मानता है और ऐसा समझता है कि गुरु महाराज, मे—मुझे, पुत्तो—अपना पुत्र, भाय—भाई, णाइत्ति—स्वजन मान कर शिक्षा देते हैं, उ—किन्तु, पावदिट्ठि—पापदृष्टि अविनीत शिष्य को शिक्षा देने पर वह, अप्पाणं—अपने आपको, दासित्ति—दास के समान, मण्णइ—मानता है ॥३९॥

ण कोवए आयरियं, अप्पाणं पि ण कोवए।
बुद्धोवघाई ण सिया, ण सिया तोत्तगवेसए ॥४०॥

—विनीत शिष्य को चाहिए कि वह, आयरियं—आचार्य महाराज को, ण कोवए—कुपित नहीं करे, अप्पाणं पि—अपने-आपको भी, ण कोवए—कुपित नहीं करे, बुद्धोवघाई—आचार्य की उपघात करने वाला, ण सिया—न हो और, तोत्तगवेसए—छिद्रान्वेषी (उनके दोषों को देखने वाला) भी, ण सिया—न हो ॥४०॥

आयरियं कुवियं णच्चा, पत्तिएणं पसायए।
विज्झविज्ज पंजलिउडो, वएज्ज ण पुणोत्ति य ।४१।

—आयरियं—आचार्य महाराज को, कुवियं—कुपित, णच्चा—जान कर, पत्तिएणं—विश्वासोत्पादक एवं विनय युक्त वचन कह कर उन्हें, पसायए—प्रसन्न करे और, विज्झविज्ज—उनके क्रोध को शांत करे, य—तथा, पंजलिउडो—

हाथ जोड़ कर अपने अपराध की क्षमा माँगे और, वएज्ज—कहे कि हे भगवन् ! पुणो—फिर, त्ति—ऐसा अपराध, ण—कभी नहीं करूँगा ॥४१॥

धम्मज्जियं च ववहारं, बुद्धेहिं आयरियं सया।
तमायरंतो ववहारं, गरहं णाभिगच्छइ ॥४२॥

अन्वयार्थ—बुद्धेहिं—तत्त्वज्ञ मुनियों ने, सया—सदा, धम्मज्जियं—क्षमा आदि यतिधर्म युक्त, ववहारं - व्यवहार का, आयरियं— सेवन किया है, तं— उस, ववहारं— पाप कर्म हटाने वाले व्यवहार का, आयरंतो—आचरण करने वाला व्यक्ति, गरहं—निन्दा को, णाभिगच्छइ—प्राप्त नहीं होता ॥४२॥

मणोगयं वक्कगयं, जाणित्ताऽऽयरियस्स उ ।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए ॥४३॥

— आयरियस्स—आचार्य महाराज के, मणोगयं—मन में रहे हुए अभिप्राय को, जाणित्ता—जान कर, उ—और, वक्कगयं—उनके वचनों को सुन कर, तं—उसे, वायाए—वाणी द्वारा, परिगिज्झ—स्वीकार करे और, कम्मुणा—कार्य द्वारा, उववायए—आचरण में लावे ॥४३॥

वित्ते अचोइए णिच्चं, खिप्पं हवइ सुचोइए
जहोवइट्ठं सुकयं, किच्चाइं कुव्वई सया ॥४४॥

— वित्ते—विनयवान् शिष्य, णिच्चं—सदा, अचोइए—

गुरु के प्रेरणा किये विना ही उनका कार्य करता है और, सुचो- इए--गुरु महाराज के सम्यक् प्रेरणा करने पर वह बुरा नहीं मानता, किन्तु, खिप्पं--शीघ्र ही, हवई--उस कार्य में प्रवृत्ति करता है तथा, सया--सदैव, जहोवइट्ठं--गुरु महाराज के कहे अनुसार, सुकयं--भलीप्रकार, किच्चाइं--कार्य, कुव्वई--करता है ॥४४॥

णच्चा णमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायए।
हवइ किच्चाणं सरणं, भूयाणं जगई जहा ॥४५॥

-- ऊपर बतलाये हुए विनय के स्वरूप को, णच्चा--जान कर, मेहावी--बुद्धिमान् व्यक्ति, णमइ--नम्र बनता है, लोए--लोक में, से--उसकी, कित्ती--कीर्ति, जायए--होती है, और जहा--जिस प्रकार, जगई--पृथ्वी, भूयाणं--सब प्राणियों के लिए आधार रूप है, उसी प्रकार वह भी, किच्चाणं--सभी शुभ अनुष्ठानों एवं सद्गुणों का, सरणं--आधार रूप, हवइ--होता है ॥४५॥

पुज्जा जस्स पसीयंति, संबुद्धा पुव्व-संथुया।
पसण्णा लाभइस्संति, विउलं अट्ठियं सुयं ॥४६॥

--संबुद्धा--तत्त्वज्ञानी, पुव्वसंथुया--पहले से ही शिष्य के विनयादि गुणों से परिचित, पुज्जा--पूज्य आचार्य महाराज, जस्स--जिस शिष्य पर, पसीयंति--प्रसन्न होते हैं उसे, पसण्णा--प्रसन्न हुए वे, अट्ठियं--मोक्ष अर्थ वाले, विउलं--विपुल, सुयं--श्रुतज्ञान का, लाभइस्संति--लाभ देते हैं ॥४६॥

स पुज्जसत्थे सुविणीयसंसए,
मणोरुई चिट्ठइ कम्मसंपया।
तवो समायारी समाहि संवुडे,
महज्जुई पंच-वयाई पालिया ॥४७।

--पुज्जसत्थे—विनय की आराधना करने से शिष्य का शास्त्र ज्ञान प्रशंसनीय, और सुविणीयसंसए---संशय रहित होता है, स--वह विनीत शिष्य, मणोरुई— गुरु की रुचि के अनुसार, चिट्ठइ--प्रवृत्ति करता है और, कम्मसंपया-- दस प्रकार की समाचारी से सम्पन्न होता है, तवोसमायारी समाहि संवुडे—तप, समाचारी और समाधि से संवर वाला हो कर तथा, पंच—पाँच, वयाई--महाव्रतों का, पालिया--भली प्रकार पालन कर, महज्जुई--महान् तेजस्वी होता है ॥४७॥

स देवगंधव्वमणुस्स पूइए,
चइत्तु देहं मलपंक पुव्वयं।
सिद्धे वा हवइ सासए,
देवे वा अप्परए महिड्ढिए ॥४८॥ त्ति बेमि ॥

— देवगंधव्व मणुस्स पूइए—देव गन्धर्व और मनुष्य से पूजित, स—वह विनीत शिष्य, मलपंकपुव्वयं—मल-मूत्रादि से भरे हुए इस, देहं—अपवित्र शरीर को, चइत्तु—छोड़ कर इसी जन्म में, सासए—शाश्वत, सिद्धे—सिद्ध, हवइ--हो जाता है, वा—अथवा यदि, अप्परए—कुछ कर्म शेष रह जाय तो,

महिड्ढिए—महान् ऋद्धि वाला, देवे—देव होता है ॥४८॥ त्ति बेमि—श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बुस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् ! जैसा मैंने भगवान् महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही मैं तुझे कहता हूँ।

॥ श्री विनयश्रुत नामक प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

परीषह नामक दूसरा अध्ययन

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं—इह खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सुच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो णो विणिहण्णेज्जा।

—श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि, आउसं—हे आयुष्मन् जम्बू !, मे—मैंने, सुयं—सुना है, तेणं—उन, भगवया—भगवान् ने, एवं—इस प्रकार, अक्खायं—कहा है, इह खलु—यहाँ जिन प्रवचन में, कासवेणं—काश्यप गोत्रीय, समणेणं—श्रमण, भगवया—भगवान् महावीरेणं—महावीर स्वामी ने, बावीसं—बाईस, परीसहा—परीषह, पवेइया—कहे हैं, जे—जिन्हें, सुच्चा—सुन कर, णच्चा—उनके स्वरूप को जान कर, जिच्चा—परिचित हो कर और, अभिभूय—जीत कर, भिक्खू—साधु, भिक्खायरियाए—

भिक्षाचर्या में, परिव्वयंतो—जाते हुए, पुट्ठो—उन परीषहों के उपस्थित होने पर, णो विणिहण्णेज्जा—संयम से विचलित न होवे ।

कयरे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सुच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो णो विणिहण्णेज्जा ।

—शिष्य पूछता है कि हे भगवन् ! ते—वे, बावीसं—बाईस, परीसहा—परीषह, कयरे खलु—कौन-से हैं, जिन्हें, कासवेणं—काश्यप गोत्रीय, समणेणं—श्रमण, भगवया—भगवान्, महावीरेणं—महावीर स्वामी ने, पवेइया—कहा है, जे—जिन्हें, सुच्चा—सुन कर, जिनके स्वरूप को, णच्चा—जान कर, जिच्चा—अभ्यस्त कर और, अभिभूय—जीत कर, भिक्खू—साधु, भिक्खायरियाए—भिक्षाचर्या में, परिव्वयंतो—जाते हुए, पुट्ठो—परीषहों के उपस्थित होने पर, णो विणिहण्णेज्जा—संयम से विचलित नहीं होवे ।

इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सुच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो णो विणिहण्णेज्जा ।

—गुरु महाराज फरमाते हैं कि हे शिष्य ! कासवेणं—

कायस्प गोत्रीय, समणेणं—श्रमण, भगवया—भगवान्, महा-वीरेणं—महावीर स्वामी द्वारा, पवेइया—कहे हुए, ते—वे, बावीसं—बाईस, परीसहा—परीषह, इमे खलु—ये हैं, जे—जिन्हें, सुच्चा—सुन कर, णच्चा-जान कर, जिच्चा—अभ्यस्त कर और, अभिभूय-जीत कर, भिक्खू-साधु, भिक्खायरियाए—भिक्षाचर्या में, परिव्वयंतो—जाते हुए, पुट्ठो—परीषहों के उपस्थित होने पर, णो विणिहण्णेज्जा—संयम से विचलित न होवे ।

तं जहा—(१) दिगिंछा परीसहे (२) पिवासा परीसहे (३) सीय परीसहे (४) उसिण परीसहे (५) दंसमसग परीसहे (६) अचेल परीसहे (७) अरइ परीसहे (८) इत्थी परीसहे (९) चरिया परीसहे (१०) णिसीहिया परीसहे (११) सिज्जा परीसहे (१२) अक्कोस परीसहे (१३) वह परीसहे (१४) जायणा परीसहे (१५) अलाभ परीसहे (१६) रोग परीसहे (१७) तणफास परीसहे (१८) जल्ल परीसहे (१९) सक्कार-पुरक्कार परीसहे (२०) पण्णा परीसहे (२१) अण्णाण परीसहे (२२) दंसण परीसहे ।

तंजहा—वे २२ परीषह इस प्रकार हैं, दिगिंछा परीसहे—क्षुधा का परीषह, पिवासा परीसहे—प्यास का परी-षह, सीय परीसहे—शीत का परीपह, उसिण परीसहे—उष्ण

(गर्मी का) परीषह, दंसमसग परीसहे—दंशमशक (डांस मच्छर आदि से होने वाला) परीषह, अचेल परीसहे—वस्त्र के अभाव से अथवा जीर्ण या अल्प वस्त्रों से होने वाला परीषह, अरइ परीसहे—अरति अर्थात् संयम में रति न न होने का परीषह, इत्थी परीसहे—स्त्री का परीषह, चरिया परीसहे—चर्या (विहार का) परीषह, णिसीहिया परीसहे—निषद्या (एकान्त स्थान में बैठने का) परीषह, सिज्जा परीसहे—शय्या (रहने के स्थान की प्रतिकूलता से होने वाला) परीषह, अक्कोस परीसहे—आक्रोश (गाली आदि कठोर वचनों का) परीषह वह परीसहे—वध परीषह, जायणा परीसहे—याचना परीषह, अलाभ परीसहे—अलाभ (भिक्षा में आहारादि न मिलने का) परीषह, रोग परीसहे—रोग परीषह, तणफास परीसहे—तृण-स्पर्श परीषह, जल्ल परीसहे—मैल का का परीषह, सक्कार पुरक्कार परीसहे—सत्कार-पुरस्कार परीषह (सत्कार एवं मान-प्रतिष्ठा मिलने पर हर्षित न होना और न मिलने पर खिन्न न होना) पण्णा परीसहे—प्रज्ञा परीषह, अण्णाण परीसहे—अज्ञान (अल्प ज्ञान का) दंसण परीसहे—दर्शन (सम्यक्त्व) परीषह।

परीसहाणं पविभत्ती, कासवेणं पवेइया ।
तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे ॥१॥

—कासवेणं— काश्यप गोत्रीय भगवान् महावीर स्वामी

ने, परीसहाणं—परीषहों का जो, पविभत्ति—विभाग, पवेइया—फरमाया है, तं—उसे, भे—आप लोगों से, उदाहरिस्सामि—कहूँगा, आणुपुव्वि—क्रमशः, मे—मुझ से, सुणेह—सुनो ॥१॥

दिगिंछा परिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामवं ।
ण छिंदे ण छिंदावए, ण पए ण पयावए ॥२॥

— दिगिंछा परिगए देहे—भूख से शरीर के पीड़ित होने पर भी, थामवं—संयम बल वाले, तवस्सी—तपस्वी, भिक्खू—साधु, ण छिंदे—फलादि का स्वयं छेदन नहीं करे, ण छिदवाए—दूसरों से छेदन नहीं करावे, ण पए—अन्न आदि स्वयं न पकावे, ण पयावए—दूसरों से न पकवावे ॥२॥

काली पव्वंग संकासे, किसे धमणि संतए ।
मायण्णे असण-पाणस्स, अदीणमणसो चरे ॥३॥

— काली पव्वंग संकासे—क्षुधा परीषह से सूख कर शरीर चाहे काकजंघा के समान दुर्बल हो जाय, धमणि संतए—नसें दिखने लग जाय, किसे—शरीर अत्यन्त कृश एवं दुर्बल हो जाय तो भी, असण-पाणस्स—आहार पानी की, मायण्णे—मर्यादा को जानने वाला साधु, अदीण-मणसो—मन में दीनता के भाव न लाता हुआ दृढ़ता के साथ, चरे—संयम मार्ग में विचरे ॥३॥

तओ पुट्ठो पिवासाए, दुगुंछी लज्जसंजए ।
सीओदगं ण सेवेज्जा, वियडस्सेसणं चरे ॥४॥

— तओ—क्षुधा परीषह के बाद तृषा परीषह का वर्णन किया जाता है, दुगुंछी—अनाचार सेवन से घृणा करने वाला, लज्ज संजए—लज्जा और संयम वाला साधु, पिवासाए—प्यास से, पुट्ठो—पीड़ित होने पर, सीओदगं—सचित पानी का, न सेवेज्जा—सेवन न करे, किन्तु वियडस्सेसणं—अग्नि आदि के संयोग से प्रासुक बने हुए पानी की एषणा के लिए, चरे—विचरे ॥४॥

छिण्णावाएसु पंथेसु, आउरे सुपिवासिए ।
परिसुक्कमुहेऽदीणे, तं तितिक्खे परीसहं ॥५॥

—छिण्णावाएसु—जहाँ लोगों का आना-जाना नहीं है ऐसे निर्जन, पंथेसु—मार्ग में जाता हुआ साधु, सुपिवासिए—प्यास से, आउरे—अति व्याकुल हो जाय तथा, परिसुक्कमुहे —मुंह सूख जाय फिर भी उसे, अदीणे—दीनता रहित हो कर, तं परीसहं—उस प्यास के परीषह को, तितिक्खे—सहन करे, किन्तु साधु-मर्यादा का उलंघन कर के सचित्त पानी का सेवन नहीं करे ॥५॥

चरंतं विरयं लूहं, सीयं फुसइ एगया ।
णाइवेलं मुणी गच्छे, सुच्चाणं जिणसासणं ॥६॥

—विरयं—अग्नि आदि के आरंभ से निवृत्त, लूहं—रूक्ष शरीर वाले साधु को, चरंतं—संयम मार्ग में विचरते हुए, एगया—कभी शीतकाल में या अन्य समय में, सीयं—ठंड, फुसइ—लगे, तो, मुणी—साधु, जिणसासणं—जिनागम को, सुच्चाणं—

सुन कर, अइवेलं--साधु-मर्यादा या स्वाध्याय आदि की वेला का अतिक्रमण कर, ण गच्छे--एक स्थान से दूसरे स्थान न जावे ॥६॥

ण मे णिवारणं अत्थि, छवित्ताणं ण विज्जइ ।
अहं तु अग्गिं सेवामि, इइ भिक्खू ण चिंतए ॥७॥

--णिवारणं शीत एवं वायु से बचाने वाले मकान आदि मे--मेरे पास, ण—नहीं, अत्थि—हैं और, ण—न मेरे पास, छवित्ताणं--शरीर की रक्षा करने वाले वस्त्र कम्बल आदि, विज्जइ--हैं, इसलिये, अहं—मैं, तु—तो, अग्गिं—अग्नि का, सेवामि—सेवन कर लूं, इइ— इसप्रकार, भिक्खु—साधु, ण चिंतए—सेवन करना तो दूर रहा विचार भी नहीं करे ॥७॥

उसिण परियावेणं, परिदाहेण तज्जिए ।
घिंसु वा परियावेणं, सायं णो परिदेवए ॥८॥

--घिंसु—ग्रीष्म ऋतु में, वा—अथवा अन्य ऋतु में, उसिण परियावेणं—उष्ण स्पर्श वाले पृथ्वी शिला आदि के ताप से, परिदाहेण--शरीर के भीतर और बाहर के दाह (जलन) से और, परियावेणं—सूर्य के ताप से, तज्जिए—पीड़ित हुआ साधु, सायं--सुख के लिये, णो परिदेवए--परिदेवना (विलाप) न करे कि यह ताप कब शान्त होगा ॥८॥

उण्हाहितत्तो मेहावी, सिणाणं णो वि पत्थए ।
गायं ण परिसिंचेज्जा, ण वीएज्जा य अप्पयं ॥९॥

—उण्हाहितत्तो—गर्मी से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी, मेहावी—बुद्धिमान् साधु, सिणाणं—स्नान की, णो वि पत्थए—अभिलाषा न करे, गायं—शरीर को, ण परिसिंचेज्जा—जल से न भिगोवे, य—और, अप्पयं—अपने शरीर पर, ण वीएज्जा—पंखे आदि से हवा नहीं करे ॥९॥

पुट्ठो य दंसमसएहिं, समरे व महामुणी ।
णागो संगाम सीसे वा, सूरे अभिहणे परं ॥१०॥

— व—जिस प्रकार, संगामसीसे—संग्राम के अग्रभाग रहा हुआ, णागो—हाथी, वा—और, सूरे—शूरवीर योद्धा, शस्त्रु के वाणों की परवाह न करते हुए, परं—शत्रु को, अभिहणे—मारता है और विजय प्राप्त करता है इसी प्रकार, महामुणी—उत्तम साधु, दंसमसएहिं—डाँस-मच्छर आदि के पुट्ठो य—काटने रूप कष्ट की उपेक्षा करता हुआ, क्रोधादि भाव-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए, समरे—आत्म-संग्राम में डटा रहे ॥१०॥

ण संतसे ण वारिज्जा, मणं पि णो पओसए ।
उवेहे णो हणे पाणे, भुंजंते मंस-सोणियं ॥११॥

—मंससोणियं—मांस और रक्त को, भुंजंते—चूसते हुए, पाणे—डांस-मच्छर आदि प्राणियों को, णो हणे—मारे नहीं और, ण संतसे—न उन्हें त्रास ही पहुँचावे तथा, ण वारिज्जा—उन्हें रोक कर अन्तराय भी न करे, यहां तक कि, मणंपि—मन से भी उन पर, णो पओसए—द्वेष न करे, किन्तु, उवेहे—

समभाव रखे ॥११॥

परिजुण्णेहिं वत्थेहिं, होक्खामि त्ति अचेलए ।
अदुवा सचेलए होक्खं, इइ भिक्खू ण चिंतए ॥१२॥

—वत्थेहिं—वस्त्रों के, परिजुण्णेहिं—जीर्ण हो जाने पर, अचेलए—मैं वस्त्र-रहित, होक्खामि—हो जाऊँगा, त्ति—इस प्रकार, अदुवा—अथवा, सचेलए—वस्त्र सहित, होक्खं—हो जाऊँगा, भिक्खु—साधु, इइ—इस प्रकार, ण चिंतए—विचार न करे ॥१२॥

भावार्थ—वस्त्र फट जाने पर साधु को भविष्य में वस्त्र न मिलने की आशंका से चिन्तित नहीं होना चाहिये और नये वस्त्र पाने की आशा से प्रसन्न भी नहीं होना चाहिये ।

एगया अचेलए होइ, सचेले या वि एगया ।
एयं धम्महियं णच्चा, णाणी णो परिदेवए ॥१३॥

—एगया—कभी (जिनकल्पी अवस्था में) साधु, अचेलए—वस्त्र-रहित, होइ—होता है, या वि—और, एगया—कभी, (स्थविरकल्पी अवस्था में), सचेले—वस्त्र-सहित होता है, इस प्रकार, एयं—वस्त्र-रहित और वस्त्र-सहित इन दोनों अवस्थाओं को, धम्महियं—धर्म के लिए हितकारी, णच्चा—जान कर, णाणी—ज्ञानी पुरुष, णो परिदेवए—खेद नहीं करे ॥१३॥

गामाणुगामं रीयंतं, अणगारमकिंचणं ।
अरई अणुप्पविसेज्जा, तं तितिक्खे परीसहं ॥१४॥

— गामाणुगामं--ग्रामानुग्राम, रीयंतं—विहार करते हुए, अणगारं—गृहत्यागी, अकिंचणं—परिग्रह-रहित साधु के मन में यदि कभी, अरई—अरति, (संयम में अरुचि) अणुप्पविसे--उत्पन्न हो तो, तं—उस अरति, परीसहं--परीषह को तितिक्खे—सहन करे और संयम में अरुचि नहीं लावे ॥१४॥

अरइं पिट्ठओ किच्चा, विरए आयरक्खिए ।
धम्मारामे णिरारंभे, उवसंते मुणी चरे ॥१५

— विरए---हिंसादि से निवृत्त, आयरक्खिए—दुर्गति से आत्मा की रक्षा करने वाला, णिरारंभे—आरंभ त्यागी, उवसंते—क्रोध आदि कषायों को शान्त करने वाला, मुणि—-साधु, अरइं—संयम विषयक अरति का, पिट्ठओ किच्चा—तिरस्कार कर के, धम्मारामे--धर्मरूप उद्यान में, चरे--विचरे ॥१५॥

संगो एस मणुस्साणं, जाओ लोगम्मि इत्थिओ ।
जस्स एया परिण्णाया, सुकडं तस्स सामण्णं ॥१६॥

— लोगम्मि—लोक में, जाओ—जो, इत्थिओ—स्त्रियां हैं, एस—वे, मणुस्साणं—मनुष्यों के लिये, संगो—संग रूप—आसक्ति का कारण है, एया--इन स्त्रियों को, जस्स—जिस साधु ने, परिण्णाया—ज्ञपरिज्ञा से त्याज्य समझ कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से छोड़ दिया है, तस्स—उस साधु का, सामण्णं—साधुत्व, सुकडं—सफल है ॥१६॥

एवमादाय मेहावी, पंकभूयाओ इत्थिओ ।
णो ताहिं विणिहण्णिज्जा, चरेज्जत्तगवेसए ॥१७॥

— एवं—इस प्रकार, इत्थिओ—स्त्रियों के संग को, पंकभूयाओ—कीचड़ रूप, आदाय—मान कर, मेहावी—बुद्धिमान् साधु, ताहिं—उनमें, णो विणिहण्णिज्जा—फँसे नहीं तथा, अत्तगवेसए—आत्म-गवेषक हो कर, चरेज्ज—संयम मार्ग में ही विचरे ॥१७॥

एग एव चरे लाढे, अभिभूय परीसहे ।
गामे वा णगरे वावि, णिगमे वा रायहाणीए ॥१८॥

—लाढे—प्रासुक-एषणीय आहार से निर्वाह करने वाला प्रशस्त साधु, परीसहे—परीषहों को, अभिभूय—जीत कर, गामे—ग्राम, वा—अथवा, णगरे—नगर में, वावि—अथवा, णिगमे—व्यापारी बस्ती वाले प्रदेश में, वा—अथवा, रायहाणीए—राजधानी में, एग एव—अकेला, (राग-द्वेष रहित हो कर) चरे—अप्रतिबद्ध विहार करे ॥१८॥

असमाणो चरे भिक्खू, णेव कुज्जा परिग्गहं ।
असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिकेओ परिव्वए ॥१९॥

— भिक्खु—साधु, असमाणो—गृहस्थियों की नेश्राय रहित हो कर, चरे—अप्रतिबद्ध विहार करे, परिग्गहं—परिग्रह (ग्रामादि में मूर्छा—ममत्व भाव) णेव कुज्जा—कतई नहीं रखे, गिहत्थेहिं—गृहस्थों से, असंसत्तो—सम्बन्ध न रखता हुआ, अणिकेओ—घर रहित हो कर, परिव्वए—विहार

करता रहे ॥१९॥

सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले व एगओ ।
अकुक्कुओ णिसीएज्जा, ण य वित्तासए परं ॥२०॥

— सुसाणे—साधु श्मशान में, वा—अथवा, सुण्णगारे—सुने घर में, वा—अथवा, रुक्खमूले—वृक्ष के नीचे, अकुक्कुओ—किसी प्रकार की अशिष्ट चेष्टा न करता हुवा, एगओ—अकेला हो—राग-द्वेष रहित हो कर, णिसीएज्जा—बैठे, य—और, परं—किसी भी प्राणी को, ण चित्तासए—त्रास न पहुँचावे ॥२०॥

तत्थ से चिट्ठमाणस्स, उवसग्गाभिधारए ।
संकाभीओ ण गच्छेज्जा, उट्ठित्ता अण्णमासणं ॥२१॥

— तत्थ—वहाँ श्मशान आदि में, चिट्ठमाणस्स—बैठे हुए, से—उस साधु पर, उवसग्ग—यदि उपसर्ग आवे तो, अभिधारए—ऐसा चिन्तन करे कि 'मैं संयम में स्थिर हूँ, ये उपसर्ग मेरा क्या विगाड़ सकते हैं।' इस प्रकार विचार कर उन्हें समभावपूर्वक सहन करे किन्तु, संकाभिओ—उपसर्गों की शंका से भयभीत हो कर, उट्ठित्ता—अपने स्थान से उठ कर, अण्णं—दूसरे, आसणं—स्थान पर, ण गच्छेज्जा—न जावे ॥२१॥

उच्चावयाहि सिज्जाहि, तवस्सी भिक्खू थामवं ।
णाइवेलं विहण्णिज्जा, पावदिट्ठि विहण्णइ ॥२२॥

— थामवं—शीत-तापादि के परीषह को सहन करने में समर्थ, तवस्सी—तपस्वी, भिक्खू—साधु को यदि, उच्चाव-

याहिं--ऊँची-नीची (अनुकूल-प्रतिकूल) सिज्जाहिं--शय्या मिले तो हर्ष विषाद न करता हुआ, अइवेलं--संयम धर्म की मर्यादा का, ण विहण्णिज्जा--उल्लंघन न करे, क्योंकि पावदिट्ठी--'यह अच्छा है, यह बुरा है,'--इस प्रकार पाप-दृष्टि रखने वाला साधु, विहण्णइ--संयम की मर्यादा का उल्लंघन कर शिथिलाचारी हो जाता है ॥२२॥

पइरिक्क-मुवस्सयं लद्धुं, कल्लाणं अदुव पावगं ।
किमेगरायं करिस्सइ, एवं तत्थऽहियासए ॥२३॥

--पइरिक्क--स्त्री-पशु-पण्डक आदि से रहित, कल्लाणं--अच्छा, अदुव--अथवा, पावगं--बुरा, उवस्सयं--स्थान, लद्धुं--प्राप्त कर, एगरायं--'एक रात में यह मेरा, किं--क्या, करिस्सइ--करेगा,' एवं--इस प्रकार सोच कर साधु, तत्थ--वहाँ पर, अहियासए--समभाव से सुख-दुःख सहन करे ॥२३॥

अक्कोसेज्जा परे भिक्खुं, ण तेसिं पडिसंजले ।
सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू ण संजले ॥२४॥

--परे--कोई व्यक्ति, भिक्खुं--साधु को, अक्कोसेज्जा--गाली देवे, बुरे वचन कह कर उसका अपमान करे तो, तेसिं--उस पर, ण पडिसंजले--क्रोध नहीं करे, क्योंकि ऐसा करने से वह, बालाणं--अज्ञानियों के, सरिसो--सरीखा, होइ--हो जाता है, तम्हा--इसलिये, भिक्खू--साधु, ण संजले--

णासुत्ति—कभी नाश, णत्थि—नहीं होता,' एवं—इस प्रकार संजए—साधु, पेहेज्ज—विचार करे ॥२७॥

दुक्करं खलु भो ! णिच्चं, अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वं से जाइयं होइ, णत्थि किंचि अजाइयं ॥२८॥

—गुरु महाराज कहते हैं कि भो—हे शिष्य ! अणगारस्स—घरबार के त्यागी, भिक्खुणो—भिक्षा से निर्वाह करने वाले साधु का जीवन, खलु—निश्चय ही, दुक्करं—बड़ा कठिन है, क्योंकि, से—उसे, सव्वं—सभी आहार-उपकरण आदि वस्तु, णिच्चं—सदा, जाइयं—माँगने पर ही, होई—मिलती है, अजाइयं—बिना माँगे, किंचि—कोई भी वस्तु णत्थि—नहीं मिलती ॥२८॥

गोयरग्गपविट्ठस्स, पाणी णो सुप्पसारए ।
'सेओ अगारवासुत्ति,' इइ भिक्खू ण चिंतए ॥२९॥

—गोयरग्गपविट्ठस्स—गोचरी के लिये गये हुए साधु का, पाणी—हाथ भिक्षा माँगने के लिये, णो सुप्पसारए—सहज ही नहीं फैलता, इससे तो, अगारवासु त्ति—गृहवास ही. सेओ—अच्छा है, इइ—इस प्रकार, भिक्खू—साधु, ण चिंतए—विचार भी न लावे ॥२९॥

परेसु घास-मेसेज्जा, भोयणे परिणिट्ठिए ।
लद्धे पिंडे अलद्धे वा, णाणुतप्पेज्ज पंडिए ॥३०॥

भोयणे—भोजन, परिणिट्ठिए—तैयार हो जाने पर साधु, परेसु—गृहस्थों के यहाँ, घासं—आहार की, एसिज्जा—

क्रोध न करे ॥२४॥

सोच्चाणं फरुसा भासा, दारुणा गाम-कंटगा ।
तुसिणीओ उवेहेज्जा, ण ताओ मणसी करे ॥२५॥

— गामकंटगा--श्रोत्र आदि इन्द्रियों को काँटे के समान चुभने वाली, दारुणा—दारुण (भयंकर) फरुसा–कठोर,भासा–भापा को, सोच्चाणं—सुन कर, तुसिणीओ—साधु मौन रह कर उसकी, उवेहेज्जा—उपेक्षा करे, ताओ—उस कठोर भाषा को, मणसी--मन में, ण करे—न रखे (द्वेषभाव न लावे) ॥२५॥

हओ ण संजले भिक्खू, मणं पि ण पओसए ।
तितिक्खं परमं णच्चा, भिक्खू धम्मं विचितए ॥२६॥

— यदि कोई दुष्ट अनार्य पुरुष साधु को, हओ--मारे तो, भिक्खू—साधु, ण संजले--उस पर क्रोध न करे, मणंपि—मन से भी, ण पओसए—उस पर द्वेष न लावे, तितिक्खं—'क्षमा, परमं--उत्कृष्ट धर्म है,' णच्चा—ऐसा जान कर, भिक्खू—साधु, धम्मं—क्षमा, मार्दव आदि दसविध यतिधर्म का, विचितए--विचार कर के पालन करे ॥२६॥

समणं संजयं दंतं, हणिज्जा कोइ कत्थइ ।
णत्थि जीवस्स णासुत्ति, एवं पेहेज्ज संजए ॥२७॥

— दंतं—पाँच इन्द्रियों का दमन करने वाले, संजयं--संयमवन्त, समणं--तपस्वी साधु को, कोइ--कोई भी व्यक्ति, कत्थइ--कहीं पर, हणिज्जा—मारे तो, जीवस्स—'जीव का,

णासुत्ति—कभी नाश, णत्थि—नहीं होता,' एवं—इस प्रकार संजए—साधु, पेहेज्ज—विचार करे ॥२७॥

दुक्करं खलु भो ! णिच्चं, अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्वं से जाइयं होइ, णत्थि किंचि अजाइयं ॥२८॥

—गुरु महाराज कहते हैं कि भो—हे शिष्य ! अणगारस्स—घरबार के त्यागी, भिक्खुणो—भिक्षा से निर्वाह करने वाले साधु का जीवन, खलु—निश्चय ही, दुक्करं—बड़ा कठिन है, क्योंकि, से—उसे, सव्वं—सभी आहार-उपकरण आदि वस्तु, णिच्चं—सदा, जाइयं—माँगने पर ही, होई—मिलती है, अजाइयं—बिना माँगे, किंचि—कोई भी वस्तु णत्थि—नहीं मिलती ॥२८॥

गोयरग्गपविट्ठस्स, पाणी णो सुप्पसारए।
'सेओ अगारवासुत्ति,' इइ भिक्खू ण चिंतए ॥२९॥

—गोयरग्गपविट्ठस्स—गोचरी के लिये गये हुए साधु का, पाणी—हाथ भिक्षा माँगने के लिये, णो सुप्पसारए—सहज ही नहीं फैलता, इससे तो, अगारवासु त्ति—गृहवास ही. सेओ—अच्छा है, इइ—इस प्रकार, भिक्खू—साधु, ण चिंतए—विचार भी न लावे ॥२९॥

परेसु घास-मेसेज्जा, भोयणे परिणिट्ठिए।
लद्धे पिंडे अलद्धे वा, णाणुतप्पेज्ज पंडिए ॥३०॥

भोयणे—भोजन, परिणिट्ठिए—तैयार हो जाने पर साधु, परेसु—गृहस्थों के यहाँ, घासं—आहार की, एसिज्जा—

गवेषणा करे, पिंडे--आहार, लद्धे—मिले, वा—अथवा, अलद्धे—नहीं मिले तो, पंडिए--बुद्धिमान् साधु, णाणुतप्पेज्ज—खेद नहीं करे ॥३०॥

भावार्थ--गृहस्थों के यहाँ भोजन तैयार हो जाने पर साधु मधुकरी वृत्ति से आहार की गवेषणा करे। इच्छानुकूल पर्याप्त आहार मिले, तो साधु को हर्षित नहीं होना चाहिये और इच्छा के प्रतिकूल अथवा अल्प आहार मिले अथवा आहार नहीं मिले, तो खेद नहीं करना चाहिये।

अज्जेवाहं ण लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया।
जो एवं पडिसंचिक्खे, अलाभो तं ण तज्जए ॥३१॥

—अहं—मुझे, अज्जेव—आज, ण लब्भामि—आहार नहीं मिला है, तो, अवि—संभवतः, सुए—कल, लाभो—प्राप्ति, सिया—हो जायगा, जो—जो साधु-आहार प्राप्त न होने पर, एवं—इस प्रकार, पडिसंचिक्खे--विचार कर के दीन भाव नहीं लाता, तं—उसे, अलाभो—अलाभ परीषह, ण तज्जए—नहीं सताता है ॥३१॥

णच्चा उप्पइयं दुक्खं, वेयणाए दुहट्टिए।
अदीणो ठावए पण्णं, पुट्ठो तत्थऽहियासए ॥३२॥

—दुक्खं—दुःख (ज्वरादि रोग) उप्पइयं—उत्पन्न हुआ, णच्चा—जान कर, वेयणाए—वेदना से, दुहट्टिए—दुखी हुआ साधु स्वकृत कर्म का फल जान कर, अदीणो--दीनता रहित

होकर, पण्णं—अपनी बुद्धि को, ठावए—स्थिर करे और, तत्थ—रोगावस्था में, पुट्ठो—रोग से स्पृष्ट होने पर, अहियासए—समभावपूर्वक सहन करे ॥३२॥

तेगिच्छं णाभिणंदिज्जा, संचिक्खत्तगवेसए ।
एयं खु तस्स सामण्णं, जं ण कुज्जा ण कारवे ॥३३॥

—अत्तगवेसए—आत्मशोधक मुनि, तेगिच्छं—चिकित्सा की, णाभिणंदिज्जा—अनुमोदना भी नहीं करे और रोग को अपने किये हुए कर्मों का फल, संचिक्ख—जान कर समाधिपूर्वक सहन करे, जं—जो रोग की चिकित्सा, ण कुज्जा—न तो स्वयं करता है और ण कारवे—न दूसरे से कराता है तथा करते हुए को भला भी नहीं समझता है, एवं खु—इसी में तस्स—उस साधु की, सामण्णं—सच्ची साधुता है ॥३३॥

भावार्थ—यह कथन जिनकल्पी तथा अभिग्रहधारी साधु की अपेक्षा से है । स्थविरकल्पी के लिए सावद्य चिकित्सा का निषेध है, निरवद्य चिकित्सा का नहीं ।

अचेलगस्स लूहस्स, संजयस्स तवस्सिणो ।
तणेसु सयमाणस्स, हुज्जा गाय-विराहणा ॥३४॥

— अचेलगस्स—वस्त्र-रहित, लूहस्स—रूक्ष शरीर वाले, संजयस्स—संयमी, तवस्सिणो—तपस्वी मुनि को, तणेसु—तृणों पर, सयमाणस्स—सोते हुए, गाय-विराहणा—शरीर में पीड़ा, हुज्जा—होती है ॥३४॥

आयवस्स णिवाएणं, अउला हवइ वेयणा ।
एवं णच्चा ण सेवंति, तंतुजं तणतज्जिया ॥३५॥

— आयवस्स—अत्यन्त धूप, णिवाएणं—पड़ने से और, तणतज्जिया—तृणों के स्पर्श से, अउला—अत्यधिक, वेयणा—वेदना, हवइ—होती है, उस समय साधु को, एवं—इस प्रकार विचार करना चाहिये कि 'इस आत्मा ने नरकादि दुर्गतियों में जो वेदना सही है उसके सामने यह तृणजन्य वेदना तो कुछ भी नहीं है। आये हुए कष्टों को समभाव से सहन करना मेरे लिए महान् लाभ का कारण है'—ऐसा, णच्चा— जान कर जिनकल्पी मुनि, तंतुजं—वस्त्र-कम्बल आदि का, ण सेवंति—सेवन नहीं करते हैं ॥३५॥

किलिण्णगाए मेहावी, पंकेण व रएण वा ।
घिसु वा परियावेणं, सायं णो परिदेवए ॥३६॥

— घिसु—ग्रीष्म ऋतु में, वा—अथवा अन्य ऋतु में, परियावेणं—परिताप से होने वाले पसीने से, वा—अथवा, पंकेण—मैल से, व—अथवा, रएण—रज से, किलिण्णगाए—शरीर लिप्त हो जाय तो भी, मेहावी—बुद्धिमान् साधु, सायं—सुख के लिये, णो परिदेवए—दीनता नहीं दिखावे ॥३६॥

वेएज्ज णिज्जरापेही, आरियं धम्मणुत्तरं ।
जाव सरीरभेओ त्ति, जल्लं काएण धारए ॥३७॥

— अणुत्तरं—सर्व प्रधान, आरियं—आर्य, धम्म—श्रुत-चारित्र रूप धर्म, वेएज्ज—प्राप्त कर के, णिज्जरापेही—

निर्जरा चाहने वाला साधु, जाव—जब तक, सरीरभेओत्ति—शरीर का नाश न हो, तब तक—जीवन पर्यन्त, काएण—इस शरीर से, जल्लं—मैल परीषह को, धारए—समभाव पूर्वक सहन करे। ३७॥

अभिवायण मब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा णिमंतणं।
जे ताइं पडिसेवंति, ण तेसिं पीहए मुणी ॥३८॥

—जे—जो साधु स्वतीर्थी या अन्यतीर्थी, सामी—राजा आदि द्वारा, कुज्जा—किये गये, अभिवायणं—नमस्कार, अब्भुट्ठाणं—सत्कार-सन्मान तथा, णिमंतणं—भिक्षा के लिए निमंत्रण, ताइं—आदि का, पडिसेवंति—सेवन करते हैं, तेसिं—उनकी, मुणी—साधु, ण पीहए—चाहना नहीं करे और उनकी प्रशंसा भी नहीं करे ॥३८॥

अणुक्कसाई अप्पिच्छे, अण्णाएसि अलोलुए।
रसेसु णाणुगिज्झिज्जा, णाणुतप्पिज्ज पण्णवं ॥३९॥

—अणुक्कसाई—अल्पकषाय वाला, अप्पिच्छे—सत्कार-सन्मान आदि की इच्छा न करने वाला, अण्णाएसि—अज्ञात कुलों से भिक्षा लेने वाला, अलोलुए—लोलुपता रहित, पण्णवं—बुद्धिमान् साधु, रसेसु—सरस भोजन में, णाणुगिज्झिज्जा—आसक्ति न रखे और उसके न मिलने पर, णाणुतप्पिज्ज—खेद नहीं करे तथा दूसरों का सत्कार-सम्मानादि उत्कर्ष देख कर ईर्षालु नहीं बने ॥३९॥

निर्जरा चाहने वाला साधु, जाव—जब तक, सरीरभेओत्ति—शरीर का नाश न हो, तब तक—जीवन पर्यन्त, काएण—इस शरीर से, जल्लं—मैल परीषह को, धारए—समभाव पूर्वक सहन करे। ३७॥

अभिवायण मब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा णिमंतणं।
जे ताइं पडिसेवंति, ण तेसिं पीहए मुणी ॥३८॥

—जे—जो साधु स्वतीर्थी या अन्यतीर्थी, सामी—राजा आदि द्वारा, कुज्जा—किये गये, अभिवायणं—नमस्कार, अब्भुट्ठाणं—सत्कार-सन्मान तथा, णिमंतणं—भिक्षा के लिए निमंत्रण, ताइं—आदि का, पडिसेवंति—सेवन करते हैं, तेसिं—उनकी, मुणी—साधु, ण पीहए—चाहना नहीं करे और उनकी प्रशंसा भी नहीं करे ॥३८॥

अणुक्कसाई अप्पिच्छे, अण्णाएसि अलोलुए।
रसेसु णाणुगिज्झिज्जा, णाणुतप्पिज्ज पण्णवं ॥३९॥

—अणुक्कसाई—अल्पकषाय वाला, अप्पिच्छे—सत्कार-सन्मान आदि की इच्छा न करने वाला, अण्णाएसि—अज्ञात कुलों से भिक्षा लेने वाला, अलोलुए—लोलुपता रहित, पण्णवं—बुद्धिमान् साधु, रसेसु—सरस भोजन में, णाणुगिज्झिज्जा—आसक्ति न रखे और उसके न मिलने पर, णाणुतप्पिज्ज—खेद नहीं करे तथा दूसरों का सत्कार-सम्मानादि उत्कर्ष देख कर ईर्षालु नहीं बने ॥३९॥

से णूणं मए पुव्वं, कम्मा णाणफला कडा।
जेणाहं णाभिजाणामि, पुट्ठो केणइ कण्हुई ॥४०॥

—णूणं—निश्चय ही, मए—मैंने, पुव्वं—पूर्वजन्म में, णाणफला—ज्ञान-फल देने वाले, कम्मा—कर्म, कडा—किये हैं, जेण—जिससे, अहं—मैं, णा—सामान्य मनुष्य होते हुए भी, केणइ—किसी व्यक्ति द्वारा, कण्हुइ—किसी भी विषय में, पुट्ठो—पूछा जाने पर, अभिजाणामि—ठीक-ठीक उत्तर देता हूँ ॥४०॥ नोट—यह अर्थ प्रज्ञा के अतिशय की अपेक्षा से है और यही अर्थ इस प्रज्ञा परीषह में अधिक संगत होता है। टीकाकार ने अज्ञान के कर्मों की अपेक्षा भी इस गाथा का अर्थ दिया है, वह इस प्रकार है—णूणं—निश्चय ही, पुव्वं—पूर्वभव में, मए—मैंने, अणाणफला—अज्ञान फल वाले, कम्मा—कर्म, कडा—किये हैं, जेण—जिससे कि, अहं—मैं, केणइ—किसी व्यक्ति द्वारा, कण्हुई—किसी विषय में, पुट्ठो—पूछा जाने पर, णाभिजाणामि—नहीं जानता—ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सकता ॥४०॥

अह पच्छा उइज्जंति, कम्माऽणाण फला कडा।
एवमस्सासि अप्पाणं, णच्चा कम्मविवागयं ॥४१॥

—अहपच्छा—इसके बाद ज्ञान का अभिमान करने से, कडा—किये हुए, अणाणफला—अज्ञान फल देने वाले, कम्मा—कर्म, उइज्जंति—उदय में आवेंगे, एवं—इस प्रकार, कम्मविवागयं—कर्म-विपाक को, णच्चा—जान कर, अप्पाणं—अपनी

आत्मा को, अस्सासि--आश्वासन देना चाहिए अर्थात् ज्ञान का गर्व नहीं करना चाहिए ।

भावार्थ— कर्म अपने अबाधा काल के बाद फल देते हैं, तदनुसार पहले बांधे हुए अज्ञान-फल वाले ये ज्ञानावरणीय कर्म उसी समय फल न दे कर अभी उदय में आ रहे हैं। अतएव अज्ञान के लिये शोक न कर के अज्ञान-फल वाले कर्मों को क्षय करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

णिरट्ठगम्मि विरओ, मेहुणाओ सुसंवुडो ।
जो सक्खं णाभिजाणामि, धम्मं कल्लाण-पावगं ॥४२॥

— जो—'जो मैं अभी तक, सक्खं—साक्षात् स्पष्ट रूप से, कल्लाणं—कल्याणकारी, धम्मं--धर्म के स्वरूप को और पावगं—पाप के स्वरूप को भी, णाभिजाणामि—नहीं जान सका हूँ तो फिर, मि—मेरा, मेहुणाओ--मैथुन आदि से, विरओ मि—निवृत्त होना और, सुसंवुडो – सम्यक् प्रकार से आश्रवों का निरोध करना, णिरट्ठगं—व्यर्थ ही है'--इस प्रकार साधु कभी विचार नहीं करे, किन्तु ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करने का प्रयत्न करे ॥४२॥

तवोवहाण-मादाय, पडिमं पडिवज्जओ ।
एवं वि विहरओ मे, छउमं ण णियट्टई ॥४३॥

—तवोवहाणं--'उपधान तप आदि आदाय—अंगीकार कर के, पडिमं—साधु की प्रतिमा को, पडिवज्जओ--स्वीकार करते हुए, एवं वि--इस प्रकार उत्कृष्ट चर्या से भी, विहरओ—

विचरते हुए भी, मे—मेरा, छउमं—छद्मस्थपन, ण णियट्टई—दूर नही होता है,' इस प्रकार विचार कर साधु को खेद नहीं करना चाहिए, किन्तु अज्ञान को दूर करने के लिये शास्त्र-विहित क्रियाओं में उत्साहपूर्वक विशेष रत रहना चाहिये ॥४३॥

णत्थि णूणं परे लोए, इड्ढी वावि तवस्सिणो ।
अदुवा वंचिओ मि त्ति, इइ भिक्खू ण चिंतए ॥४४॥

— णूणं—'निश्चय ही, परे लोए—परलोक—जन्मान्तर वावि—अथवा, तवस्सिणो—तपस्वी की, इड्ढी—ऋद्धि णत्थि—नहीं है, अदुवा—इसलिए साधुपन ले कर, वंचिओमित्ति—मैं ठगा गया हूँ' इइ—इस प्रकार, भिक्खू—साधु, ण चिंतए—विचार नहीं करे ॥४४॥

अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवा वि भविस्सइ ।
मुसं ते एव माहंसु, इइ भिक्खू ण चिंतए ॥४५॥

— जिणा—'राग-द्वेष को जीतने वाले सर्वज्ञ जिन देव, अभू—भूतकाल में हुए हैं, जिणा—वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में सर्वज्ञ जिन-देव, अत्थि—हैं, अदुवा वि—अथवा भविस्सइ—भविष्य में होंगे, एवं—इस प्रकार, ते—उन सर्वज्ञ जिन देवों का अस्तित्व बताने वाले लोगों ने, मुसं—झूठ, आहंसु—कहा है, अथवा भूत-भविष्यत् वर्तमान काल के जिन देवों ने स्वर्ग आदि परलोक बतलाया है, वह झूठ कहा है—इइ—इस प्रकार, भिक्खू—साधु, ण चिंतए—विचार नहीं करे ॥४५॥

एए परीसहा सव्वे, कासवेणं पवेइया ।
जे भिक्खू ण विहण्णिज्जा, पुट्ठो केणई कण्हुई । त्ति बेमि ।४६।

--एए--ये, सव्वे--सभी, परीसहा--परीषह, कासवेणं--काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने, पवेइया--फरमाये हैं, जे--जिनके स्वरूप को जान कर, भिक्खू--धैर्यवान् साधु, कण्हुई--कहीं भी, केणई--इन परीषहों में से किसी भी परीषह के, पुट्ठो--उपस्थित होने पर ण विहण्णिज्जा--संयम से विचलित नहीं होवे ॥४६॥ त्ति बेमि--ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ दूसरा अध्ययन समाप्त ॥

चतुरंगीय नामक तीसरा अध्ययन

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥१॥

— इह--इस संसार में, जंतुणो--प्राणी के लिये, माणुसत्तं--मनुष्य-जन्म, सुई--धर्मशास्त्र का श्रवण, सद्धा--धर्म पर श्रद्धा, य--और संजमम्मि--संयम में, वीरियं--पराक्रम--आत्मशक्ति लगाना इन, चत्तारि--चार, परमंगाणि--प्रधान अंगों की प्राप्ति होना, दुल्लहाणी--दुर्लभ है ।

समावण्णाण संसारे, णाणागोत्तासु जाइसु ।
कम्मा णाणाविहा कट्टु, पुढो विस्संभिया पया ॥२॥

—संसारे—इस संसार में, पया—जीव, णाणाविहा—अनेक प्रकार के, कम्मा—कर्म, कट्टु—कर के, णाणागोत्तासु—विविध गोत्र वाली, जाइसु—जातियों में, समावण्णाण—प्राप्त हुए हैं और वे, पुढो—एक-एक कर के, विस्संभिया—सारे विश्व में व्याप्त हैं—कभी कहीं,कभी कहीं उत्पन्न हो कर सारे लोक में जन्म-मरण किये हैं ॥२॥

एगया देवलोएसु, णरएसु वि एगया ।
एगया आसुरे काये, अहाकम्मेहिं गच्छइ ॥३॥

—अहाकम्मेहिं—अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जीव, एगया—कभी, देवलोएसु—देवलोक में, एगया—कभी, णरएसु—नरक में, वि—और, एगया—कभी, आसुरे काये—असुर योनि में, गच्छइ—उत्पन्न होता है ॥३॥

एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडाल वुक्कसो ।
तओ कीड पयंगो य, तओ कुंथूपिवीलिया ॥४॥

—एगया—मनुष्य-जन्म योग्य कर्म के उदय आने पर यह जीव कभी, खत्तिओ—क्षत्रिय, होई—होता है, तओ—इसके बाद कभी, चंडाल वुक्कसो—चंडाल और वुक्कस (वर्णसंकर) होता है, तओ—कभी, कीडपयंगो—कीड़ा और पतंगिया, य—तथा, तओ—कभी, कुंथू—कुन्थु और, पिवीलिया—चींटी हो जाता है ॥४॥

एवमावट्टजोणीसु, पाणिणो कम्म-किव्विसा।
ण णिव्विज्जंति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया ॥५॥

—सव्वट्ठेसु व खत्तिया—जिस प्रकार सभी मनोज्ञ काम-भोग एवं राज्य-ऋद्धि मिल जाने पर भी क्षत्रियों की राज्य बढ़ाने की तृष्णा शांत नहीं होती, एवं—उसी प्रकार, संसारे—संसार में, कम्मकिव्विसा—अशुभ कर्म वाले, पाणिणो—प्राणी, आवट्टजोणीसु—नाना प्रकार की योनियों में परिभ्रमण करते हुए भी, ण णिव्विज्जंति—निर्वेद प्राप्त नहीं करते, संसार-परिभ्रमण से उन्हें, कभी उद्वेग नहीं होता ॥५॥

कम्म-संगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो ॥६॥

— कम्मसंगेहिं—कर्मों के सम्बन्ध से, सम्मूढा—मूढ़ बने हुए, दुक्खिया—दुखी और, बहुवेयणा—अतिशय वेदना वाले, पाणिणो—प्राणी, अमाणुसासु—मनुष्य-योनि के सिवाय दूसरी नरक आदि, जोणिसु—योनियों में, विणिहम्मंति—अनेक प्रकार से दुःख भोगते हैं॥६॥

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता आययंति मणुस्सयं ॥७॥

— कयाइ—कभी, आणुपुव्वी—क्रमशः, कम्माणं—मनुष्य-गति प्रतिबन्धक कर्मों के पहाणाए—नाश होने पर, सोहिं—कर्म-क्षय रूप शुद्धि को, अणुप्पत्ता—प्राप्त हुए, जीवा—

समावण्णाण संसारे, णाणागोत्तासु जाइसु ।
कम्मा णाणाविहा कट्टु, पुढो विस्संभिया पया ॥२॥

—संसारे—इस संसार में, पया—जीव, णाणाविहा—अनेक प्रकार के, कम्मा—कर्म, कट्टु—कर के, णाणागोत्तासु—विविध गोत्र वाली, जाइसु—जातियों में, समावण्णाण—प्राप्त हुए हैं और वे, पुढो—एक-एक कर के, विस्संभिया—सारे विश्व में व्याप्त हैं—कभी कहीं,कभी कहीं उत्पन्न हो कर सारे लोक में जन्म-मरण किये हैं ॥२॥

एगया देवलोएसु, णरएसु वि एगया ।
एगया आसुरे काये, अहाकम्मेहिं गच्छइ ॥३॥

—अहाकम्मेहिं—अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जीव, एगया—कभी, देवलोएसु—देवलोक में, एगया—कभी, णरएसु—नरक में, वि—और, एगया—कभी, आसुरे काये—असुर योनि में, गच्छइ—उत्पन्न होता है ॥३॥

एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडाल वुक्कसो ।
तओ कीड पयंगो य, तओ कुंथूपिवीलिया ॥४॥

—एगया—मनुष्य-जन्म योग्य कर्म के उदय आने पर यह व कभी, खत्तिओ—क्षत्रिय, होई—होता है, तओ—इसके र कभी, चंडाल वुक्कसो—चंडाल और वुक्कस (वर्णशंकर) त है, तओ—कभी, कीडपयंगो—कीड़ा और पतंगिया, -तथा, तओ—कभी, कुंथू—कुन्थु और, पिवीलिया—चींटी ाता है ॥४॥

एवमावट्टजोणीसु, पाणिणो कम्म-किव्विसा ।
ण णिव्विज्जंति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया ॥५॥

—सव्वट्ठेसु व खत्तिया—जिस प्रकार सभी मनोज्ञ काम-भोग एवं राज्य-ऋद्धि मिल जाने पर भी क्षत्रियों की राज्य बढ़ाने की तृष्णा शांत नहीं होती, एवं--उसी प्रकार, संसारे—संसार में, कम्मकिव्विसा—अशुभ कर्म वाले, पाणिणो—प्राणी, आवट्टजोणीसु--नाना प्रकार की योनियों में परिभ्रमण करते हुए भी, ण णिव्विज्जंति—निर्वेद प्राप्त नहीं करते, संसार-परिभ्रमण से उन्हें, कभी उद्वेग नहीं होता ॥५॥

कम्म-संगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो ॥६॥

— कम्मसंगेहिं--कर्मों के सम्बन्ध से, सम्मूढा--मूढ़ बने हुए, दुक्खिया--दुखी ओर, बहुवेयणा—अतिशय वेदना वाले, पाणिणो--प्राणी, अमाणुसासु--मनुष्य-योनि के सिवाय दूसरी नरक आदि, जोणिसु—योनियों में, विणिहम्मंति—अनेक प्रकार से दुःख भोगते हैं॥६॥

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहि-मणुप्पत्ता आययंति मणुस्सयं ॥७॥

— कयाइ—कभी, आणुपुव्वी—क्रमशः, कम्माणं—मनुष्य-गति प्रतिबन्धक कर्मों के पहाणाए—नाश होने पर, सोहिं—कर्म-क्षय रूप शुद्धि को, अणुप्पत्ता—प्राप्त हुए, जीवा—

जीव, मणुस्सयं—मनुष्य-जन्म, आययंति—प्राप्त, करते हैं ॥७॥

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंति महिंसयं ॥८॥

—माणुस्सं—मनुष्य सम्बन्धी, विग्गहं—शरीर, लद्धुं—पा कर भी, धम्मस्स—धर्म का, सुई—श्रवण करना, दुल्लहा—दुर्लभ है, जं—जिसे, सोच्चा—सुन कर जीव, तवं—तप, खंति—क्षमा और, अहिंसयं—अहिंसा, पडिवज्जंति—अंगीकार करते हैं ॥८॥

आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परम-दुल्लहा ।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं, बहवे परिभस्सइ ॥९॥

—आहच्च—कदाचित्, सवणं—धर्म का श्रवण, लद्धुं—पा कर भी उस पर, सद्धा—श्रद्धा—रुचि होना, परमदुल्लहा—अत्यन्त दुर्लभ है क्योंकि, णेयाउयं—न्याय संगत, मग्गं—सम्यग्दर्शनादि रूप मोक्ष मार्ग, सोच्चा—सुन कर भी, बहवे—बहुत से मनुष्य, परिभस्सई—उससे भ्रष्ट हो जाते हैं ॥९॥

सुइं च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणा वि,णो य णं पडिवज्जइ ॥१०॥

मनुष्य-जन्म, य—और, सुइं—धर्म-श्रवण, य—और, सद्धं—धर्म-श्रद्धा लद्धुं—पा कर भी, वीरियं—संयम में पराक्रम करना—शक्ति लगाना, पुण—और भी, दुल्लहं—दुर्लभ है क्योंकि, बहवे—बहुत-से मनुष्य, रोयमाणा वि—धर्म एवं

संयम को अच्छा तो समझते हैं और रुचिपूर्वक सुनते भी हैं किन्तु, णं--उसे, णो पडिवज्जइ--आचरण में नहीं ला सकते ॥१०॥

माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संवुडे णिद्धुणे रयं ॥११॥

—मानुसत्तम्मि--मनुष्य-जन्म, आयाओ--पा कर, जो—जो आत्मा, धम्मं--धर्म, सोच्च—सुन कर, सद्दहे—उस पर श्रद्धा रखता है, वीरियं--संयम विषयक वीर्य (शक्ति) लद्धुं—पाकर संयम में उद्यम कर और, तवस्सी–तपस्वी और, संवुडे–संवर वाला होकर वह, रयं—कर्म-रज का णिद्धुणे--नाश कर देता है ॥११॥

भावार्थ—इन चारों दुर्लभ अंगों को प्राप्त कर संयम की आराधना करने वाला मुमुक्षु संवर द्वारा नवीन कर्मों को आने से रोकता है और तपस्या द्वारा पूर्वकृत कर्मों का नाश करता है एवं अन्त में शाश्वत सिद्ध हो जाता है।

सोही उज्जुय-भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।
णिव्वाणं परमं जाई, घयसित्तिव्व पावए ॥१२॥

— मनुष्य-जन्म, धर्मश्रवण, धर्मश्रद्धा और संयम में पराक्रम—ये चार प्रधान अंग पा कर मुक्ति की ओर प्रवृत्त हुए, उज्जुयभूयस्स--सरल भाव वाले व्यक्ति की, सोही--शुद्धि होती है और, सुद्धस्स--शुद्धि प्राप्त आत्मा में ही, धम्मो—

धर्म, चिट्ठई--ठहर सकता है, घयसित्ति व पावए--घी से सींची हुई अग्नि के समान तप-तेज से देदीप्यमान होता हुआ वह आत्मा, परमं--परम, णिव्वाणं--निर्वाण--मोक्ष, जाइ--प्राप्त करता है ॥१२॥

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए,
सरीरं पाढवं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥१३॥

--कम्मुणो--मनुष्य-जन्म आदि के रोकने वाले कर्मों के, हेउं--हेतु--मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ-योगों को, विगिंच--पृथक् करो, खंतिए--क्षमा आदि दस विध यतिधर्म का सेवन कर के, जसं--संयम रूपी यश को, संचिणु--अधिकाधिक बढ़ाओ। ऐसा करने वाला व्यक्ति इस, पाढवं--पार्थिव औदारिक, सरीरं--शरीर को, हिच्चा--छोड़-कर, उड्ढं--ऊर्ध्व, दिसं--दिशा को (स्वर्ग अथवा मोक्ष को), पक्कमइ--प्राप्त करता है। १३॥

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तरउत्तरा।
महासुक्का व दिप्पंता, मण्णंता अपुणच्चवं ॥१४॥

-- विसालिसेहिं--अनेक प्रकार के, सीलेहिं--व्रत अनु-ष्ठानोंका पालन करने से जीव यहाँ का आयुष्य पूरा कर, उत्तर--उत्तरोत्तर प्रधान विमानवासी, जक्खा--देव होता है वह, महासुक्का व--महाशुक्ल अर्थात् अत्यन्त उज्ज्वल, सूर्य-चन्द्रमा के समान, दिप्पंता--प्रकाशमान होता हुआ और, अपुणच्चवं--'यहां से फिर दूसरी गति में नहीं चवुंगा-- इस

प्रकार, मण्णंता--मानता हुआ, वहाँ रहता है ॥१४॥

अप्पिया देवकामाणं, कामरूव विउव्विणो।
उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति, पुव्वा वाससया बहू ॥१५॥

-- देवकामाणं—दिव्यांगना स्पर्श आदि देव सम्बन्धी कामों को, अप्पिया—प्राप्त हुए और, कामरूव विउव्विणो—इच्छानुसार विविध रूप बनाने की शक्ति वाले वे देव, बहू वाससया पुव्वा— सैकड़ों पूर्व वर्षों तक, उड्ढं— ऊपर, कप्पेसु—सौधर्मादि एवं ग्रैवेयकादि विमानों में, चिट्ठंति—रहते हैं ॥१५॥

तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया।
उवेंति माणुसं जोणिं, सेदसंगेऽभिजायइ ॥१६॥

-- जक्खा—वे देव, तत्थ—वहाँ देवलोक में, जहाठाणं—अपने-अपने स्थान पर, ठिच्चा--रहे हुए, आउक्खए—आयुक्षय होने पर वहाँ से, चुया—चव कर, माणुसं जोणिं—मनुष्य-योनि, उवेंति—प्राप्त करते हैं, से—वहाँ उन्हें, दसंगे—दस अंगों की, अभिजायइ--प्राप्ति होती है ॥१६॥

खित्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दासपोरुसं।
चत्तारि कामखंधाणि, तत्थ से उववज्जइ ॥१७॥

— दस अंगों में से पहला अंग यह है--जहाँ, खित्तं—क्षेत्र वत्थुं—वास्तु--भवन आदि, हिरण्णं—सोना, पसवो—पशु और, दासपोरुसं—दास और पुरुष वर्ग ये, चत्तारि—चार, कामखंधाणि--कामस्कंध हों, तत्थ--वहाँ, से—व

दिव्य आत्मा, उववज्जइ—उत्पन्न होता है ॥१७॥

मित्तवं णाइवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं ।
अप्पायंके महापण्णे, अभिजाए जसो बले ॥१८॥

—शेष नौ अंग इस प्रकार हैं—वह दिव्यात्मा मानव-भव में, २ मित्तवं—मित्र वाला, ३ णाइवं—ज्ञाति वाला, ४ उच्चागोए—उच्च गोत्र वाला, ५ वण्णवं—सुन्दर वर्ण वाला, ६ अप्पायं के—नीरोग, ७ महापण्णे—महा प्रज्ञाशाली, ८ अभिजाय—विनीत-सब को प्रिय लगने वाला, ९ जसो—यशस्वी, य—और, १० बले—बलवान्, होइ—होता है ।१८।

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं ।
पुव्वि विसुद्ध-सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया ॥१९॥
चउरंगं दुल्लहं णच्चा, संजमं पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए ॥२०॥ त्तिबेमि ॥

—अहाउयं—यथायु (अपनी आयु के अनुसार) माणुस्सए—मनुष्य-भव के, अप्पडिरुवे—अनुपम, भोए—भोगों को, भोच्चा—भोग कर, पुव्वि—पूर्वभव में, विसुद्ध-सद्धम्मे—निदान-रहित शुद्ध धर्म का आचरण करने के कारण वह, केवलं—शुद्ध, बोहि—सम्यक्त्व को, बुज्झिया—प्राप्त कर के तथा, चउरंगं—उक्त चार अंगों को, दुल्लहं—दुर्लभ, णच्चा—जान कर, संजमं—संयम, पडिवज्जाया—अंगीकार करता है और, तवसा—तप से, धुयकम्मंसे—सम्पूर्ण कर्मों

का क्षय कर के, सासए—शाश्वत, सिद्धे--सिद्ध, हवइ—हो जाता है, त्ति बेमि--ऐसा मैं कहता हूँ ॥१९-२०॥

॥ तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

असंस्कृत नामक चौथा अध्ययन

असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताणं।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, किण्णु विहिंसा अजया गहिंति॥

— जीविय—यह जीवन, असंखयं—संस्कार रहित है अर्थात् एकवार टूटने पर पुनः नहीं जोड़ा जा सकता, अत-एव, मा पमायए—प्रमाद मत करो, जरोवणीयस्स--वृद्धा-वस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति की, ताणं--रक्षा करने वाला, हु—निश्चय ही, णत्थि—कोई नहीं है, एवं—इस प्रकार, वियाणाहि—समझो कि, विहिंसा—हिंसा करने वाले और अजया—पापस्थान से निवृत्त न होने वाले, पमत्ते—प्रमादी, जणे—पुरुष अन्त समय में, किण्णु—किस को, गहिंति—शरण में जावेंगे ॥१॥

जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा, समाययंति अमइं गहाय।
पहाय ते पास-पयट्टिए णरे, वेराणुबद्धा णरयं उवेंति।२।

—कुबुद्धि एवं अज्ञान के वश होकर, जे—जो, मणूसा—

मनुष्य, पावकम्मेहिं--पाप-कर्मों से, धणं —धन को, अमइं--अमृत के समान समझ कर, गहाय —ग्रहण कर के, समाययंति--संचय करते हैं, पास पयट्टिए—स्त्री-पुत्र आदि के पाश में फँसे हुए और, वेराणुबद्धा—वैर-भाव की शृंखला में जकड़े हुए, ते--वे, णरे—मनुष्य अन्त समय में धन को यहीं, पहाय--छोड़ कर, णरयं--नरक को उवेंति—प्राप्त करते हैं। उस समय वह धन उनको शरणरूप नहीं होता ॥२॥

तेणे जहा संधिमुहे गहिए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पेच्च इहं च लोए,कडाण कम्माण ण मुक्ख अत्थि।

--जहा—जिस प्रकार, संधिसुहे—संधिमुख पर सेंध लगाते हुए, गहिए--पकड़ा हुआ, पावकारी—पापात्मा, तेणे--चोर, सकम्मुणा--अपने ही किये हुए कर्मों से, किच्चइ—दुःख पाता है, एवं—उसी प्रकार, पया—जीव, इहलोए—इस लोक य—और, पेच्च--परलोक में अपने किये हुए अशुभ कर्मों से दुःख पाते हैं, क्योंकि फल भोगे बिना, कडाण--किये हुए,कम्माण—कर्मों से, मुक्ख—छुटकारा, ण अत्थि--नहीं होता ।।३॥

संसार-मावण्ण परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, ण बंधवा बंधवयं उवेंति ॥

— संसारं—संसार में, आवण्ण—प्राप्त हुआ जीव, परस्स—दूसरे के, अट्ठा—लिये, य—और अपने लिए, जं—जो, साहारणं—साधारण, कम्मं—कर्म, करेई—करता है,

तस्स—उस, कम्मस्स—कर्म के, वेयकाले—फल-भोग के समय, उ—निश्चय ही, ते—वे, बंधवा—बंधु आदि, बंधवयं—बंधुता का, ण उवेंति—पालन नहीं करते हैं, अर्थात् फल भोगने के समय दुःख में हिस्सा नहीं बँटाते, यह जीव अपने किये हुए कर्मों को अकेला ही भोगता है ॥४॥

वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे, णेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ।५।

— पमत्ते—प्रमादी पुरुष, इमम्मि—इस, लोए—लोक में, अदुवा—अथवा, परत्था—परलोक में, वित्तेण—धन से, ताणं—शरण, ण लभे—नहीं पाता है, दीवप्पणट्ठेव—जिसका दीपक बुझ गया है ऐसे व्यक्ति के समान, अणंतमोहे—अनन्त मोह वाला प्राणी, णेयाउयं—न्याय युक्त सम्यग्दर्शनादि रूप मुक्ति मार्ग को, दट्ठुं—देख कर भी, अदट्ठुमेव—न देखने वाला ही रहता है ।।५।।

भावार्थ—जैसे दीपक ले कर गुफा में गया हुआ व्यक्ति दीपक के प्रकाश में वहाँ रही हुई सभी वस्तुएँ देखता है, किन्तु प्रमादवश दीपक बुझ जाने पर उसका वस्तुओं का देखना और न देखना एक-सा हो जाता है। इसी प्रकार कर्मों का क्षयोपशम होने पर श्रुतज्ञान रूप भाव दीपक के प्रकाश में आत्मा मोक्ष-मार्गका दर्शन करता है, किन्तु धन आदि में आसक्ति के कारण वह पुनः कर्मों से आवृत हो जाता है, फलतः उसका मुक्ति-मार्ग का दर्शन करना भी, न करने के समान ही हो जाता

है। इस प्रकार धन स्वयं भी जीव का रक्षण नहीं कर सकता, और रक्षा करने वाले सम्यग्दर्शन आदि गुणों का भी घातक होता है।

सुत्तेसु यावि पडिबुद्ध जीवी, णो वीससे पंडिए आसु पण्णे।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं,भारंड-पक्खी व चरेऽप्पमत्ते।६।

— सुत्तेसु—द्रव्य और भाव से सोये हुए लोगों के बीच यावि—भी, पडिवुद्धजीवी--द्रव्य और भाव से जाग कर संयम युक्त जीवन जीने वाला, आसुपण्णे— आशुप्रज्ञ, पंडिए—पंडित मुनि, प्रमादाचरण में, णो वीससे--विश्वास नहीं करे, मुहुत्ता—काल, घोरा—घोर—अनुकम्पा रहित है और, सरीरं— शरीर, अवलं-- निर्बल है अतएव भारंड पक्खीव— भारण्डपक्षी के समान, अप्पमत्ते—प्रमाद-रहित हो कर सावधानी पूर्वक चरे--विचरे ॥६॥

भावार्थ—आशुप्रज्ञ पंडित मुनि को चाहिये कि धर्म के प्रति असावधान एवं प्रमादी लोगों के बीच रहते हुए भी स्वयं सदा धर्म में तत्पर रहे और जन-साधारण के समान प्रमाद में कतई विश्वास नहीं करे। काल निर्दय है, उसके आगे शरीर सर्वथा अशक्त है (अतएव मुमुक्षु को चाहिये कि भारंडपक्षी के समान सदा प्रमाद-रहित हो कर, शास्त्र-विहित अनुष्ठानों का सेवन करे। भारंडपक्षी के शरीर की रचना ही ऐसी होती है कि तनिक प्रमाद भी उसकी जीवन लीला को समाप्त कर देता है। इसी प्रकार साधु-जीवन में

भी जरा-सा प्रमाद, संयम-जीवन को नष्ट कर देता है।

चरे पयाइं परिसंकमाणो,जं किंचि पासं इह मण्णमाणो।
लाभंतरे जीविय बूहइत्ता,पच्छा परिण्णाय मलावधंसी।७।

—साधु को चाहिये कि मूलगुण आदि स्थानों में, **पयाइं**—पद-पद पर कहीं दोष न लग जाय इस प्रकार, **परिसंकमाणो**—शंका करता हुआ और, **इह**—इस लोक में, **जं किंचि**—गृहस्थ के साथ जो कुछ थोड़ा भी परिचय आदि है उसे, **पासं**—संयम के लिये पाश रूप, **मण्णमाणो**—मानता हुआ, **चरे**—विचरे, **लाभंतरे**—जब तक इस शरीर से विशेष ज्ञान-ध्यान-संयम-तप आदि गुणों का लाभ होता हो, तब तक, **जीविय**—जीवन की, **बूहइत्ता**—वृद्धि करे अर्थात् अन्न-पानी आदि द्वारा सार-संभाल करे किन्तु, **पच्छा**—बाद में लाभ न होने की अवस्था में **परिण्णाय**—ज्ञपरिज्ञा द्वारा शरीर को धर्म-साधन के अयोग्य समझ कर और प्रत्याख्यान परिज्ञा द्वारा आहार का त्याग कर, **मलावधंसी**—इस औदारिक शरीर का त्याग करे ॥७॥

छंदं णिरोहेण उवेइ मोक्खं,आसे जहा सिक्खिय वम्मधारी।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो,तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं॥

—**जहा**—जिस प्रकार, **सिक्खियवम्मधारी**—सवार की अधीनता में रह कर शिक्षा पाया हुआ और शरीर पर कवच धारण करने वाला, **आसे**—घोड़ा, युद्ध में शत्रुओं से नहीं

मारा जाता अपितु शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार गुरु को अधीनता में रह कर शास्त्र-विहित आचार का सेवन करने वाला मुनि, **छंदं णिरोहेण**–स्वच्छन्दता का त्याग करने से, **मोक्खं**--मोक्ष, **उवेइ**--प्राप्त करता है, अतएव गुरु की आज्ञा में रहता हुआ साधु, **पुव्वाइं**--पूर्व, **वासाइं**—वर्ष तक, **अप्पमत्तो**--प्रमाद रहित हो कर, **चर**—विचरण करे। **तम्हा**--इस प्रकार करने से, **मुणी**--साधु, **खिप्पं**--शीघ्र ही, **मोक्खं**—मोक्ष, **उवेइ**--प्राप्त करता है ॥८॥

स पुव्वमेवं ण लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाणं।
विसीयइ सिढिले आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स भेए ॥

— जो व्यक्ति पहले से ही अप्रमत्त हो कर ऊपर कहे अनुसार धर्माचरण नहीं करता और पिछली अवस्था के लिये छोड़ देता है, **स**—वह, **पुव्वमेवं**—पहले के समान, **पच्छा**--बाद में भी, **ण लभेज्ज**—धर्माचरण न कर सकेगा। **सासयवाइयाणं**-- शाश्वतवादी (निश्चयवादी) निरुपक्रम आयु वालों का 'बाद में धर्म का आचरण कर लेंगे,' **एसोवमा**—यह विचारना ठीक भी हो सकता है, किन्तु जल के बुलबुले के समान आयु वालों का यह विचारना ठीक नहीं है, ऐसा व्यक्ति, **आउयम्मि**—आयु के, **सिढिले**—शिथिल होने पर तथा, **कालोवणीए**–मृत्यु-काल निकट आने पर एवं, **सरीरस्स**–शरीर के, **भेए**—नाश होने के अवसर पर, **विसीयइ**—खेद करता है ॥९॥

भावार्थ—आयु के परिणाम को जानने वाले निरुपक्रम

आयु वाले लोग यदि कहें कि 'हम पीछे धर्माचरण कर लेंगे' तो उनका कहना ठीक भी हो सकता है, किन्तु जिनकी आयु का कोई निश्चय नहीं है, न जाने कब टूट जाय, वे यदि बाद में धर्माचरण की बात कहें, तो वे पहले भी न करेंगे और पीछे भी न कर पायेंगे। अन्त में आयु समाप्त होने के समय मौत के निकट आने पर हाथ मलने के सिवाय उनका कोई चारा न होगा।

खिप्पं ण सक्केइ विवेगमेउं,तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे।
समिच्च लोगं समया महेसी,आयाणुरक्खी चरेऽप्पमत्तो॥

— खिप्पं—शीघ्र ही, विवेगमेउं-विवेक प्राप्त करना और बाह्य संग एवं कषायों का त्याग करना, ण सक्केइ—शक्य नहीं है, तम्हा—इसलिये, आयाणुरक्खी—आत्मा की रक्षा करने वाला, महेसी—मोक्षार्थी मुनि, कामे—काम-भोगों का, पहाय—त्याग कर और, लोगं-लोक का स्वरूप, समया—समभाव पूर्वक, समिच्च—जान कर, अप्पमत्तो—प्रमाद रहित हो कर, समुट्ठाय—सावधानी पूर्वक चरे—विचरे ॥१०॥

मुहुं मुहुं मोहगुणे जयंतं, अणेग-रूवा समणं चरंतं।
फासा फुसंती असमंजसं च,ण तेसु भिक्खू मणसा पउस्से॥

— मोहगुणे—शब्दादि मोह गुणों को, मुहुं मुहुं—बारम्बार निरन्तर, जयंतं—जीतते हुए और, चरंतं—संयम मार्ग में विचरते हुए, समणं—साधु को, अणेगरूवा—अनेक प्रकार के, फासा—शब्दादि विषय, असमंजसं—प्रतिकूल रूप से,

फुसंती--स्पर्श करते हैं किन्तु, भिक्खू—साधु को चाहिये कि, तेसु—उन पर, मणसा--मन से भी, ण पउस्से— द्वेष न करे ॥११॥

मंदा य फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मणं ण कुज्जा।
रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं, मायं ण सेवेज्ज पहेज्ज लोहं।।

— फासा—शब्दादि विषय, मंदा—विवेक-बुद्धि को मन्द करने वाले हैं, य—और, बहुलोहणिज्जा—बहुत ही लुभाने वाले हैं। मुमुक्षु को, तहप्पगारेसु—इस प्रकार के आकर्षक शब्दादि विषयों में, मणं—मन, ण कुज्जा—न लगाना चाहिये—उनमें रागपूर्वक प्रवृत्ति न करनी चाहिये। उसे, कोहं—क्रोध को, रक्खेज्ज—शान्त करना चाहिये, माणं—मान को, विणएज्ज—दूर करना चाहिये, मायं--माया का, ण सेवेज्ज--सेवन न करना चाहिये और, लोहं—लोभ का, पहेज्ज--त्याग करना चाहिये ॥१२॥

जे संखया तुच्छ परप्पवाई, ते पिज्ज-दोसाणुगया परज्झा।
एए अहम्मेत्ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीर भेए। त्तिबेमि।

— संखया जे--जो, संखया—संस्कृत यानी बाहरी दिखावे वाले, किन्तु अन्तःकरण की शुद्धि से रहित, तुच्छ—निस्सार वचन बोलने वाले, परप्पवाई—अन्य तीर्थियों के शास्त्रों की प्ररूपणा करने वाले वादी हैं, ते--वे पिज्ज-दोसाणुगया—राग-द्वेष से युक्त हैं, इस कारण परज्झा—पराधीन

हैं, एए--ये लोग, अहम्मुत्ति—अधर्म के हेतु हैं, इस प्रकार जान कर उनकी, दुगुंछमाणो—जुगुप्सा करता हुआ मुमुक्षु, जाव—जब तक, सरीरभेए—शरीर का नाश न हो तब तक—जीवन पर्यन्त, गुणे—सम्यग्दर्शनादि गुणों की, कंखे--इच्छा करे। त्ति बेमि--ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ चौथा अध्ययन समाप्त ॥

अकाम मरणीय नामक पांचवां अ०

अण्णवंसि महोहंसि, एगे तिण्णे दुरुत्तरे।
तत्थ एगे महापण्णे, इमं पण्हमुदाहरे ॥१॥

— महोहंसि--महाप्रवाह वाले, दुरुत्तरे—दुस्तर, अण्णवंसि--संसार-समुद्र में, एगे—कोई महात्मा, तिण्णे--तिर गये हैं, तत्थ—इस विषय में—संसार पार करने के विषय में किसी जिज्ञासु के पूछने पर, एगे—एक, महापण्णे—महाप्रज्ञाशाली तीर्थंकर देव ने, इमं--इस प्रकार, पण्हं—प्रश्न का उत्तर—उपदेश, उदाहरे--फरमाया है ॥१॥

संतिमे य दुवे ठाणा, अक्खाया मरणंतिया।
अकाम-मरणं चेव, सकाम-मरणं तहा ॥२॥

— मरणंतिया—मरण रूप अन्त समय के, इमे--ये, दुवे--दो, ठाणा--स्थान, अक्खाया--कहे गये, संति--हैं,

अकाममरणं— अकाम-मरण, तहा--तथा, सकाममरणं— सकाम-मरण ।

बालाणं तु अकामं तु, मरणं असइं भवे ।
पंडियाणं सकामं तु, उक्कोसेण सइं भवे ॥३॥

— बालाणं--अज्ञानी जीवों के, अकामं मरणं---अकाम-मरण, तु--ही, असइं---बार-बार, भवे--होता है, पंडियाणं--पंडित पुरुषों का, सकामं—सकाममरण, तु--तो, उक्कोसेण—उत्कृष्ट (केवलज्ञानी की अपेक्षा) सइं—एक ही बार, भवे—होता है ॥३॥

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं ।
काम-गिद्धे जहा बाले, भिसं कूराइं कुव्वइ ॥४॥

-- तत्थ--इनमें से, इमं—यह, पढमं---पहला, ठाणं—स्थान यानी अकाम-मरण, महावीरेण---भगवान् महावीर ने, देसियं--कहा है, जहा--जिस प्रकार, काम-गिद्धे—इन्द्रिय विषयों में आसक्त, बाले--अज्ञानी जीव, भिसं--अत्यन्त कूराइं---क्रूर कर्म, कुव्वइ-- करता है ॥४॥

जे गिद्धे कामभोगेसु, एगे कूडाय गच्छइ ।
ण मे दिट्ठे परे लोए, चक्खुदिट्ठा इमा रई ॥५॥

— जे—जो, कामभोगेसु---शब्द और रूप के काम में, तथा स्पर्श, रस, और गन्ध रूप भोग में, गिद्धे---आसक्त है वह, एगे—अकेला ही, कूडाय--नरक में, गच्छइ—जाता है अथवा कूट-द्रव्य से मृगबन्धनादि और भाव से मिथ्या-

भाषणादि में प्रवृत्ति करता है। किसी हितैषी द्वारा प्रेरणा किये जाने पर वह उत्तर देता है कि, मे—मैंने, परे लोए—पर-लोक, ण दिट्ठे—नहीं देखा है और, इमा—यह, रई—शब्दादि विषयों का सुख, चक्खुदिट्ठा—प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा है ॥५॥

हत्थागया इमे कामा, कालिया जे अणागया ।
को जाणइ परे लोए, अत्थि वा णत्थि वा पुणो ॥६॥

इमे—ये, कामा—शब्दादि विषय-सुख, हत्थागया—हाथ में आये हुए—स्वाधीन हैं और, जे—जो, अणागया—भविष्यत्कालीन—परभव में प्राप्त होने वाले सुख हैं वे, कालिया—अनिश्चित काल के बाद प्राप्त होने वाले हैं और संदिग्ध हैं, क्योंकि, को—कौन, जाणइ—जानता है कि, पुणो—फिर, परे लोए—परलोक, अत्थि—है, वा—अथवा, णत्थि—नहीं है ॥६॥

जणेण सद्धिं होक्खामि, इइ बाले पगब्भइ ।
कामभोगाणुराएणं, केसं संपडिवज्जइ ॥७॥

'जणेण—लोगों के, सद्धिं—साथ, होक्खामि—होगा, अर्थात् सभी लोग शब्दादि सुख भोगते हैं, उनका जो हाल होगा वही मेरा भी होगा' इइ—इस प्रकार, बाले—अज्ञानी जीव, पगब्भइ—धृष्टता करता है वह जीव, कामभोगाणुराएणं—काम-भोगों में अनुराग रखने के कारण, केसं—क्लेश—यहाँ और परभव में दुःख, संपडिवज्जइ—प्राप्त

करता है, ॥७॥

तओ से दंडं समारभइ, तसेसु थावरेसु य ।
अट्ठाए य अणट्ठाए, भूयगामं विहिंसइ ॥८॥

तओ—इस कारण, से—वह, तसेसु—त्रस, य—और, थावरेसु—स्थावर प्राणियों में, दंडं—हिंसा का, समारभइ—आरंभ करता है, अट्ठाए—अपने और दूसरों के प्रयोजन से य—और, अणट्ठाए—निष्प्रयोजन ही, भूयगामं—प्राणियों की, विहिंसइ—हिंसा करता है, ॥८॥

हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयं ति मण्णइ ॥९॥

— हिंसे—हिंसा करने वाला, मुसावाई—झूठ वोलने वाला, माइल्ले—मायाचार का सेवन करने वाला, पिसुणे—दूसरों के दोष प्रकट करने वाला, सढे—धूर्त, बाले—वह अज्ञानी जीव, सुरं—मदिरा, मंसं—मांस का, भुंजमाणे—सेवन करता हुआ, एयं—'यही, सेयं– कल्याणकारी है' त्ति—इस प्रकार, मण्णइ—मानता है ॥९॥

कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मलं संचिणइ, सिसुणागुव्व मट्टियं ॥१०॥

—कायसा—काया से, वयसा—वचन से और मन से, मत्ते—मदान्ध वना हुआ तथा, वित्ते—धन, य—और, इत्थिसु—स्त्रियों में, गिद्धे—आसक्त वना हुआ वह अज्ञानी दुहओ—दोनों प्रकार से—रागद्वेपमयी वाह्य और आभ्यन्तर

— तत्थ—वहां नरक में, उववाइयं—उत्पन्न होने का ठाणं--स्थान, जहा—जैसा दुःखदायी है, मे—मैंने, यं--उसके विषय में, अणुस्सुयं--सुना है, पच्छा—बाद में—आयु क्षीण होने पर, आहाकम्मेहिं—अपने कर्मों के अनुसार वहां, गच्छंतो—जाता हुआ, सो--वह जीव, परितप्पई--पश्चात्ताप करता है ॥१३॥

जहा सागडिओ जाणं, समं हिच्चा महापहं ।
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गम्मि सोयइ ॥१४॥

— जहा—जैसे, सागडिओ—गाड़ीवान, जाणं—जान बूझ कर, समं—समतल, महापहं—महापथ (राजमार्ग) हिच्चा—छोड़ कर, विसमं-- विषम, मग्गं— मार्ग को, ओइण्णो—प्राप्त हुआ, अक्खे—धुरी के, भग्गम्मि—टूट जाने पर, सोयइ--शोक करता है ॥१४॥

एवं धम्मं विउक्कम्म, अहम्मं पडिवज्जिया ।
बाले मच्चुमुहं पत्ते, अक्खे भग्गे व सोयइ ॥१५॥

— एवं— इसी प्रकार, धम्मं—धर्म को, विउक्कम्म—छोड़ कर, अहम्मं--अधर्म को, पडिवज्जिया--स्वीकार करने वाला, बाले—अज्ञानी जीव, मच्चु मुहं—मृत्यु के मुख में, पत्ते—प्राप्त होकर उसी प्रकार पश्चात्ताप करता है जैसे, अक्खे—धुरी के, भग्गे व—टूट जाने पर, सोयइ—गाड़ीवान शोक करता है ॥१५॥

तओ से मरणंतम्मि, बाले संतस्सई भया।
अकाम-मरणं मरई, धुत्ते व कलिणा जिए ॥१६॥

— तओ—इसके बाद, मरणंतम्मि—मरण रूप अन्त समय के उपस्थित होने पर, से—वह, बाले—अज्ञानात्मा, भया—नरक गति में जाने के डर से, संतस्सई—काँपता है, य—और, कलिणा—दाव में, जिए—हारे हुए, धुत्ते व—जुआरी के समान दिव्य-सुखों को हारा हुआ वह पापात्मा, अकामसरणं—अकाममरण, मरई—मरता है ॥१६॥

एयं अकाम-मरणं, बालाणं तु पवेइयं।
इत्तो सकाम-मरणं, पंडियाणं सुणेह मे ॥१७॥

— एयं—यह, बालाणं—अज्ञानी जीवों का, अकाम-मरणं—अकाम-मरण, पवेइयं—कहा गया है, इत्तो—यहाँ से आगे, पंडियाणं—पण्डित पुरुषों का, सकाममरणं—सकाम-मरण, मे—मैं कहता हूँ,—सुणेह—सो सुनो ॥१७॥

मरणं पि सपुण्णाणं, जहा मेऽयमणुस्सुयं।
विप्पसण्ण, मणाघायं, संजयाणं वुसीमओ ॥१८॥

— सपुण्णाणं—पुण्यवन्त, संजयाणं—संयमी, वुसीमओ—जितेन्द्रिय महात्माओं का, मरणं पि—पंडित-मरण होता है, जहा—जैसा कि, मे—मैंने, यं—उसके लिए, अणुस्सुयं—सुना है, विप्पसण्णं—वह मरण प्रसन्नता युक्त एवं, अणा-

घायं—व्याघात रहित होता है ॥१८॥

ण इमं सव्वेसु भिक्खुसु, ण इमं सव्वेसुऽगारिसु ।
णाणासीला अगारत्था, विसमसीला य भिक्खुणो ॥१९॥

--इमं—यह पण्डितमरणं, ण--न, सुव्वेसु--सभी भिक्खुसु—भिक्षुओं को होता है, ण—और न, इमं--यह, सव्वेसु—सभी, अगारिसु—गृहस्थों को होता है, अगारत्था-गृहस्थ भी, णाणासीला—अनेक प्रकार के शील वाले होते हैं, य—और, भिक्खुणो—साधु भी, विसमसीला—विषम-शील होते है ॥१९॥

भावार्थ--कठिन व्रत पालने वाले भिक्षुओं को और विविध सदाचार का सेवन करने वाले गृहस्थों को पण्डत--मरण की प्राप्ति होती है।

संति एगेहिं भीक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा ।
गारत्थेहिं य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा ॥२०॥

— एगेहिं--कई नामधारी भिक्खुहिं—साधुओं की अपेक्षा, गारत्था--गृहस्थ, संजमुत्तरा—उत्तम संयम वाले, संति—होते हैं, य—और, सव्वेहिं— सभी, गारत्थेहिं—गृहस्थों की अपेक्षा, साहवो—साधु, संजमुत्तरा--उत्तम एवं शुद्ध संयम वाले होते हैं ॥२०॥

चीराजिणं णगिणिणं, जडी संघाडि मुंडिणं ।
एयाणि वि ण तायंति, दुस्सीलं परियागयं ॥२१॥

— चीराजिणं— चीवर और मृगचर्म, णगिणिणं— नग्नता, जडी—जटा धारण करना, संघाडि—संघाटी — वस्त्रों के टुकड़ों को जोड़ कर बनाया हुआ कन्था, मुंडिणं—मस्तक मुंडन, एयाणि वि—ये साधुता के वाह्य चिन्ह भी, परिया-गयं— दीक्षा-पर्याय धारण किये हुए, दुस्सीलं—दुःशील पुरुष की, ण तायंति—दुर्गति से रक्षा नहीं कर सकते ॥२१॥

पिंडोलए व दुस्सीले, णरगाओ ण मुच्चइ ।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं ।२२।

— पिंडोलए व—भिक्षा माँग कर निर्वाह करने वाला भिक्षु भी यदि, दुस्सीले—दुष्ट आचार वाला हो तो, णरगाओ—नरक से, ण मुच्चई—नहीं बच सकता, भिक्खाए—भिक्षुक हो, वा—अथवा, गिहत्थे वा—गृहस्थ हो, सुव्वए—जो सुन्दर अर्थात् निरतिचार व्रत पालन करने वाला है, वही दिवं—देवलोक में, कम्मई—जाता है ॥२२॥

अगारि सामाइयंगाणि, सड्ढी काएण फासए ।
पोसहं दुहओ पक्खं, एगरायं ण हावए ॥२३॥

— सड्ढी—श्रद्धावान् श्रावक, अगारिसामाइयंगाणि— गृहस्थ की सम्यक्त्व, श्रुत और देशविरति रूप सामायिक और उसके अंगों का, काएण—काया से, फासे—पालन करे, उप-लक्षण से मन और वचन से भी पालन करे, दुहओ—दोनों अर्थात् कृष्ण और शुक्ल-पक्ष में अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या

और पूर्णिमा के दिन, एगरायं—एक रात्रि के लिये भी पोसहं—पौषध, ण हावए—नहीं छोड़े ॥२३॥

नोट—रात्रि शब्द से सूत्रकार का यह आशय है कि यदि कभी आवश्यक कार्य में संलग्न रहने से गृहस्थ दिन में पौषध नहीं कर सके तो भी रात्रि में तो उसे अवश्य करना चाहिये।

एवं सिक्खासमावण्णे, गिहवासे वि सुव्वए।
मुच्चइ छविपव्वाओ, गच्छे जक्खसलोगयं ॥२४॥

— एवं—इस प्रकार, सिक्खासमावण्णे—व्रत पालन रूप शिक्षा सहित, सुव्वए—सुव्रती श्रावक, गिहवासे वि—गृहस्थावस्था में रहता हुआ भी, छविपव्वाओ—चर्म, घुटने, और कोहनी आदि पर्व यानी सन्धिभागों से अर्थात् औदारिक शरीर से, मुच्चई—छूट जाता है और, जक्ख-सलोगयं—देव लोक में, गच्छे—जाता है ।२४॥

अह जे संवुडे भिक्खू, दुण्ह मण्णयरे सिया।
सव्वदुक्खप्पहीणे वा, देवे वावि महिड्ढिए ॥२५॥

— अह—अथ, जे—जो, संवुडे—संवर वाला, भिक्खू—साधु है वह मनुष्यायु के समाप्त होने पर, दुण्हं—दो में से, अण्णयरे—एक, सिया—होता है, वा—या तो, सव्वदुक्ख पहीणे—सभी दुःखों का नाश करने वाला सिद्ध होता है, वावि— अथवा, महिड्ढिए— महाऋद्धिशाली, देवे— देव

होता है ॥२५॥

उत्तराइं विमोहाइं, जुइमंताणुपुव्वसो।
समाइण्णाइं जक्खेहिं, आवासाइं जसंसिणो ॥२६॥

— आवासाइं— उन देवों के आवास, उत्तराइं—उत्तरोत्तर ऊपर रहे हुए हैं, अणुपुव्वसो—क्रमशः, विमोहाइं—मोह की न्यूनता वाले एवं मिथ्यादर्शनादि से रहित, जुइमंता—विशेष द्युति (प्रभा) वाले, जक्खेहिं—देवों से, समाइण्णाइं—भरे हुए हैं, वे देव, जसंसिणो—यशस्वी होते हैं ॥२६॥

दीहाउया इड्ढिमंता, समिद्धा कामरूविणो।
अहुणोववण्णसंकासा, भुज्जो अच्चिमालिप्पभा ॥२७॥

— दीहाउया—वे देव दीर्घ आयु वाले, इड्ढिमंता—ऋद्धि संपन्न, समिद्धा—अत्यंत दीप्त, कामरूविणो—इच्छानुसार रूप बनाने वाले, —अहुणोववण्ण संकासा—नवीन उत्पन्न हुए देव के समान अर्थात् जन्म से लेकर अन्त समय तक एक समान वर्ण, बल, द्युति आदि वाले और, भुज्जो—बहुत-से अच्चिमालिप्पभा—सूर्यों जैसी दीप्ति वाले होते हैं ॥२७॥

ताणि ठाणाणि गच्छंति, सिक्खित्ता संजमं तवं।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, जे संति परिणिव्वुडा ॥२८॥

— भिक्खाए वा—भिक्षु हो, वा—अथवा, गिहत्थे—गृहस्थ हो, जे—जिन्होंने, संतिपरिणिव्वुडा—उपशम द्वारा कषायाग्नि को शान्त कर दिया है वे, संजमं—संयम और

तवं—तप का, सिक्खित्ता—पालन कर, ताणि—ऊपर बताये हुए, ठाणाणि—स्थानों में, गच्छंति—जाते हैं ॥२८॥

तेसिं सुच्चा सपुज्जाणं संजयाणं वुसीमओ ।
ण संतसंति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया ॥२९॥

— तेसिं—उन, सपुज्जाणं—सच्चे पूजनीय, संजयाणं—संयमवन्त, वुसीमओ—जितेन्द्रिय भाव-साधुओं का उपरोक्त वर्णन, सुच्चा—सुन कर, सीलवंता—चारित्रशील, बहुस्सुया—बहुश्रुत महात्मा, मरणंते—मरणान्त समय के उपस्थित होने पर, ण संतसंति—उद्विग्न नहीं होते ॥२९॥

तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खंतिए ।
विप्पसीइज्ज मेहावी, तहाभूएण अप्पणा ॥३०॥

— तुलिका— सकाम और अकाम-मरण की तुलना कर के और, विसेसं—दोनों में से विशेषता वाले—सकाम-मरण को, आदाय—ग्रहण कर के और इसी प्रकार शेष धर्मों की अपेक्षा, दयाधम्मस्स—दयाधर्म की विशेषता जान कर और उसे स्वीकार कर, मेहावी—बुद्धिमान् साधु, खंतिए—क्षमा मार्दव आदि गुणों द्वारा अपनी आत्मा को, विप्पसीइज्ज—प्रसन्न रखे और मरण समय भी, तहाभूएण—तथाभूत—उसी प्रकार आपको व्याकुलता रहित और शान्त बनाये रखे ॥३०॥

तओ काले अभिप्पेए, सड्ढी तालिसमंतिए ।
विणएज्ज लोमहरिसं, भेयं देहस्स कंखए ॥३१॥

तओ—इसके वाद जव योगों की शक्ति हीन हो जाय और वे धर्म-साधना के योग्य न रहें उस समय, काले--मृत्यु का, अभिप्पेए--अवसर आने पर, सड्ढी—श्रद्धावान् पुरुष, अंतिए--गुरुजनों के समीप, तालिसं—वैसा मृत्यु के भय से होने वाले, लोमहरिसं--रोमांच को, विणएज्ज—दूर करे और जीवन-मरण की आकांक्षा रहित होकर, देहस्स--शरीर का, भेयं—नाश, कंखए—चाहे अर्थात् पंडितमरण की इच्छा करे ।३१।।

अह कालम्मि संपत्ते, आघायाय समुस्सयं ।
सकाममरणं मरइ, तिण्हमण्णयरं मुणी ।३२। त्ति बेमि

— अह--इसके वाद, कालम्मि—मृत्यु समय, संपत्ते--प्राप्त होने पर, मुणी—मुनि, समुस्सयं—शरीर का ममत्वभाव, आघायाय--छोड़ कर, तिण्हं—भक्त प्रत्याख्यान, इंगित और पादपोपगमन, इन तीन मरणों में से, अण्णयरं—किसी एक मरण से, सकाममरणं--सकाम-मरण, मरई--मरता है ।।३२।। त्ति बेमि--इस प्रकार मैं कहता हूँ।

।। पाँचवाँ अध्ययन समाप्त ।।

क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय नामक छठा अ०

जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा ।
लुप्पंति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणंतए ।।१।।

तवं—तप का, सिक्खित्ता—पालन कर, ताणि—ऊपर बता हुए, ठाणाणि—स्थानों में, गच्छंति—जाते हैं ॥२८॥

तेसिं सुच्चा सपुज्जाणं संजयाणं वुसीमओ ।
ण संतसंति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया ॥२९॥

— तेसिं—उन, सपुज्जाणं—सच्चे पूजनीय, संजयाणं—संयमवन्त, वुसीमओ—जितेन्द्रिय भाव-साधुओं का उपरोक्त वर्णन, सुच्चा—सुन कर, सीलवंता—चारित्रशील, बहुस्सुया—बहुश्रुत महात्मा, मरणंते—मरणान्त समय के उपस्थित होने पर, ण संतसंति—उद्विग्न नहीं होते ॥२९॥

तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खंतिए ।
विप्पसीइज्ज मेहावी, तहाभूएण अप्पणा ॥३०॥

— तुलिका— सकाम और अकाम-मरण की तुलना कर के और, विसेसं—दोनों में से विशेषता वाले—सकाम-मरण को, आदाय—ग्रहण कर के और इसी प्रकार शेष धर्मों की अपेक्षा, दयाधम्मस्स—दयाधर्म की विशेषता जान कर और उसे स्वीकार कर, मेहावी—बुद्धिमान् साधु, खंतिए—क्षमा मार्दव आदि गुणों द्वारा अपनी आत्मा को, विप्पसीइज्ज—प्रसन्न रखे और मरण समय भी, तहाभूएण—तथाभूत—उसी प्रकार आपको व्याकुलता रहित और शान्त बनाये रखे ॥३०॥

तओ काले अभिप्पेए, सड्ढी तालिसमंतिए ।
विणएज्ज लोमहरिसं, भेयं देहस्स कंखए ॥३१॥

तओ—इसके वाद जब योगों की शक्ति हीन हो जाय और वे धर्म-साधना के योग्य न रहें उस समय, काले--मृत्यु का, अभिप्पेए--अवसर आने पर, सड्ढी—श्रद्धावान् पुरुष, अंतिए--गुरुजनों के समीप, तालिसं—वैसा मृत्यु के भय से होने वाले, लोमहरिसं--रोमांच को, विणएज्ज—दूर करे और जीवन-मरण की आकांक्षा रहित होकर, देहस्स--शरीर का, भेयं—नाश, कंखए—चाहे अर्थात् पंडितमरण की इच्छा करे ।३१।।

अह कालम्मि संपत्ते, आघायाय समुस्सयं ।
सकाममरणं मरइ, तिण्हमण्णयरं मुणी ।३२। त्ति बेमि

— अह--इसके वाद, कालम्मि—मृत्यु समय, संपत्ते--प्राप्त होने पर, मुणी—मुनि, समुस्सयं—शरीर का ममत्वभाव, आघायाय--छोड़ कर, तिण्हं—भक्त प्रत्याख्यान, इंगित और पादपोपगमन, इन तीन मरणों में से, अण्णयरं—किसी एक मरण से, सकाममरणं--सकाम-मरण, मरई--मरता है ।।३२।। त्ति बेमि—इस प्रकार मैं कहता हूँ।

।। पाँचवाँ अध्ययन समाप्त ।।

क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय नामक छठा अ०

जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा ।

जावंत——जितने भी, अविज्जापुरिसा——अविद्या वाले——अज्ञानी पुरुष हैं, ते——वे, सव्वे—सभी, दुक्ख संभवा—दुःख भोगने वाले हैं, मूढा—हिताहित के विवेक से रहित वे अज्ञानी, अणंतए——अनन्त, संसारम्मि——संसार में, बहुसो——अनेक वार, लुप्पंति—दरिद्रतादि दुःखों से पीड़ित होते हैं ॥१॥

समिक्ख पंडिए तम्हा, पास जाइपहे बहू ।
अप्पणा सच्चमेसेज्जा,, मित्तिं भूएहिं कप्पए ॥२॥

—— तम्हा—इसलिए, पंडिए—हिताहित का विवेकी पंडित पुरुष, बहू—बहुत-से, पास जाइपहे—पाश अर्थात् आत्मा को परवश बनाने वाले स्त्री आदि सम्बन्ध एकेन्द्रियादि जाति के कारण हैं ऐसा, समिक्ख—विचार कर, अप्पणा—आत्मा, सच्चं—सत्य अर्थात् सदागम या संयम की, एसिज्जा—खोज करे और, भूएहिं- सभी प्राणियों के साथ, मित्तिं—मैत्रीभाव, कप्पए——रखे ॥२॥

माया पिया ण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा।
णालं ते मम ताणाय, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥३॥

—— विवेकी पुरुष को ऐसा विचार करना चाहिये कि, सकम्मुणा——स्वकृत कर्मों से, लुप्पंतस्स——दुखी होते हुए, मम—मेरी, ताणाय— रक्षा करने के लिए, माया——माता, पिया—पिता, ण्हुसा—पुत्रवधू, भाया——भाई, भज्जा——स्त्री, य- और

ओरसा--ओरस अर्थात्, अपने अंग से उत्पन्न हुए, पुत्ता--पुत्र ते--कोई भी, णालं--समर्थ नहीं हैं अर्थात् कोई भी दुःखों से नहीं छुड़ा सकते हैं ॥३॥

एयमट्ठं सपेहाए, पासे समियदंसणे ।
छिंद गेहिं सिणेहं च, ण कंखे पुव्वसंथवं ॥४॥

समियदंसणे--सम्यग्दृष्टि पुरुष, एयमट्ठं—उपरोक्त विषय में, सपेहाए—अपनी बुद्धि से विचार कर, पासे—देखे (निश्चय करे) गेहिं--विषय भोगों में आसक्ति, य—और, सिणेहं—स्नेह का, छिंद—छेदन करे और, पुव्वसंथवं--पहले के परिचय की, ण कंखे—इच्छा नहीं करे । ॥४॥

गवासं मणिकुंडलं, पसवो दासपोरुसं ।
सव्वमेयं चइत्ताणं, कामरूवी भविस्ससि ॥५॥

गवासं--गाय, घोड़ा, मणि कुंडलं--मणि, कुंडल आदि सोना-चांदी जवाहरात के आभूषण, पसवो--पशु, दासपोरुसं--सेवक और सैनिक आदि पुरुषों का समूह एयं—यह, सव्वं—सभी, चइत्ताणं—छोड़ कर और संयम का पालन कर तुम, कामरूवी—इच्छानुसार वैक्रिय रूप बनाने वाले देव, भविस्ससि--हो जाओगे ॥५॥

थावरं जंगमं चेव, धणं धण्णं उवक्खरं ।
पच्चमाणस्स कम्मेहिं, णालं दुक्खाउ मोयणे ॥६॥

थावरं--स्थावर, चेव—और, जंगमं--जंगम—

चल संपत्ति, **धणं**—धन, **धण्णं**—धान्य और, **उवक्खरं**—घर के उपकरण, ये सभी, **कम्मोहिं**—अपने कर्मों से, **पच्चमाणस्स**—दुःख भोगते हुए प्राणी को, **दुक्खाउ**—दुःख से, **मोयणे**—छुड़ाने में, **णालं**—समर्थ नहीं हैं ॥६॥

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए ।
ण हणे पणिणो पाणे, भय-वेराओ उवरए ॥७॥

— **सव्वओ**—सभी प्रकार के इष्ट-अनिष्ट दोनों वस्तुओं के सयोग और वियोग से होने वाले, **सव्वं**—सभी, **अज्झत्थ**—आत्मा में होने वाले सुख-दुःख को, **दिस्स**—प्रिय तथा अप्रिय रूप जान कर तथा, **पाणे**—'प्राणियों को, **पियायए**—अपनी आत्मा प्यारी है'—ऐसा जान कर मुमुक्षु, **भय-वेराओ**—भय और वैर से, **उवरए**—निवृत्त होता हुआ, **पाणिणो**—प्राणियों के, **पाणे**—प्राणों की, **ण हणे**—घात नहीं करे ॥७।

आयाणं णरयं दिस्स, णायइज्ज तणामवि ।
दोगुंछी अप्पणो पाए, दिण्णं भुंजिज्ज भोयणं ॥८॥

— **आयाणं**—धन-धान्यादि परिग्रह को, **णरयं**—नरक का कारण, **दिस्स**—जान कर, **तणामवि**—तृण मात्र भी, **णायइज्ज**—बिना आज्ञा ग्रहण नहीं करे **दोगुंछी**—पाप से घृणा करने वाला आत्मार्थी पुरुष क्षुधा लगने पर, **अप्पणो**—अपने **पाए**—पात्र में, **दिण्णं**—गृहस्थ द्वारा दिया हुआ, **भोयणं**—भोजन, **भुंजिज्ज**—खावे ॥८॥

इहमेगे उ मणंति, अप्पच्चक्खाय पावगं ।
आयरियं विदित्ताणं, सव्वदुक्खा विमुच्चइ ॥९॥

— इह—यहाँ मुक्ति मार्ग के विषय में, एगे—कई लोग मण्णंति--मानते हैं कि, पावगं—पाप का, अप्पच्चक्खाय—त्याग किये बिना ही केवल, आयरियं—आर्य-तत्त्व को, विदित्ताणं--जान कर यह आत्मा, सव्व दुक्खा--सभी दुखों से, विमुच्चइ—छूट जाता है ॥९॥

भणंता अकरिंता य, बंधमोक्खपइण्णिणो।
वायाविरियमित्तेणं, समासासेंति अप्पयं ॥१०॥

— बंधमोक्खपइण्णिणो--बन्ध और मोक्ष दोनों को मानने वाले ये वादी, भणंता—ज्ञान ही को मुक्ति का अंग कहते हुए य—और, अकरिंता--मुक्ति के लिये कोई उपाय न करते हुए, वायाविरियमित्तेणं--केवल वाक्शक्ति से, अप्पयं—अपनी आत्मा को, समासासेंति—आश्वासन ही देते हैं ॥१०॥

ण चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं ।
विसण्णा पावकम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो ॥११॥

— चित्ता भासा-- अनेक प्रकार की संस्कृत-प्राकृत आदि भाषाएँ अथवा ज्ञान से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है, इस प्रकार के विविध वचन, ण तायए--आत्मा की पापों से रक्षा

नहीं करते, विज्जाणुसासणं—मंत्रादि विद्या की शिक्षा भी, कओ—कैसे रक्षा कर सकेगी ? नहीं कर सकती, पावकम्मेहिं—पापकर्मों में, विसण्णा—विशेष रूप से फँसे हुए, पंडियमाणिणो—अपने को पंडित समझने वाले ये लोग वास्तव में, बाला—बाल (अज्ञानी) ही हैं ॥११॥

जे केइ सरीरे सत्ता, वण्णे रूवे य सव्वसो ।
मणसा काय-वक्केणं, सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥१२॥

— जे— जो, केइ—कोई अज्ञानी जीव, सरीरे—शरीर में, वण्णे—गौर आदि वर्ण में, य—और, रूवे—सुन्दर रूप में, सव्वसो—सब प्रकार से, मणसा—मन, काय-वक्केणं—काया और वचन से, सत्ता—आसक्त हैं, ते—वे, सव्वे—सभी, दुक्खसंभवा—दुःख के भागी हैं, अर्थात् दुःख भोगने वाले हैं।१२।

आवण्णा दीहमद्धाणं, संसारम्मि अणंतए ।
तम्हा सव्वदिसं पस्सं, अप्पमत्तो परिव्वए ॥१३॥

— अज्ञानी जीव, अणंतए— अनन्त, संसारम्मि—संसार में, दीहं—दीर्घ—अनादि-अनन्त, अद्धाणं—जन्म-मरण रूप मार्ग को, आवण्णा—प्राप्त हुए हैं, तम्हा—इसलिये मुमुक्षु को, सव्वदिसं—सभी पृथ्वी पानी आदि अठारह भाव-दिशाओं को, पस्सं—देखता हुआ उनकी विराधना न हो इस प्रकार, अप्पमत्तो—प्रमाद रहित हो कर, परिव्वए—विचरे ॥१३॥

बहिया उड्ढमायाय, णावकंखे कयाइवि।
पुव्वकम्मक्खयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे ॥१४॥

—बहिया—संसार से बाहर, उड्ढं—सब से ऊपर रहे हुए मोक्ष को, आयाय—अपना उद्देश्य बना कर मुमुक्षु, कयाइ वि—कभी भी, णावकंखे—विषयादि की इच्छा नहीं करे, इमं—इस, देहं—शरीर को भी, पुव्वकम्मक्खयट्ठाए—पूर्वकृत कर्म को क्षय करने के लिये, समुद्धरे—उचित आहारादि द्वारा धारण करे ॥१४॥

विविच्च कम्मुणो हेउं, कालकंखी परिव्वए।
मायं पिंडस्स पाणस्स, कडं लद्धूण भक्खए ॥१५॥

—मुमुक्षु, कम्मुणो—कर्म के, हेउं—हेतु मिथ्यात्व आदि को, विविच्च—दूर कर के, कालकंखी—संयमानुष्ठान के अवसर की इच्छा रखता हुआ, परिव्वए—विचरे, कडं—गृहस्थों द्वारा अपने लिये बनाये हुए भोजन में से संयम योग्य, पिंडस्स—आहार, पाणस्स—पानी की, मायं—मात्रा, लद्धूण—गृहस्थों के यहां से प्राप्त कर, भक्खए—खाये ॥१५॥

सण्णिहिं च ण कुव्विज्जा, लेवमायाय संजए।
पक्खीपत्तं समायाय, णिरवेक्खो परिव्वए ॥१६॥

—संजए—साधु, लेवमायाय—लेप मात्र भी, सण्णिहिं—अन्न आदि का संचय, ण कुव्विज्जा—नहीं करे, जैसे पक्खी—

पक्षी, पत्तं—पंख, समायाय—ग्रहण कर यानी केवल अपने पंखों के साथ ही अन्यत्र चला जाता है, उसी प्रकार साधु भी पात्रादि धर्मोपकरण ले कर, णिरवेक्खो—स्थान आदि की आसक्ति न रखते हुए, परिव्वए—विचरे ॥१६॥

एसणासमिओ लज्जू,गामे अणियओ चरे ।
अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिंडवायं गवेसए ॥१७॥

—लज्जू—लज्जावंत संयमी साधु,एसणासमिओ—एषणा-समिति का पालन करता हुआ, गामे—ग्राम में, अणियओ—अनियत वृत्ति वाला हो कर, चरे—विचरे और, अप्पमत्तो—प्रमाद रहित हो कर, पमत्तेहिं—प्रमत्त यानी गृहस्थों के यहाँ से, पिण्डवायं – भिक्षा की, गवेसए— गवेषणा करे ॥१७॥

एवं से उदाहु अणुत्तरणाणी, अणुत्तरदंसी, अणुत्तर-णाणदंसणधरे अरहा णायपुत्ते भयवं वेसालिए वियाहिए ॥१८॥ त्ति बेमि ॥

— अणुत्तरणाणी—अनुत्तर ज्ञानी-सर्वज्ञ, अणुत्तर दंसी—अनुत्तर दर्शन वाले, अणुत्तरणाण-दंसणधरे—अनुत्तर ज्ञान और दर्शन के धारक, वेसालीए—विशाल तीर्थ के नायक, विया-हिए—देव और मनुष्यों की परिषद् के व्याख्याता, से—उन, अरहा—अरिहन्त, णायपुत्ते – ज्ञातपुत्र, भयवं—भगवान् महावीर ने, एवं–इस प्रकार, उदाहु–फरमाया है । त्ति बेमि–इस प्रकार मैं कहता हूँ ॥१८॥

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

औरभ्रीय नामक सातवाँ अध्ययन

जहाऽएसं समुद्दिस्स, कोइ पोसेज्ज एलयं ।
ओयणं जवसं देज्जा, पोसेज्जा वि सयंगणे ॥१॥

— जहा—जिस प्रकार, आएसं—अतिथि—पाहुने को, समुद्दिस्स—उद्देश्य कर, कोई—कोई व्यक्ति, एलयं—बकरे अथवा भेड़ का, पोसेज्ज—पालन करता है और उसे खाने के लिये ओयणं—भात और, जवसं—जौ, देज्जा—देता है तथा, सयंगणे—अपने ही आंगन में उसे, पोसेज्जावि—पुष्ट बनाता है ॥१॥

तओ से पुट्ठे परिवूढे, जायमेए महोयरे ।
पीणिए विउले देहे, आएसं परिकंखए ॥२॥

— तओ—इसके बाद जब, से—वह बकरा, पुट्ठे—पुष्ट, परिवूढे—समर्थ, जायमेए—चर्बी वाला, महोयरे—बड़े पेट वाला और, पीणिए—तृप्त हो कर, विउले—स्थूल, देहे—शरीर वाला हो जाता है तब उसका स्वामी, आएसं—पाहुने को, परिकंखए—प्रतीक्षा करता है ॥२॥

जाव ण एइ आएसे, ताव जीवइ से दुही ।
अह पत्तम्मि आएसे, सीसं छेत्तूण भुंज्जई ॥३॥

— जाव—जब तक, आएसे—पहुंना, ण एइ—नहीं आता है, ताव—तब तक, से—वह, जीवइ—जीता है। अह—

इसके वाद, आएसे--पाहुने के, पत्तम्मि—आने पर उसे, सीसं--मस्तक, छेत्तूण--काट कर, भुंज्जई—खाया जाता है तव वह, दुही—दुखी होता है ॥३॥

जहा से खलु ओरब्भे, आएसाए समीहिए ।
एवं बाले अहम्मिट्ठे, ईहइ णरयाउयं ॥४॥

— जहा--जिस प्रकार, खलु—निश्चय ही, से--वह पुष्ट हुआ, ओरब्भे—बकरा, आएसाए--पाहुने के लिये, समीहिए—इष्ट है और पाहुने के उद्देश्य से रखा गया है एवं—इसी प्रकार, अहम्मिट्ठे—अधर्मिष्ट बाले—अज्ञानी जीव भी पापाचरण कर के, णरयाउयं—नरकायु की ईहइ—इच्छा करता है अर्थात् नरक गति में जाता है ॥४॥

हिंसे बाले मुसावाई, अद्धाणम्मि विलोवए ।
अण्णदत्तहरे तेणे, माई कण्हुहरे सढे ॥५॥

इत्थीविसयगिद्धे य, महारंभपरिग्गहे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं, परिवूढे परंदमे ॥६॥

अयकक्करभोई य, तुंदिले चियलोहिए ।
आउयं णरए कंखे, जहाएसं व एलए ॥७॥

-- नरक गति में जाने वाला जीव कैसे पाप-कर्म करता है, यह वात इन गाथाओं में बताई जाती है—बाले-- अज्ञानी, हिंसे—हिंसा करने वाला, मसावाई—झूठ बोलने वाला,

अद्धाणम्मि--मार्ग में, विलोवए—लूटने वाला, अण्णदत्त हरे--दूसरे की वस्तु बिना दिये लेने वाला, तेणे—चोरी करने वाला, माई—छल-कपट करने वाला, कण्हुहरे--'किसके यहाँ चोरी करूँ'—इस प्रकार दुष्ट अध्यवसाय वाला, सढे—शठ (वक्र आचार वाला) इत्थी विसय गिद्धे—स्त्री और विषयों में आसक्त बना हुआ, य—और, महारंभ परिग्गहे--महा आरम्भ और परिग्रह वाला, सुरं—मदिरा और मंसं—मांस का, भुंजमाणे—खाने वाला, परिवूढे—पुष्ट शरीर वाला तथा, परं—दूसरों का, दमे—दमन करने वाला, अयकक्कर-भोई—खाने में कड़कड़ शब्द हो ऐसा भुना हुआ बकरे का मांस खाने वाला, तुंदिले—बढ़ी हुई तोंद वाला, चियलोहिए—अधिक रक्त वाला। सांसारिक सुखों के लिये इस प्रकार विविध पापाचरण करने वाला जीव, णरए—नरक, आउयं—आयु की उसी प्रकार, कंखे—इच्छा करता है, जहा—जैसे, एलए—बकरे के पुष्ट होने पर उसका स्वामी, आएसं—पाहुने की इच्छा करता है ॥५, ६, ७,॥

आसणं सयणं जाणं, वित्तं कामे य भुंजिया।
दुस्साहडं धणं हिच्चा, बहुं संचिणिया रयं ॥८॥

तओ कम्मगुरू जंतू, पच्चुप्पण्णपरायणे।
अयव्व आगयाएसे, मरणंतम्मि सोयइ ॥९॥

— आसणं--आसन, सयणं—शय्या, जाणं—वाहन,

इसके वाद, आएसे--पाहुने के, पत्तम्मि—आने पर उसे, सीसं--मस्तक, छेत्तूण--काट कर, भुंज्जई—खाया जाता है तव वह, दुही---दुखी होता है ॥३॥

जहा से खलु ओरब्भे, आएसाए समीहिए।
एवं बाले अहम्मिट्ठे, ईहइ णरयाउयं ॥४॥

— जहा--जिस प्रकार, खलु—निश्चय ही, से--वह पुष्ट हुआ, ओरब्भे—बकरा, आएसाए—पाहुने के लिये, समीहिए—इष्ट है और पाहुने के उद्देश्य से रखा गया है एवं—इसी प्रकार, अहम्मिट्ठे--अधर्मिष्ट बाले—अज्ञानी जीव भी पापाचरण कर के, णरयाउयं—नरकायु को ईहइ--इच्छा करता है अर्थात् नरक गति में जाता है ॥४॥

हिंसे वाले मुसावाई, अद्धाणम्मि विलोवए।
अण्णदत्तहरे तेणे, माई कण्हुहरे सढे ॥५॥

इत्थीविसयगिद्धे य, महारंभपरिग्गहे।
भुंजमाणे सुरं मंसं, परिवूढे परंदमे ॥६॥

अयकक्करभोई य, तुंदिले चियलोहिए।
आउयं णरए कंखे, जहाएसं व एलए ॥७॥

-- नरक गति में जाने वाला जीव कैसे पाप-कर्म करता है, यह वात इन गाथाओं में वताई जाती है—बाले-- अज्ञानी, हिंसे—हिंसा करने वाला, मुसावाई—झूठ वोलने वाला,

अद्धाणम्मि---मार्ग में, विलोवए—लूटने वाला, अण्णदत्त हरे—दूसरे की वस्तु बिना दिये लेने वाला, तेणे—चोरी करने वाला, माई—छल-कपट करने वाला, कण्हुहरे---'किसके यहाँ चोरी करूँ'—इस प्रकार दुष्ट अध्यवसाय वाला, सढे—शठ (वक्र आचार वाला) इत्थी विसय गिद्धे—स्त्री और विषयों में आसक्त बना हुआ, य—और, महारंभ परिग्गहे—महा आरम्भ और परिग्रह वाला, सुरं—मदिरा और मंसं—मांस का, भुंजमाणे—खाने वाला, परिवूडे—पुष्ट शरीर वाला तथा, परं—दूसरों का, दमे—दमन करने वाला, अयकक्कर-भोई—खाने में कड़कड़ शब्द हो ऐसा भुना हुआ बकरे का मांस खाने वाला, तुंदिल्ले—बढ़ी हुई तोंद वाला, चियलोहिए—अधिक रक्त वाला। सांसारिक सुखों के लिये इस प्रकार विविध पापाचरण करने वाला जीव, णरए—नरक, आउयं—आयु की उसी प्रकार, कंखे—इच्छा करता है, जहा—जैसे, एलए—बकरे के पुष्ट होने पर उसका स्वामी, आएसं—पाहुने की इच्छा करता है ॥५, ६, ७,॥

आसणं सयणं जाणं, वित्तं कामे य भुंजिया।
दुस्साहडं धणं हिच्चा, बहुं संचिणिया रयं ॥८॥

तओ कम्मगुरू जंतू, पच्चुपण्णपरायणे।
अयव्व आगयाएसे, मरणंतम्मि सोयइ ॥९॥

— आसणं—आसन, सयणं—शय्या, जाणं—वाहन,

वित्तं--धन, य—और, कामे—पांच इन्द्रिय के विषय-भोगों को, भुंजिया--भोग कर, दुस्साहडं—दुखः से इकट्ठे किये हुए, धणं--धन को, हिच्चा—छोड़ कर और, बहुं—बहुत, रयं—कर्मरज को, संचिणिया—एकत्रित कर के, तओ—इसके पश्चात्, पच्चुपण्णपरायणे--वर्तमान काल का ही विचार करने वाला वह, कम्मगुरू—कर्मों से भारी हुआ, जंतू—प्राणी, आगयाएसे--पाहुने के आने पर, अयव्व—बकरे के समान, मरणंतम्मि—मृत्यु के समीप आने पर, सोयई—शोक करता है। ८-९॥

तओ आउपरिक्खीणे, चुयादेह विहिंसगा।
आसुरियं दिसं बाला, गच्छंति अवसा तमं ॥१०॥

— तओ—इसके बाद, आउपरिक्खीणे—आयु के क्षीण हो जाने पर, विहिंसगा—हिंसा करने वाले, बाला—अज्ञानी जीव, चुयादेह--शरीर छोड़ कर, अवसा--कर्म के वश हो, तमं--अन्धकार वाली, आसुरियं- आसुरी, दिसं—दिशा अर्थात् नरक गति में, गच्छंति—जाते हैं ॥१०॥

जहा कागिणीए हेउं, सहस्सं हारए णरो।
अपत्थं अंबगं भोच्चा, राया रज्जं तु हारए ॥११॥

— जहा—जिस प्रकार, णरो—कोई मनुष्य, कागिणीए हेउं--एक काकिणी ‡ के लिये, सहस्सं—हजार रुपयों को,

‡ रुपये के अस्सीवें भाग को 'काकिनी' कहते हैं।

हारए--खो देता है और, राया—कोई राजा रोग से मुक्त हो कर, अपत्थं --अपथ्य, अंबगं--आम, भोच्चा—खा कर, मर जाता है, फलस्वरूप, रज्जंतु—राज्य ही हारए--खो देता है ॥११॥

एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए ।
सहस्स गुणिया भुज्जो, आउं कामा य दिव्विया ॥१२॥

— एवं—इसी प्रकार, देवकामाण—देव सम्बन्धी काम-भोगों के, अंतिए—सामने, माणुस्सगा—मनुष्य सम्बन्धी, कामा—काम-भोग भी काकिणी और आम के समान तुच्छ है, दिव्विया—देव सम्बन्धी, कामा—काम-भोग, य—और, आउं—दिव्य आयु (मनुष्य सम्बन्धी, काम-भोग और आयु की अपेक्षा) भुज्जो—अनेक, सहस्स गुणिया—हजार गुण अधिक है।

अणेग वासाणउया, जा सा पण्णवओ ठिई ।
जाइं जीयंति दुम्मेहा, ऊणे वाससयाउए ॥१३॥

— पण्णवओ--प्रज्ञावान् अर्थात् ज्ञान और क्रियाशील पुरुष की देवगति में, जा--जो, सा--वह प्रसिद्ध, अणेग-वासाउया—अनेकों नयुत ※ प्रमाण वाली अर्थात् पल्योपम और सागरोपम की, ठिई--स्थिति होती है, उस दिव्य स्थिति के,

※ चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग होता है। चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है। चौरासी लाख पूर्व का एक नयुतांग और चौरासी लाख नयुतांग का एक नयुत होता है।

जाइं—उन वर्षों को, दुम्मेहा—दुर्बुद्धि मनुष्य, ऊणे वास-सयाउए—सौ वर्ष वाली छोटी-सी मनुष्यायु में, जीयंती—हार जाते हैं ॥१३॥

जहा य तिण्णि वाणिया, मूलं घेत्तूण णिग्गया ।
एगोऽत्थ लहइ लाहं, एगो मूलेण आगओ ॥१४॥

—जहा य—जिस प्रकार, तिण्णि—तीन, वाणिया—वणिक, मूलं—मूल पूंजी, घेत्तूण—लेकर, णिग्गया—व्यापार करने के लिये निकले, अत्थ—उनमें से, एगो—एक, लाहं—लाभ, लहइ—प्राप्त कर के आया और, एगो—एक, मूलेण—मूल पूंजी ले कर, आगओ—लौट आया ॥१४॥

एगो मूलं वि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ ।
ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ॥१५॥

—तत्थ—उनमें से, एगो—एक, वाणिओ—तीसरा वणिक, मूलंवि—मूल पूंजी भी, हारित्ता—खो कर, आगओ—आया, एसा—यह, उवमा—उपमा, ववहारे—व्यवहार में है, एवं—इसी प्रकार, धम्मे—धर्म में भी, वियाणह—जानो ॥१५॥

माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे ।
मूलच्छेएण जीवाणं, णरगतिरिक्खत्तणं धुवं ॥१६॥

— माणुसत्तं—मनुष्य भव, मूलं—मूल पूंजी के समान, भवे—है, देवगई—देवगति, लाभो—लाभ के समान, भवे—है, मूलच्छेएण—मूलपूंजी के नाश हो जाने से अर्थात् मनुष्य-

भव की हानि होने से, जीवाणं—जीवों को, धुवं—निश्चय ही, णरगतिरिक्खत्तणं—नरक और तिर्यञ्च गति की प्राप्ति होती है।

दुहओ गई बालस्स, आवई वहमूलिया।
देवत्तं माणुसत्तं च, जं जिए लोलया सढे ॥१७॥

—बालस्स—अज्ञानी जीव को, दुहओ—दो प्रकार की अर्थात् नरक और तिर्यञ्च, गई—गति, आवई—प्राप्त होती है। ये गतियां, वहमूलिया—वध-बन्धन आदि मूल वाली हैं अर्थात् वध-बन्धन आदि कारणों से ये गतियां प्राप्त होती हैं और इन गतियों में जीव वध-बन्धन आदि कष्ट प्राप्त करता है, जं—क्योंकि, लोलयासढे—मांसादि की लोलुपता और शठता—धूर्तता वाला वह प्राणी, देवत्तं—देवत्व, य—और माणुसत्तं—मनुष्यत्व को, जिए—हार गया है ॥१७॥

तओ जिए सई होइ, दुविहं दुग्गइं गए।
दुल्लहा तस्स उम्मग्गा, अद्धाए सुइरादवि ॥१८॥

— तओ—इसके बाद देवत्व और मनुष्यत्व को, जिए—हारा हुआ वह अज्ञानी जीव, सई—सदा के लिए, दुविहं—दो प्रकार की, दुग्गइं—दुर्गति (नरक और तिर्यञ्च गति को) गए—प्राप्त, होइ—होता है, तस्स—उसका, सुइरादवि—बहुत लम्बे, अद्धाए—काल में भी इन दुर्गतियों में से, उम्मग्गा—निकलना, दुल्लहा—दुर्लभ है ॥१८॥

एवं जियं सपेहाए, तुलिया बालं च पंडियं ।
मूलियं ते पविस्संति, माणुस्सं जोणिमिंति जे ॥१९॥

— **एवं**--इस प्रकार, **जियं**--देव और मनुष्य गति को हारे हुए, **बालं**--अज्ञानी जीव को, **य**--और देव और मनुष्य गति प्राप्त करने वाले, **पंडियं**—पंडित पुरुष को, **सपेहाए**--अपनी बुद्धि से, **तुलिया**--तुलना करके, **जे**—जो पुरुष, **माणुस्सं**—मनुष्य को, **जोणिं**--योनि को, **इंति**--प्राप्त करते हैं, **ते**—वे, **मूलियं**--मूल पूंजी में, **पविस्संति**--प्रवेश करते हैं, अर्थात् वे मूल पूंजी लेकर लौटने वाले वणिक के समान है ॥१९॥

वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे णरा गिहि-सुव्वया ।
उविंति माणुसं जोणिं, कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥२०॥

— **जे**--जो, **णरा**--मनुष्य, **गिहि**--गृहस्थ होते हुए भी, **वेमायाहिं**--विविध प्रकार की, **सिक्खाहिं**--शिक्षाओं द्वारा, **सुव्वया**—सुव्रत वाले अर्थात् प्रकृति-भद्रता आदि गुण वाले हैं वे, **माणुसं**--मनष्य, **जोणिं**—योनि को, **उविंति**—प्राप्त करते हैं, **हु**--क्योंकि, **पाणिणो**—प्राणी, **कम्म सच्चा**—सत्य कर्म वाले होते हैं अर्थात् जैसा शुभ या अशुभ कर्म करते हैं वैसा ही शुभ या अशुभ फल पाते हैं ॥२०॥

जेसिं तु विउला सिक्खा, मूलियं ते अइच्छिया ।
सीलवंता सविसेसा, अदीणा जंति देवयं ॥२१॥

—जेसि—जिन के, विउला—विपुल, सिक्खा—ग्रहण आसेवन रूप शिक्षा होती है, सीलवंता—सदाचारी, सविसेसा—उत्तरोत्तर गुण प्राप्त करने वाले, ते—वे पुरुष, मूलियं—मूल-पूंजी अर्थात् मनुष्य-भव का, अइच्छिया—अतिक्रमण करके अदीणा—दीनता-रहित होकर, देवयं—देवगति को, इंति—प्राप्त करते हैं ॥२१॥

एवमद्दीणवं भिक्खुं, अगारिं य वियाणिया ।
कहण्णु जिच्चमेलिक्खं, जिच्चमाणो ण संविदे ॥२२॥

— एवं—इस प्रकार अनुरूप ग्रहण आसेवन रूप शिक्षा से मनुष्य और देवगति को प्राप्त करने वाले, अद्दीणवं—दीनता रहित, भिक्खु—साधु, य—और, अगारिं—गृहस्थ को, वियाणिया—जान कर विवेकी पुरुष, एलिक्खं—देवगति रूप लाभ, कहण्णु—किस प्रकार विषय-कषायादि वश हो कर, जिच्चं—हार जाता है और, जिच्चमाणो—हारता हुआ भी ण संविदे—नहीं जानता है ॥२२॥

जहा कुसग्गे उदगं, समुद्देण समं मिणे ।
एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए ॥२३॥

— जहा—जिस प्रकार, कुसग्गे—कुशाग्र अर्थात् डाभ की नोक पर रहा हुआ, उदगं—पानी यदि, समुद्देण—समुद्र के, समं—साथ, मिणे—नापा जाय तो उनमें महान् अन्तर दिखाई देगा और समुद्र की तुलना में कुशाग्र स्थित जल-बिन्दु अत्यन्त क्षुद्र दिखाई देगा, एवं—इसी प्रकार, देवकामाण—देवों के शब्दादि

काम-भोगों के, अंतिए—सामने, माणुसग्गा—मनुष्य सम्बन्धी, कामा—काम-भोग भी अत्यन्त तुच्छ है ॥२३॥

कुसग्गमित्ता इमे कामा, सण्णिरुद्धम्मि आउए ।
कस्स हेउं पुरा काउं, जोगक्खेमं ण संविदे ॥२४॥

— सण्णिरुद्धम्मि—अत्यन्त संक्षिप्त एवं विविध विघ्न-बाधाओं से परिपूर्ण इस, आउए—मनुष्यायु में, इमे—ये मनुष्य सम्बन्धी, कामा—काम-भोग समुद्र जैसे देवों के काम-भोगों के आगे, कुसग्गमित्ता—कुशाग्र स्थित जल-बिन्दु के समान है फिर, कस्स—किस, हेउं—हेतु, को, पुराकाउं—आगे रख कर यह जीव, जोगक्खेमं—धर्म सम्बन्धी योग और क्षेम को, ण संविदे—नहीं जानता, अर्थात् अप्राप्त धर्म की प्राप्ति के लिये और प्राप्त धर्म की रक्षा के लिये प्रयत्न नहीं करता ॥२४॥

इह कामाणियट्टस्स, अत्तट्ठे अवरज्झइ ।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं, जं भुज्जो परिभस्सई ॥२५॥

— इह— इस लोक में, कामाणियट्टस्स—शब्दादि, विषयों से निवृत्त न होने वाले का, अत्तट्ठे—आत्मा का अर्थ स्वर्ग आदि, अवरज्झइ—नष्ट हो जाता है, जं—जिससे, णेयाउयं—न्याय युक्त, मग्गं—सम्यग्दर्शनादि रूप मोक्षमार्ग को, सोच्चा—सुन कर भी, भुज्जो—पुनः उससे, परिभस्सइ—भ्रष्ट हो जाता है ॥२५॥

इह कामणियट्टस्स, अत्तट्ठे णावरज्झई।
पूइदेहणिरोहेणं, भवे देवे त्ति मे सुयं ॥२६॥

इह—इस लोक में, कामणियट्टस्स—कामभोगों से निवृत्त होने वाले पुरुष के, अत्तट्ठे—आत्मा के अर्थ—स्वर्गादि का णावरज्झई—नाश नहीं होता, पूइदेहणिरोहेणं—अपवित्र इस औदारिक शरीर का त्याग कर वह व्यक्ति देवे—देव, भवे—होता है, त्ति—इस प्रकार मैंने, सुयं—सुना है ॥२६॥

इड्ढी जुई जसो वण्णो, आउं सुहमणुत्तरं।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु, तत्थ से उववज्जइ ॥२७॥

— भुज्जो—फिर देवभव के बाद, से—वह आत्मा, जत्थ—जहाँ, मणुस्सेसु—मनुष्यों में, अणुत्तरं—सर्व प्रधान, इड्ढी—ऋद्धि, जुई—द्युति, जसो—यश, वण्णो—वर्ण—श्लाघा आउं—आयु और, सुहं—सुख हों, तत्थ—वहाँ, उववज्जइ—उत्पन्न होता है ॥२७॥

बालस्स पस्स बालत्तं, अहम्मं पडिवज्जिया।
चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे, णरए उववज्जइ ॥२८॥

— बालस्स—बाल अर्थात् अज्ञानी पुरुष की, बालत्तं—अज्ञानता, पस्स—देखो, वह, अहम्मं—अधर्म को, पडिवज्जिया—अंगीकार करके, धम्मं—धर्म का, चिच्चा—त्याग कर, अहम्मिट्ठे—बहुत ही अधर्मी होकर, उववज्जइ—उत्पन्न होता है ॥२८॥

धीरस्स पस्स धीरत्तं, सव्वधम्माणुवत्तिणो ।
चिच्चा अधम्मं धम्मिट्ठे, देवेसु उववज्जई ॥२९॥

–सव्वधमाणुवत्तिणो—क्षमादि सभी धर्मों का पालन करने वाले, धीरस्स—धीर— बुद्धिशाली पुरुष की, धिरत्तं—धीरता—बुद्धिमत्ता को, पस्स—देखो कि वह, अधम्मं—अधर्म का, चिच्चा—त्याग कर, धम्मिट्ठे—अतिशय धर्मात्मा होकर, देवेसु—देवों में, उववज्जइ—उत्पन्न होता है ॥२९॥

तुलिआण बालभावं, अबालं चेव पंडिए ।
चइऊण बालभावं, अबालं सेवए मुणी ।३०। त्ति बेमि ।

— पंडिए—पण्डित (विवेकशील) मुणी—मुनि, बालभावं—बालभाव (अज्ञानावस्था) चेव—तथा, अबालं—धीरता की, तुलिआण—तुलना करके, बालभावं—अज्ञानता का, चइऊण—त्याग करे और, अबालं—धीरता का, सेवए—सेवन करे, त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हुँ ॥३०॥

॥ सातवां अध्ययन समाप्त ॥

कापिलीय नामक आठवाँ अध्ययन

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए ।
किं णाम होज्ज तं कम्मयं,जेणाहं दुग्गइं ण गच्छेज्जा ।१।

— एक जिज्ञासु ने पूछा कि भगवन् ! अधुवे—अध्रुव (अस्थिर) असासयम्मि—अशाश्वत और, दुक्खपउराए—प्रचुर दुखः वाले संसारम्मि—इस संसार में, किं णाम—कौनसा, तं—वह, कम्मयं—कर्म, होज्ज—है, जेण—जिससे कि, अहं—मैं, दुग्गइं—दुर्गति में, ण गच्छेज्जा—न जाऊँ ॥१॥

विजहित्तु पुव्व संजोगं,ण सिणेहं कहिंचि कुव्विज्जा ।
असिणेह सिणेह करेहिं,दोस पओसेहिं मुच्चए भिक्खू ।२।

— पुव्व संजोगं—माता-पिता आदि पूर्व संयोग को विजहित्तु— छोड़ कर, कहिं चि— किसी भी वस्तु में, सिणेहं—स्नेह, णकुव्विज्जा—नहीं करे, सिणेह करेहिं—स्नेह करने वाले पुत्र-स्त्री आदि में भी, असिणेह—स्नेह न रखता हुआ, भिक्खू—साधु, निरतिचार चारित्र वाला होकर, दोस पओसेहिं (दोष—शारीरिक और मानसिक संताप आदि और प्रदोष—दुर्गति गमन आदि) से, मुच्चए—छूट जाता है ।

तो णाण दंसण समग्गो,हिय णिस्सेसाए सव्वजीवाणं ।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए, भासइ मुणिवरो विगयमोहो ।३।

—तो—इसके बाद, णाण-दंसण-समग्गो—पूर्ण ज्ञान दर्शन से सहित और, विगयमोहो—मोह-रहित, मुणिवरो—मुनिवर, सव्वजीवाणं—सभी जीवो के, हियणिस्सेसाए—हितकारी, मोक्ष के लिये य—और, तेसिं—उन्हें, विमोक्खणट्ठाए—आठ कर्मों से छुड़ाने के लिये, भासइ—कहने लगे।३।

सव्वं गंथं कलहं च, विप्पजहे तहाविहं भिक्खू।
सव्वेसु कामजाएसु, पासमाणो ण लिप्पइ ताई ॥४॥

—भिक्खू—साधु, तहाविहं—तथाविध— कर्मबन्ध कराने वाले, सव्वं—सभी, गंथं—वाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह, य—और, कलहं—क्लेश तथा अन्य कषायों को, विप्पजहे—छोड़ देवे, ऐसा करने वाला, ताई—छः काया का रक्षक मुनि, सव्वेसु—सभी, कामजाएसु—मनोज्ञ शब्दादि विषय समूह में, पासमाणो—कटुक फल देखता हुआ उनमें, ण लिप्पई—लिप्त नहीं होता ॥४॥

भोगामिसदोसविसण्णे, हियणिस्सेयसबुद्धिवोच्चत्थे।
वाले य मंदिए मूढे, वज्झई मच्छिया व खेलम्मि ॥५॥

—भोगामिसदोसविसण्णे—जैसे आमिष (मांस) रस-लोलुप प्राणियों के लिये अत्यन्त गृद्धि एवं दोष का कारण है, उसी प्रकार आत्मा को दूषित करने वाले अत्यन्त गृद्धि के हेतु रूप शब्दादि विषयों में फँसा हुआ, हियणिस्सेयस, वुद्धि वोच्चत्थे—एकान्त हितकारी मोक्ष के विषय में विपरीत वुद्धि

रखने वाला, मंदिए—धर्म में आलस्य करने वाला, य— और मूढे—मोह से व्याकुल चित्त वाला, वाले—अज्ञानी जीव, खेलम्मि—श्लेष्मा में लिपटी, मच्छिया व—मक्खी के समान, वज्झई—संसार में फँस जाता है ।।५।।

दुप्परिच्चया इमे कामा, णो सुजहा अधीरपुरिसेहिं ।
अह संति सुव्वया साहू, जे तरंति अतरं वणिया व ।६।

— इमे—इन, कामा—काम-भोगों का, दुप्परिच्चया—परित्याग करना बड़ा कठिन है, अधीर पुरिसेहिं—अधीर पुरुषों से ये, णो सुजहा—सहज ही नहीं छोड़े जा सकते, अह—अथ (किन्तु) जे—जो, सुव्वया—सुन्दर (निर्मल) व्रत वाले, साहू—साधु, संति—हैं, वे अतरं—कठिनता से पार किये जा सकने वाले इन विषयों के समूह को, वणिया व—व्यापारिया के समान, तरंति—पार कर जाते हैं । अर्थात् जैसे व्यापारी लोग जहाज आदि साधनों द्वारा दुस्तर समुद्र को पार करते हैं, वैसे ही धीर साधु भी व्रतादि साधनों द्वारा विषय रूप समुद्र से पार हो जाते हैं ।।६।।

समणा मु एगे वयमाणा, पाणवहं मिया अयाणंता ।
मंदा णिरयं गच्छंति,बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं ।।७।।

'मु—हम, समणा—साधु हैं'—इस प्रकार, वयमाणा—कहते हुए और, पाणवहं—प्राणी-वध को, अयाणंता—नहीं जानते हुए अर्थात् कौन-प्राणी हैं, उनके कौन से प्राण हैं, किस प्रकार उनकी

हिंसा होती है यह नहीं जानते हुए और इसी कारण प्राणी-हिंसा का त्याग नहीं करते हुए, **मिया**—मृग के समान अज्ञानी **मंदा**—मन्द-बुद्धि वाले, **एगे**—कई, **बाला**—बाल जीव अपनी, **पावियाहिं**—पापकारी, **दिट्ठीहिं**—दृष्टियों से, **णिरयं**—नरक में, **गच्छंति**—जाते हैं ॥७॥

ण हु पाणवहं अणुजाणे, मुच्चेज्ज कयाइ सव्व दुक्खाणं।
एवमारिएहिं अक्खायं, जेहिं इमो साहुधम्मो पण्णत्तो।८।

—जो पुरुष, **पाणवहं**—प्राणिवध का, **अणुजाणे**—अनुमोदन करता है—करना-कराना तो दूर रहा वह, **कयाइ**—कभी भी, **सव्वदुक्खाणं**—सभी दुःखों से, **ण हु मुच्चेज्ज**—नहीं छूट सकता, **जेहिं**—जिन्होंने, **इमो**—यह, **साहुधम्मो**—साधु धर्म, **पण्णत्तो**—कहा है उन, **आरिएहिं**—आर्य अर्थात् तीर्थंकर महापुरुषों ने, **एवं**—इस प्रकार, **अक्खायं**—फरमाया है ॥८॥

पाणे य णाइवाइज्जा, से समियत्ति वुच्चई ताई।
तओ से पावयं कम्मं, णिज्जाइ उदगं व थलाओ।९।

—जो पुरुष, **पाणे**—प्राणियों की, **णाइवाइज्जा**—हिंसा नहीं करता, **से**—वह, **ताई**—छः काय का रक्षक, **समियत्ति**—पाँच समिति का धारक, **वुच्चई**—कहा जाता है। **तओ**—इसके बाद, **से**—उससे, **थलाओ**—ऊँचे स्थान से, **उदगं व**—जल के समान, **पावयं**—पाप, **कम्मं**—कर्म, **णिज्जाइ**—निकल जाता है अर्थात् जैसे ऊँचो—ढालू भूमि पर पानी नहीं ठहरता और वह कर चला जाता है, उसी प्रकार छः काया के

क्षक, समिति युक्त मुनि से भी पापकर्म अलग हो जाता है।९।

जगणिस्सिएहिं भूएहिं, तसणामेहिं थावरेहिं य।
णो तेसि मारभे दंडं,मणसा वयसा कायसा चेव ।१०।

— जगणिस्सिएहिं—जगत में रहे हुए, तेसिं—उन, तसणामेहिं—त्रस नाम-कर्म का उदय वाले—त्रस, य—और, थावरेहिं—स्थावर नाम-कर्म का उदय वाले स्थावर प्राणियों की, मणसा—मन, वयसा—वचन, चेव—और, कायसा—काया से, दंडं—हिंसा का, णो आरभे—आरंभ नहीं करे। इसी प्रकार दूसरों से भी हिंसा का आरंभ न करावे और करते हुए को भी भला न समझे ॥१०॥

सुद्धेसणाओ णच्चा णं, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं।
जायाए घासमेसिज्जा, रसगिद्धे ण सिया भिक्खाए ।११।

— भिक्खु—साधु, सद्धेसणाओ— उदगम-उत्पादनादि दोषों से रहित शुद्ध एषणा को, णच्चाणं—जान कर, तत्थ—उसमें—शुद्ध एषणा में, अप्पाणं—अपनी आत्मा को, ठवेज्ज—स्थापित करे अर्थात् एषणा के दोषों को टाल कर शुद्ध एषणा से आहार प्राप्त करे, भिक्खाए—भिक्षा से निर्वाह करने वाला साधु, जायाए—संयम-यात्रा का निर्वाह करने के लिये, घासं—आहार की, एसिज्जा—गवेषणा करे किन्तु, रसगिद्धे—रसों में गृद्धिभाव वाला, ण सिया—न होवे ॥११॥

पंताणि चेव सेविज्जा,सीयपिंडं पुराण कुम्मासं।
अदु बुक्कसं पुलागं वा, जवणट्ठाए णिसेवए मंथुं।१२।

— पंताणं— प्रान्त (नीरस) आहार, सीयपिंडं— ठंडा आहार, चेव—और पुराण कुम्मासं—पुराने कुलमाष—उड़द आदि के बाकले, अदु—अथवा, वुक्कसं—भूसा (कोरमा) पुलागं—नीरस चने आदि, वा—अथवा, मंथुं—बोर आदि का चूर्ण, गोचरी में आवे तो भी, जवणट्ठाए—अपने शरीर निर्वाह के लिए साधु, सेविज्जा-णिसेवए—इनका सेवन करे ॥

जे लक्खणं सुविणं च, अंगविज्जं य जे पउंजंति ।
ण हु ते समणा वुच्चंति, एवं आयरिएहिं अक्खायं ।१३।

— जे—जो, लक्खणं—स्त्री-पुरुषों के शुभाशुभ लक्षण बताने वाली लक्षणविद्या का, य—और, सुविणं—स्वप्न का (शुभाशुभ फल बताने वाली स्वप्नविद्या का) य—और, अंग॰विज्जं—अंग-उपांग के स्फुरण का फल बताने वाली अंगविद्या का, पउंजंति—प्रयोग करते हैं, ते—वे, हु—निश्चय ही, समणा—साधु, ण वुच्चंति—नहीं कहलाते हैं, एवं—इस प्रकार, आयरिएहिं—आचार्यों ने, अक्खायं—फरमाया है ॥

इह जीवियं अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहिजोएहिं ।
ते कामभोगरसगिद्धा, उववज्जंति आसुरे काये ॥१४॥

— इह—इस जन्म में, जीवियं—असंयम जीवन का, अणियमेत्ता—नियन्त्रण न कर जो, समाहि जोगेहिं—समाधि और योग (चित्त की एकाग्रता तथा प्रतिलेखनादि व्यापारों) से, पब्भट्ठा—भ्रष्ट हो गये हैं, ते—वे कामभोग-रसगिद्धा—कामभोग और रस में आसक्त हो कर, आसुरे—असुर सम्बन्धी,

काये--काया में (असुर कुमारों में) उववज्जंति---उत्पन्न होते हैं ॥१४॥

तत्तो वि य उवट्टित्ता, संसारं बहुं अणुपरियडंति।
बहुकम्मलेवलित्ताणं, बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं ॥१५॥

-- तत्तो वि य---वहाँ असुर-निकाय में से, उवट्टित्ता--निकल कर, बहुं ---बहुत (विस्तृत) संसारं---संसार में, अणुपरियडंति---परिभ्रमण करते हैं, बहुकम्मलेवलित्ताणं--अतिशय कर्म-लेप से लिप्त हुए, तेसिं---उन प्राणियों के लिये, बोही --- सम्यक्त्व की प्राप्ति, सुदुल्लहा--- अत्यन्त दुर्लभ, होइ--हो जाती है ॥१५॥

कसिणं वि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज एगस्स ।
तेणावि से ण संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया ॥१६॥

--- पडिपुण्णं--धन-धान्यादि से भरा हुआ, कसिणं वि--परिपूर्ण, इमं--यह, लोयं--लोक, जो--यदि कोई सुरेन्द्रादि, एगस्स---एक ही व्यक्ति को, दलेज्ज---दे दे तो, तेणावि---उससे भी, से---वह आत्मा, ण संतुस्से--सतुष्ट नहीं होता है, इइ--इस प्रकार, इमे---इस, आया--आत्मा का, दुप्पूरए---तृप्त होना अति ही कठिन है ॥१६॥

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ ।
दो मासकयं कज्जं, कोडीए वि ण णिट्ठियं ॥१७॥

-- जहा---ज्यों-ज्यों, लाहो---लाभ होता जाता है,

काये--काया में (असुर कुमारों में) उववज्जंति--उत्पन्न होते हैं ॥१४॥

तत्तो वि य उवट्टित्ता,संसारं वहुं अणुपरियडंति।
वहुकम्मलेवलित्ताणं, वोही होइ सुदुल्लहा तेसिं ॥१५॥

-- तत्तो वि य--वहां असुर-निकाय में से, उवट्टित्ता--निकल कर, वहुं --वहुत (विस्तृत) संसारं--संसार में, अणु-परियडंति--परिभ्रमण करते हैं, वहुकम्मलेवलित्ताणं--अति-शय कर्म-लेप से लिप्त हुए, तेसिं--उन प्राणियों के लिये, वोही -- सम्यक्त्व की प्राप्ति, सुदुल्लहा-- अत्यन्त दुर्लभ, होइ--हो जाती है ॥१५॥

कसिणं वि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज एगस्स ।
तेणावि से ण संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया ॥१६॥

-- पडिपुण्णं--धन-धान्यादि से भरा हुआ, कसिणं वि--परिपूर्ण, इमं--यह, लोयं --लोक, जो --यदि कोई सुरेन्द्रादि, एगस्स--एक ही व्यक्ति को, दलेज्ज--दे दे तो, तेणावि--उससे भी, से--वह आत्मा, ण संतुस्से--सतुष्ट नहीं होता है, इह--इस प्रकार, इमे--इस, आया--आत्मा का, दुप्पूरए--तृप्त होना अति ही कठिन है ॥१६॥

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ ।
दो मासकयं कज्जं, कोडीए वि ण णिट्ठियं ॥१७॥

तहा--त्यों-त्यों, लोहो—लोभ बढ़ता जाता है, लाहा—लाभ से, लोहो—लोभ की,पवड्ढइ--वृद्धि होती है, कपिल मुनि का, दो मासकयं--दो मासा सोने से होने वाला, कज्जं--कार्य लोभ वश,कोडीएवि--करोड़ मोहरों से भी,ण णिट्ठियं—पूरा नहीं हुआ।

णो रक्खसीसु गिज्झेज्जा, गंडवच्छासु णेगचित्तासु ।
जाओ पुरिसपलोभित्ता, खेलंति जहा व दासेहिं ।१८।

— साधक को चाहिये कि, गंडवच्छासु--पीनस्तन वाली, णेगचित्तासु—चंचल-चित्त, रक्खसीसु—राक्षसी रूप स्त्रियों में, णो गिज्झेज्जा—मूच्छित (आसक्ति वाला) न होवे, जाओ—जो मोहक हाव-भाव मधुर वाणी आदि से, पुरिसं—पुरुष को पलोभित्ता--लुभा कर, अपनी ओर आकृष्ट कर बाद में उनके साथ दासेहिं—दासों के,जहा—जैसा,खेलंति—क्रीड़ा करती है ।१८।

भावार्थ— जैसे राक्षसी मनुष्य का खून पी कर उसका जीवन हरण कर लेती है, इसी प्रकार चंचलचित्त कुलटा स्त्रियाँ भी पुरुष का स्वास्थ्य नष्ट कर उसे निःसत्व कर डालती है, यही नहीं ज्ञानादि स्वरूप तात्त्विक जीवन का भी ये नाश कर देती हैं। मोहक हाव-भाव तथा मधुर वचनों से पुरुप को लुभा कर अपने वश कर लेती हैं और इसके बाद उसके साथ दास जैसा अपमानपूर्ण व्यवहार करती हैं।

णारीसु णोवगिज्झिज्जा, इत्थी विप्पजहे अणगारे ।
धम्मं च पेसलं णच्चा, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ।१९।

—अणगारे—गृहस्थाश्रम को छोड़ कर, भिक्खु—संयमी, बना हुआ भिक्षु, णारीसु—स्त्रियों में, णोवगिज्झिज्जा—कभी भी आसक्ति भाव न रखे, किन्तु, इत्थी—स्त्री-संग, विप्पजहे—त्याग कर उससे सदैव दूर ही रहे, तथा इहलोक और परलोक में, धम्मं—धर्म को, य—ही, पेसलं—हितकारी, णच्चा—जान कर, तत्थ—धर्म में, अप्पाणं—अपनी आत्मा को, ठवेज्ज—स्थापित करे ॥१९॥

इइ एस धम्मे अक्खाए, कविलेणं च विसुद्ध पण्णेणं।
तरिहिंति जे उ काहिंति, तेहिं आराहिया दुवे लोग। त्ति बेमि।

—इइ—इस प्रकार, विसुद्ध पण्णेणं—विशुद्ध प्रज्ञावाले, कविलेणं—कपिल मुनि ने, एस—यह, धम्मे—धर्म, अक्खाए—कहा है, जे उ—जो, काहिंति—इस धर्म का पालन करेंगे वे, तरिहिंति—संसार-सागर से तिर जायँगे, तेहिं—उक्त धर्म का पालन करने वालों ने ही, दुवे—दोनों, लोग—लोकों की, आराहिया—आराधना की है, अर्थात् उन्होंने ही इहलोक और परलोक को सफल किया है। त्तिबेमि—इस प्रकार मैं कहता हूँ ॥२७॥

॥ आठवाँ अध्ययन समाप्त ॥

नमिपव्वज्जा नामक नौवाँ अध्ययन

चइऊण देवलोगाओ, उववण्णो माणुसम्मि लोगम्मि ।
उवसंतमोहणिज्जो, सरइ पोराणियं जाइं ॥१॥

— उवसंत मोहणिज्जो—जिसके दर्शन-मोहनीय कर्म का उपशम हो गया है ऐसा नमिराज का जीव, देवलोगाओ—सातवें देवलोक से, चइऊण—चव कर, माणुसम्मि लोगम्मि—मनुष्य-लोक में, उववण्णो—उत्पन्न हुआ और जातिस्मरण ज्ञान द्वारा, पोराणियं—पहले के, जाइं—जन्म का, सरइ—स्मरण करने लगा ॥१॥

जाइं सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मे ।
पुत्तं ठवित्तु रज्जे, अभिणिक्खमई णमी राया ॥२॥

— जाइं—पूर्वभव का, सरित्तु—स्मरण कर के, भयवं—भगवान्, णमीराया—नमिराज, सहसंबुद्धो—स्वमेव बोध को प्राप्त हुए और, पुत्तं—पुत्र को, रज्जे—राज्यगद्दी पर, ठवित्तु—स्थापित कर के, अणुत्तरे—सर्वश्रेष्ठ, धम्मे—श्रुत-चारित्र रूप धर्म के सम्मुख हो कर, अभिणिक्खमई—गृहस्थावस्था से निकले ॥२॥

सो देवलोगसरिसे, अंतेउरवरगओ वरे भोए ।
भुंजित्तु णमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयई ॥३॥

— अंतेउरवरगओ—उत्तम अन्तःपुर में रह कर, देवलोग-

सरिसे—देवलोक सरीखे, वरे—श्रेष्ठ, भोए—भोगों को, भुंजित्तु—भोग कर सो—उन, णमी राया—नमिराज ने, बुद्धो—बोध (तत्त्व ज्ञान) पा कर, भोगे-भोगों को, परिच्चयइ—छोड़ दिया ॥३॥

मिहिलं सपुरजणवयं, बलमोरोहं च परियणं सव्वं ।
चिच्चा अभिणिक्खंतो, एगंतमहिट्ठिओ भयवं ॥४॥

—सपुरजणवयं— नगरों और जनपदों एवं प्रान्तों से जुड़ी हुई, मिहिलं—मिथिला नगरी, बलं—चतुरंगिणी सेना, ओरोहं—अन्तःपुर य—और, परियणं—परिजन—दास-दासी आदि, सव्वं—सभी को, चिच्चा—छोड़ कर, भयवं—भगवान् नमिराज ने, अभिणिक्खंतो—प्रव्रज्या धारण की और एगंतं—एकान्त का, अहिट्ठिओ—आश्रय लिया अर्थात् द्रव्य से उद्यान रूप एकान्त का और भाव से सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप मोक्ष का आश्रय लिया ॥४॥

कोलाहलगभूयं, आसी मिहिलाए पव्वयंतम्मि ।
तइया रायरिसिम्मि, णमिम्मि अभिणिक्खमंतम्मि ॥५॥

— तइया—उस समय, रायरिसिम्मि-राजर्षि, णमिम्मि—नमिराज के, अभिणिक्खमंतम्मि—गृहस्थावस्था से निकलने और, पव्वयंतम्मि—प्रव्रज्या धारण करने पर, मिहिलाए—मिथिला नगरी में, कोलाहलगभूयं—चारों ओर कोलाहल, आसी—होने लगा ॥५॥

भावार्थ—शास्त्रकारों ने नमिराज को गृहस्थावस्था में भी राजर्षि कहा है। इसका कारण यह है कि जो राजा न्यायी होता है और क्रोधादि छह अन्तरंग शत्रुओं को जीत लेता है, वह राजर्षि कहलाता है।

अब्भुट्ठियं रायरिसिं, पव्वज्जा ठाणमुत्तमं।
सक्को माहणरूवेणं, इमं वयणमब्बवी ॥६॥

— उत्तमं—उत्तम, पव्वज्जाठाणं—सम्यग्दर्शनादि गुणों के आधार रूप प्रव्रज्या-स्थान में, अब्भुट्ठियं—अभ्युद्यत (स्थित) रायरिसिं—राजर्षि नमिराज से, माहण रूवेण—ब्राह्मण का रूप धारण कर के, सक्को—शक्रेन्द्र ने, इमं—इस प्रकार, वयणं—वचन, अब्बवी—कहा (प्रश्न किया) ॥६॥

किण्णु भो ! अज्ज मिहिलाए, कोलाहलग-संकुला।
सुव्वंति दारुणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य ॥७॥

— भो—हे नमिराजर्षि ! अज्ज—आज, मिहिलाए—मिथिला नगरी के, पासाएसु—प्रासादों (राजमहलों) में, य—और, गिहेसु—घरों में, कोलाहलगसंकुला—कोलाहल से व्याप्त, दारुणा—हृदय को विदीर्ण करने वाले भयंकर विलाप आक्रन्दन आदि, सद्दा—शब्द, किण्णु—क्यों, सुव्वंति—सुनाई देते हैं ? ॥७॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं मिणमब्बवी ॥८॥

— तओ—शक्रेन्द्र का, एयं—पूर्वोक्त, अट्ठं—अर्थ—प्रश्न, णिसामित्ता—सुन कर, हेउ कारण चोइओ—हेतु और कारण से प्रेरित हुए, णमी रायरिसी—नमी राजर्षि, देविंदं—देवेन्द्र से, इणं— इस प्रकार, अब्बवी—कहने लगे ॥८॥

मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे ।
पत्त पुप्फफलोवेए, बहूणं बहुगुणे सया ॥९॥

— महिलाए—मिथिला नगरी के, चेइए—उद्यान में, पत्तपुप्फफलोवेए—पत्र-पुष्प और फलों से युक्त, सीयच्छाए—शीतल छाया वाला, सया—सदा, बहूणं—बहुत से पक्षी आदि प्राणियों को, बहुगुणे—बहुत ही लाभ पहुँचाने वाला, मणोरमे—चित्त को प्रसन्न करने वाला मनोरम नामक एक, वच्छे—वृक्ष था ॥९॥

वाएण हीरमाणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता, एए कंदंति भो ! खगा ॥१०॥

— भो— हे विप्र ! मणोरमे—वह मनोरम नाम वाला, चेइए—वृक्ष, वाएण—जब वायु से, हीरमाणम्मि—उखड़ गया, तब उस पर निवास करने वाले, एए— ये, खगा—पक्षी, दुहिया—दुखी, असरणा—अशरण और, अत्ता—पिड़ित होकर, कंदंति—आक्रन्दन कर रहे हैं ॥१०॥

भावार्थ— जिस प्रकार वृक्ष के गिर जाने पर, पक्षी अपने स्वार्थ का नाश हो जाने के कारण उस वृक्ष के लिये

रोते चिल्लाते हैं, परन्तु वृक्ष को उनके रोने में कारण नहीं बनाया जा सकता, और न उसे इसके लिए दोषी ही ठहराया जा सकता है, इसी प्रकार मेरे दीक्षा लेने पर मिथिला के लोग अपने स्वार्थ के नष्ट हो जाने के कारण विलाप करते हैं। वास्तव में इनका विलाप अपने स्वार्थ के लिए है, मेरे लिये नहीं। अतएव इन कोलाहल पूर्ण शब्दों के लिये मुझे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारण चोइओ।
तओ र्णमि रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥११॥

-- तओ--नमि राजर्षि के उत्तर देने के वाद, एयं-- पूर्वोक्त अट्ठं--अर्थ, णिसामित्ता--सुन कर, हेउकारण-चोइओ--हेतु ओर कारण से प्रेरित हुए, देविंदो-देवेन्द्र ने, र्णमि रायरिसिं-नमि राजर्षि से, इणं--यह, अब्बवी--कहा ॥११॥

एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झइ मंदिरं।
भयवं अंतेउरं तेणं, कीस णं णावपेक्खह ॥१२॥

-- वाऊ-- वायु से प्रेरित हुई, एस--यह, अग्गि-- अग्नि, एयं--आपके इस, मंदिरं--भवन को, डज्झइ--जला रही है, तेणं--अतः, भयवं--हे भगवन्! आप अपने, अंतेउरं--अन्तःपुर की ओर, कीसणं--क्यों, णावपेक्खह-- नहीं देखते हैं?

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥१३॥

-- इस गाथा का शब्दार्थ आठवीं गाथा के समान है। नमि राजर्षि इन्द्र के प्रश्न का उत्तर देते हैं ॥१३॥

सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो णत्थि किंचणं ।
मिहिलाए डज्झमाणीए, ण मे डज्झइ किंचणं ॥१४॥

— हे ब्राह्मण ! जेसिं—इन में, मो—हमारी, किंचणं—कोई वस्तु, णत्थि—नहीं है इसलिए, सुहं वसामो—में सुखपूर्वक रहता हूँ और, जीवामो—सुखपूर्वक ही जीता हूँ। मिहिलाए--मिथिला नगरी के, डज्झमाणीए—जल जाने पर मे—मेरा, किंचणं—कुछ भी, ण डज्झइ--नहीं जलता है ।१४।

भावार्थ— आत्मा अकेला है । अकेला ही जन्म धारण करता है और अकेला ही मरता है। वस्तुतः अन्तःपुर आदि कुछ भी मेरा नहीं है और न मेरा इनमें ममत्व ही रहा हुआ है। इसलिए मिथिला नगरी के जलने पर मेरा कुछ भी नहीं जलता ।

नमि राजर्षि की सांसारिक पदार्थों में निर्ममत्व भाव की परीक्षा करने के लिए इन्द्र ने यह प्रश्न किया है, जिसका उपरोक्त उत्तर देकर नमि राजर्षि ने यह स्पष्ट कहा है कि इन सांसारिक पदार्थों में मेरा किञ्चिन्मात्र भी मोह और ममत्व नहीं है ।

चत्तपुत्तकलत्तस्स, णिव्वावारस्स भिक्खुणो।
पियं ण विज्जई किंचि, अप्पियं पि ण विज्जई ॥१५॥

— चत्तपुत्तकलत्तस्स—पुत्र और स्त्रियों का त्याग करने वाले, णिव्वावारस्स—कृषि पशु पालन आदि सभी प्रकार के व्यापार से निवृत्त, भिक्खुणो—साधु के लिये, ण—न तो, किंचि—कोई वस्तु, पियं – प्रिय, विज्जइ—है और, ण—न, अप्पियं वि—अप्रिय ही, विज्जइ—है अर्थात् भिक्षु का सभी वस्तुओं में समभाव रहता है ॥१५॥

बहुं खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ ॥१६॥

— सव्वओ—सभी प्रकार के बाह्य और आभ्यन्तर बन्धनों से, विप्पमुक्कस्स —मुक्त होकर, एगंतं—'मैं अकेला हूं, मेरा कोई भी नहीं है' इस प्रकार एकत्व-भावना का, अणुपस्सओ —विचार करने वाले तथा, भिक्खुणो —भिक्षा से निर्वाह करने वाले, अणगारस्स—गृहत्यागी, मुणिणो—साधु के लिए, खु –निश्चय ही, बहुं—बहुत, भद्दं —कल्याण (सुख) है ॥१६॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥१७॥

— शब्दार्थ ग्यारहवीं गाथा के समान है। इन्द्र नमि-राजर्षि से कहता है:—

पागारं कारइत्ताणं, गोपुरट्टालगाणि य।
उस्सूलग-सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया ॥१८॥

— खत्तिया—हे क्षत्रिय ! पागारं—प्राकार (कोट) य—और, गोपुरट्टालगाणि—दरवाजे तथा अट्टालिका अर्थात् कोट पर युद्ध करने के लिये बुर्ज, उस्सूलग—कोट के चारों ओर खाई और, सयग्घीओ—सैंकड़ों शत्रुओं का हनन करने वाली तोप आदि यन्त्र, कारइत्ताणं—करवा कर, तओ—उसके बाद, गच्छसि—तुम दीक्षित होना ॥१८॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥१९॥

— शब्दार्थ आठवीं गाथा के समान है। नमिराजर्षि इन्द्र से कहते हैं:—

सद्धं णगरं किच्चा, तव-संवर-मग्गलं।
खंति णिउणपागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥२०॥

— सद्धं—श्रद्धा रूप, णगरं—नगर, खंति—क्षमा आदि दस धर्म रूप, णिउणपागारं—दृढ़ कोट और, तवसंवर—तप-संवर रूप, अग्गलं—अर्गला (भोगल) किच्चा—बना कर, दुप्पधंसयं—कर्म रूप शत्रुओं से दुर्जेय, तिगुत्तं—तीन गुप्तियों से उस कोट की रक्षा करनी चाहिए ॥२०॥

भावार्थ— नमि राजर्षि कहते हैं कि हे विप्र ! मैंने श्रद्धा रूप नगर बनाया है। प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा,

चत्तपुत्तकलत्तस्स, णिव्वावारस्स भिक्खुणो।
पियं ण विज्जई किंचि, अप्पियं पि ण विज्जई ॥१५॥

— चत्तपुत्तकलत्तस्स-पुत्र और स्त्रियों का त्याग करने वाले, णिव्वावारस्स—कृषि पशु पालन आदि सभी प्रकार के व्यापार से निवृत्त, भिक्खुणो—साधु के लिये, ण—न तो, किंचि—कोई वस्तु, पियं - प्रिय, विज्जइ—है और, ण—न, अप्पियं वि—अप्रिय ही, विज्जइ—है अर्थात् भिक्षु का सभी वस्तुओं में समभाव रहता है ॥१५॥

बहुं खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ ॥१६॥

— सव्वओ—सभी प्रकार के बाह्य और आभ्यन्तर बन्धनों से, विप्पमुक्कस्स —मुक्त होकर, एगंतं—' मैं अकेला हूं, मेरा कोई भी नहीं है' इस प्रकार एकत्व-भावना का, अणुपस्सओ—विचार करने वाले तथा, भिक्खुणो—भिक्षा से निर्वाह करने वाले, अणगारस्स—गृहत्यागी, मुणिणो—साधु के लिए, खु -निश्चय ही, बहुं—बहुत, भद्दं—कल्याण (सुख) है ॥१६॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥१७॥

— शब्दार्थ ग्यारहवीं गाथा के समान है। इन्द्र नमिराजर्षि से कहता है:—

भावार्थ— नमि राजर्षि कहते हैं कि हे ब्राह्मण ! कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करने के लिए मैंने पराक्रम रूपी धनुष पर छह प्रकार का आभ्यन्तर तप रूपी बाण चढ़ा रखा है। कर्मशत्रुओं का नाश करने पर फिर कोई युद्ध करना शेष नहीं रहता। फिर शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए हे ब्राह्मण ! जो तुमने कोट-किले आदि बनाने का कहा है, वे सब मैंने पहले ही बना रखे हैं। इस प्रकार के कोट-किलों से शारीरिक और मानसिक समस्त दुखों से शीघ्र मुक्ति हो सकती है। किन्तु तुम्हारे कथनानुसार कोट-किले आदि बनवाने से मुक्ति नहीं हो सकती।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउ कारण चोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इण मब्बवी ॥२३॥

— शब्दार्थ ग्याहरवीं गाथा के समान है। इन्द्र नमि राजर्षि से कहता है:—

पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाणगिहाणि य।
वालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया ॥२४॥

— खत्तिया—हे क्षत्रिय !, पासाए—प्रासाद (भवन) य—और वद्धमाणगिहाणि—वास्तुशास्त्र में बतलाये हुए अनेक प्रकार के छोटे बड़े घर, य—और, वालग्गपोइयाओ—जल-क्रीड़ा करने के लिए तालाब के बीच में क्रीड़ागृह आदि, कारइत्ताणं—बनवा कर, तओ—उसके बाद, गच्छसि—प्रव्रज्या धारण करना तुम्हें योग्य है ॥२४॥

आस्था ये पांच उस नगर के द्वार हैं। क्षमा, मार्दव आर्जव आदि दस धर्म रूपी दृढ़ कोट बनाया है। अनशन आदि छः प्रकार का बाह्य तप तथा आश्रवनिरोध रूप संवर को उसके लिए आगल सहित किवाड़ बनाये हैं। मनगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति रूप बुर्ज खाई और तोपें तैयार की हैं। इस प्रकार मेरा नगर दुर्जेय है। कर्मरूपी शत्रु मेरे नगर में प्रवेश नहीं कर सकते।

धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेण पलिमंथए॥२१॥

— उक्त नगर की रक्षा के लिये साधु को, **सया**—सदा, **परक्कमं**—पराक्रम रूपी, **धणुं**—धनुष, **य**—और, **ईरियं**—ईर्यासिमिति को, **जीवं**—धनुष की डोरी, **किच्चा**—बना कर, **य**—और, **धिइं**—धीरज को, **केयणं**—केतन अर्थात् धनुष के मध्य में पकड़ने का काष्ठ का मुठिया, **किच्चा**—करके सत्य द्वारा उसे, **पलिमंथए**—बांधना चाहिये ॥२१॥

तवणारायजुत्तेणं, भित्तूणं कम्मकंचुयं।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए ॥२२॥

— उक्त पराक्रम रूप धनुष में, **तव णाराय जुत्तेणं**—तप रूप बाण चढ़ा कर और, **कम्म कंचुयं**—कर्म रूप कवच का, **भित्तूणं**—भेदन करके, **मुणी**—मुनि, **विगयसंगामो**—संग्राम से निवृत्त होकर, **भवाओ**—संसार से, **परिमुच्चए**—मुक्त हो जाता है ॥२२॥

भावार्थ— नमि राजर्षि कहते हैं कि हे ब्राह्मण ! कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करने के लिए मैंने पराक्रम रूपी धनुष पर छह प्रकार का आभ्यन्तर तप रूपी बाण चढ़ा रखा है। कर्मशत्रुओं का नाश करने पर फिर कोई युद्ध करना शेष नहीं रहता। फिर शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए हे ब्राह्मण ! जो तुमने कोट-किले आदि बनाने का कहा है, वे सब मैंने पहले ही बना रखे हैं। इस प्रकार के कोट-किलों से शारीरिक और मानसिक समस्त दुखों से शीघ्र मुक्ति हो सकती है। किन्तु तुम्हारे कथनानुसार कोट-किले आदि बनवाने से मुक्ति नहीं हो सकती।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउ कारण चोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इण मब्बवी ॥२३॥

— शब्दार्थ ग्याहरवीं गाथा के समान है। इन्द्र नमि राजर्षि से कहता है:—

पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाणगिहाणि य।
वालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया ॥२४॥

— खत्तिया—हे क्षत्रिय !, पासाए—प्रासाद (भवन) य—और वद्धमाणगिहाणि—वास्तुशास्त्र में बतलाये हुए अनेक प्रकार के छोटे बड़े घर, य—और, वालग्गपोइयाओ—जल-क्रीड़ा करने के लिए तालाब के बीच में क्रीड़ागृह आदि, कारइत्ताणं—बनवा कर, तओ—उसके बाद, गच्छसि—प्रव्रज्या धारण करना तुम्हें योग्य है ॥२४॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥२५॥

शब्दार्थ आठवीं गाथा के समान है । नमिराजर्षि इन्द्र को उत्तर देते हैं—

संसयं खलु सो कुणइ, जो मग्गे कुणइ घरं ।
जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्विज्ज सासयं ॥२६॥

— **जो**—जो पुरुष, **संसयं**—संशय, **कुणइ**—करता है कि 'मैं गन्तव्य स्थान तक पहुंचूंगा या नहीं', **सो खलु**—वही पुरुष, **मग्गे**—मार्ग में, **घरं**—घर, **कुणइ**—बनाता है, किन्तु मेरे मन में सन्देह नहीं है, क्योंकि सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्न-त्रय से अवश्य मोक्ष होता है, ऐसा मुझे निश्चय है और मैं इसका पालन कर रहा हूँ । मेरा निश्चित स्थान मोक्ष है । बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि, **जत्थेव**—जहाँ पर, **गंतुं**—जाने की, **इच्छेज्ज**—इच्छा हो, **तत्थ**—वहीं पर, **सासयं**—अपना स्थायी घर, **कुव्विज्ज**—बनावे ॥२६॥

भावार्थ—नमिराज ब्राह्मण से कहते हैं कि अपने मुझे विविध प्रासाद आदि बनाने के लिये कहा । किन्तु मेरा यहाँ रहना तो मार्ग के पड़ाव के समान है । मेरा गन्तव्य शाश्वत स्थान तो मुक्ति है । रास्ते में पड़ाव के स्थान घर बनाना बुद्धिमत्ता नहीं है । बुद्धिमान् को तो अपने इष्ट स्थान पर पहुँच कर घर बनाना चाहिये, जहाँ उसे सदा रहना है ।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसीं, देविंदो इणमब्बवी ॥२७॥

— शब्दार्थ ग्यारहवीं गाथा के समान है । इन्द्र नमिराजर्षि से कहता है:—

आमोसे लोमहारे य, गंठिभेए य तक्करे ।
णगरस्स खेमं काऊणं, तओ गच्छसि खत्तिया ॥२८॥

—- आमोसे—-डाका डालने वाले, य—और, लोमहारे—निर्दयता पूर्वक लोगों को मार कर उनका सर्वस्व लूटने वाले, गंठिभेए—गाँठ कतरने वाले, य—-और, तक्करे—चोर (गुप्त रूप से धन हरण करने वाले) इनको दण्ड द्वारा वश में करके और इनसे, णगरस्स—नगर की, खेमं—सुरक्षा, काऊण—-कर के, खत्तिया—-हे क्षत्रिय ! तओ—इसके बाद, गच्छसि—तुम दीक्षा लेना ॥२८॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥२९॥

— शब्दार्थ आठवीं गाथा के समान है । नमिराजर्षि इन्द्र से कहते हैं:—

असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छादंडो पउंजइ ।
अकारिणोत्थ बज्झंति, मुच्चई कारओ जणो ॥३०॥

— -अत्थ—इस लोक में, मणुस्सेहिं—मनुष्यों से,

असइं--अनेक वार, मिच्छादंडो--मिथ्या दंड का, पउंजइ-प्रयोग किया जाता है अर्थात् अज्ञानादि वश लोग निरापराधी को दण्ड देते हुए दिखाई देते हैं, अकारिणो--अपराध न करने वाले निर्दोष व्यक्ति, बज्झंति--बांधे जाते हैं, तु--और, कारओ--अपराध करने वाला, जणो--पुरुष, मुच्चई--छोड़ दिया जाता है।३०।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी।३१।

— शब्दार्थ ग्यारहवीं गाथा के समान है। इन्द्र नमिराजर्षि से कहता है--

जे केइ पत्थिवा तुब्झं, णाणमंति णराहिवा ।
वसे ते ठावइत्ता णं, तओ गच्छसि खत्तिया ॥३२॥

— णराहिवा-- हे नरेन्द्र ! जे--जो, केई--कोई, पत्थिवा--राजा तुम्हारी अधीनता स्वीकार कर, तुब्झं--तुम्हें, णाणमंति--नमन नहीं करते, ते--उन्हें, वसे--वश में, ठावइत्ताणं--कर के, खत्तिया--हे क्षत्रिय ! तओ--इसके वाद, गच्छसि--तुम प्रव्रज्या धारण करना ॥३२॥

भावार्थ— नमिराजर्षि के अन्तःकरण में द्वेष है या नहीं, इस बात की परीक्षा करने के लिए इन्द्र ने प्रश्न किया है कि हे राजन् ! जो राजा तुम्हारी आज्ञा नहीं मानते, उन्हें वश में कर के पीछे दीक्षा लेना तुम्हे योग्य है। अन्यथा वे शत्रु राजा तुम्हारे राज्य को छिन्न-भिन्न कर देंगे अथवा तुम्हारे पुत्र को

अपने अधीन बना लेंगे। इससे अच्छा यही है कि तुम पहले शत्रु राजाओं को अपने वश में कर लो, क्योंकि भरत आदि राजाओं ने भी शत्रुओं को अपने वश में कर के पीछे दीक्षा ली है। अतः तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिए।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥३३॥

— शब्दार्थ आठवीं गाथा के समान है। नमिराजर्षि इन्द्र से कहते हैं—

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥३४॥

— जो—जो पुरुष, दुज्जए—दुर्जय, संगामे—संग्राम में, सहस्साणं सहस्सं—दस लाख सुभटों पर, जिणे—विजय प्राप्त करता है और, एगो—एक महात्मा, अप्पाणं—अपनी आत्मा को, जिणेज्ज—जीतता है। इन दोनों में, से—उस महात्मा की, एस—यह, जओ—विजय ही, परमो—श्रेष्ट विजय है।

भावार्थ—अन्य शत्रु राजाओं को जीतने की अपेक्षा आत्मा का जीतना ही वीरता है। जिसने दूसरों को जीत लिया, किन्तु अपनी आत्मा को नहीं जीता, वह सच्चा वीर नहीं है, क्योंकि विषय-कषायादि में प्रवृत्त हुई आत्मा ही दुःख का ारण [illegible] पदार्थ नहीं।

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जिणित्ता सुहमेहए ।।३५।।

— अप्पाणमेव—आत्मा के साथ ही, जुज्झाहि---युद्ध करना चाहिए, बज्झओ—बाहर के, जुज्झेण—युद्ध से, ते-- तुम्हें, किं - क्या लाभ है ? अप्पाण मेव- -केवल अपनी आत्मा द्वारा, अप्पाणं--आत्मा को, जिणित्ता—जीतने से, सुहं— सच्चा सुख, एहए--प्राप्त होता है ।।३५।।

पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं।।३६।।

— पंचिंदियाणि—पांच इन्द्रियां, कोहं—क्रोध, माणं— मान, मायं--माया, च—और, तहेव—इसी प्रकार, लोभं— लोभ, चेव—तथा, दुज्जयं—दुर्जय, अप्पाणं—आत्मा, सव्वं-- ये सब, अप्पे—अपनी आत्मा को, जिए--जीत लेने पर, जियं -स्वतः जीत लिए जाते हैं ।।३६।।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ।।३७।।

-- शब्दार्थ ग्यारहवीं गाथा के समान है । इन्द्र नमि राजर्षि से कहते हैं:—

जइत्ता विउले जण्णे, भोइत्ता समणमाहणे ।
दच्चा भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया ।३८।

—खत्तिया—हे क्षत्रिय ! विउले—बड़े-बड़े, जण्णे—महा यज्ञ, जइत्ता—करवा कर, समण माहणे—श्रमण और ब्राह्मणों को, भोइत्ता—भोजन करा कर, दच्चा—दान देकर, य—और, भोच्चा—भोग भोग कर, य—तथा, जिट्ठा—स्वयं यज्ञ करके, तओ—उसके बाद, गच्छसि—दीक्षा धारण करना, तुम्हें योग्य है ॥३८॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥३९॥

—शब्दार्थ आठवीं गाथा के समान है । नमि राजर्षि इन्द्र से कहते हैं:—

जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए ।
तस्सा वि संजमो सेओ, अदितस्स वि किंचणं ॥४०॥

—जो—जो पुरुष, मासे मासे—प्रति मास, सहस्साणं-सहस्सं—दस लाख, गवं—गायों का, दए—दान करता है, तस्सावि—उसकी अपेक्षा, किंचणं—कुछ, वि—भी, अदितस्स—दान नहीं करने वाले मुनि का, संजमो—संयम, सेओ—अधिक श्रेष्ठ है ॥४०॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारण चोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥४१॥

—ग्यारवीं गाथा के समान शब्दार्थ है। इन्द्र नमि राजर्षि से कहता है:—

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जिणित्ता सुहमेहए ।।३५।।

— अप्पाणमेव—आत्मा के साथ ही, जुज्झाहि--युद्ध करना चाहिए, बज्झओ—बाहर के, जुज्झेण—युद्ध से, ते--तुम्हें, किं - क्या लाभ है ? अप्पाण मेव--केवल अपनी आत्मा द्वारा, अप्पाणं--आत्मा को, जिणित्ता--जीतने से, सुहं—सच्चा सुख, एहए--प्राप्त होता है ।।३५।।

पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं।।३६।।

— पंचिंदियाणि—पांच इन्द्रियां, कोहं—क्रोध, माणं—मान, मायं--माया, च—और, तहेव—इसी प्रकार, लोभं—लोभ, चेव—तथा, दुज्जयं—दुर्जय, अप्पाणं—आत्मा, सव्वं--ये सब, अप्पे—अपनी आत्मा को, जिए--जीत लेने पर, जियं --स्वतः जीत लिए जाते हैं ।।३६।।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ र्णमि रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ।।३७।।

-- शब्दार्थ ग्यारहवीं गाथा के समान है । इन्द्र नमि राजर्षि से कहते हैं:—

जइत्ता विउले जण्णे, भोइत्ता समणमाहणे ।
दच्चा भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया ।३८।

-- खत्तिया--हे क्षत्रिय ! विउले--बड़े-बड़े, जण्णे--महा यज्ञ, जइत्ता--करवा कर, समण माहणे--श्रमण और ब्राह्मणों को, भोइत्ता--भोजन करा कर, दच्चा--दान देकर, य--और, भोच्चा--भोग भोग कर, य--तथा, जिट्ठा--स्वयं यज्ञ करके, तओ--उसके बाद, गच्छसि--दीक्षा धारण करना, तुम्हें योग्य है ॥३८॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥३९॥

--शब्दार्थ आठवीं गाथा के समान है। नमि राजर्षि इन्द्र से कहते हैं:--

जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए।
तस्सा वि संजमो सेओ, अदितस्स वि किंचणं ॥४०॥

--जो--जो पुरुष, मासे मासे--प्रति मास, सहस्साणं-सहस्सं--दस लाख, गवं--गायों का, दए--दान करता है, तस्सावि--उसकी अपेक्षा, किंचणं--कुछ, वि--भी, अदितस्स--दान नहीं करने वाले मुनि का, संजमो--संयम, सेओ--अधिक श्रेष्ठ है ॥४०॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारण चोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥४१॥

--ग्यारवीं गाथा के समान शब्दार्थ है। इन्द्र नमि राजर्षि से कहता है:--

घोरासमं चइत्ताणं, अण्णं पत्थेसि आसमं ।
इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा ॥४२॥

मणुयाहिवा--मनुष्यों के अधिपति हे राजन् ! आप घोरासमं—घोर गृहस्थाश्रम का, चइत्ताणं—त्याग कर, अण्णं—अन्य सन्यास, आसमं—आश्रम की, पत्थेसि—इच्छा कर रहे हैं, यह आप जैसे वीर क्षत्रियों के योग्य नहीं है । इहेव--आप यहीं गृहस्थाश्रम में रह कर ही, पोसहरओ—पौषध आदि व्रतों में रत, भवाहि—रहो ॥४२॥

भावार्थ-- गृहस्थाश्रम छोड़ कर संन्यास लेने की अपेक्षा आपके लिए यह अधिक उपयुक्त होगा कि आप गृहस्थावास में रह कर ही पौषध आदि धर्मानुष्ठानों का आचरण करें ।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥४३॥

— शब्दार्थ आठवीं गाथा के समान है । नमि राजर्षि इन्द्र से कहते हैं:—

मासे मासे उ जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए ।
ण सो सुअक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ॥४४॥

— जो—जो, बालो—अज्ञानी पुरुष, मासे--प्रति मास यानी एक-एक मास का अनशन कर पारणे के दिन, कुसग्गेणं तु—कुशाग्र परिमाण, भुंजइ—आहार करता है, सो--वह

पुरुष, सुअक्खायधम्मस्स—तीर्थंकर देव द्वारा प्ररूपित चारित्र धर्म की, सोलसि—सोलहवीं कलं—कला के, ण अग्घइ—समान भी नहीं है । ४४ ।

भावार्थ— जिसमें साधु धर्म स्वीकार करने की शक्ति न हो, उसी को गृहस्थाश्रम धर्म ग्रहण करने की आज्ञा है, परन्तु साधुधर्म के आगे गृहस्थाश्रम का त्याग अत्यन्त न्यून है।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥४५॥

— ग्यारहवीं गाथा के समान शब्दार्थ है। इन्द्र नमि-राजर्षि से कहता है—

हिरण्णं सुवण्णं मणिमुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं ।
कोसं च वड्ढावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया ।४६।

— हिरण्णं—स्वर्ण के आभूषण सुवण्णं—सोना, मणिमुत्तं—मणि और मोती, कंसं—कांसी के बरतन, दूसं—वस्त्र, च—और, वाहणं—हाथी-घोड़ा रथ आदि वाहन च—तथा कोसं—भण्डार इन्हें, —वड्ढावइत्ताणं—बढ़ा कर, खत्तिया—हे क्षत्रिय! तओ—उसके बाद, गच्छसि—तुम प्रव्रज्या धारण करना ॥४६॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥४७॥

—शब्दार्थ आठवीं गाथा के समान है। नमि राजर्षि इन्द्र से कहते हैं:—

सुवण्ण रुव्वस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया।
णरस्स लुद्धस्स ण तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥४८॥

— सिया—यदि, केलाससमा—कैलाश पर्वत के समान, सुवण्णरुव्वस—सोने चांदी के, असंखया—असंख्य, पव्वया—पर्वत, भवे—हों, उ—फिर भी, लुद्धस्स—लोभी, णरस्स—मनुष्य को, तेहिं—उन पर्वतों से भी, ण किंचि—कुछ संतोष नहीं होता। हु—निश्चय ही, इच्छा—इच्छा, आगाससमा—आकाश के समान, अणंतिया—अनन्त है।

भावार्थ— धन परिमित है और इच्छा अनन्त है, इसलिए उसका पूर्ण होना असंभव है। केवल संतोष धारण करने से ही इच्छा की निवृत्ति हो सकती है ॥४८॥

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह।
पडिपुण्णं णालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे ॥४९॥

— साली—चांवल, जवा—जौ, चेव—और, हिरण्णं—सोना तथा, पसुभिस्सह—पशुओं आदि से, पडिपुण्णं—परिपुर्ण, पुढवी—यह सारी पृथ्वी, एगस्स—यदि किसी एक व्यक्ति को दे दी जाय तो भी, णालं—उसकी इच्छा पूर्ण

होना कठिन है, इइ--इस प्रकार, विज्जा--जान कर बुद्धिमान् पुरुष - तवे--तप का, चरे--आचरण करे ॥४९॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥५०॥

-- शब्दार्थ ग्यारहवीं गाथा के समान है। इन्द्र नमि राजर्षि से कहता है:--

अच्छेरगमब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा ! ।
असंते कामे पत्थेसि, संकप्पेण विहम्मसि ॥५१॥

-- पत्थिवा--हे राजन् ! अच्छेरगं--आश्चर्य है कि आप, अब्भुदए—प्राप्त हुए इन अद्भुत, भोए—भोगों को, चयसि--छोड़ रहे हैं और, असंते--अविद्यमान, कामे—दिव्य काम भोगों की, पत्थेसि--अभिलाषा कर रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि अदृष्ट भोगों के न मिलने से, संकप्पेण-- संकल्प-विकल्पों के वशीभूत होकर, विहम्मसि—तुम्हें पश्चात्ताप करना पड़े ॥५१॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउ कारण चोइओ।
तओ णमि रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥५२॥

-- शब्दार्थ आठवीं गाथा के समान है। नमि राजर्षि इन्द्र से कहते हैं:--

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा।
कामे य पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ॥५३॥

-- **कामा**—काम-भोग, **सल्लं**—शल्य रूप हैं। **कामा**—काम-भोग, **विसं**—विष रूप हैं। **कामा**—काम-भोग, **आसीविसोवमा**—आशीविष सर्प के समान हैं। **कामे**—काम-भोगों की, **पत्थेमाणा**—अभिलाषा करने वाले पुरुष, **अकामा**—काम-भोग का सेवन न करते हुए भी केवल संकल्प मात्र से ही, **दुग्गइं**—दुर्गति, **जंति**—प्राप्त करते हैं ॥५३॥

भावार्थ— नमि राजर्षि कहते हैं कि हे ब्राह्मण ! जैसे शरीर में लगा हुआ शल्य (वाण का अग्रभाग) दुःख देता है, इसी प्रकार ये काम-भोग दुःखदायी हैं। जैसे तालपुट विष खाने में मीठा लगता है, किन्तु अन्त में मृत्यु के मुख में पहुँचा देता है, इसी प्रकार ये कामभोग, भोगते समय मनोहर प्रतीत होते हैं, किन्तु अन्त में अनेक दुःखों को उत्पन्न करते हैं। जैसे विषधर सर्प फण ऊंचा करके नाचते समय अच्छा मालूम होता है, परन्तु डस लेने पर प्राण संकट में पड़ जाते हैं। इसी प्रकार कामभोग पहले तो मनोहर और सुखप्रद मालूम होते हैं, किन्तु सेवन करने के वाद अनेक भयंकर दुःख देते हैं। ऐसे काम-भोगों का सेवन करना तो दूर रहा, किन्तु इनकी इच्छा करने से ही मनुष्य नरक आदि दुर्गतियों को प्राप्त होता है। इसलिए हे विप्र ! मैंने उत्तम काम-भोग पाने की इच्छा से वर्तमान में प्राप्त हुए भोगों का त्याग नहीं किया है, किन्तु वर्तमान और भावी विषयों में निस्पृह हो कर विषय-भोग का त्याग किया है। मुमुक्षु को किसी भोग-पदार्थ की अभिलाषा नहीं होती।

अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई।
माया गइपडिग्घाओ, लोहाओ दुहओ भयं ॥५४॥

—कोहेणं—क्रोध करने से जीव, अहे—नरक गति में, वयइ--जाता है माणेणं--मान से, अहमा--नीच, गई--गति प्राप्त होती है। माया—माया से, गइपडिग्घाओ--शुभ गति का नाश होता है और, लोहाओ—लोभ से, दुहओ--इस लोक और परलोक में, भयं--भय प्राप्त होता है ॥५४॥

अवउज्झिऊण माहणरूवं, विउव्विऊण इंदत्तं।
वंदइ अभित्थुणंतो, इमाहि महुराहि वग्गूहि ॥५५॥

—इस प्रकार दस प्रश्न करके अनेक उपायों से जब देवेन्द्र, नमि राजर्षि को अपने धर्म से लेश मात्र भी नहीं डिगा सका तब देवेन्द्र ने, माहणरूवं—ब्राह्मण का रूप, अव-उज्झिऊण—त्याग दिया और, विउव्विऊण—विक्रिया द्वारा इंदत्तं—अपना इन्द्र का रूप बना कर, इमाहि—इन आगे कहे जानेवाले, महुराहि—मधुर, वग्गूहि—वचनों से, अभि-त्थुणंतो--नमिराज की स्तुति करता हुआ, वंदइ—वन्दना नमस्कार करने लगा ॥५५॥

अहो ते णिज्जिओ कोहो, अहो माणो पराइओ।
अहो ते णिरक्किया माया, अहो लोहो वसीकओ ॥५६॥

—हे नमिराज ! अहो—आश्चर्य है कि, ते—आपने

कोहो—क्रोध को, णिज्जिओ—जीत लिया है, अहो—आश्चर्य है कि आपने, माणो—मान को, पराइओ—पराजित कर दिया है, अहो—आश्चर्य है कि, ते—आपने, माया—माया को, णिरक्किया—दूर कर दिया है, अहो—आश्चर्य है कि, ते—आपने, लोहो—लोभ को, वसीकओ—वश कर लिया है ॥५६॥

भावार्थ—इन्द्र नमि राजर्षि से कहने लगा कि हे भगवन्! मुझे आश्चर्य होता है कि आपने प्रबल क्रोध को जीत लिया है, क्योंकि मैंने पहले आप को शत्रु राजाओं को वश में करने के लिए कहा था, किन्तु आपने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया कि आत्मा को वश में करना ही सर्वोत्तम है, दूसरों को वश में करने से कोई लाभ नहीं होता। अतएव मुझे निश्चय हो गया है कि आपने क्रोध-शत्रु को जीत लिया है। हे नमिराज! मुझे आश्चर्य होता है कि आपने मान (अहंकार) को भी जीत लिया है। मैंने आपसे कहा था कि आपके अन्तःपुर तथा महल आदि को अग्नि भस्म कर रही है, इसको शान्त करना आपका कर्तव्य है। इस बात को सुन कर आपको यह अहंकार नहीं आया कि 'मेरे जीते जी मेरे अन्तःपुर आदि को कौन जला सकता है।' किन्तु आपने इसका शान्तिपूर्वक उत्तर दिया कि 'मेरा ज्ञान-दर्शन-चारित्र मेरे पास है। नगर में मेरा कुछ भी नहीं है।' आप के इस उत्तर को सुन कर मुझे निश्चय हो गया है कि आपमें अहंकार नहीं है। महात्मन्! मुझे आश्चर्य होता है कि आपने माया का भी

तिरस्कार कर दिया है, क्योंकि नगर की रक्षा के लिए कोट-किला आदि बनाने के लिए मैंने आपसे कहा था, किन्तु आपने कहा कि धर्म की ही रक्षा करनी चाहिए। इससे मुझे निश्चय हो गया कि आप माया-रहित हैं। महात्मन् ! मुझे आश्चर्य होता है कि आपने लोभ का भी नाश कर दिया है, क्योंकि मैंने आपसे कहा था कि मणि मोती सोना चाँदी आदि से कोष की वृद्धि करके पश्चात् दीक्षा लेनी चाहिए। आपने उत्तर दिया कि तृष्णा आकाश के समान अनन्त है। इसका पूर्ण होना असंभव है। एक संतोष ही तृष्णा को पूर्ण कर सकता है। इससे मुझे निश्चय हो गया कि आपने लोभ को भी जीत लिया है। उपरोक्त उत्तरों से मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि आपने क्रोध मान माया और लोभ – इन चारों को जीत लिया है।

अहो ते अज्जवं साहु, अहो ते साहु मद्दवं।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ति उत्तमा ॥५७॥

— अहो—अहो, ते—आपकी, अज्जवं—ऋजुता—सरल स्वभाव, साहु—श्रेष्ठ है, अहो—अहो, ते—आपकी, मद्दवं—मृदुता—निरभिमानता, साहु—श्रेष्ठ है। अहो—अहो, ते—आपकी, खंती—क्षमा, उत्तमा—उत्तम है और, अहो—अहो, ते—आपकी, मुत्ति—निर्लोभता उत्तमा—उत्तम है।

इहंसि उत्तमो भंते, पेच्चा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि णीरओ। ५८॥

— भंते--हे भगवन् ! इहं—इस लोक में, उत्तमो--आप उत्तम, सि— है और, पेच्चा--पर लोक में, उत्तमो—उत्तम, होहिसि--होंगे । णीरओ--कर्मरज रहित हो कर आप, लोगुत्तमुत्तमं— लोक में उत्तमोत्तम (सर्वोत्तम) सिद्धि--सिद्धि, ठाणं—स्थान में, गच्छसि—जायेंगे ।।५८।।

एवं अभित्थूणंतो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए ।
पायाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वंदइ सक्को ।।५९।।

— एवं--इस प्रकार, सक्को—इन्द्र, उत्तमाए—उत्तम, सद्धाए--श्रद्धा और भक्तिपूर्वक, रायरिसि--नमि राजर्षि की, अभित्थुणंतो--स्तुति करता हुआ और, पायाहिणं--प्रदक्षिणा, करेंतो—करता हुआ, पुणो-पुणो--बार-बार, वंदइ—उन्हें वन्दना नमस्कार करने लगा ।।५९।।

तो वंदिऊण पाए, चक्कंकुस लक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासेणुप्पइओ, ललिय-चवल-कुंडल-तिरीडी ।।६०।।

— तो--इसके बाद, ललिय चवल कुंडल तिरीडी—सुन्दर और चपल कुंडल तथा मुकुट धारण करने वाला इन्द्र, मुणिवरस्स—मुनिवर नमिराज के, चक्कंकुस लक्खणे—चक्र एवं अंकुश चिन्ह वाले, पाए—चरणों में, वंदिऊण---वन्दना कर, आगासेण--आकाश मार्ग से, उप्पइओ—ऊपर देवलोक में चला गया ।।६०।।

णमी णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ।।६१।।

— गेहं—घरबार कुटुम्ब एवं राज्यादि को, चइऊण— छोड़ कर, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ—श्रमण बने हुए, वइदेही— विदेह देश के अधिपति, णमी—नमिराजर्षि की, सक्खं— साक्षात्, सक्केण—इन्द्र ने, चोइओ—परीक्षा की किन्तु वे संयम से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए और साक्षात् इन्द्र को अपने चरणों में वन्दना करते हुए देख कर भी उन्होंने गर्व नहीं किया, प्रत्युत, अप्पाणं—अपनी आत्मा को, णमेइ— विशेष नम्र बनाया ॥६१॥

एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से णमी रायरिसी ।६२। त्तिबेमि ।

— संबुद्धा—तत्त्व को जानने वाले, पवियक्खणा— विचक्षण, पंडिया—पंडित पुरुष, एवं—नमिराजर्षि के समान, करेंति—संयम पालने में निश्चल रहते हैं और, भोगेसु— काम-भोगों से, विणियट्टंति—निवृत्त होते हैं, जहा—जैसे से—वे, णमी रायरिसी—नमिराजर्षि भोग-विलास से निवृत्त हुए थे ।६२। त्ति बेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ नौवां अध्ययन पूर्ण ॥

— भंते--हे भगवन् ! इहं—इस लोक में, उत्तमो--आप उत्तम, सि— है और, पेच्चा--पर लोक में. उत्तमो—उत्तम, होहिसि--होंगे । णीरओ--कर्मरज रहित हो कर आप, लोगुत्तमुत्तमं— लोक में उत्तमोत्तम (सर्वोत्तम) सिद्धि--सिद्धि, ठाणं—स्थान में, गच्छसि—जायेंगे ॥५८॥

एवं अभित्थूणंतो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए ।
पायाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वंदइ सक्को ॥५९॥

— एवं--इस प्रकार, सक्को—इन्द्र, उत्तमाए—उत्तम, सद्धाए--श्रद्धा और भक्तिपूर्वक, रायरिसिं--नमि राजर्षि की, अभित्थुणंतो--स्तुति करता हुआ और, पायाहिणं--प्रदक्षिणा, करेंतो—करता हुआ, पुणो-पुणो--बार-बार, वंदइ—उन्हें वन्दना नमस्कार करने लगा ॥५९॥

तो वंदिऊण पाए, चक्कंकुस लक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासेणुप्पइओ, ललिय-चवल-कुंडल-तिरीडी ॥६०॥

— तो--इसके बाद, ललिय चवल कुंडल तिरीडी—सुन्दर और चपल कुंडल तथा मुकुट धारण करने वाला इन्द्र, मुणिवरस्स—मुनिवर नमिराज के, चक्कंकुस लक्खणे—चक्र एवं अंकुश चिन्ह वाले, पाए—चरणों में, वंदिऊण—वन्दना कर, आगासेण--आकाश मार्ग से, उप्पइओ—ऊपर देवलोक में चला गया ॥६०॥

णमी णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥६१॥

— गेहं—घरबार कुटुम्ब एवं राज्यादि को, चइऊण—छोड़ कर, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ—श्रमण बने हुए, वइदेही—विदेह देश के अधिपति, णमी—नमिराजर्षि की, सक्खं—साक्षात्, सक्केण—इन्द्र ने, चोइओ—परीक्षा की किन्तु वे संयम से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए और साक्षात् इन्द्र को अपने चरणों में वन्दना करते हुए देख कर भी उन्होंने गर्व नहीं किया, प्रत्युत, अप्पाणं—अपनी आत्मा को, णमेइ—विशेष नम्र बनाया ॥६१॥

एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से णमी रायरिसी ।६२। त्तिबेमि ।

— संबुद्धा—तत्त्व को जानने वाले, पवियक्खणा—विचक्षण, पंडिया—पंडित पुरुष, एवं—नमिराजर्षि के समान, करेंति—संयम पालने में निश्चल रहते हैं और, भोगेसु—काम-भोगों से, विणियट्टंति—निवृत्त होते हैं, जहा—जैसे से—वे, णमी रायरिसी—नमिराजर्षि भोग-विलास से निवृत्त हुए थे ।६२। त्ति बेमि—ऐसा मैं कहता हूं ।

॥ नौवां अध्ययन पूर्ण ॥

द्रुमपत्रक नामक दसवाँ अध्ययन

दुम पत्तए पंडुयए जहा, णिवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१॥

—जहा—जिस प्रकार, **राइगणाण**—रात्रि और दिनों के, अच्चए--बीत जाने पर, दुमपत्तए—वृक्ष का पत्ता, अवस्था अथवा रोगादि कारणों से, पंडुयए--पीला हो कर, णिवडइ--गिर पड़ता है, एवं—इस प्रकार **मणुयाण**—मनुष्यों का, **जीवियं**--जीवन है, अतएव, **गोयम**--हे गौतम ! **समयं**--समय मात्र भी, **मा पमायए**—प्रमाद मत कर ॥१॥

कुसग्गे जह ओस-बिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२॥

—जह--जिस प्रकार, कुसग्गे—कुश (घास) के अग्रभाग पर **लंबमाणए**—वायु से प्रेरित होती हुई, **ओसबिंदुए**—ओस की बूँद, **थोवं**—थोड़े समय तक, **चिट्ठइ**--ठहरती है और फिर गिर पड़ती है। **एवं**--इसी प्रकार, **मणुयाण**—मनुष्यों का, **जीवियं**—जीवन भी अस्थिर है, न मालुम कब समाप्त हो जाय। अतएव, **गोयम**--हे गौतम, ! **समयं**--समय मात्र भी, **मा पमायए**—प्रमाद मत कर ॥२॥

इइ इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।
विहुणाहि रयं पुराकडं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३॥

—इइ—इस प्रकार, इत्तरियम्मि—थोड़े काल की, आउए—आयु वाले और उसमें भी, बहुपच्चवायए—अनेकों विघ्न वाले, जीवियए—जीवन में, पुराकडं—पूर्वकृत, रयं—कर्मरज, को, विहुणाहि—आत्मा से दूर करो। अतएव गोयम—हे गौतम! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥३॥

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम! मा पमायए ।४।

—चिर कालेण वि—सुदीर्घ काल में भी, सव्वपाणिणं—सभी प्राणियों के लिये, माणुसे—मनुष्य का, भवे—भव प्राप्त होना, खलु—निश्चय ही, दुल्लहे—दुर्लभ है क्योंकि, कम्मुणो—मनुष्य गति के घातक कर्मों के, विवाग—विपाक, गाढा—अत्यन्त दृढ़ होते हैं, उनका नाश होना सहज नहीं है। अतएव, गोयम—हे गौतम! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥४॥

पुढविकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए ॥५॥

—पुढविकायं—पृथ्वीकाय में, अइगओ—गया हुआ, जीवो—जीव इसी काय में, उक्कोसं—उत्कृष्ट संखाईयं—असंख्यात, कालं—काल तक, संवसे—रहता है, उ—अत

एव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमा-यए—प्रमाद मत कर ॥५॥

आउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥६॥

आउक्कायं—अप्काय में, अइगओ—गया हुआ, जीवो—जीव इसी काय में, उक्कोसं— उत्कृष्ट, संखाईयं—असंख्यात, कालं—काल तक, संवसे—रहता है, उ—अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥६॥

तेउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥७॥

— तेउक्कायं—तेउकाय में, अइगओ— गया हुआ, जीवो—जीव इसी काय में, उक्कोसं—उत्कृष्ट, संखाईयं—असंख्यात, कालं—काल तक, संवसे—रहता है। उ—अत, एव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥७॥

वाउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम मा पमायए ॥८॥

— वाउक्कायं— वायुकाय में, अइगओ—गया हुआ जीवो—जीव इसी काय में, उक्कोसं—उत्कृष्ट संखाईयं—असंख्यात, कालं—काल तक, संवसे—रहता है, उ—अत-

एव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥८॥

वणस्सइकाय मइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालमणंत दुरंतयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥९॥

— वणस्सइ कायं—वनस्पतिकाय में, अइगओ—गया हुआ, जीवो—जीव इसी काय में, उक्कोसं—उत्कृष्ट, दुरंतयं—दुःख से अन्त होने वाले, अणंतं—अनन्त, कालं—काल तक (अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण काल तक) संवसे—रहता है। उ—अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए— प्रमाद मत कर ॥९॥

बेइंदियकाय मइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्ज सण्णियं,समयं गोयम ! मा पमायए ॥१०॥

— बेइंदियकायं—द्वीन्द्रिय जीवों की काया में, अइगओ—गया हुआ, जीवो—जीव, इसी काय में, उक्कोसं—उत्कृष्ट, संखिज्ज सण्णियं—संख्यात संज्ञा वाले, कालं—काल तक (संख्यात हजार वर्ष तक) संवसे—रहता है। उ—अतएव, -गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥१०॥

तेइंदियकाय मइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्जसण्णियं, समयं गोयम ! मा पमायए।११।

— तेइंदियकायं--त्रीन्द्रिय जीवों की काय में, अइगओ—गया हुआ, जीवो —जीव इसी काय में, उक्कोसं--उत्कृष्ट, संखिज्ज सण्णियं--संख्यात संज्ञा वाले, कालं—काल तक (संख्यात हजार वर्ष तक) संवसे—रहता है। उ--अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए——प्रमाद मत कर ॥११॥

चउरिंदिय काय मइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्ज सण्णियं, समयं गोयम ! मा पमायए।१२।

— चउरिंदियकायं--चतुरिन्द्रिय काय में, अइगओ—गया हुआ, जीवो--जीव इसी काय में, उक्कोसं--उत्कृष्ट, संखिज्ज सण्णियं—संख्यात संज्ञा वाले, कालं—काल तक (संख्यात हजार वर्ष तक) संवसे--रहता है। उ—अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए--प्रमाद मत कर ॥१२॥

पंचिंदिय काय मइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
सत्तट्ठ भवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१३॥

-- पंचिंदियकायं—पञ्चेन्द्रिय जीवनिकाय (तिर्यञ्च जीवों में) अइगओ—गया हुआ, जीवो--जीव इसी काय में, उक्कोसं--उत्कृष्ट, सत्तट्ठ भवग्गहणे—सात-आठ भव ग्रहण करने तक संवसे--रहता है। उ--अतएव, गोयम--हे गौतम ! समयं--समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥१३॥

देवे णेरइए य, गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
इक्केक्कभवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१४॥

— देवे—देव, य--और, णेरइए--नरक गति का, गओ---प्राप्त हुआ जीव वहाँ, उक्कोसं— उत्कृष्ट, इक्केक्कभवग्गहणे—एक ही भव तक, संवसे—रहता है, उ—अतएव, गोयम--हे गौतम ! समयं--समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥१४॥

एवं भव संसारे, संसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं ।
जीवो पमाय बहुलो, समयं गोयम ! मा पमायए ।१५।

एवं--इस प्रकार, पमाय बहुलो—बहुत प्रमाद वाला, जीवो—जीव, सुहासुहेहिं— अपने शुभ-अशुभ, कम्मेहिं—कर्मों के अनुसार, भव संसारे—नरक-तिर्यञ्च आदि भव रूप संसार में, संसरइ—भ्रमण करता है । इसलिए, गोयम—हे गौतम ! समयं—एक समय का भी, मा पमायए— प्रमाद मत कर ॥१५॥

लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरियत्तणं पुणरावि दुल्लहं ।
बहवे दसुया मिलक्खुया, समयं गोयम ! मा पमायए ।१६।

— उपरोक्त प्रकार से अति दुर्लभ, माणुसत्तणं—मनुष्य-भव, -लद्धूण वि--प्राप्त करके भी, आरियत्तणं—आर्य अवस्था (आर्य देश में जन्म प्राप्त होना) पुणरावि—और भी, दुल्लहं—कठिन है, क्योंकि मनुष्यों में भी, बहवे—

बहुत-से, दसुया—चोर और, मिलक्खुया—म्लेच्छ होते हैं, जिन्हें धर्म-अधर्म का विवेक नहीं होता। अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥१६॥

लद्धूण वि आरियत्तणं, अहीण पंचिदियया हु दुल्लहा।
विगलिंदियया हु दीसइ,समयं गोयम ! मा पमायए।१७।

— मनुष्य-भव और, आरियत्तणं—आर्य-देश में जन्म, लद्धूण वि—प्राप्त करके भी, अहीण पंचिदियया—पाँचों इन्द्रियों का पूर्ण होना, हु—निश्चय ही, दुल्लहा—दुर्लभ है, हु—क्योंकि बहुत-से मनुष्यों में भी, विगलिंदियया—इन्द्रियों की विकलता, दीसइ—देखी जाती है और इस कारण वे धर्माचरण करने में असमर्थ रहते हैं। अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥१७॥

अहीण पंचिदियत्तं वि से लहे, उत्तम धम्मसुई हु दुल्लहा।
कुतित्थिणिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए।१८।

— से—इस आत्मा को, अहीण पंचिदियत्तं—पूर्ण पांच इन्द्रियां भी, लहे—प्राप्त हो जाय, फिर भी, उत्तमधम्मसुई—श्रुत चारित्र रूप उत्तम धर्म का श्रवण, हु—निश्चय ही, दुल्लहा—दुर्लभ है, क्योंकि, जणे—बहुत से लोग, कुतित्थिणिसेवए—कुतीर्थियों की सेवा करने वाले हैं और उन्हें

उत्तम धर्म को श्रवण करने का सुयोग ही प्राप्त नहीं होता । अतएव, गोयम—हे गोतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥१८॥

लद्धुण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा ।
मिच्छत्त णिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए ।१९।

— उत्तमं—उत्तम, सुइं—धर्म का श्रवण, लद्धूणवि—प्राप्त करके भी, सद्दहणा—उस पर श्रद्धा (रुचि होना) पुणरावि—और भी, दुल्लहा—कठिन है, क्योंकि अनादिकालीन अभ्यास वश, मिच्छत्तणिसेवए—मिथ्यात्व का सेवन करने वाले, जणे—बहुत-से मनुष्य दिखाई देते हैं । अतएव, गोयम—हे गोतम ! समयं—एक समय का भी, मा पमायए—प्रमाद मतकर ॥१९॥

धम्मं पि हु सद्दहंतया, दुल्लहया काएण फासया ।
इह-काम गुणेहिं मुच्छिया, समयं गोयम ! मा पमायए ।२०।

— धम्मं—धर्म पर, सद्दहंतया वि—श्रद्धा रखते हुए भी, काएण—शरीर एवं मन वचन से, फासया—आचरण करने वाले, हु—निश्चय ही, दुल्लहया—दुर्लभ हैं (विरले ही मिलते हैं) क्योंकि अधिकांश मनुष्य, इह—यहां, कामगुणेहिं—शब्दादि काम-गुणों में, मुच्छिया—मूच्छित हैं । अतएव, गोयम—हे गोतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥२०॥

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते ।
से सोय-बले य हायइ, समयं गोयम ! मा पमायए ।।२१।।

—वृद्धावस्था अथवा रोगादि कारणों से, ते—तुम्हारा, **सरीरयं**—शरीर, **परिजूरइ**—जीर्ण हो रहा है। ते—तुम्हारे, **केसा**—केश, **पंडुरया**—श्वेत, **हवंति**—हो रहे हैं, **य**—और **से**—वह, **सोयबले**—श्रोत्रेन्द्रिय का बल (श्रवण-शक्ति) **हायइ**—क्षीण होती जा रही है। अतएव, **गोयम**—हे गौतम ! **समयं**—समय मात्र भी, **मा पमायए**—प्रमाद मत कर।।२१।।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते ।
से चक्खु-बले य हायइ, समयं गोयम ! मा पमायए ।२२।

—ते—तुम्हारा, **सरीरयं**—शरीर वृद्धावस्था रोगादि, कारणों से, **परिजूरइ**—जीर्ण हो रहा है। ते—तुम्हारे, **केसा**—केश, **पंडुरया**—श्वेत, **हवंति**—हो रहे हैं, **य**—और, **से**—वह, **चक्खुबले**—आँखों की शक्ति, **हायइ**—क्षीण होती जा रही है। अतएव, **गोयम**—हे गौतम ! **समयं**—समय मात्र का भी, **मा पमायए**—प्रमाद मत कर।।२२।।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते ।
से घाण-बले य हायइ, समयं गोयम मा पमायए ।।२३।।

—ते—तुम्हारा **सरीरयं**—शरीर जरा अथवा रोगादि कारणों से, **परिजूरइ**—जीर्ण हो रहा है। ते—तुम्हारे,

केसा--केश, पंडुरया—श्वेत, हवंति—हो रहे हैं, य--और, से--वह, घाणवले—नासिका की घ्राणशक्ति का, हायइ—ह्रास होता जा रहा है । अतएव, गोयम--हे गौतम ! समयं--समय मात्र का भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ।२३।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से जिब्भ-बले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ।।२४।।

— ते--तुम्हारा, सरीरयं—शरीर, परिजूरइ—जीर्ण हो रहा है । ते—तुम्हारे, केसा—केश, पंडुरया—श्वेत, हवंति--हो रहे हैं, य--और, से—वह, जिब्भवले—रसना की आस्वादन शक्ति, हायई--क्षीण होती जा रही है। अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ।।२४।।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से फास-बले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ।२५।

— ते—तुम्हारा, सरीरयं—शरीर जरा एवं रोगादि कारणों से, परिजूरइ—जीर्ण हो रहा है । ते—तुम्हारे, केसा—केश, पंडुरया—धवल, हवंति—हो रहे हैं, य—और से—वह, फासबले—शरीर की स्पर्शन शक्ति, हायई—क्षीण होती जा रही है । अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं--समय मात्र का भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ।।२५।।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते ।
से सव्वबले य हायइ, समयं गोयम ! मा पमायए ।२६।

— जरा अथवा रोगादि कारणों से, ते—तुम्हारा, सरीरयं—शरीर, परिजूरइ—जीर्ण होता जा रहा है । ते—तुम्हारे, केसा—केश, पंडुरया—श्वेत, हवंति—होते जा रहे हैं, य—और, से—वह, सव्वबले—हाथ-पाँव अवयवों की अथवा मन-वचन काया, की सभी शक्ति, हायइ—घटती जा रही है । अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥२६॥

अरई गंडं विसूइया, आयंका विविहा फुसंति ते ।
विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं, समयं गोयम ! मा पमायए ।२७।

— अरई— मानसिक उद्वेग, गंडं—गाँठ-फोड़े-फुन्सी, विसूइया—अजीर्ण अथवा विसूचिका (हैजा) और, विविहा—अनेक प्रकार के, आयंका—तत्काल घात करने वाले रोग, ते—तुम्हें, फुसंति— लग रहे हैं । ये रोग, ते-तुम्हारे, सरीरयं—शरीर को, विहडइ—बलहीन करते हैं, और, विद्धंसइ—नाश कर देते हैं । अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥२७॥

वुच्छिंद सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं ।
से सव्वसिणेह-वज्जिए, समयं गोयम ! मा पमायए ।२८।

— सारइयं—शरद ऋतु में होने वाला, कुमुयं—चन्द्र विकासी कमल, जल में उत्पन्न हो कर और बढ़ कर भी, पाणियं व—जैसे जल से प्रथक रहता है उसी प्रकार मोहक पदार्थ एवं स्वजनादि विषयक, सिणेहं—स्नेह को, अप्पणो—अपनी आत्मा से, वुच्छिद—हटा दो, से—और सव्व सिणेह वज्जिए—सभी प्रकार के स्नेह को दूर हटाने में, गोयम—हे गौतम ! समयं—एक समय के लिये भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥२८॥

चिच्चाण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं ।
मा वंतं पुणो वि आविए, समयं गोयम ! मा पमायए।२९।

— हि—तुमने, धणं—धन, च—और, भारियं—भार्या का, चिच्चाण—त्याग कर के, अणगारियं—साधुत्व की, पव्वइओ सि—दीक्षा धारण की है। अतएव, वंतं—वमन किये हुए विषयों का तुम, पुणो वि—पुनः, मा आविए—पान न करो (पुनः भोग न करो) गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥२९॥

अवउज्झिय मित्तबंधवं, विउलं चेव धणोह-संचयं ।
मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३०॥

— मित्त बंधवं—मित्र एवं बन्धुजनों को, चेव—तथा विउलं—विपुल, धणोह संचयं—एकत्रित धन को, अवउज्झिय—छोड़ कर, गोयम—हे गौतम ! बिइयं—पुनः, तं—उसकी,

मा गवेसए--गवेषणा मत कर अर्थात् पुनः प्राप्त करने की इच्छा मत कर । त्याग को स्थिर रखने में, समयं--समय मात्र भी, मा पमायए--प्रमाद मत कर ॥३०॥

ण हु जिणे अज्ज दीसइ, बहुमए दीसइ मग्गदेसिए ।
संपइ णेयाउए पहे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३१॥

— अज्ज--आज वर्तमान समय में, हु--निश्चय ही, जिणे--जिनेश्वर देव, न दीसइ--दिखाई नहीं देते हैं किन्तु, मग्गदेसिए--उनका बताया हुआ, मोक्ष तक पहुंचाने वाला, बहुमए--ज्ञान-दर्शन-चारित्रात्मक मोक्ष-मार्ग, दीसइ--दिखाई देता है । इस प्रकार विचार कर भविष्य में आत्मार्थी पुरुष जिनमत में सन्देह रहित हो कर संयम में स्थिर रहेंगे । फिर, संपइ--इस समय साक्षात् मुझ तीर्थंकर के होते हुए, गोयम--हे गौतम ! णेयाउए--न्याययुक्त निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कराने वाले इस, पहे--मुक्तिमार्ग में, समयं--एक समय के लिए भी, मा पमायए--प्रमाद मत कर ॥३१॥

अवसोहिय कंटगापहं, ओइण्णो सि पहं महालयं ।
गच्छसि मग्गं विसोहिया, समयं गोयम ! मा पमायए ।३२।

—कंटगापहं--कुतीर्थ रूप कांटों से कंटीले मार्ग को, अवसोहिय--छोड़ (दूर) कर, महालयं--तीर्थंकरादि महापुरुषों द्वारा सेवित विशाल, पहं--मुक्ति के राजमार्ग में, ओइण्णो सि--तेने प्रवेश किया है । अब यहीं पर विश्राम न कर । गोयम--

हे गौतम ! विसोहिया—पूर्ण आस्था रख कर, मग्गं—इस मुक्ति-मार्ग में, गच्छसि—बढ़ते जाओ और, समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥३२॥

अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमे ऽवगाहिया ।
पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम ! मा पमायए ।३३।

— जह—जिस प्रकार, भारवाहए—भार उठाने वाला अबले—निर्बल पुरुष, विसमे—विषम, मग्गे—मार्ग में, अवगाहिया—पहुँच कर धैर्य खो देता है और खिन्न होकर अपना बहुमूल्य भार वहीं छोड़ देता है और, पच्छा—बाद में अपने घर पहुँच कर गरीबी से पीड़ित होकर, पच्छाणुतावए—पश्चात्ताप करता है इसी प्रकार, गोयम—हे गौतम ! मा—तुम भी कहीं प्रमाद वश स्वीकृत संयम-भार को छोड़ नहीं देना, इसलिए, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥३३॥

तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम ! मा पमायए ।३४।

— गोयम—हे गौतम ! हु—निश्चय ही तुम संसार रूप, महं—महान्, अण्णवं—समुद्र को, तिण्णो सि—तिर गये हो । पुण—फिर, तीरं—किनारे पर, आगओ—पहुँच कर, किं—क्यों, चिट्ठसि—खड़े हो, पारं—संसार रूप समुद्र के पार (मुक्ति की ओर) गमित्तए—जाने के लिये,

अभितुर—शीघ्रता करो और इसमें, समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत करो ॥३४॥

अकलेवरसेणिं मूसिया, सिद्धिं गोयम लोयं गच्छसि ।
खेमं च सिवं अणुत्तरं, समयं गोयम ! मा पमायए ।३५।

—गोयम—हे गौतम ! अकलेवरसेणिं—सिद्धिपद की सीढ़ी रूप क्षपक-श्रेणी पर, ऊसिया—उत्तरोत्तर चढ़ कर, खेमं—उपद्रव रहित, सिवं—कल्याणकारी, च—और अणुत्तरं—सर्व प्रधान, सिद्धिं लोयं—सिद्धि लोक को, गच्छसि—प्राप्त करेगा। अतएव, गोयम—हे गौतम ! समयं—समय मात्र भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥३५॥

बुद्धे परिणिव्वुडे चरे, गाम गए णगरे व संजए ।
संतिमग्गं च वूहए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३६॥

—गोयम—हे गौतम ! गाम—ग्राम में, णगरे—नगर में, व—अथवा अरण्यादि में, गए—गया हुआ तू, बुद्धे—तत्त्वों को जानकर, परिणिव्वुडे—कषायाग्नि का उपशम करने के कारण सब प्रकार से शान्त एवं, संजए—संयत बन कर, चरे—मुनि-धर्म का पालन कर, च—तथा उपदेशादि द्वारा, संतिमग्गं—दशविध यति-धर्म रूप शान्ति-मार्ग की, वूहए—वृद्धि कर। इसमें, समयं—एक समय के लिये भी, मा पमायए—प्रमाद मत कर ॥३६॥

बुद्धस्स णिसम्म भासियं, सुकहिय मट्ठ पओवसोहियं।
रागं दोसं च छिंदिया, सिद्धिगइं गए गोयमे। त्ति बेमि।

—बुद्धस्स—सर्वज्ञ देव श्री भगवान् महावीर स्वामी का, सुकहियं—सुन्दर ढंग से विस्तारपूर्वक कहा हुआ, अट्ठपओवसोहियं—अर्थप्रधान पदों से उपशोभित, भासियं—भाषण, णिसम्म—सुन कर, गोयमे—गौतम स्वामी, रागं—राग—च—और, दोसं—द्वेष का, छिंदिया—नाश करके, सिद्धिगइं—सिद्धि गति को, गए—प्राप्त हुए ॥३७॥ त्तिबेमि—इस प्रकार मैं कहता हूँ।

दसवाँ अध्ययन समाप्त

बहुश्रुतपूजा नामक ग्यारहवाँ अध्ययन

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
आयारं पाउक्करिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥१॥

—संजोगा—बाह्य और आभ्यन्तर संयोग से, विप्पमुक्कस्स—मुक्त हुए, अणगारस्स—गृहत्यागी, भिक्खुणो—भिक्षु का, आयारं—आचार (विनय) आणुपुव्विं—अनुक्रम से, पाउक्करिस्सामि—प्रकट करूंगा उसे, मे—मुझ से, सुणेह—सुनो ॥१॥

जे यावि होइ णिव्विज्जे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
अभिक्खणं उल्लवइ, अविणीए अबहुस्सुए ॥२॥

— जे—जो, णिव्विज्जे—विद्या-रहित, होइ—है, य—और, अवि—विद्या-सहित भी है एवं, थद्धे—अभिमानी, लुद्धे—रसादि में गृद्ध, अणिग्गहे—अजितेन्द्रिय, अविणीए—अविनीत है तथा, अभिक्खणं—बार-बार, उल्लवइ—असम्बद्ध भाषण करता है वह, अबहुस्सुए—अबहुश्रुत है ॥२॥

टिप्पण—विनयादि गुण न होने से विद्यावान् को भी यहां 'अबहुश्रुत' कहा गया है।

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा ण लब्भइ।
थंभा कोहा पमाएणं, रोगेणालस्सेण य ॥३॥

— थंभा—मान, कोहा— क्रोध, पमाएणं—प्रमाद, रोगेण—रोग, य—और, आलस्सेण—आलस्य, जेहिं—इन, पंचहिं—पांच, ठाणेहिं—कारणों से, सिक्खा—शिक्षा, ण लब्भइ—प्राप्त नहीं होती ॥३॥

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीलेत्ति वुच्चइ।
अहस्सिरे सया दंते, ण य मम्म-मुदाहरे ॥४॥
णासीले ण विसीले, ण सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चइ ॥५॥

— अट्ठहिं—आठ, ठाणेहिं—स्थानों से, सिक्खासीले त्ति—वह आत्मा शिक्षाशील (शिक्षा के योग्य) वुच्चइ—कहा जाता है, अहस्सिरे—अधिक नहीं हँसने वाला, सया दंते—इन्द्रियों

का दमन करने वाला, य—और, मम्म—मर्म वचन, ण उदाहरे—न कहने वाला, णासीले—सर्वतः चारित्र की विराधना न करने वाला (चारित्र धर्म का पालन करने वाला सदाचारी) ण विसीले—देशतः चारित्र की विराधना भी नहीं करने वाला अर्थात् व्रतों का निरतिचार पालन करने वाला और, अइलोलुए—जो अतिशय लोलुप, ण सिया—नहीं है तथा जो, अकोहणे—क्रोध-रहित और, सच्चरए—सत्यानुरागी (सत्यनिष्ठ) है वह, सिक्खा सीले त्ति— शिक्षाशील, वुच्चइ—कहा जाता है॥४-५॥

अह चोद्दसहिं ठाणेहिं वट्टमाणे उ संजए ।
अविणीए वुच्चइ सो उ, णिव्वाणं च ण गच्छइ ॥६॥

— चोद्दसहिं—चौदह, ठाणेहिं—स्थानों में, वट्टमाणे—वर्तमान, संजए—संयती, अविणीए—अविनीत, वुच्चइ—कहा जाता है, च—और, सो—वह, णिव्वाणं—निर्वाण, ण गच्छइ—प्राप्त नहीं करता ॥६॥

अभिक्खणं कोही हवइ, पबंधं च पकुव्वइ ।
मित्तिज्जमाणो वमइ, सुयं लद्धू ण मज्जइ ॥७॥

— जो अभिक्खणं—निरन्तर, कोही—क्रोध करने वाला, हवइ—होता है, अर्थात् निमित्त वश या बिना किसी निमित्त के भी क्रोध करता है च—और, पबंधं पकुव्वइ—प्रबन्ध करता है, (क्रोध को दीर्घ काल तक बनाये रखता है अथवा विकथा

आदि में निरन्तर प्रवृत्त रहता है,) मित्तिज्जमाणो—मित्रता होते हुए भी मित्रों को, वमइ-–छोड़ देता है, (मित्रता निभाता नहीं तथा मित्रों का उपकार नहीं मानता) और, सुयं—शास्त्र-ज्ञान, लद्धूण—पा कर, मज्जइ—अभिमान करता है ॥७॥

अवि पावपरिक्खेवी, अवि मित्तेसु कुप्पइ ।
सुप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावगं ॥८॥

—जो अवि पावपरिक्खेवी—आचार्यादि द्वारा समिति आदिमें स्खलना रूप पाप हो जाने पर, उनका भी तिरस्कार करने वाला होता है, अथवा अपने दोषों को दूसरों पर डालता है, मित्तेसु—मित्रों पर, अवि—भी, कुप्पइ—कोप करता है, तथा, सुप्पियस—अतिशय प्रिय, मित्तस्स—मित्र की, अवि—भी, रहे—एकान्त में (पीठ पीछे) पावगं—बुराई, भासइ—कहता है ॥८॥

पइण्णवाई दुहिले, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असंविभागी अवियत्ते, अविणीएत्ति वुच्चइ ॥९॥

—जो, पइण्णवाई—असम्बद्ध वचन कहने वाला, पात्र-अपात्र का विचार न करते हुए शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को बतलाने वाला अथवा सर्वथा एकान्त पक्ष को लेकर बोलने वाला, दुहिले—मित्रद्रोही, थद्धे—अभिमानी, लुद्धे—रसादि में गृद्ध अणिग्गहे—इन्द्रियों को वश में नहीं करने

वाला, असंविभागी—आहारादि का संविभाग न करने वाला और, अवियत्ते—सभी को अप्रीति उत्पन्न करने वाला, अविणीए-त्ति—अविनीत, वुच्चइ—कहलाता है ॥९॥

अह पण्णरसहिं ठाणेहिं, सुविणीएत्ति वुच्चइ ।
णीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ॥१०॥

— अह—अथ, पण्णरसहिं—पन्द्रह, ठाणेहिं—स्थानों से (पन्द्रह गुण वाला व्यक्ति) सुविणीए त्ति—सुविनीत, वुच्चइ—कहलाता है, णीयावित्ती—नम्र वृत्ति वाला, अचवले—गति, स्थान, भाषा और भाव विषयक चपलता रहित, अमाई—माया-रहित तथा, अकुऊहले—खेल-तमाशा आदि में कुतूहल रहित ॥१०॥

अप्पं च अहिक्खिवइ, पबंधं च ण कुव्वइ ।
मित्तिज्जमाणो भयइ, सुयं लद्धुं ण मज्जइ ॥११॥

— अप्पं च अहिक्खिवइ—जो किसी का भी तिरस्कार नहीं करता, च—और, पबंधं ण कुव्वइ—प्रबन्ध (विकथा नहीं करता या क्रोध को चिर काल तक नहीं रखता, शीघ्र ही शान्त हो जाता है) मित्तिज्जमाणो—मित्रता किये जाने पर मित्रता को, भयइ—निभाता है और मित्र का कृतज्ञ रहता है एवं मित्र के प्रति उपकार करता है तथा, सुयं—शास्त्र-ज्ञान, लद्धुं—प्राप्त कर, ण मज्जइ—अभिमान नहीं करता है ॥११॥

ण य पावपरिक्खेवी, ण य मित्तेसु कुप्पइ ।
अप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासइ ॥१२॥

--य--और, ण पाव परिक्खेवी—जो गुरुओं द्वारा समिति-गुप्ति आदि में भूल हो जाने पर भी उनका तिरस्कार नहीं करता अथवा अपना दोष दूसरों पर नहीं डालता, य—और, मित्तेसु—मित्रों पर, ण कुप्पइ—कोप नहीं करता है तथा, अप्पियस्स—अप्रिय, मित्तस्स--मित्र की, अवि—भी, रहे--पीठ पीछे, कल्लाण--भलाई ही, भासइ—कहता है (उसके गुणों की ही प्रशंसा करता है) ॥१२॥

कलह डमर वज्जिए, बुद्धे अभिजाइए ।
हिरिमं पडिसंलीणे, सुविणीएत्ति वुच्चइ ॥१३॥

— कलह डमरवज्जिए--जो क्लेश और दंगे से बचा रहता है, अभिजाइए—कुलीन (उठाये हुए भार को सफलतापूर्वक निभाने में समर्थ होता है) तथा, हिरिमं--लज्जावान् और, पडिसंलीणे--इन्द्रियों का गोपन करने वाला होता है ऐसा, बुद्धे—तत्वज्ञ साधु, सुविणीएत्ति—सुविनीत, वुच्चइ—कहा जाता है ॥१३॥

वसे गुरुकुले णिच्चं, जोगवं उवहाणवं ।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहइ ॥१४॥

— जो शिष्य, णिच्चं—सदा, गुरुकुले—गुरुकुल में (गच्छ

के गच्छ में—गुरु की आज्ञा में) वसे—रहता है तथा जो, जोगवं—समाधि वाला, उवहाणवं—उपधान तप का आचरण करने वाला (अंग-उपांग सूत्र सीखते हुए शास्त्रोक्त यथायोग्य आयंबिल आदि उपधान तप का सेवन करने वाला) पियंकरे—सभी के लिये प्रिय अर्थात् अनुकूल कार्य करने वाला और, पियंवाई—प्रिय-भाषण करने वाला है, से—वह विनीत शिष्य, सिक्खं—शिक्षा, लद्धुं—प्राप्त करने के, अरिहइ—योग्य होता है ॥१४॥

जहा संखम्मि पयंणिहियं, दुहओ वि विरायइ ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू, धम्मो कित्ती तहा सुयं ॥१५॥

—जहा—जैसे, संखम्मि—शंख में, णिहियं—रखा हुआ, पयं—दूध, दुहओ वि—दोनों प्रकार से (अपनी श्वेतता और मधुरता आदि गुणों से) विरायइ—शोभा पाता है (दूध शंख में रह कर विकृत नहीं होता किंतु विशेष उज्ज्वल दिखाई देता है) एवं—इसी प्रकार, बहुस्सुए—बहुश्रुत, भिक्खू—भिक्षु में, धम्मो—धर्म, कित्ती—किर्ति, तहा—तथा, सूयं—श्रुत शोभा पाते हैं अर्थात् ये गुण स्वयं शोभित हैं और बहुश्रुत में रहे हुए ये गुण विकार प्राप्त नहीं करते, किन्तु उत्तरोत्तर विशेष निर्मल होते जाते हैं ॥१५॥

जहा से कंबोयाणं, आइण्णे कंथए सिया ।
आसे जवेण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१६॥

— जहा—जिस प्रकार, कंबोयाणं—कम्बोज देश के घोड़ों में, आइण्णे--शीलादि गुणों से युक्त, आसे--घोड़ा, कंथए--प्रधान, सिया—होता है तथा, जवेण—वेग में (तेज चाल में) पवरे—श्रेष्ठ होता है, एवं--इसी प्रकार, बहुस्सुए--बहुश्रुत साधु सभी साधुओं में श्रुत-शील आदि गुणों से श्रेष्ठ होने से प्रधान, हवइ—होता है ॥१६॥

भावार्थ-- कम्बोज देश के घोड़े अश्व जाति में श्रेष्ठ माने जाते हैं किन्तु उनमें भी विशिष्ट शीलादि गुण सम्पन्न आकीर्ण अश्व प्रधान होता है और चाल का भी बहुत तेज होता है। इसी प्रकार मनुष्यों में जिन-धर्म स्वीकार करने वाले सभी व्रती श्रेष्ठ होते हैं और उनमें भी बहुश्रुत साधु श्रुत-शील आदि गुणों की अपेक्षा विशेष श्रेष्ठ होता है, अतएव उनमें प्रधान माना जाता है।

जहाऽइण्ण-समारूढे, सुरे दढपरक्कमे।
उभओ णंदिघोसेणं, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१७॥

— जहा--जिस प्रकार, आइण्ण समारूढे—आकीर्ण जाति के उत्तम घोड़े पर सवार हुआ, दढपरक्कमे—दृढ़ पराक्रम वाला, सूरे--वीर योद्धा, उभओ--दोनों ओर (दाहिनी और बांयीं ओर अथवा आगे और पीछे) णंदिघोसेणं-वाद्य ध्वनि से अथवा आशीर्वचन एवं जयनाद से शोभा पाता है, एवं— उसी प्रकार, बहुस्सुए—बहुश्रुत भी दिन-रात

स्वाध्याय-ध्वनि एवं स्व-पर पक्ष की जयनाद से शोभित, हवइ--होता है ॥१७॥

भावार्थ— जैसे अतिशय पराक्रमी शूरवीर योद्धा, आकीर्ण जाति के उत्तम अश्व पर सवार हुआ किसी भी समर्थ शत्रु से भयभीत नहीं होता और किसी से भी पराजित नहीं होता, किन्तु सर्वत्र विजयी होता है, इसी प्रकार जिन-प्रवचन रूप अश्व का आश्रय लेने वाला बहुश्रुत किसी भी समर्थ वादी को देख कर घबराता नहीं है। बहुश्रुत उससे शास्त्रार्थ कर जय प्राप्त करता है और जिन-प्रवचन की महती प्रभावना करता है। जैसे उक्त समर्थ योद्धा के दोनों ओर बाजे-बजते हैं और बन्दीजनों के आशीर्वचन और जयनाद के बीच वह शोभा पाता है, उसी प्रकार उक्त बहुश्रुत दिन-रात स्वाध्याय ध्वनि एवं स्व-पर पक्ष के जयनाद तथा आशीर्वचनों से शोभा प्राप्त करता है।

जहा करेणु परिकिण्णे, कुंजरे सट्ठि-हायणे।
बलवंते अप्पडिहए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१८॥

— जहा—जिस प्रकार, करेणुपरिकिण्णे—हथिनियों से घिरा हुआ, सट्ठिहायणे--साठ वर्ष की अवस्था का, बलवंते—बलवान्, कुंजरे—हाथी, अप्पडिहए—दूसरे हाथियों से पराभूत नहीं हो सकता, एवं—इसी प्रकार परिपक्व बुद्धि वाला, बहुस्सुए—बहुश्रुत मुनि, हवइ--किसी से भी पराभूत नहीं होता अर्थात् हथिनियों की भांति औत्पत्तिकी आदि बुद्धि

एवं विविध विद्याओं से युक्त तथा वयोवृद्ध होने से स्थिर-बुद्धि वाले बहुश्रुत भी ज्ञान की अपेक्षा महा बलशाली होते हैं। विपक्षी उन्हें शास्त्रार्थ में पराभूत नहीं कर सकते ॥१८॥

जहा से तिक्खसिंगे, जायक्खंधे विरायइ।
वसहे जूहाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१९॥

— जहा—जिस प्रकार, से—वह प्रसिद्ध, तिक्खसिंगे—तीक्ष्ण सींग वाला, जायक्खंधे—पुष्ट स्कंध वाला, वसहे—सांड, जूहाहिवई—समूह का नायक होकर, विरायइ—विशेष शोभा पाता है, एवं—उसी प्रकार, बहुस्सुए—बहुश्रुत भी हवइ—बहुश्रुत भी स्व-पर सिद्धान्त रूप सींगों वाला और गच्छ की धुरा को धारण करने में समर्थ होता है, तथा समुदाय का नायक (आचार्य होकर शोभा पाता) है ॥१९॥

जहा से तिक्खदाढे, उदग्गे दुप्पहंसए।
सीहे मियाण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२०॥

— जहा—जिस प्रकार, से—वह प्रसिद्ध, तिक्खदाढे—तीखी दाढ़ों वाला, दुप्पहंसए—किसी से न दबने वाला, उदग्गे—प्रचंड, सीहे—सिंह, मियाण—मृगों में (समस्त वनचारी पशुओं में) पवरे—श्रेष्ठ होता है, एवं—इसी प्रकार बहुस्सुए—बहुश्रुत साधु भी, हवइ—श्रेष्ठ होता है। अर्थात् परपक्ष को पराजित-करने में समर्थ, नैगमादि नय रूप तीखी दाढ़ों वाला, प्रखर प्रतिभा संपन्न बहुश्रुत भी अन्यतीर्थियों में प्रधान होता है। वह उनके लिये अजेय होता है ॥२०॥

जहा से वासुदेवे, संख-चक्क-गयाधरे ।
अप्पडिहय-बले जोहे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२१॥

-- जहा—जिस प्रकार, संखचक्कगयाधरे—शंख चक्र और गदा को धारण करने वाला, वासुदेवे—वासुदेव, अप्पडिहय बले--अप्रतिहत बल वाला, जोहे—योद्धा है, एवं--उसी प्रकार, बहुस्सुए—बहुश्रुत साधु भी अहिंसा संयम और तप से, हवइ—शोभित होता है ॥२१॥

भावार्थ-- जैसे वासुदेव स्वभावतः शक्ति-सम्पन्न होता है और शस्त्र धारण करके तो वह शत्रुओं के लिये विशेष रूप से अजेय हो जाता है । इसी प्रकार बहुश्रुत भी स्वाभाविक प्रतिभा से संपन्न होता है और सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप विशिष्ट आध्यात्मिक शक्तियों से संपन्न हो कर अन्यतीर्थी और कर्म-वैरियों के लिये वासुदेव के समान अजेय योद्धा बन जाता है ॥२१॥

जहा से चाउरंते, चक्कवट्टी महिड्ढिए ।
चोद्दस-रयणाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२२॥

-- जहा—जिस प्रकार, चक्कवट्टी—चक्रवर्ती, चाउरंते-चारों दिशाओं में भरतक्षेत्र के अन्त तक राज्य करने वाला अथवा हाथी, घोड़े, रथ और पैदल रूप चतुरंगिणी सेना से शत्रुओं का नाश करने वाला, महिड्ढिए--महा ऋद्धिशाली तथा, चोद्दस रयणाहिवई—चौदह रत्नों का स्वामी होता

है, एवं--उसी प्रकार, बहुस्सुए—बहुश्रुत, हवइ—होता है। अर्थात् चक्रवर्ती के समान बहुश्रुत की कीर्ति चारों दिशाओं में अन्त तक व्याप्त होती है। वह भी दान, शील, तप और भावना रूप धर्म से कर्म-शत्रुओं का नाश करने वाला होता है, आमर्ष औषधि आदि अनेक ऋद्धियों से संपन्न और चौदह पूर्वों के ज्ञान का स्वामी होता है ॥२२॥

जहा से सहस्सक्खे, वज्जपाणी पुरंदरे ।
सक्के देवाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२३॥

— जहा--जिस प्रकार, सहस्सक्खे—सहस्र नेत्र वाला वज्जपाणी—हाथ में वज्र धारण करने वाला, पुरंदरे—पुर नामक दैत्य या नगर का दारण करने वाला तथा, देवाहिवई--देवों का स्वामी, से—वह प्रसिद्ध, सक्के--इन्द्र शोभित होता है, एवं--इसी प्रकार, बहुस्सुए--बहुश्रुत साधु, हवइ—शोभित होता है। अर्थात् इन्द्र के समान बहुश्रुत भी विशिष्ट श्रुतज्ञान रूप सहस्र नेत्र वाला, हाथ में वज्र चिन्ह वाला, विशिष्ट तप द्वारा पुर अर्थात् शरीर को कृश करने वाला देवों का पूज्य होता है ॥२३॥

जहा से तिमिर-विद्धंसे, उच्चिट्ठंते दिवायरे ।
जलंते इव तेएण, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२४॥

— जहा—जिस प्रकार, तिमिर विद्धंसे—अन्धकार का

नाश करने वाला, उच्चिट्ठंते—उगता हुआ (आकाश में ऊपर की ओर चढ़ता हुआ) दिवायरे—सूर्य, तेएणं—तेज से, जलंते इव—देदीप्यमान होता हुआ शोभित होता है, एवं—इसी प्रकार आत्मज्ञान के तेज से दीप्त, बहुस्सुए—बहुश्रुत ज्ञानी, हवइ—शोभित होता है ॥२४॥

जहा से उडुवई चंदे, णक्खत्त परिवारिए ।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२५॥

— जहा—जिस प्रकार, उडुवई—नक्षत्रों का स्वामी, चंदे—चन्द्रमा, णक्खत्त परिवारिए—ग्रह-नक्षत्रों से घिरा हुआ तथा, पुण्णमासीए—पूर्णिमा के दिन, पडिपुण्णे—सोलह कलाओं से पूर्ण होकर शोभित होता है, एवं—इसी प्रकार आत्मिक शीतलता से, बहुस्सुए—बहुश्रुत साधु भी, हवइ—शोभित होता है ॥२५॥

जहा से सामाइयाणं, कोट्ठागारे सुरक्खिए ।
णाणा-धण्ण पडिप्पुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२६॥

— जहा—जिस प्रकार, सामाइयाणं—सामाजिक अर्थात्, संचयवृत्ति वाले लोगों का, कोट्ठागारे—धान्यादि का कोठा, सुरक्खिए—चूहे, चोर आदि से सुरक्षित होता है और, णाणा धण्ण पडिप्पुण्णे—अनेक प्रकार के धान्यों से भरा होता है, एवं— उसी प्रकार, बहुस्सुए—बहुश्रुत साधु, हवई—

होता है । अर्थात् धान्य के उक्त कोठे के समान बहुश्रुत भी गच्छ के लिये उपयोगी अंग-उपांग-प्रकीर्णक आदि विविध श्रुतज्ञान से पूर्ण होता है और प्रवचन का आधारभूत होने से संघ द्वारा सुरक्षित होता है ॥२६॥

जहा सा दुमाण पवरा, जंबू णाम सुदंसणा ।
अणाढियस्स देवस्स, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२७॥

— जहा--जिस प्रकार, अणाढियस्स--अनदृत नामक, देवस्स—व्यन्तर देव से अधिष्ठित, सुदंसणा णाम—सुदर्शन नाम वाला, जंबू--जम्बू वृक्ष, दुमाण—सभी वृक्षों में, पवरा--प्रधान (श्रेष्ठ) होता है, एवं—उसी प्रकार, बहुस्सुए--बहुश्रुत साधु भी सभीं साधुओं में श्रेष्ठ, हवई—होता है । अर्थात् सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष के समान बहुश्रुत भी देवों का पूज्य होता है और सभी साधुओं में प्रधान होता है ॥२७॥

जहा सा णईण पवरा, सलिला सागरंगमा ।
सीया णीलवंतपवहा, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२८॥

— जहा—जैसे, णीलवंत पवहा—नीलवान् पर्वत से निकलने वाली और, सागरंगमा—समुद्र में जाकर मिलने वाली, सा—वह, सीया—सीता नामक, सलिला—नदी, णईण— दूसरी नदियों में, पवरा--प्रधान (श्रेष्ठ) है । एवं—इसी प्रकार, बहुस्सुए—बहुश्रुत साधु भी, हवइ—प्रधान होता है ॥२८॥

भावार्थ—सीता नदी नीलवान पर्वत से निकलती है, इसी प्रकार बहुश्रुत भी महान् उच्च कुल में जन्म धारण करता है। सीता नदी में निर्मल जल भरा रहता है उसी प्रकार बहुश्रुत भी निर्मल ज्ञान से परिपूर्ण होता है। सीता नदी बीच ही में नष्ट न होकर ठेठ समुद्र में जा कर मिलती है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी चरम गति रूप मुक्ति की ओर ही बढ़ता रहता है। सीता नदी सभी नदियों में श्रेष्ठ होती है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी सभी साधुओं में प्रधान होता है।

जहा से णगाण पवरे, सुमहं मंदरे गिरी।
णाणोसही पज्जलिए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२९॥

—जहा—जिस प्रकार, से—प्रसिद्ध, मंदरे—सुमेरु, गिरी—पर्वत, णगाण—अन्य पर्वतों में, पवरे—प्रधान है। सुमहं—अतिशय महान् (बहुत ऊँचा) है और, णाणोसही-पज्जलिए—नाना प्रकार की ओषधियों एवं जड़ी-बूटियों से प्रज्वलित रहता है। एवं—उसी प्रकार, बहुस्सुए—बहुश्रुत साधु, हवइ—होता है ॥२९॥

जहा से सयंभूरमणे, उदही अक्खओदए।
णाणा रयण-पडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥३०॥

—जहा—जिस प्रकार, सयंभूरमणे—स्वयंभूरमण, उदही—समुद्र, अक्खओदए—अक्षय जल वाला और, णाणा रयणपडिपुण्णे—नाना प्रकार के रत्नों से भरा हुआ है, एवं—

इसी प्रकार, बहुस्सुए – बहुश्रुत साधु, भवइ--होता है अर्थात् स्वयंभूरमण समुद्र के समान बहुश्रुत अक्षय (अखूट) ज्ञान-दर्शन-चारित्र से सम्पन्न और विविध अतिशय रूप रत्नों से शोभित होता है ॥३०॥

समुद्द-गंभीर-समा दुरासया,
अचक्किया केणइ दुप्पहंसया।
सुयस्स पुण्णा विउलस्स, ताइणो,
खवित्तु कम्मं गइ मुत्तमं गया ॥३१॥

—समुद्द गंभीरसमा—समुद्र के समान गंभीर, दुरासया—वाद में किसी से न जीते जा सकने वाले, अचक्किया—त्रास-भय रहित, केणइ—किसी भी परीषह आदि से, दुप्पहंसया—अभिभूत न होने वाले, विउलस्स—विपुल, सुयस्स—श्रुतज्ञान से, पुण्णा—पूर्ण, ताइणो—छः काया के रक्षक, इन गुणों से सम्पन्न बहुश्रुत अन्त में, कम्मं--ज्ञानावरणीयादि सभी कर्मों का, खवित्तु—क्षय कर, उत्तमं—उत्तम प्रधान, गइं—गति—(मोक्ष) को, गया—प्राप्त हुए हैं और होते हैं ॥३१॥

तम्हा सुयमहिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठ गवेसए ।
जेणप्पाण परं चेव, सिद्धिं संपाउणिज्जासि । त्ति बेमि ।३२।

— तम्हा—इसलिए, उत्तमट्ठ गवेसए— उत्तम अर्थ (मोक्ष) की गवेषणा करने वाला साधक, अध्ययन-श्रवण-

चिन्तनादि द्वारा, सुय—श्रुतज्ञान का, अहिट्ठिज्जा—आश्रय ग्रहण करे, जेण—जिससे, अप्पाणं—अपने-आप को, चेव—और, परं—दूसरों को, सिद्धि—मुक्ति की, संपाउणिज्जासि—सम्यक् प्रकार से प्राप्ति करावे। त्तिबेमि—इस प्रकार मैं कहता हूँ ॥३२॥

ग्यारहवां अध्ययन समाप्त

हरिकेशीय बारहवाँ अध्ययन

सोवाग-कुल संभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएस-बलो णाम, आसि भिक्खू जिइंदिओ ॥१॥

-- सोवागकुल संभूओ--चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुए, गुणुत्तरधरो--ज्ञानादि उत्तम गुणों के धारक, भिक्खू--भिक्षा से निर्वाह करने वाले, जिइंदिओ--पांच इन्द्रियों को जीतने वाले, हरिएस—हरिकेश, बलो णाम—बल नाम वाले एक, मुणी—मुनि, आसि—थे, अर्थात् उनके हरिकेशी और बल ये दो नाम थे, किन्तु वे हरीकेशी नाम से ही प्रसिद्ध थे ॥१॥

इरिएसण-भासाए, उच्चार-समिईसु य।
जओ आयाणणिक्खेवे, संजओ-सुसमाहिओ ॥२॥

वे मुनि, इरिएसण भासाए—ईर्यासमिति, एषणा-

समिति, भाषासमिति, उच्चार समिईसु—उच्चार-प्रश्रवण-खेल सिंघाण-जल्ल परिस्थापनिका समिति, य—और, आयाण-णिक्खेवे—आदान-भंड-मात्र-निक्षेपणा समिति में, जओ—यतनावान्, संजओ—संयमवन्त, सुसमाहिओ—श्रेष्ठ समाधि वाले थे ॥२॥

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ।
भिक्खट्ठा बंभइज्जम्मि, जण्णवाडमुवट्ठिओ ॥३॥

— मणगुत्तो—मनगुप्ति वाले, वयगुत्तो—वचनगुप्ति वाले, कायगुत्तो—कायगुप्ति वाले और, जिइंदिओ—इंद्रियों को जीतने वाले वे मुनि, भिक्खट्ठा—भिक्षा के लिये, बंभइज्जम्मि—ब्राह्मणों का जहाँ यज्ञ हो रहा था वहाँ, जण्णवाडम्मि—यज्ञशाला में, उवट्ठिओ—आये ॥३॥

तं पासिऊण एज्जंतं, तवेण परिसोसियं।
पंतोवहि-उवगरणं, उवहसंति अणारिया ॥४॥

— तवेण—तप से परिसोसियं—शुष्क (कृश) शरीर वाले, पंतोवहिउवगरणं—प्रान्त (असार, जीर्ण और मलिन) उपधि (उपकरण) वाले, तं—उन मुनि को, एज्जंतं—आते हुए, पासिऊण—देख कर, अणारिया—अनार्य के समान वे ब्राह्मण, उवहसंति—हँसने लगे ॥४॥

जाइमयपडिथद्धा, हिंसगा अजिइंदिया।
अबंभचारिणो बाला, इमं वयणमब्बवी ॥५॥

—— जाइमय-पडिथद्धा—जातिमद से अहंकारी बने हुए, हिंसगा – हिंसक, अजिइंदिया—अजितेन्द्रिय, अबंभचारिणो— अब्रह्मचारी, बाला—वे अज्ञानी, इमं—मुनि के प्रति इस वयणं—वचन, अब्बवी—बोलने लगे ॥५॥

कयरे आगच्छइ दित्तरूवे, काले विकराले फोक्कणासे।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए, संकर-दूसं परिहरिय कंठे।६।

— दित्तरूवे—अत्यन्त बीभत्स रूप वाला, काले—काले रंग का, विकराले—भयावना, फोक्कणासे—चपटी नासिका वाला, ओमचेलए—असार (जीर्ण) वस्त्र वाला, पंसुपिसायभूए— धूल से पिशाच-सा बना हुआ और, कंठे—गले में, संकर दूसं— उकरडी पर डाला हुआ गन्दा वस्त्र, परिहरिय—पहना हुआ, कयरे—यह कौन, आगच्छइ—आ रहा है ? ॥६॥

कयरे तुमं इय अदंसणिज्जे,
काए य आसा इहमागओ सि।
ओमचेलया पंसु-पिसायभूया,
गच्छक्खलाहि ! किमिहं ठिओ सि ॥७॥

— ओमचेलया—असार (जीर्ण-शीर्ण) वस्त्र वाला, पंसु-पिसायभूया—धूल से पिचास-सा बना हुआ, इय—इस प्रकार, अदंसणिज्जे—अदर्शनीय, तुमं—तू, कयरे—कौन है, व—तथा, काए—किस, असा—आशा से, इहं—यहाँ, आगओसि—आया है ? गच्छ—चला जा, क्खलाहि—निकल जा, इहं—यहाँ, किं—क्यों, ठिओसी—खड़ा है ? ॥७॥

जक्खो तहिं तिंदुगरुक्खवासी, अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स ।
पच्छायइत्ता णियगं सरीरं, इमाइं वयणाइं मुदाहरित्था ।८।

— तहिं—उस समय, तस्स—उस, महामुणिस्स—महामुनि पर, अणुकंपओ—अनुकम्पा करने वाला (भक्तिभाव वाला) तिंदगरुक्खवासी—तिंदुक वृक्ष पर रहने वाला जक्खो—यक्ष, णियगं—अपना, सरीरं—शरीर, पच्छायइत्ता—छिपा कर अर्थात् मुनि के शरीर में प्रवेश कर के, इमाइं—ये आगे कहे जाने वाले, वयणाइं—वचन, उदाहरित्था—कहने लगा ।८।

समणो अहं संजओ बंभयारी,
विरओ धण-पयण-परिग्गहाओ ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्ख-काले,
अण्णस्स अट्ठा इहमागओ मि ॥९॥

— अहं— मैं, समणो—श्रमण तपस्वी, संजओ—संयती और, बंभयारी—ब्रह्मचारी हूँ तथा, धण पयण परिग्गहाओ—धन, भोजन पकाने और परिग्रह से, विरओ—निवृत्त हुआ हूँ, उ—अतएव, भिक्खकाले—भिक्षा के समय, परप्पवित्तस्स—दूसरों द्वारा उनके लिये बनाये हुए, अण्णस्स—अन्न के, अट्ठा—लिये, इहं—यहाँ, आगओ मि—आया हूँ ॥९॥

वियरज्जइ खज्जइ भुज्जइ य,
अण्णं पभूयं भवयाणमेयं ।
जाणाहि मे जायण-जीविणुत्ति,
सेसावसेसं लहओ तवस्सी ॥१०॥

— भवयाणं—आप लोगों का, एवं—यह, पभूयं—बहुत-सा, अण्णं—अन्न, वियरज्जइ—दीन-अनाथजनों को बांटा जा रहा है, खज्जइ—खाया जा रहा है, य—और, भुज्जइ—भोगा जा रहा है। जायण जीविणुत्ति—में भिक्षावृत्ति से आजीविका करने वाला हूँ ऐसा, जाणाहि—जान कर, मे—मुझ, तवस्सी—तपस्वी को, सेसावसेसं—बचा हुआ (अन्त-प्रान्त) आहार, लहओ—देकर लाभ प्राप्त करो ॥१०॥

उवक्खडं भोयण माहणाणं,
अत्तट्ठियं सिद्ध-मिहेगपक्खं।
ण उ वयं एरिस मण्णपाणं,
दाहामु तुज्झं किमिहं ठिओ सि ॥११॥

-उवक्खडं—मसाले आदि से उत्तम रिति से संस्कार किया गया, भोयण—यह भोजन, माहणाणं—ब्राह्मणों के, अत्तट्ठियं-अपने लिये ही, सिद्धं—तैयार हुआ है और, इह—यहाँ यज्ञ में, एगपक्खं—ब्राह्मण रूप एकपक्ष वाला है अर्थात् यहाँ जो तैयार किया जाता है वह ब्राह्मणों के सिवाय किसीदूसरे को नहीं दिया जाता, एरिसं—इस प्रकार के, अण्णपाणं—अन्न-पानी को, वयं—हम लोग, तुज्झं—तुझे, ण—नहीं, दाहामु—देंगे, इहं—फिर यहाँ, किं—क्यों, ठिओ सि—खड़ा है? ॥११॥

थलेसु बीयाइं ववंति कासया,
तहेव णिण्णेसु य आससाए।

एयाइ सद्धाइ दलाह मज्झं,
आराहए पुण्णमिणं खु खित्तं ॥१२॥

— कासया—किसान लोग, आससाए—आशंसा से, थलेसु—स्थल, (ऊँची भूमि पर) य—और, तहेव—इसी प्रकार, णिण्णेसु—नीची भूमि पर, बीयाइं—बीज, ववंति—बोते हैं। अर्थात् किसान ऊँची और नीची दोनों भूमि में इस आशा से बीज बोते हैं कि यदि अधिक वर्षा हुई तो ऊँची भूमि पर और कम वर्षा हुई तो नीची पृथ्वी पर लाभ होगा। अर्थात् दो में से एक स्थान तो अवश्य खेती सफल होगी, एयाइ—इसी, सद्धाइ—श्रद्धा से, आप लोग, मज्झं—मुझे, दलाह—दो, इणं—यह, खित्तं—क्षेत्र, खु—निश्चय ही, पुण्णं—पुण्य की, आराहए—प्राप्ति करावेगा अर्थात् मुझे दान देने से निश्चय ही आप को पुण्य की प्राप्ति होगी ॥१२॥

खित्ताणि अम्हं विइयाणि लोए,
जहिं पकिण्णा विरुहंति पुण्णा।
जे माहणा जाइ विज्जोववेया,
ताइं तु खित्ताइं सुपेसलाइं ॥१३॥

— लोए—लोक में, जहिं—जहाँ, पकिण्णा—दिये गये अन्नादि, पुण्णा—पुण्य, विरुहंति—उत्पन्न करते हैं, खित्ताणि—वे क्षेत्र अर्थात् दान के पात्र, अम्हं—हमें, विइयाणि—मालूम हैं, जे—जो, जाइ विज्जोववेया—जाति और विद्या सम्पन्न, माहणा—

ब्राह्मण हैं, ताइं—वे, खित्ताइं—क्षेत्र, तु—निश्चय ही, सुपेसलाइं—उत्तम हैं ॥१३॥

कोहो य माणो य वहो य जेसिं,
मोसं अदत्तं च परिग्गहं च ।
ते माहणा जाइ विज्जाविहीणा,
ताइं तु खित्ताइं सुपावयाइं ॥१४॥

— ब्राह्मणों की यह बात सुन कर यक्षाधिष्ठित मुनि ने कहा जेसिं--जिन लोगों में, कोहो--क्रोध, य--और, माणो--मान, य—और माया तथा लोभ हैं, य--और जिनके, वहो—हिंसा, मोसं—झूठ, च--तथा, अदत्तं--चोरी, च—और, परिग्गहं—परिग्रह है, ते--वें, माहणा—ब्राह्मण, जाइ विज्जा-विहीणा--जाति और विद्या से हीन है और, ताइं--वे, खित्ताइं--क्षेत्र, तु--निश्चय ही, सुपावयाइं— अतिशय पापकारी है ॥१४॥

तुब्भेत्थ भो भारहरा गिराणं,
अट्ठं ण याणाह अहिज्ज वेए ।
उच्चावयाइं मुणिणो चरंति,
ताइं तु खित्ताइं सुपेसलाइं ॥१५॥

— भो—अरे ! तुब्भ—तुम लोग, इत्थ—यहाँ, गिराणं—शब्दों के (वेद वचनों के) भारहरा--भार ढोने वाले हो, क्योंकि, वेए—वेद, अहिज्ज—सीख कर भी तुम उनका,

अट्ठं--अर्थ, ण याणाह—नहीं जानते हो, मुणिणो--मुनि लोग, उच्चावयाइं-- भिक्षा के लिये ऊँच-नीच कुलों में, चरंति—भ्रमण करते हैं, ताइं—वे, तु--ही अर्थात् पंच महाव्रतधारी मुनि ही, सुपेसलाइं--सुन्दर (शोभनीय), खित्ताइं--क्षेत्र (दान के पात्र) हैं ।१५।

अज्झावयाणं पडिकूल-भासी,
पभाससे किण्णु सगासि अम्हं ।
अवि एयं विणस्सउ अण्णपाणं,
ण य णं दाहामु तुमं णियंठा ।।१६।।

— यक्ष के उक्त वचन सुन कर छात्र कहने लगे, *अज्झावयाणं*—अध्यापकों के, पडिकूल भासी—विरुद्ध बोलने वाले तुम, अम्हं--हम लोगों के, सगासि—सामने, किण्णु--यह क्या असह्य बात, पभाससे--कह रहे हो, अवि—भले ही, एयं—यह, अण्ण पाणं--आहार-पानी, विणस्सउ—नष्ट हो जाय किन्तु, णियंठा—हे निर्ग्रंथ ! णं—इसे, तुमं--तुझे ण य—कभी नहीं, मुदाहा—देंगे ।।१६।।

समिईहिं मज्झं सुसमाहियस्स,
गुत्तीहि गुत्तस्स जिइंदियस्स ।
जइ मे ण दाहित्थ अहेसणिज्जं,
किमज्ज जण्णाण लहित्थ लाहं ।।१७।।

—छात्रों की बात सुन कर यक्ष कहने लगा, समिईहिं—

पाँच समिति से, सुसमाहियस्स--सुसमाधि वाले, मज्झं--मुझे तथा, गुत्तीहि--तीन गुप्तियों से, गुत्तस्स--गुप्त जिइंदियस्स--इन्द्रियों को जीतने वाले, मे--मुझे, जइ--यदि, एसणिज्जं--यह एषणीय आहार, ण दाहित्थ--नहीं दोगे तो, अज्ज--हे आर्यो ! तुम लोग, जण्णाण--यज्ञ का, किं--क्या, लाहं--लाभ, लहित्थ--प्राप्त करोगे ? ॥१७॥

के इत्थ खत्ता उवजोइया वा,
अज्झावया वा सह खंडिएहिं ।
एयं खु दंडेण फलेण हंता,
कंठम्मि घित्तूण खलिज्ज जो णं ॥१८॥

— उपरोक्त बात सुन कर यज्ञ के प्रधान अध्यापक ने कहा, इत्थ--यहां, के--कोई, खत्ता--क्षत्रिय, वा--अथवा, उवजोइया--अग्नि के पास रहने वाले, खंडिएहि सह--छात्रों सहित, अज्झावया--कोई अध्यापक है, जो--यदि कोई हो तो एयं--इस साधु को, दंडेण--दंड और, फलेण--फल अथवा मुष्टि प्रहार से, हंता--मार कर तथा, कंठम्मि--कंठ, घित्तूण--पकड़ कर, खलिज्ज--बाहर निकाल दो ॥१८॥

अज्झावयाणं वयणं सुणित्ता,
उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दंडेहिं वित्तेहिं कसेहिं चेव,
समागया तं इसि तालयंति ॥१९॥

अट्ठं--अर्थ, ण याणाह—नहीं जानते हो, मुणिणो--मुनि लोग, उच्चावयाइं--भिक्षा के लिये ऊँच-नीच कुलों में, चरंति—भ्रमण करते हैं, ताइं—वे, तु--ही अर्थात् पंच महाव्रतधारी मुनि ही, सुपेसलाइं--सुन्दर (शोभनीय), खित्ताइं--क्षेत्र (दान के पात्र) हैं ।१५।

अज्झावयाणं पडिकूल-भासी,
पभाससे किण्णु सगासि अम्हं ।
अवि एयं विणस्सउ अण्णपाणं,
ण य णं दाहामु तुमं णियंठा ।।१६।।

— यक्ष के उक्त वचन सुन कर छात्र कहने लगे, अज्झावयाणं—अध्यापकों के, पडिकूल भासी—विरुद्ध बोलने वाले तुम, अम्हं--हम लोगों के, सगासि—सामने, किण्णु—यह क्या असह्य बात, पभाससे--कह रहे हो, अवि—भले ही, एयं—यह, अण्ण पाणं--आहार-पानी, विणस्सउ—नष्ट हो जाय किन्तु, णियंठा—हे निर्ग्रंथ ! णं—इसे, तुमं--तुझे ण य—कभी नहीं, मुदाहा—देंगे ।।१६।।

समिईहिं मज्झं सुसमाहियस्स,
गुत्तीहि गुत्तस्स जिइंदियस्स ।
जइ मे ण दाहित्थ अहेसणिज्जं,
किमज्ज जण्णाण लहित्थ लाहं ।।१७।।

—छात्रों की बात सुन कर यक्ष कहने लगा, समिईहिं—

पांच समिति से, सुसमाहियस्स—सुसमाधि वाले, मज्झं—मुझे तथा, गुत्तीहि—तीन गुप्तियों से, गुत्तस्स—गुप्त जिइंदियस्स—इन्द्रियों को जीतने वाले, मे—मुझे, जइ—यदि, एसणिज्जं—यह एषणीय आहार, ण दाहित्थ—नहीं दोगे तो, अज्ज—हे आर्यो ! तुम लोग, जण्णाण—यज्ञ का, किं—क्या, लाहं—लाभ, लहित्थ—प्राप्त करोगे ? ॥१७॥

के इत्थ खत्ता उवजोइया वा,
अज्झावया वा सह खंडिएहिं ।
एयं खु दंडेण फलेण हंता,
कंठम्मि घित्तूण खलिज्ज जो णं ॥१८॥

— उपरोक्त बात सुन कर यज्ञ के प्रधान अध्यापक ने कहा, इत्थ—यहां, के—कोई, खत्ता—क्षत्रिय, वा—अथवा, उवजोइया—अग्नि के पास रहने वाले, खंडिएहि सह—छात्रों सहित, अज्झावया—कोई अध्यापक है, जो—यदि कोई हो तो एयं—इस साधु को, दंडेण—दंड और, फलेण—फल अथवा मुष्टि प्रहार से, हंता—मार कर तथा, कंठम्मि—कंठ, घित्तूण—पकड़ कर, खलिज्ज—बाहर निकाल दो ॥१८॥

अज्झावयाणं वयणं सुणित्ता,
उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दंडेहि वित्तेहि कसेहि चेव,
समागया तं इसि तालयंति ॥१९॥

—अज्झावयाणं—अध्यापक का, वयणं—वचन, सुणित्ता—सुन कर, बहू—बहुत-से, कुमारा—कुमार, तत्थ—वहाँ, उद्धाइया—तेजी से दौड़ आये और, समागया—सभी मिल कर, तं—उस, इसि—मुनि को, दंडेहिं—दंड, वित्तेहिं—बेंत, चेव—और, कसेहिं—चाबुकों से, तालयंति—मारने लगे ।१९।

रण्णो तहिं कोसलियस्स धूया,
भद्दत्ति णामेण अणिदियंगी ।
तं पासिया संजय हम्ममाणं,
कुद्धे कुमारे परिणिव्ववेइ ॥२०॥

—तहिं—वहाँ, तं—उस, संजय—साधु को, हम्ममाणं—मारते हुए, पासिया—देख कर, भद्दत्ति णामेण—भद्रा नाम वाली, अणिदियंगी—अनिन्दितांगी (सुन्दर अंग वाली) कोसलियस्स—कोशल देश के, रण्णो—राजा की, धूया—पुत्री, कुद्धे—कुपित हुए, कुमारे—उन कुमारों को, परिणिव्ववेइ—शान्त करने लगी ॥२०॥

देवाभिओगेण णिओइएणं,
दिण्णा सुरण्णा मणसा ण झाया ।
णरिंद देविंदभिवंदिएणं,
जेणामि वंता इसिणा स एसो ॥२१॥

— देवाभिओगेण—देव के अभियोग से, णिओइएणं—प्रेरित हुए, सुरण्णा—कोशल देश के राजा द्वारा, दिण्णा—

में इन मुनि को दी गई थी, किन्तु इन मुनि ने मुझे, मणसा—मन से भी, ण झाया—नहीं चाहा। णरिंद देविंद अभिवंदिएणं—नरेन्द्र और देवेन्द्र से नमस्कार किये गये, जेण—जिन, इसिणा—ऋषि द्वारा, वंता मि—में त्यागी गई थी, स—वे, एसो—ये ही मुनिराज हैं। २१॥

एसो हु सो उग्गतवो महप्पा,
जिइंदिओ संजओ बंभयारी।
जो मे तया णेच्छइ दिज्जमाणीं,
पिउणा सयं कोसलिएण रण्णा ॥२२॥

— एसो—ये, सो हु—वे ही, उग्गतवो—उग्र तप करने वाले, जिइंदिओ—जितेन्द्रिय, संजओ—संयती, बंभयारी—ब्रह्मचारी, महप्पा—महात्मा हैं, जो—जिन्होंने, तया—उस समय, सयं—स्वयं, कोसलिएण—कोशल देश के, रण्णा—राजा, पिउणा—मेरे पिताजी द्वारा, दिज्जमाणी—दी जाती हुई, मे—मुझे, ण इच्छइ—अंगीकार नहीं की एवं मन से भी चाहना न की ॥२२॥

महाजसो एस महाणुभागो,
घोरव्वओ घोर-परक्कमो य।
मा एयं हीलेह अहीलणिज्जं,
मा सव्वे तेएण भे णिद्दहिज्जा ॥२३॥

— एस—ये, घोरव्वओ—घोर व्रत वाले, घोरपरक्क

कषायादि जीतने के लिये घोर पराक्रम करने वाले, महाजसो-महायशस्वी, य--और, महाणुभागो--महा प्रभावशाली महात्मा हैं। अहीलणिज्जं--ये हीलना करने योग्य नहीं है, एयं-इनकी, मा हीलेह--अवहेलना मत करो, कहीं ये, भे--आप, सव्वे--सभी को, तेएण--अपने तेज से, मा णिद्दहिज्जा--भस्म न कर दें ॥२३॥

एयाइ तीसे वयणाइ सुच्चा,
पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइं।
इसिस्स वेयावडियट्ठयाए,
जक्खा कुमारे विणिवारयंति ॥२४॥

— पत्तीइ—यज्ञशाला के अधिपति की पत्नी, तीसे--उस, भद्दाइ--भद्रा के, एयाइ--इन, सुभासियाइं--सुभाषित, वयणाइं—वचनों को, सुच्चा—सुन कर, इसिस्स--ऋषि की, वेयावडियट्ठयाए-वैयावृत्य करने के लिये, जक्खा—यक्ष, कुमारे—उन ब्राह्मण कुमारों को, विणिवारयंति--रोकने लगा ॥२४॥

ते घोररूवा ठिय अंतलिक्खे,
असुरा तहिं तं जण तालयंति।
ते भिण्णदेहे रुहिरं वमंते,
पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो ॥२५॥

घोररूवा—रौद्र रूप धारण किया हुआ, असुरा--सुरभाव वाला, ते—वह यक्ष, अंतलिक्खे—अकाश में,

ठिअ—रह कर, तहिं--वहाँ यज्ञशाला में, तं—उस, जणं--कुमार वर्ग को, तालयंति—मारने लगा, भिण्णदेहे--यक्षों के प्रहारों से भिन्न-देह वाले, रुहिरं—रुधिर का, वमंते—वमन करते हुए, ते—उन कुमारों को, पासित्तु—देख कर, भद्दा—भद्रा ने, भुज्जो--पुनः इणं—यह, आहु—कहा ॥२५॥

गिरिं णहेहिं खणह, अयं दंतेहिं खायह।
जायतेयं पाएहिं हणह, जे भिक्खुं अवमण्णह।२६।

— जे—जो तुम लोग, भिखुं--भिक्षु का, अवमण्णह—अपमान कर रहे हो मानो, गिरिं—पर्वत को, णहेहिं—नखों से, खणह--खोद रहे हो, अयं—लोहे को, दंतेहिं--दाँतों से, खायह--चबा रहे हो और, जायतेयं--अग्नि को, पाएहिं—पाँवों से, हणह--कुचल रहे हो ॥२६॥

भावार्थ—जैसे नखों से पहाड़ नहीं खोदा जा सकता, किन्तु नख ही टूट जाते हैं, दाँतों से लोह चबाने का प्रयास करने में दाँत ही टूट जाते हैं और अग्नि को पाँवों से रौंदने से पाँव जल जाते हैं, इसी प्रकार भिक्षु का अपमान करना तुम्हीं लोगों के लिये दुःखकारी है।

आसीविसो उग्गतवो महेसी, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य।
अगणिं व पक्खंद पयंगसेणा, जे भिक्खुं भत्तकाले वहेह।२७।

— महेसी--ये महर्षि, आसीविसो—आशीविष लब्धि वाले, उग्गतवो--कठोर तप करने वाले, घोरव्वओ—दुष्कर

व्रत वाले य—और घोरपरक्कमो—घोर पराक्रम वाले हैं, जे—जो तुम, भत्तकाले—भिक्षा के समय, भिक्खुं—इन भिक्षुक को, वहेह—मार रहे हो सो मानो अपने ही नाश के लिये, पयंगसेणा व—पतंगो के झुण्ड के समान, अगणि—अग्नि में, पक्खंद—गिर रहे हो ॥२७॥

सीसेण एयं सरणं उवेह,
समागया सव्वजणेण तुब्भे।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा,
लोगं वि एसो कुविओ डहेज्जा ॥२८॥

— जइ—यदि, तुब्भे—तुम, जीवियं—जीवन, वा—अथवा, धणं वा—धन, इच्छह—चाहते हो तो, सव्व जणेण—सभी के साथ, समागया—मिल कर, सीसेण—मस्तक झुका कर प्रणाम करते हुए, एयं—इनकी, सरणं—शरण, उवेह—ग्रहण करो, क्योंकि, कुविओ—कुपित हुआ, एसो—यह महर्षि, लोगं वि—लोक को भी, डहेज्जा—जला सकता है ॥२८॥

अवहेडिय पिट्ठिसउत्तमंगे, पसारिया बाहु अकम्मचिट्ठे।
णिब्भेरियच्छे रुहिरं वमंते, उड्ढं मुहे णिग्गय जीहणेत्ते।२९।

ते पासिया खंडिय-कट्ठभूए,
विमणो विसण्णो अह माहणो सो।
इसिं पसाएइ सभारियाओ,
हीलं च णिंदं च खमाह भंते ॥३०॥

— अवहेडियपिट्ठिसउत्तमंगे--जिनके सुन्दर मस्तक, पीठ की ओर नीचे झुका दिये गये थे, पसारिया बाहु —जिनकी भुजाएँ फैली हुईं थीं, अकम्मचिट्ठे--जो कर्मचेष्टा से शून्य हो गये थे, णिब्भेरियच्छे--जो आँखें फाड़े हुए थे, उड्ढं मुहे—जो ऊपर की ओर मुंह किये हुए थे, णिग्गयजीहणेत्ते—जिनकी जीभ और आँखें निकली हुईं थीं ऐसे, रुहिरं—रुधिर का, वमंते--वमन करते हुए, ते--उन, खंडिय—छात्रों को, कट्ठभूए--काष्ठवत् निश्चेष्ट, पासिया--देखा, अह—इसके बाद, बिमणो--शून्य चित्त और, विसण्णो--खेदखिन्न हुआ, सो--वह, माहणो--यज्ञवाट का अधिपति ब्राह्मण, समारियाओ--अपनी भार्या के साथ, इसिं--ऋषि को, पसाएइ--प्रसन्न करने लगा और कहने लगा, भंते--हे भगवन् ! हीलं--हमसे की गई अवज्ञा, च--और णिंदं--निंदा के लिये आप, खमाह--क्षमा कीजिये ।२९-३०॥

बालेहि मूढेहि अयाणएहिं, जं हीलिया तस्स खमाह भंते !
महप्पसाया इसिणो हवंति, ण हु मुणी कोवपरा हवंति ॥

—भंते--हे भगवन् ! मूढेहिं--इन मूढ, अयाणएहिं--अज्ञानी, बालेहि--बालकों ने, जं--जो, हीलिया--आपकी अवहेलना की है, तस्स--उसके लिए, खमाह--क्षमा कीजिये, इसिणो--ऋषि तो, महप्पसाया--अति प्रसन्न चित एवं कृपालु, हवंति--होते हैं, मुणी--मुनि, हु—निश्चय ही, कोवपरा--कोप करने वाले, ण हवंति—नहीं होते ॥३१॥

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च,
मणप्पओसो ण मे अत्थि कोई ।
जक्खा हु वेयावडियं करेंति,
तम्हा हु एए णिहया कुमारा ॥३२॥

— मुनि कहने लगे, पुव्विं—पहले, च—और, इण्हिं—इस समय, च—तथा, अणागयं—आगे भविष्य में, कोई—किसी प्रकार का, मे—मेरे, मणप्पओसो—मन में द्वेष, ण अत्थि—नहीं था न अभी है और न आगे होगा, हु—किन्तु, जक्खा—यक्ष, वेयावडियं—मेरी वैयावृत्य करता है, तम्हा-हु—इसी से उसी के द्वारा, एए—ये, कुमारा—कुमार, णिहया—मारे गये हैं, एवं काठ के समान निश्चेष्ट किये गये हैं ॥३२॥

अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा,
तुब्भे ण वि कुप्पह भूइपण्णा ।
तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो,
समागया सव्वजणेण अम्हे ॥३३॥

— ब्राह्मण कहने लगे, अत्थं—शास्त्रों के अर्थ, च—और, धम्मं—धर्म को, वियाणमाणा—जानते हुए, भूइपण्णा—मंगलकारी प्रज्ञा वाले, तुब्भे—आप, ण वि कुप्पह—कभी कुपित नहीं होते । अतएव, अम्हे—हम, सव्व जणेण—सभी लोग, समागया—मिल कर, तुब्भं तु—आप ही के, पाए—

चरणों की, सरणं—शरण में, उवेमो—आये हैं ॥३३॥

अच्चिमो ते महाभाग, ण ते किंचि ण अच्चिमो।
भुंजाहि सालिमं कूरं, णाणावंजण-संजुयं ॥३४॥

-- महाभाग--हे महाभाग !, ते--आपकी, अच्चिमो--हम पूजा करते हैं, ते—आप की, किंचि--कोई भी वस्तु (चरण-रज तक) ऐसी, ण—नहीं है जिसे हम, ण अच्चिमो--न पूजते हों। हे भगवन् ! णाणावंजण संजुयं—नाना प्रकार के व्यंजनों से युक्त, सालिमं--शालि से बना हुआ, कूरं—भात का, भुंजाहि—आप भोजन कीजिये ॥३४॥

इमं च मे अत्थि पभूय-मण्णं, तं भुंजसु अम्ह अणुग्गहट्ठा।
बाढं त्ति पडिच्छइ भत्तपाणं, मासस्स उ पारणए महप्पा ॥

— इमं--यह सामने, मे--मेरा, पभूयं—बहुत-सा, अण्णं—भोजन, अत्थि—है, अम्ह—हम पर, अणुग्गहट्ठा—अनुग्रह करने के लिये, तं--इसका, भुंजसु—आप भोजन कीजिये। ब्राह्मण के यह कहने पर वे, महप्पा—महात्मा, बाढं त्ति--'ठीक है' इस प्रकार कह कर, मासस्स उ—मासखमण तप के, पारणए—पारणे में वे, भत्तपाणं—आहार पानी, पडिच्छइ—ग्रहण करते हैं ॥३५॥

तहियं गंधोदय-पुप्फवासं, दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा।
पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं, आगासे अहोदाणं च घुट्ठं ॥

— तहियं—उस समय मुनि के आहार लेनें पर देवों ने, गंधोदय पुप्फवासं—सुगन्धित जल और पुष्पों की वर्षा की, य-और, तहि--वहाँ देवों ने, दिव्वा--दिव्य (श्रेष्ठ) वसुहारा--धन की, वुट्ठा--धारावद्ध वर्षा की, सुरेहिं—देवों ने, दुंदुहीओ—दुंदुभियाँ तथा अन्य बाजे, पहयाओ—बजाये, च--और उन्होंने, आगासे--आकाश में, अहोदाणं--'अहो दान! अहो दान! आश्चर्यकारी दान!' इस प्रकार, घुट्ठं--घोषणा की ॥३६॥

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, ण दीसई जाइविसेस कोई।
सोवागपुत्तं हरिएस साहुं, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा॥

— खु--निश्चय ही, सक्खं--साक्षात्, तवो विसेसो--तप का महात्म्य, दीसइ--दिखाई देता है, जाइ विसेस--जाति की विशेषता, कोई--कुछ भी, ण दीसइ--दिखाई नहीं देती, सोवागपुत्तं--चांडाल के पुत्र, हरिएस साहुं--हरिकेश मुनि को देखो, जस्स--जिनकी, एरिसा--इस प्रकार की, महाणुभागा—महाप्रभावशाली, इड्ढि--ऋद्धि है ॥३७॥

किं माहणा जोइ-समारभंता,
उदएण-सोहिं वहिया विमग्गहा।
जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं,
ण तं सुदिट्ठं कुसला वयंति ॥३८॥

— मुनि कहने लगे कि, माहणा--हे ब्राह्मणों! आप,

जोइ समारभंता—अग्नि का आरम्भ करते हुए, उदएण—जल से, बहिया—बाह्य, सोहिं—शुद्धि को, किं—क्यों, विमग्गहा—खोज करते हो ? अर्थात् आप लोग यज्ञ और स्थान से बाह्य शुद्धि क्यों चाहते हो ? जं—जो आप, बाहिरियं—बाह्य, विसोहिं—विशुद्धि को, मग्गहा—खोज करते हो, तं—वह, ण सुदिट्ठं—सुदृष्ट नहीं है अर्थात् महात्मा लोगों ने अपनी ज्ञान-दृष्टि में उसे अच्छा नहीं समझा है ऐसा, कुसला—तत्त्व ज्ञान में कुशल व्यक्ति, वयंति—कहते हैं ॥३८॥

कुसं च जूवं तण-कट्ठ-मग्गिं, सायं च पायं उदयं फुसंता।
पाणाइ भूयाइ विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा पगरेह पावं ॥

—मंदा—हे मन्दबुद्धि वालों ! कुसं—कुश (डाभ) जूवं—यज्ञ-स्तम्भ, तण—तृण कट्ठं—काष्ठ, च—और, अग्गि—अग्नि इन्हें ग्रहण करते हुए तथा पायं—प्रातःकाल च—और, सायं—सन्ध्या समय, उदयं—पानी का, फुसंता—स्पर्श करते हुए और, पाणाइ—प्राणी तथा, भूयाइ—भूतों की, विहेडयंता—हिंसा करते हुए आपकी शुद्धि होना तो दूर रहा, किन्तु, भुज्जो वि—और भी, पावं—पाप का, पगरेह—संचय करते हो ॥३९।

कहं चरे भिक्खु वयं जयामो,
पावाइं कम्माइं पणुल्लयामो।

अक्खाहि णे संजय ! जक्ख-पूइया !
कहं सुजट्ठं कुसला वयंति ॥४०॥

— भिक्खु—हे भिक्षुक ! वयं—हम लोग, कहं—किस प्रकार, चरे—प्रवृत्ति करें और कैसे, जयामो—यज्ञ करें जिससे कि, पावाइं—पाप, कम्माइं—कर्मों को, पणुल्लयामो—दूर कर सकें, जक्ख पूइया—हे यक्ष से पूजित ! संजय—हे संयती ! णे—हमें, अक्खाहि—कहिये कि, कुसला—कुशल तत्त्वज्ञ पुरुष, कहं—किस प्रकार, सुजट्ठं—सुन्दर यज्ञ का, वयंति—प्रतिपादन करते हैं ।४०॥

छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा ।
परिग्गहं इत्थिओ माण-मायं, एयं परिण्णाय चरंति दंता ॥

— दंता—इन्द्रियों का दमन करने वाले महात्मा, छज्जीवकाए—षड्जीवनिकाय की, असमारभंता—हिंसा नहीं करते हुए और, मोसं—झूठ तथा, अदत्तं—अदत्तादान का असेवमाणा—सेवन नहीं करते हुए, परिग्गहं—परिग्रह, इत्थिओ—स्त्रियाँ, माण—मान, मायं—माया, क्रोध और लोभ एयं—इन्हें, परिण्णाय—ज्ञ परिज्ञा से जान कर तथा प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर, चरंति—प्रवृत्ति करते हैं । इसी प्रकार आप लोगों को भी प्रवृत्ति करनी चाहिये ॥४१॥

सुसंवुडो पंचहिं संवरेहिं, इह जीवियं अणवकंखमाणो ।
वोसट्ठ-काओ सुइ-चत्तदेहो, महाजयं जयइ जण्णसिट्ठं ॥

— पंचहि—पांच, संवरेहि—संवर द्वारा, सुसंवुडो—भली भांति आश्रव का निरोध करने वाला, इह--यहाँ मनुष्य जीवन में, जीवियं—असंयमी जीवन, अणवकंखमाणो--नहीं चाहने वाला, वोसट्ठकाओ—शरीर का त्याग किया हुआ अर्थात् शरीर की परवाह न करके परीषह (उपसर्ग) सहने वाला सुइ--निर्मल व्रत वाला, चत्तदेहो—शरीर का त्याग करने वाला अर्थात् शरीर पर ममत्व न रखने वाला महात्मा, महाजयं--महान् जय वाले, जण्णसिट्ठं--श्रेष्ठ यज्ञ का, —— -अनुष्ठान करता है ॥४२॥

के ते जोई के य ते जोइठाणा,
का ते सुया किं च ते कारिसगं।
एहा य ते कयरा संति भिक्खू,
कयरेण होमेण हुणासि जोइं ॥४३॥

— भिक्खू--हे भिक्षो ! ते--आपके, जोई—अग्नि, के—कौनसी है, य —और, ते--आपके जोइठाणा--अग्नि का स्थान, के--कोनसा है, ते—आपके, सुया--कुड़छी, का--कौनसी है, च—और ते—आपके कारिसंगं--अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये कंडा, किं--कौनसा है, ते--आपके, एहा--लकड़ियां, य—और, संति--पाप का शमन करने वाला शान्ति-पाठ, कयरा—कौनसे हैं तथा, कयरेण—किस, होमेण—होम से अर्थात् किस वस्तु की आहुति देकर आप, जोइं—अग्नि को, हुणासि—प्रसन्न करते हो ? ॥४३॥

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।
कम्मेहा संजम-जोग-संती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ।४४

— तवो—तप रूप, जोई—अग्नि है जीवो—जीव, जोइठाणं—अग्नि का स्थान है, जोगा—मन, वचन, और काया के शुभ व्यापार, सुया—कुड़छी रूप है, सरीरं—शरीर, तप रूप अग्नि को उद्दीपन करने के लिये, कारिसंगं—कंडा रूप है, कम्म—अष्ट कर्म, एहा—लकड़ी रूप हैं, संजमजोग—संयम के व्यापार, संति—पाप शमन के लिये शान्ति-पाठ रूप हैं। इस प्रकार मैं, इसिणं—ऋषियों द्वारा, पसत्थं—प्रशंसा किया गया, होमं हुणामि—सम्यक् चारित्र रूप होम करता हूँ अर्थात् सम्यक् चारित्र रूप हवन-वस्तु से तप रूप अग्नि को प्रसन्न करता हूँ ॥४४।

के ते हरए के य ते संति-तित्थे?
कहं सिण्हाओ व रयं जहासि?
आयक्ख णे संजय जक्ख-पूइया!
इच्छामो णाउं भवओ सगासे ॥४५॥

— ते—आपके स्नान करने के लिये, हरए—जलाशय, के—कौनसा है, य—और, ते—आपके संति तित्थे—शान्ति तीर्थ, अर्थात् पापों को शांत करने वाला तीर्थ, के-कौनसा है, व—अथवा कहंसिण्हाओ-कहां स्नान करके आप, रयं-कर्म-रज का, जहासि—त्याग करते हो ? जक्ख पूइया—हे यक्षों से पूजित ! संजय—संयती, णे—हमें, आयक्ख—बतलाइये. भवओ—हम आपके

तेसि—उन्हीं कर्मों के, फल-विवागेण—फल के उदय आने से हम, विप्पओगं—वियोग को, उवागया—प्राप्त हुए हैं ॥८॥

सच्च-सोयप्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा।
ते अज्ज परिभुंजामो, किण्णु चित्ते वि से तहा ॥९॥

—मुनि का कथन सुन ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती कहने लगा कि—मए—मैंने, पुरा—पूर्व-भव में, सच्चसोयप्पगडा—सत्य और शौच युक्त अनुष्ठान वाले, कम्मा—कर्म, कडा—किये थे, ते—उन्हें, अज्ज—आज (इस भव में) परिभुंजामो—भोग रहा हूँ, किण्णु—क्या, चित्ते—चित्त तुम, वि—भी, से—उन्हें, तहा—उसी प्रकार भोग रहे हो ? (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के कहने का आशय यह है कि हे चित्त ! तुमने भी मेरे साथ शुभ कर्मों का उपार्जन किया था किन्तु तुम्हारे वे कर्म निष्फल हो गये ? तुम्हें उनका फल नहीं मिला ? ॥९॥

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।
कम्मेहा संजम-जोग-संती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ।४४

— तवो—तप रूप, जोई—अग्नि है, जीवो—जीव, जोइठाणं—अग्नि का स्थान है, जोगा—मन, वचन, और काया के शुभ व्यापार, सुया—कुड़छी रूप है, सरीरं—शरीर, तप रूप अग्नि को उद्दीपन करने के लिये, कारिसंगं—कंडा रूप है, कम्म—अष्ट कर्म, एहा—लकड़ी रूप हैं, संजमजोग—संयम के व्यापार, संति—पाप शमन के लिये शान्ति-पाठ रूप हैं। इस प्रकार मैं, इसिणं—ऋषियों द्वारा, पसत्थं—प्रशंसा किया गया, होमं हुणामि—सम्यक् चारित्र रूप होम करता हूँ अर्थात् सम्यक् चारित्र रूप हवन-वस्तु से तप रूप अग्नि को प्रसन्न करता हूँ ॥४४।

के ते हरए के य ते संति-तित्थे ?
कहं सिण्हाओ व रयं जहासि ?
आयक्ख णे संजय जक्ख-पूइया !
इच्छामो णाउं भवओ सगासे ॥४५॥

— ते—आपके स्नान करने के लिये, हरए—जलाशय, के—कौनसा है, य—और, ते—आपके संति तित्थे—शान्ति तीर्थ, अर्थात् पापों को शांत करने वाला तीर्थ, के-कौनसा है, व—अथवा कहंसिण्हाओ-कहां स्नान करके आप, रयं-कर्म-रज का, जहासि-त्याग करते हो ? जक्ख पूइ—हे यक्षों से पूजित ! संजय—संयती, णे

समासे—पास से, णाउं—जानना, इच्छामो—चाहते हैं ॥४५॥

धम्मे हरए बंभे संति-तित्थे, अणाविले अत्त-पसण्णलेसे ।
जहिं सिण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं ।

—अणाविले—मिथ्यात्वादि से जो अकलूषित है तथा, अत्तपसण्णलेसे—जहाँ प्राणियों को प्रसन्न (शुभ) लेश्या की प्राप्ति होती है ऐसा, धम्मे—धर्म रूप, हरए—जलाशय है और, बंभे—ब्रह्मचर्य रूप, संति तित्थे—शान्ति-तीर्थ है, जहिंसिण्हाओ—जहाँ पर स्नान करके, विमलो—विमल (कर्ममल रहित) विसुद्धो—विशुद्ध एवं, सुसीइभूओ कषायाग्नि के शान्त हो जाने से अत्यन्त शीतल हुआ मैं, दोसं—दोष (पाप) को, पजहामि—दूर करता हूँ ॥४६॥

एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
जहिं सिणाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाणं पत्ते ॥

-कुसलेहि—तत्त्व ज्ञान में कुशल पुरुषों ने अपने ज्ञान में कर्ममल को दूर करने वाला, एयं—यह, सिणाणं—स्नान, दिट्ठं—देखा है, महासिणाणं—यही महा स्नान है और, इसिणं—ऋषियों द्वारा, पसत्थं—इसकी प्रशंसा की गई है. जहिं-सि—जिस स्नान द्वारा ण्हाया—स्नान करने वाले, महारिसी—महर्षि लोग विमला—कर्म-मल रहित और विसुद्धा—विशुद्ध होकर, उत्तमं—उत्तम, ठाणं—स्थान (मोक्ष को) पत्ते—प्राप्त हुए हैं। त्तिबेमि—इस प्रकार मैं कहता हूँ ॥४७॥

॥ बारहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

चित्तसंभूतीय तेरहवाँ अध्ययन

जाइपराइओ खलु, कासि णियाणं तु हत्थिण-पुरम्मि ।
चुलणीए बंभदत्तो, उववण्णो पउमगुम्माओ ॥१॥
कंपिल्ले संभूओ, चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि ।
सेट्ठि कुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥२॥

— संभूओ--संभूत ने पूर्वभव में, हत्थिणपुरम्मि—हस्तिनापुर नगर में, जाइपराइओ--चांडाल जाति के कारण अपमानित एवं चक्रवर्ती की ऋद्धि देख कर 'मुझे भी मेरे तप के फल स्वरूप चक्रवर्ती की ऋद्धि प्राप्त हो' तु—इस प्रकार, खलु--निश्चय ही, णियाणं—निदान, कासि--किया था। इस निदान के फल स्वरूप वह, पउमगुम्माओ—पद्मगुल्म विमान से चवकर, कंपिल्ले—कांपिल्य नगर में, चुलणीए--चुलनी रानी के यहाँ बंभदत्तो—ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हो कर, उववण्णो--उत्पन्न हुआ। पुण--और, चित्तो--संभूत का पूर्वभव का भाई चित्त, पुरिमतालम्मि—पुरिमताल नगर में, विसाले--विशाल, सेट्ठिकुलम्मि--सेठ के कुल मे, जाओ—उत्पन्न हुआ तथा, धम्मं—धर्म को, सोऊण--श्रवण कर, पव्वइओ—प्रव्रज्या धारण की (चांडाल भव में संभूत और चित्त दोनों भाई थे। यहाँ पूर्वभव के नाम से ही कहे गये हैं) ॥१--॥

कंपिल्लम्मि य णयरे, समागया दो वि चित्त-संभूया ।
सुह-दुह-फल-विवागं, कहेंति ते इक्कमिक्कस्स ॥३॥

— कंपिल्लम्मि--कांपिल्य, णयरे—नगर में, चित्त-संभूया—चित्त और संभूत, दो वि--दोनों ही, समागया—एकत्रित हुए, य--और, ते—वे इक्कमिक्कस्स—परस्पर एक-दूसरे को, सुहदुह फल विवागं—अच्छे बुरे कर्मों के सुख-दुःख रूप फल-विपाक, कहेंति--कहने लगे ॥३॥

चक्कवट्टी महिड्ढिओ, बंभदत्तो महायसो ।
भायरं बहुमाणेणं, इमं वयण मब्बवी ॥४॥

--महिड्ढिओ--महा ऋद्धिशाली, महायसो--महा यशस्वी, बंभदत्तो--ब्रह्मदत्त, चक्कवट्टी—चक्रवर्ती, बहुमाणेणं-बहुमानपूर्वक, भायरं—अपने पूर्व-भव के भाई चित्त को, इमं—इस प्रकार, वयणं--वचन, अब्बवी--कहने लगा ॥४॥

आसिमो भायरा दो वि, अण्णमण्ण-वसाणुगा ।
अण्णमण्ण-मणुरत्ता, अण्णमण्ण-हिएसिणो ॥५॥

-- दो वि--आप दोनों ही, अण्णमण्ण वसाणुगा--एक-दूसरे के वश रहने वाले, अण्णमण्णमणुरत्ता—एक-दूसरे से प्रेम करने वाले और, अण्णमण्णहिएसिणो--एक-दूसरे का हित चाहने वाले, भायरा—भाई, आसिमो—थे ॥५॥

दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे णगे ।
हंसा मयंगतीराए, सोवागा कासिभूमिए ।।६।।

—दसण्णे--दशार्ण देश में अपन दोनों, दासा--दास, आसी--थे, कालिंजरे--दूसरे भव में कालिंजर, णगे--पर्वत पर, मिया--मृग थे, मयंगतीराए--तीसरे भव में मृतगंगा नदी के तीर पर, हसा--हंस थे, कासिभूमिए--चौथे भव में काशी देश में, सोवागा--चांडाल थे ।।६।।

देवा य देवलोगम्मि, आसि अम्हे महिड्ढिया ।
इमा णो छट्ठिया जाई, अण्णमण्णेण जा विणा ।।७।।

—पांचवें भव में, अम्हे--अपन दोनों, देवलोगम्मि—सौधर्म देवलोक में, महिड्ढिया—महाऋद्धि सम्पन्न, देवा—देव, आसि--थे, य--और, इमा--यह, णो--अपना, छट्ठिया--छठा, जाई--भव है, जा—जो, अण्णमण्णेण—एक-दूसरे से, विणा--पृथक् उत्पन्न हुए हैं ।।७।।

कम्मा णियाण-प्पगडा, तुमे राय ! विचिंतिया ।
तेसिं फलविवागेणं, विप्पओग-मुवागया ।।८।।

—चक्रवर्ती का उक्त कथन सुन कर मुनि ने कहा, राय-- हे राजन् ! तुमे-- आपने, णियाण-प्पगडा-- नियाणा के वश हो कर आर्तध्यानादियुक्त, कम्मा-- कर्मों का, विचिंतिया-- चिन्तन किया था,

अत्थधम्मोवसोहियं— अर्थ (मोक्ष) और धर्म (श्रुत-चारित्र रूप धर्म) से शोभित, एयं—उपरोक्त, पुण्णपयं—कल्याण-कारी उपदेश, सोच्चा—सुन कर, भरहो वि—प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराजा ने, भारहं वासं—सम्पूर्ण भारतवर्ष का विशाल राज्य और, कामाइ—विषय भोगों को, चिच्चा—छोड़ कर, पव्वए—दीक्षा ली ॥३४॥

सगरो वि सागरंतं, भरहवासं णाराहिवो ।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाइ परिणिव्वुडे ॥३५॥

— सगरो वि—सगर नाम के, णाराहिवो—दूसरे चक्रवर्ती ने भी, सागरंतं—समुद्रपर्यन्त, भरहवासं—भारतवर्ष तथा, केवलं—सम्पूर्ण, इस्सरियं—ऐश्वर्य को, हिच्चा—छोड़ कर दीक्षा अंगीकार की और दयाइ—तप-संयम का आराधन कर परिणिव्वुडे—मोक्ष प्राप्त किया ॥३५॥

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महड्ढिओ ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, मघवं णाम महाजसो ॥३६॥

— महाजसो—महायशस्वी और, महड्ढिओ—महासमृद्धि-शाली, मघवं णाम—मघवान नाम के, चक्कवट्टी—तीसरे चक्रवर्ती ने भारहं वासं—भारतवर्ष के राज्य को, चइत्ता—छोड़ कर, पव्वज्जं—दीक्षा, अब्भुवगओ—अंगीकार की ॥३६॥

सणंकुमारो मणुस्सिंदो, चक्कवट्टी महड्ढिओ ।
पुत्तं रज्जे ठवेऊणं, सो वि राया तवं चरे ॥३७॥

—- मणुस्सिंदो—मनुष्यों में इन्द्र के समान, महड्ढिओ-महा ऋद्धिशाली एवं रूप-सम्पन्न, सणंकुमारो—सनत्कुमार नामक चौथे, चक्कवट्टी— चक्रवर्ती, राया – नरेन्द्र ने भी, पुत्तं— पुत्र को, रज्जे— राज्य-सिंहासन पर, ठवेऊणं-स्थापित कर, तवं— संयमयुक्त तप का, चरे— आचरण किया ॥३७॥

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महड्ढिओ ।
संती संतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ॥३८॥

— महिड्ढिओ— महासमृद्धिशाली, लोए—लोक में, संतिकरे—शान्ति करने वाले संती—शान्तिनाथ, चक्कवट्टी-चक्रवर्ती ने, भारहं वासं—भारतवर्ष के राज्य का, चइत्ता—त्याग करके दीक्षा अंगीकार की और फिर वे, अणुत्तरं गइं—प्रधान गति (मोक्ष) पत्तो—प्राप्त हुए । ये शान्तिनाथ भगवान् इस वर्तमान अवसर्पिणी में सोलहवें तीर्थंकर और पांचवें चक्रवर्ती थे ॥३८॥

इक्खागरायवसभो, कुंथू णाम णरीसरो ।
विक्खायकित्ती भगवं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥३९॥

— इक्खागरायवसभो—इक्ष्वाकु वंश के राजाओं में श्रेष्ठ, विक्खायकित्ती— विख्यात कीर्ति वाले, भगवं—भगवान्, कुंथू णाम—कुंथु नामक, णरीसरो—चक्रवर्ती दीक्षा

अंगीकार करके, अणुत्तरं गइं—प्रधान गति-- मोक्ष को, पत्तो--प्राप्त हुए। ये कुन्थुनाथ भगवान् इस वर्तमान अव-सर्पिणी काल में सतरहवें तीर्थंकर और छठे चक्रवर्ती हुए ॥३९॥

सागरंतं चइत्ता णं, भरहं णरवरीसरो ।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४०॥

— सागरंतं—सागरपर्यन्त, भरहं—भारतवर्ष का राज्य, चइत्ता णं—छोड़ कर, अरो--अर नामक, णरवरीसरो—चक्रवर्ती, अरयं--कर्मरज के अभाव को, पत्तो—प्राप्त हुए और, अणुत्तरं गइं--सर्वश्रेष्ठ गति (मोक्ष), पत्तो—प्राप्त हुए। ये अरनाथ भगवान् इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में अठारहवें तीर्थंकर तथा सातवें चक्रवर्ती हुए हैं ॥४०॥

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महड्ढिओ ।
चइत्ता उत्तमे भोए, महापउमे तवं चरे ॥४१॥

— महिड्ढिओ--महा समृद्धिशाली, महापउमे—महापद्म नाम के नौवें, चक्कवट्टी—चक्रवर्ती ने, भारहं वासं--भारत वर्ष के राज्य को, चइत्ता—छोड़ कर तथा, उत्तमे—उत्तम, भोए—काम-भोगों को, चइत्ता—छोड़ कर, तवं—तप-संयम, चरे--अंगीकार कर आत्म-कल्याण किया ॥४१॥

एगच्छत्तं पसाहित्ता, महीं माणणिसूदणो ।
हरिसेणो मणुस्सिदो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४२॥

— मणुस्सिदो—मनुष्यों में इन्द्र के समान, हरिसेणो—हरिसेण नाम के दसवें चक्रवर्ती ने, माणणिसूदणो—शत्रुओं के मान का मर्दन करके, महीं—पृथ्वी पर, एगच्छत्तं—एक छत्र, पसाहित्ता— राज्य स्थापित किया। इसके बाद राज्य-वैभव का त्याग करके तप-संयम का आराधन करके, अणुत्तरं गइं— प्रधान गति को, पत्तो—प्राप्त किया ॥४२॥

अण्णिओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे।
जय णामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४३॥

— रायसहस्सेहिं—हजारों राजाओं के, अण्णिओ—साथ, जय णामो— जय नाम के ग्यारहवें चक्रवर्ती ने, सुपरिच्चाई—राज्य-वैभव और काम-भोगों का त्याग करके, जिणक्खायं—जिनेन्द्र देव द्वारा कहे हुए, दमं—तप-संयम एवं श्रुत-चारित्र धर्म का, चरे—सेवन किया और, अणुत्तरं गइं—प्रधान गति—मोक्ष को, पत्तो—प्राप्त किया। ४३॥ उपरोक्त दस चक्रवर्ती मोक्ष में गये हैं। आठवां चक्रवर्ती सुभूम और बारहवां ब्रह्मदत्त, इन दोनों ने दीक्षा नहीं ली। ये दोनों नरक गति में गये।

दसण्णरज्जं मुदियं, चइत्ता णं मुणी चरे।
दसण्णभद्दो णिक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ ॥४४॥

दसण्ण-रज्जं मुइयं, चइत्ता णं मुणी चरे ।
दसण्णभद्दो णिक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ ॥४४॥

सक्खं--साक्षात्, सक्केण—शक्रेन्द्र से, चोइओ— प्रेरित किया हुआ, दसण्णभद्दो--दशार्णभद्र राजा, मुदियं—उपद्रव-रहित एवं समृद्धिशाली, दसण्णरज्जं—दशार्ण देश का राज्य, चइत्ता णं--छोड़ कर, णिक्खंतो--निकला तथा, मुणी—मुनि होकर, चरे--तप-संयम का पालन करके मोक्ष प्राप्त किया ॥४४॥

णमी णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥४५॥

— सक्खं— साक्षात्, सक्केण--इन्द्र से, चोइओ--प्रेरित हुए, णमी--नमि राजा ने, अप्पाणं--अपनी आत्मा को, णमेइ—विनीत बनाया तथा, गेहं--घर और, वइदेही--विदेह देश का राज्य, चइऊण-- छोड़ कर, सामण्णे--संयम, पज्जुवट्ठिओ— अंगीकार किया और मोक्ष को प्राप्त किया ॥४५॥

करकंडू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो ।
णमी राया विदेहेसु, गंधारेसु य णग्गई ॥४६॥

— कलिंगेसु--कलिंग देश में, करकंडू—करकंडू राजा, य—और, पंचालेसु—पञ्चाल देश में, दुम्मुहो—दुर्मुख राजा,

विदेहेसु—विदेह देश में, णमी राया—नमि राजा, य— और, गंधारेसु—गंधार देश में, णग्गई--नगई राजा हुआ। इन सब राजाओं ने राज-वैभव छोड़ कर दीक्षा ली और संयम का पालन कर मोक्ष प्राप्त किया ॥४६॥

एए णरिंदवसभा, णिक्खंता जिणसासणे ।
पुत्ते रज्जे ठवेऊणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥४७॥

-- णरिंदवसभा—राजाओं में वृषभ के समान श्रेष्ठ, एए—ये सभी राजा, रज्जे--अपना राज्य, पुत्ते—पुत्रों को, ठवेऊणं – सौंप कर, जिणसासणे—जिन-शासन में, णिक्खंता-- दीक्षित हुए और, सामण्णे—श्रमण वृत्ति का, पज्जुवट्ठिया- सम्यक् पालन कर के मोक्ष को प्राप्त हुए ॥४७॥

सोवीरराय-वसभो, चइत्ताणं मुणी चरे ।
उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४८॥

— सोवीररायवसभो— सोवीर देश के राजाओं में श्रेष्ठ, उदायणो—उदायन राजा ने, चइत्ताणं--राज्य-वैभव छोड़ कर, पव्वइओ—दीक्षा ग्रहण की और, मुणी—मुनि होकर, चरे—संयम का सम्यक् पालन किया जिससे, अणुत्तरं गइं—प्रधान गति (मोक्ष) पत्तो--प्राप्त किया ॥४८॥

तहेव कासिराया वि, सेओ सच्च-परक्कमे ।
काम-भोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्म-महावणं ॥४९॥

—तहेव—इसी प्रकार, कासिराया वि—काशी नरेश ने अर्थात् नन्दन नामके सातवें बलदेव ने भी, कामभोगे—काम-भोगों का, परिच्चज्ज—त्याग करके दीक्षा अंगीकार की और, सेओ सच्च परक्कमे—श्रेष्ठ सत्य एवं संयम में पराक्रम कर के तपरूपी अग्नि के द्वारा, कम्म महावणं—कर्मरूपी महावन को, पहणे—जला कर भस्म कर डाला और मोक्ष प्राप्त किया ॥४९॥

तहेव विजओ राया, अणट्ठाकित्ति पव्वए ।
रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महाजसो ॥५०॥

—तहेव—इसी प्रकार, अणट्ठाकित्ति—निर्मल कीर्ति वाले, महाजसो—महायशस्वी, विजओ राया—दूसरे बलदेव, विजय नामक राजा ने, गुणसमिद्धं—गुणसमृद्ध—महा ऋद्धिशाली, रज्जं—राज्य को, पयहित्तु—छोड़ कर, पव्वए—दीक्षा ली और मोक्ष प्राप्त किया ॥५०॥

तहेवुग्गं तवं किच्चा, अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
महब्बलो रायरिसी, आदाय सिरसा सिरिं ॥५१॥

—तहेव—इसी प्रकार, महब्बलो—महाबल नाम के, रायरिसी—राजर्षि ने, अव्वक्खित्तेण—एकाग्र, चेयसा—चित्त से, उग्गं—उग्र, तवं—तप, किच्चा—करके, सिरसा—शिर से अर्थात् अपना मस्तक देकर—अपने शरीर की

उपेक्षा की और, सिरिं--सर्वश्रेष्ठ केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को, आदाय--- प्राप्त कर के मोक्ष प्राप्त किया अथवा, सिरसो सिरिं--- सम्पूर्ण लोक के मस्तक पर स्थित मोक्षश्री को प्राप्त किया ॥५१॥

कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो व्व महिं चरे ।
एए विसेसमादाय. सूरा दढपरक्कमा ॥५२॥

—क्षत्रिय राजर्षि कहते हैं कि हे मुने ! धीरो--धीर एवं बुद्धिमान् पुरुष, अहेऊहिं--क्रियावादी, अज्ञानवादी आदि वादियों के कुतर्कों में फँस कर, उम्मत्तो व्व—उन्मत्त पुरुष के समान, महिं--पृथ्वी पर, कहं— कैसे, चरे-- विचर सकता है ? अर्थात् नहीं विचर सकता। ऐसा विचार कर तथा, विसेसं--ज्ञान और क्रिया से युक्त जैन धर्म की विशेषता को, आदाय--जान कर, एए—पूर्वोक्त, सूरा--शूरवीर एवं दढपरक्कमा--दृढ़ पराक्रम करने वाले प्रवल पुरुषार्थी भरतादि चक्रवर्ती आदि नरेशों ने जैन धर्म एवं संयम स्वीकार कर आत्म-कल्याण किया। हे मुनीश्वर ! इसी प्रकार आप भी इस जैन-धर्म में अपने चित्त को दृढ़ करके विचरते हुए अपने अभीष्ट पद को प्राप्त करने का प्रयत्न करो ॥५२॥

अच्चंत-णियाणखमा, एसा मे भासिया वई ।
अतरिंसु तरंतेगे, तरिस्संति अणागया ॥५३॥

तेसिं—उन्हीं कर्मों के, फल-विवागेण—फल के उदय आने से हम, विप्पओगं—वियोग को, उवागया—प्राप्त हुए हैं ॥८॥

सच्च-सोयप्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा ।
ते अज्ज परिभुंजामो, किण्णु चित्ते वि से तहा ॥९॥

—मुनि का कथन सुन ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती कहने लगा कि—मए—मैंने, पुरा—पूर्व-भव में, सच्चसोयप्पगडा—सत्य और शौच युक्त अनुष्ठान वाले, कम्मा—कर्म, कडा—किये थे, ते—उन्हें, अज्ज—आज (इस भव में) परिभुंजामो—भोग रहा हूँ, किण्णु—क्या, चित्ते—चित्त तुम, वि—भी, से—उन्हें, तहा—उसी प्रकार भोग रहे हो ? (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के कहने का आशय यह है कि हे चित्त ! तुमने भी मेरे साथ शुभ कर्मों का उपार्जन किया था किन्तु तुम्हारे वे कर्म निष्फल हो गये ? तुम्हें उनका फल नहीं मिला ? ॥९॥

सव्वं सुचिण्णं सफलं णराणं, कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि ।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहिं, आया ममं पुण्णफलोववेए ।१०।

—चित्त मुनि कहने लगे कि हे ब्रह्मदत्त ! णराणं—मनुष्यों के, सव्वं—सभी, सुचिण्णं—तप आदि शुभ अनुष्ठान, सफलं—फल सहित होते हैं, फल भोगे बिना, कडाण—किये हुए, कम्माण—कर्मों से, मोक्ख—छुटकारा, ण अत्थि—नहीं होता, अर्थात् शुभाशुभ कर्म अवश्य ही अपना फल देते हैं, ममं—मेरी, आया—आत्मा भी, उत्तमेहिं—उत्तम, अत्थेहि—

द्रव्य, य—और, कामेहि—मनोज्ञ शब्दादि काम-भोगों से युक्त एवं, पुण्णफलोववेए—पुण्य के फलस्वरूप शुभ-कर्मों के फल से युक्त थी ॥१०॥

जाणाहि संभूय ! महाणुभागं, महिड्ढियं पुण्णफलोववेयं ।
चित्तं वि जाणाहि तहेव रायं, इड्ढी जुई तस्स वि य प्पभूया ॥

— संभूय—हे संभूत—ब्रह्मदत्त ! आप-अपने को जिस प्रकार, महाणुभागं—महा प्रभावशाली, महिड्ढियं—महा ऋद्धिसम्पन्न एवं, पुण्णफलोववेयं—पुण्य (शुभकर्मों के श्रेष्ठ) फल से युक्त, जाणाहि—जानते हैं रायं—हे राजन् ! चित्तं वि—चित्त को भी अर्थात् मुझे भी, तहेव—उसी प्रकार, जाणाहि—जानियेगा, क्योंकि, तस्स वि—उसके भी अर्थात् मेरे भी, इड्ढी—ऋद्धि, य—और, जुई—द्युति, प्पभूया—प्रचुर थी ॥११॥

महत्थरूवा वयणप्पभूया, गाहाणुगीया णरसंघ-मज्झे ।
जं भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इहं जयंते समणो म्हि जाओ ॥

— जं—जिस गाथा को सुन कर, भिक्खुणो—भिक्षु, सीलगुणोववेया—शील गुण से (ज्ञान और चारित्र से) युक्त होकर, इह—इस जिन-शासन में, जयंते—यत्नवंत होते हैं ऐसी, महत्थरूवा—महान् अर्थ वाली और, वयणप्पभूया—थोड़े अक्षरों वाली, गाहा—गाथा का स्थविर मुनियों ने, णर-संघमज्झे—जन-समुदाय में, अणुगीया—प्रतिपादन किया ।

उसी गाथा को सुन कर, समणो—मैं साधु, जाओ म्हि—हुआ हूं। १२॥

उच्चोयए महु कक्के य वंभे,
पवेइया आवसहा य रम्मा।
इमं गिहं चित्त! धणप्पभूयं,
पसाहि पंचाल-गुणोववेयं ॥१३॥

— ब्रह्मदत्त कहने लगा कि, उच्चोयए—उच्चोदय, महु—मधु, कक्के—कर्क, य—और मध्य तथा, वंभे—ब्रह्म ये पांच प्रकार के प्रासाद (भवन) कहे गये हैं, वे मेरे यहाँ हैं। य—तथा मेरे और भी, रम्मा—रमणीय, आवसहा—भवन हैं। चित्त—हे चित्त! इन्हें तथा, धणप्पभूयं—प्रचुर धन से युक्त और पंचालगुणोववेयं—पांचाल देश के विशिष्ट रूपादि गुण युक्त, इमं—इस, गिहं—भवन का, पसाहि—तुम उपभोग करो।१३।

णट्टेहि गीएहि य वाइएहिं,
णारी-जणाहिं परिवारयंतो।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू!
मम रोयइ पव्वज्जा हु दुक्खं ॥१४॥

— भिक्खू—हे भिक्षुक! णट्टेहि—नाटय अथवा नृत्य, गीएहि—गीत, य—और, वाइएहि—वादित्र में दक्ष ऐसी, णारीजणाहि—स्त्रियों के, परिवारयंतो—परिवार से युक्त हो

कर, इमाइ--इन, भोगाइ—भोगों का, भुंजाहि--उपभो करो, पव्वज्जा—प्रव्रज्या, मम--मुझे, हु—निश्चय ही दुक्खं—दुखःकारी, रोयइ--प्रतीत होती है ॥१४॥

तं पुव्वणेहेण कयाणुरागं,
णराहिवं कामगुणेसु गिद्धं ।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही,
चित्तो इमं वयण-मुदाहरित्था ॥१५॥

— पुव्वणेहेण--पूर्वजन्म के स्नेह वश, कयाणुरागं—अनुराग करने वाले और, कामगुणेसु—शब्दादि काम-गुणों में, गिद्धं—आसक्ति वाले, तं--उस, णराहिवं—चक्रवर्ती से, धम्मस्सिओ—धर्म में स्थित और, तस्स—उस चक्रवर्ती का, हियाणुपेही—हित चाहने वाले, चित्तो—चित्त मुनि, इमं--इस प्रकार, वयणं—वचन, उदाहरित्था—कहने लगे ॥१५॥

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं णट्टं विडंवियं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ।१६।

— हे राजन् ! सव्वं—सभी, गीयं—गीत, विलवियं-विलाप रूप हैं, सव्वं--सभी, णट्टं—नाट्य-नृत्य, विडंवियं—विडम्बना है, सव्वे--सभी, आभरणा—आभूषण, भारा—भार रूप है और, सव्वे—सभी, कामा—पांच इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय, दुहावहा—दुःख प्राप्त कराने वाले हैं ॥१६॥

वालाभिरामेसु दुहावहेसु, ण तं सुहं कामगुणेसु रायं।
विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं।

—रायं—हे राजन् ! वालाभिरामेसु— वाल-अज्ञानी जीवों को प्रिय लगने वाले किन्तु, दुहावहेसु—अन्त में दुःख प्राप्त कराने वाले, कामगुणेसु—मनोज्ञ शब्दादि काम-गुणों में, तं--वह, सुहं—सुख ण--नहीं है, जं--जो, विरत्तकामाण—काम-भोगों से विरक्त, सीलगुणे—शील और गुण में, रयाणं--रत रहने वाले, तवोधणाणं--तप रूप धन वाले, भिक्खुणं—भिक्षुओं को होता है ॥१७॥

णरिंद ! जाई अहमा णराणं, सोवागजाई दुहओ गयाणं।
जहिं वयं सव्वजणस्स वेस्सा, वसीअ सोवाग णिवेसणेसु॥

- णरिंद--हे नरेन्द्र ! दुहओ—पूर्वभव में हम दोनों को, सोवागजाई—जो चांडाल जाति, गयाणं--प्राप्त हुई थी वह, णराणं--मनुष्यों में, अहमा— अधम, जाई--जाति थी, जहिं—जहाँ, वयं--हम, सव्वजणस्स—सभी लोगों के, वेस्सा--द्वेषपात्र (अप्रीति भाजन) थे और, सोवाग णिवेसणेसु—चांडाल के घरों में, वसीअ—रहते थे ॥१८॥

तीसे य जाईइ उ पावियाए, वुच्छामु सोवाग-णिवेसणेसु।
सव्वस्स लोगस्स दुगुंछणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरेकडाइं॥

—तीसे—उस, पावियाए—पापकारी, जाईइ--

अर्थात् जैसे मृग, सिंह से पकड़ा जाने पर अपने को नहीं बचा सकता, उसी प्रकार मृत्यु का ग्रास होने पर मनुष्य भी अपने को नहीं बचा सकता, **कालम्मि**--उस समय, **तस्स**—उसके **माया**--माता, **व**—अथवा, **पिया**—पिता, **व**—अथवा, **भाया**--भाई, **तं**—उसके जीवन की रक्षा के लिये, **अंसहरा**--अपने जीवन का अंश देने वाले, **ण हवंति**--नहीं होते ॥२२॥

ण तस्स दुक्खं विभयंति णाइओ,
ण मित्तवग्गा ण सुया ण बंधवा।
इक्को सयं पच्चणु होइ दुक्खं,
कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ॥२३॥

--**तस्स**—उस पापी जीव के, **दुक्खं**–दुःख को, **णाइओ**--जाति वाले, **ण विभयंति**—नहीं बँटा सकते, **ण मित्तवग्गा**—न मित्र-मंडली, **ण सुया**—न पुत्र, **ण बंधवा**--न बंधु लोग ही उसके दुःख में भाग ले सकते हैं। **सयं**—वह स्वयं, **इक्को**—अकेला ही, **दुक्खं**—दुःख, **पच्चाणुहोइ**--भोगता है क्योंकि, **कम्मं**--कर्म, **कत्तारमेव**— कर्ता का ही, **अणुजाइ**—अनुसरण करता है (कर्त्ता को ही कर्मों का फल भोगना पड़ता है) ॥२३॥

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च,
खेत्तं गिहं धणधणं च सव्वं।
सकम्मबीओ अवसो पयाइ,
परं भवं सुंदर पावगं वा ॥२४॥

—यह आत्मा, दुपयं—द्विपद, य—और, चउप्पयं—चतुष्पद य—और, खेत्तं—क्षेत्र, गिहं—घर, धण्णधणं—धान्य और धन, य—और वस्त्रादि, सव्वं—इन सभी को, चिच्चा-यहीं छोड़ कर, अवसो-परवश होकर, सकम्मबीओ-अपने शुभाशुभ कर्मों के साथ, सुंदर—सुन्दर स्वर्गादि, वा—अथवा, पावगं—पापकारी नरकादि रूप, परंभवं—परभव में, पयाइ—जाता है ॥२४॥

तं इक्कगं तुच्छ-सरीरगं से,
चिईगयं दहिउं पावगेणं ।
भज्जा य पुत्ता वि य णायओ य,
दायार-मण्णं अणुसंकमंति ॥२५॥

—से—उस परभव में गये हुए जीव के, इक्कगं—अकेले (जीव-रहित हुए) तं—उस, तुच्छ सरीरगं—असार शरीर को, चिईगयं—चिता में रख कर और, पावगेणं—अग्नि में, दहिउं—जला कर णायओ—ज्ञाति वाले, भज्जा—स्त्री, य—और, पुत्तावि—पुत्र भी, अण्णं—दूसरे, दायारं—दाता का अर्थात् इष्ट वस्तुओं का संपादन एवं स्वार्थ पूर्ति कराने वाले व्यक्ति का, अणुसंकमंति—अनुसरण करते हैं और मृतात्मा को याद तक नहीं करते ॥२५॥

उवणिज्जई जीविय मप्पमायं,
वण्णं जरा हरइ णरस्स रायं !
पंचालराया ! वयणं सुणाहि,
मा कासि कम्माइं महालयाइं ॥२६॥

—यह आत्मा, दुपयं—द्विपद, य—और, चउप्पयं—चतुष्पद य—और, खेत्तं—क्षेत्र, गिहं—घर, धण्णधणं—धान्य और धन, य—और वस्त्रादि, सव्वं—इन सभी को, चिच्चा-यहीं छोड़ कर, अवसो-परवश होकर, सकम्मबीओ-अपने शुभाशुभ कर्मों के साथ, सुंदर—सुन्दर स्वर्गादि, वा—अथवा, पावगं—पापकारी नरकादि रूप, परंभवं—परभव में, पयाइ—जाता है ।।२४।।

तं इक्कगं तुच्छ-सरीरगं से,
चिईगयं दहिउं पावगेणं ।
भज्जा य पुत्ता वि य णायओ य,
दायार-मण्णं अणुसंकमंति ।।२५।।

—से—उस परभव में गये हुए जीव के, इक्कगं—अकेले (जीव-रहित हुए) तं—उस, तुच्छ सरीरगं—असार शरीर को, चिईगयं—चिता में रख कर और, पावगेणं—अग्नि में, दहिउं—जला कर णायओ—ज्ञाति वाले, भज्जा—स्त्री, य—और, पुत्तावि—पुत्र भी, अण्णं—दूसरे, दायारं—दाता का अर्थात् इष्ट वस्तुओं का संपादन एवं स्वार्थ पूर्ति कराने वाले व्यक्ति का, अणुसंकमंति—अनुसरण करते हैं और [illegible] को याद तक नहीं करते ।।२५।।

उवणिज्जई जीविय मप्पमायं,
वण्णं जरा हरइ णरस्स रायं !
पंचालराया ! वयणं सुणाहि,
मा कासि कम्माइं महालयाइं ।।२६।।

अर्थात् जैसे मृग, सिंह से पकड़ा जाने पर अपने को नहीं बचा सकता, उसी प्रकार मृत्यु का ग्रास होने पर मनुष्य भी अपने को नहीं बचा सकता, कालम्मि--उस समय, तस्स—उसके माया--माता, व—अथवा, पिया—पिता, व—अथवा, भाया--भाई, तं—उसके जीवन की रक्षा के लिये, अंसहरा--अपने जीवन का अंश देने वाले, ण हवंति--नहीं होते ॥२२॥

ण तस्स दुक्खं विभयंति णाइओ,
ण मित्तवग्गा ण सुया ण बंधवा।
इक्को सयं पच्चणु होइ दुक्खं,
कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ॥२३॥

--तस्स—उस पापी जीव के, दुक्खं–दुःख को, णाइओ--जाति वाले, ण विभयंति—नहीं बँटा सकते, ण मित्तवग्गा—न मित्र-मंडली, ण सुया—न पुत्र, ण बंधवा--न बंधु लोग ही उसके दुःख में भाग ले सकते हैं। सयं—वह स्वयं, इक्को—अकेला ही, दुक्खं—दुःख, पच्चाणुहोइ--भोगता है क्योंकि कम्मं--कर्म, कत्तारमेव— कर्ता का ही, अणुजाइ—अनुसरण करता है (कर्त्ता को ही कर्मों का फल भोगना पड़ता है) ॥२३॥

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च,
खेत्तं गिहं धण्णधणं च सव्वं।
सकम्मबीओ अवसो पयाइ,
परं भवं सुंदर पावगं वा ॥२४॥

—यह आत्मा, दुपयं—द्विपद, य—और, चउप्पयं—चतुष्पद य—और, खेत्तं—क्षेत्र, गिहं—घर, धण्णधणं—धान्य और धन, य—और वस्त्रादि, सव्वं—इन सभी को, चिच्चा—यहीं छोड़ कर, अवसो-परवश होकर, सकम्मबीओ-अपने शुभाशुभ कर्मों के साथ, सुंदर—सुन्दर स्वर्गादि, वा—अथवा, पावगं—पापकारी नरकादि रूप, परंभवं—परभव में, पयाइ—जाता है ।।२४।।

तं इक्कगं तुच्छ-सरीरगं से,
चिईगयं दहिउं पावगेणं ।
भज्जा य पुत्ता वि य णायओ य,
दायार-मण्णं अणुसंकमंति ।।२५।।

—से—उस परभव में गये हुए जीव के, इक्कगं—अकेले (जीव-रहित हुए) तं—उस, तुच्छ सरीरगं—असार शरीर को, चिईगयं—चित्ता में रख कर और, पावगेणं—अग्नि में, दहिउं—जला कर णायओ—ज्ञाति वाले, भज्जा—स्त्री, य—और, पुत्तावि—पुत्र भी, अण्णं—दूसरे, दायारं—दाता का अर्थात् इष्ट वस्तुओं का संपादन एवं स्वार्थ पूर्ति कराने वाले व्यक्ति का, अणुसंकमंति—अनुसरण करते हैं और मृतात्मा को याद तक नहीं करते ।।२५।।

उवणिज्जई जीवियं मप्पमायं,
वण्णं जरा हरइ णरस्स रायं !
पंचालराया ! वयणं सुणाहि,
मा कासि कम्माइं महालयाइं ।।२६।।

—चित्त मुनि कहते है कि, **रायं**—हे राजन् ! **जीवियं**—यह जीवन, **अप्पमायं**—विना प्रमाद के अर्थात् आवीचिमरण द्वारा निरन्तर मृत्यु के समीप **उवणिज्जई**—ले जाया जा रहा है अर्थात् हम प्रतिक्षण मृत्यु के अधिकाधिक समीप पहुँच रहे हैं। **जरा**—बुढ़ापा, **णरस्स**—मनुष्य का, **वण्णं**—वर्ण (शरीर की कान्ति का) **हरइ**—हरण करता है, (शरीर की कान्ति को क्षीण करता है) **पंचालराया**—हे पाँचाल देश के राजन् ! **वयणं**—मेरा वचन, **सुणाहि**—सुनो और, **महालयाइं**—अतिशय बंध कराने वाले महारम्भ आदि, **कम्माइं**—कर्म, **मा कासि**—मत करो ॥२६॥

अहं वि जाणामि जहेह साहू,
जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं।
भोगा इमे संगकरा हवंति,
जे दुज्जया अज्जो ! अम्हारिसेहिं ॥२७॥

—मुनि का उपदेश सुन कर चक्रवर्ती बोले, **साहू**—हे साधो ! **जहा**—जिस प्रकार, **इह**—इस संसार में होता है और, **एयं**—यह, **वक्कं**—वचन, **जं**—जो, **तुमं**—आप, **मे**—मुझे, **साहसि**—कह रहे हो उसे, **अहं वि**—मैं भी, **जाणामि**—जानता हूँ किन्तु, **अज्जो**—हे आर्य ! **इमे**—ये, **भोगा**—भोग (शब्दादि विषय) मेरे लिये, **संगकरा**—प्रतिबन्ध उत्पन्न करने वाले, **हवंति**—हो रहे हैं, **जे**—जो, **अम्हारिसेहिं**—मुझ जैसे लोगों के लिये, **दुज्जया**—

दुर्जय हैं (इन भोगों पर विजय पाना मेरे लिये दुष्कर है) मैं इन काम-भोगों का त्याग करने में असमर्थ हूँ ॥२७॥

हत्थिणपुरम्मि चित्ता !, दट्ठूणं णरवइं महिड्ढियं ।
कामभोगेसु गिद्धेणं, णियाण-मसुहं कडं ॥२८॥

— चित्ता—हे चित्त ! हत्थिणपुरम्मि—हस्तिनापुर में, महिड्ढियं—महाऋद्धिशाली, णरवइं—सनत्कुमार नामक चक्रवर्ती को तथा उसकी ऋद्धि एवं उसकी श्रीदेवी को, दट्ठूणं—देख कर, कामभोगेसु—काम-भोगों में, गिद्धेणं—आसक्त बने हुए मैंने, असुहं—अशुभ, णियाणं—निदान, कडं—किया था ॥२८॥

तस्स मे अपडिक्कंतस्स, इमं एयारिसं फलं ।
जाणमाणो वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ ॥२९॥

—तस्स—उस निदान का, अपडिक्कंतस्स—प्रतिक्रमण न करने से, मे—मुझे, इमं—यह, एयारिसं—इस प्रकार का, फलं—फल प्राप्त हुआ है कि, जं—जो मैं, धम्मं—धर्म को, जाणमाणो वि—जानता हुआ भी, कामभोगेसु—काम-भोगों में, मुच्छिओ—आसक्त बना हुआ हूँ ॥२९॥

णागो जहा पंकजलावसण्णो,
दट्ठुं थलं णाभिसमेइ तीरं ।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा,
ण भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो ॥३०॥

—— जहा—जिस प्रकार, पंकजलावसण्णो—कीचड़ में फँसा हुआ, णागो—हाथी, थलं—स्थल को, दट्ठुं—देख कर भी, तीरं—तीर पर, णाभिसमेइ—नहीं आ सकता एवं—इसी प्रकार, कामगुणेसु—शब्दादि कामगुणों में, गिद्धा—आसक्त हुआ, वयं—मैं, भिक्खुणो—साधु के, मग्गं-मार्ग को जानता हुआ भी, ण अणुव्वयामो—उसका अनुसरण नहीं कर सकता ॥३०॥

अच्चेइ कालो तूरंति राइओ,
ण यावि भोगा पुरिसाण णिच्चा ।
उविच्च भोगा पुरिसं चयंति,
दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥३१॥

— अनित्यता दिखाने के लिये मुनि फिर कहने लगे, कालो—समय अच्चेइ—बीत रहा है, राइओ—रात्रियाँ, तूरंति—त्वरित गति से जा रही है, य—और, पुरिसाण—पुरुषों के, भोगा वि—भोग भी, ण णिच्चा—नित्य नहीं है, भोगा—ये भोग पुरिसं—पुरुष के पास, उविच्च—स्वतः ही आ कर, व—फिर, चयंति—उसे छोड़ देते हैं, जहा—जिस प्रकार, खीणफलं—फल रहित हुए, दुमं—वृक्ष को, पक्खी—पक्षी छोड़ देते हैं. (यहाँ वृक्ष के फल के समान पुण्य है और पक्षी के समान भोग हैं जैसे फल नष्ट हो जाने पर पक्षी वृक्ष को छोड़ देते हैं उसी प्रकार पुण्य नष्ट हो जाने पर भोग भी जीव को छोड़ देते हैं) ॥३१॥



जइ तं सि भोगे चइउं असत्तो,
अज्जाइ कम्माइ करेहि रायं ।
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकंपी,
तो होहिसि देवो इओ विउव्वी ॥३२॥

-- रायं--हे राजन् ! जइ--यदि, तं--तुम, भोगे--भोगों का, चइउं--त्याग करने में, असत्तो--अशक्त, असि--हो तो तुम, धम्मे--धर्म में, ठिओ--स्थिर हो कर, सव्वपयाणुकंपि--सभी प्राणियों पर अनुकंपा रखते हुए, अज्जाइं--आर्य कम्माइं--कर्म, करेहि--करो, त्तं--ऐसा करने से तुम इओ--यहाँ से मर कर, विउव्वी--वैक्रिय शरीरधारी, देवो--देव, होहिसि--होओगे ॥३२॥

ण तुज्झ भोगे चइऊ ण बुद्धी,
गिद्धो सि आरम्भपरिग्गहेसु ।
मोहं कओ इत्तिउ विप्पलावो,
गच्छामि रायं ! आमंतिओ सि ॥३३॥

-- मुनि के इतना कहने पर भी जब राजा ने उनका उपदेश न माना, तो मुनि ने उदासीन भाव से कहा, तुज्झ--तुम्हारी, भोगे--भोगों को, चइऊण--छोड़ने की, बुद्धि णं--बुद्धि नहीं है और, आरंभ परिग्गहेसु--तुम आरंभ और परिग्रह में, गिद्धो सि--आसक्त हो रहे हो, रायं--हे राजन् ! मोहं--मैंने व्यर्थ ही, इत्तिउ--इतना, विप्पलावो--विप्रलाप

बकवाद, किओ--किया, अतएव अत्र आमंतिओ सि--आपको सूचित कर के, गच्छामि—मैं जाता हूँ ॥३३॥

पंचालराया वि य बंभदत्तो,
साहुस्स तस्स वयणं अकाउं
अणुत्तरे भुंजिय काम-भोगे,
अणुत्तरे सो णरए पविट्ठो ॥३४॥

— तस्स—उस, साहुस्स—साधु के, वयणं—उपदेश का, अकाउं—पालन नहीं कर और, अणुत्तरे—प्रधान, कामभोगे—काम-भोग का, भुंजिय—भोग कर, सो—वह, पंचालराया—पंचाल देश का राजा, बंभदत्तो--ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, अणुत्तरे--प्रधान, णरए—नरक में (सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नामक पांचवें नरकावास में) पविट्ठो—उत्पन्न हुआ ॥३४॥

चित्तो वि कामेहिं विरत्तकामो,
उदग्गचारित्ततवो महेसी ।
अणुत्तरं संजम पालइत्ता,
अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ। त्तिबेमि ॥३५॥

— कामेहिं—शब्दादि विषय-भोगों से, विरत्तकामो—विरक्त काम (काम-भोगों की अभिलाषा रहित) हुआ, उदग्गचारित्ततवो—उत्कृष्ट चारित्र और तप वाला, महेसी—महर्षि, चित्तो वि—चित्त भी, अणुत्तरं—सर्व श्रेष्ठ, संजम—संयम का, पालइत्ता—पालन कर, अणुत्तरं—सर्व प्रधान,

सिद्धिगइं--सिद्धिगति को, गओ--प्राप्त हुआ, त्तिवेमि--इस प्रकार मैं कहता हूँ ॥३५॥

॥ तेरहवां अध्ययन समाप्त ॥



इषुकारीय चौदहवाँ अध्ययन

देवा भवित्ताण पुरे भवम्मि,
केई चुया एग-विमाणवासी ।
पुरे पुराणे उसुयार-णामे,
खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥१॥

-- पुरे--पूर्व, भवम्मि--भव में, देवा--देव, भवित्ताण--होकर, एगविमाणवासी--एक विमान में रहने वाले, केई--कितनेक जीव अर्थात् छः जीव, चुया--वहाँ से चव कर, पुराणे--प्राचीन, खाए--प्रसिद्ध, समिद्धे--समृद्धिवंत, सुरलोगरम्मे--देवलोक के समान रमणीय, उसुयार णामे--इषुकार नामक, पुरे--नगर में उत्पन्न हुए ॥१॥

सकम्मसेसेण पुराकएणं,
कुलेसुदग्गेसु य ते पसूया ।

णिव्विण्ण-संसारभया जहाय,
जिणिदमग्गे सरणं पवण्णा ॥२॥

— ते—पूर्वोक्त एक विमान में रहने वाले देव, पुराकएणं—पूर्व जन्म में किये हुए देवगति योग्य कर्मों के फल को भोग कर, सकम्मसेसेण—शेष रहे हुए शुभ कर्मों के फल को भोगने के लिए, उदग्गेसु—उत्तम, कुलेसु—कुल में, पसूया—उत्पन्न हुए, य—और फिर भी, संसार भया—ससार के भय से, णिव्विण्ण—निर्वेद को प्राप्त होते हुए, जहाय—काम-भोगों को छोड़ कर, जिणिदमग्गं—जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग की, सरणं—शरण को, पवण्णा—प्राप्त हुए ॥२।

पुमत्तमागम्म कुमार दो वि,
पुरोहियो तस्स जसा य पत्ती।
विसालकित्ती य तहेसुयारो,
रायत्थ देवी कमलावई य ॥३॥

— देवलोक से चव कर वे छः जीव इस प्रकार उत्पन्न हुए, विसालकित्ती—विशाल कीर्ति वाला, इसुयारो—इषुकार नाम का, राय—राजा, य—और, अत्थ—उस राजा की, कमलावई—कमलावती नाम की, देवी—पटरानी, तहा—तथा पुरोहियो—भृगु नाम का पुरोहित, य—और, तस्स—उसकी, जसा—यशा नाम की, पत्ती—भार्या, य—तथा, अवि—इनके घर में, पुमत्तं—पुरुष रूप से, आगम्म—उत्पन्न होने वाले, दो-

दो, कुमार—कुमार। इस प्रकार वे छः जीव मनुष्य लोक में आकर इषुकार नगर में उत्पन्न हुए ॥३॥

जाईजरामच्चु भयाभिभूया,
बहिं विहाराभिणिविट्ठ-चित्ता।
संसार-चक्कस्स विमोक्खणट्ठा,
दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥४॥

— जाईजरामच्चु भयाभिभूया—जन्म, जरा और मृत्यु के भय से व्याप्त हुए, बहिं विहाराभिणिविट्ठ चित्ता— संसार से बाहर अर्थात् मोक्ष में चित्त को स्थापित करने वाले, ते—वे दोनों कुमार, दट्ठूण—जैन मुनियों को देख कर, संसार चक्कस्स—संसार-चक्र से, विमोक्खणट्ठा—छुटकारा पाने के लिए, कामगुणे—काम-भोगों से, विरत्ता—विरक्त हो गये ॥४॥

पियपुत्तगा दोण्णि वि माहणस्स,
सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाइं,
तहा सुचिण्णं तव-संजमं च ॥५॥

— माहणस्स—ब्राह्मण के योग्य, सकम्मसीलस्स—कर्म करने वाले, पुरोहियस्स—उस भृगु पुरोहित के, दोण्णि वि—दोनों, पियपुत्तगा—प्रिय पुत्रों को, जाइं—जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया, तहा—जिससे वे, तत्थपोराणियं—पूर्वभव में

किये हुए, सुचिण्णं--शुद्ध (नियाणा रहित) आचार तव संजमं च--तप और संयम का, सरित्तु--स्मरण करने लगे ॥५॥

ते कामभोगेसु असज्जमाणा,
माणुस्सएसु जे यावि दिव्वा ।
मोक्खाभिकंखी अभिजाय-सड्ढा,
तातं उवागम्म इमं उदाहु ॥६॥

— जब उन दोनों कुमारों को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया तब, ते—वे, माणुस्सएसु—मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों में, यावि---और, जे जो, दिव्वा--देव सम्बन्धी, कामभोगेसु-काम-भोग हैं उनमें, असज्जमाणा--आसक्त न होते हुए, मोक्खाभिकंखी--मोक्ष की अभिलाषा करते हुए तथा, *अभिजाय सड्ढा*---*तत्त्व की रुचि वाले वे दोनों कुमार, तातं*—अपने पिता के पास, उवागम्म--आकर नम्रतापूर्वक, इमं—इस प्रकार, उदाहु--कहने लगे ॥६॥

असासयं दट्ठु इमं विहारं,
बहु-अंतरायं ण य दीहमाउं ।
तम्हा गिहंसि ण रइं लभामो,
आमंतयामो चरिस्सामु मोणं ॥७॥

— इमं--यह, विहारं—मनुष्य जीवन, असासयं--अनित्य एवं क्षण-भंगुर है, ण य दीहमाउं--आयुष्य बहुत थोड़ा है, *य*—और उसमें भी, बहु अंतरायं---बहुत विघ्न-बाधाएँ हैं,

तम्हा--इसलिए, दट्ठु--इन सब बातों को देख कर हे पिताजी ! अब हमको, गिहंसि--गृहस्थावास में, रइं--आनन्द, ण लभामो—प्राप्त नहीं होता, अत: हम, मोणं—मुनिवृत्ति को, चरिस्सामु—ग्रहण करेंगे, आमंतयामो--इसके लिए आपकी, आज्ञा चाहते हैं ॥७॥

अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं,
तवस्स वाघायकरं वयासी ।
इमं वयं वेयविओ वयंति,
जहा ण होइ असुयाण लोगो ॥८॥

— अह—इस प्रकार पुत्रों के आज्ञा माँगने पर, तत्थ—उस समय, तायगो—उनका पिता भृगु पुरोहित, तेसिं--उन, मुणीण—भाव-मुनियों के, तवस्स—तप-संयम में, वाघायकरं—विघ्न करने वाला, इमं--यह, वयं—वचन, वयासी--कहने लगा कि हे पुत्रों ! वेयविओ—वेद को जानने वाले पण्डित पुरुष, जहा—इस प्रकार, वयंति—कहते हैं कि, असुयाण--पुत्र-रहित पुरुषों को, लोगो--उत्तम गति की, ण होई--प्राप्ति नहीं होती ॥८॥

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे,
पुत्ते परिठप्प गिहंसि जाया !
भुच्चाण भोए सह इत्थियाहिं,
आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥९॥

—इसलिये, जाया—हे पुत्रो ! वेए—वेदों को, अहिज्ज—पढ़ कर, विप्पे—ब्राह्मणों को, परिविस्स—भोजन करा कर तथा इत्थियाहि—स्त्रियों के, सह—साथ, भोए—भोग, भुच्चाण—भोग कर और, पुत्ते—पुत्रों को, गिहंसि—घर का भार, परिठप्प—सौंप कर फिर तुम, आरण्णगा—वन-वासी, पसत्था—उत्तम, मुणी—मुनि, होइ—बन जाना ॥९॥

सोयग्गिणा आय-गुणिंधणेणं,
मोहाणिला पज्जलणाहिएणं ।
संतत्तभावं परितप्पमाणं,
लालप्पमाणं बहुहा बहुं च ॥१०॥

पुरोहियं तं कमसोणुणंतं,
णिमंतयंतं च सुए धणेणं ।
जहक्कमं कामगुणेहि चेव,
कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं ॥११॥

—आयगुणिंधणेणं—आत्मगुण रूप ईन्धन से युक्त, मोहाणिला—मोह रूपी वायु से, पज्जलणाहिएणं—अत्यन्त प्रज्वलित होती हुई, सोयग्गिणा—शोक रूपी अग्नि से, संतत्त-भावं—सन्ताप एवं, परितप्पमाणं—परिताप को प्राप्त होते हुए, च—और, बहुहा—बहुत प्रकार से, बहुं—अत्यधिक, लालप्पमाणं—आलाप-संलाप करते हुए तथा, कमसो—क्रम से, अणुणंतं—अनुनय करते हुए, च—और, सुए—अपने पुत्रों

को, जहक्कमं—यथाक्रम से, कामगुणेहि—काम-भोगों का, चेव—और, धणेणं—धन का, णिमंतयंतं—निमन्त्रण करते हुए तं—उस, पुरोहियं—भृगु पुरोहित को, ते—वे कुमारगा—दोनों कुमार, पसमिक्ख—विचार कर, वक्कं—इस प्रकार वचन कहने लगे ॥१०-११॥

वेया अहीया ण हवंति ताणं,
भुत्ता दिया णिंति तमंतमेणं ।
जाया य पुत्ता ण हवंति ताणं,
को णाम ते अणुमण्णिज्ज एयं ॥१२॥

— वेया—वेदों को, अहीया—पढ़ लेने मात्र से, ताणं—वे शरण रूप, ण हवंति—नहीं होते, दिया—ऐसे ब्राह्मणों को (जो दयामय धर्म की निन्दा करते हैं और हिंसामय धर्म की प्रशंसा करते हैं तथा यज्ञादि में पशुवध का विधान बता कर हिंसा की प्रेरणा करते हैं उनको) भुत्ता—भोजन कराने से, तमंतमेणं—अन्धकार से अन्धकार में, णिंति—ले जाते हैं, य—और, जाया—उत्पन्न हुए, पुत्ता—पुत्र भी, ताणं—शरण रूप, ण हवंति—नहीं होते हैं (अर्थात् अपने कर्मों के वशीभूत होकर नरकादि दुर्गतियों में जाते हुए जीव की रक्षा करने में वे समर्थ नहीं हैं) तो फिर पिताजी ! ते—आपके, एयं—इस कथन को, को—कौन बुद्धिमान् पुरुष, अणुमण्णिज्ज—स्वीकार कर सकता है अर्थात् कोई भी स्वीकार नहीं कर सकता ॥१२॥

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा,
पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा ।
संसार-मोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥१३॥

— खणमित्तसुक्खा—काम-भोग क्षण मात्र सुख के देने वाले हैं किन्तु, बहुकाल दुक्खा—बहुत लम्बे समय तक दुःख देने वाले हैं, अणिगामसुक्खा— जिसमें स्वल्प सुख और, पगाम दुक्खा—बहुत दुःख हो वे सुखदायी कैसे कहे जा सकते हैं, कामभोगा—ये काम-भोग, संसार मुक्खस्स विपक्खभूया-संसार को बढ़ाने वाले हैं और मोक्ष के शत्रु के समान हैं, उ—और ये काम-भोग, अणत्थाण—अनर्थों की, खाणी—खान है ॥१३॥

परिव्वयंते अणियत्तकामे,
अहो य राओ परितप्पमाणे ।
अणप्पमत्ते धणमेसमाणे,
पप्पोति मच्चुं पुरिसो जरं च ॥१४॥

— अणियत्तकामे—काम-भोगों से निवृत्ति न करने वाला अर्थात् विषय सुखों में गृद्ध बना हुआ, पुरिसो—पुरुष अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए, अहो य राओ—दिन और रात, परितप्पमाणे—परिताप करता है अर्थात् आर्त्तध्यान रौद्रध्यान करता हुआ, परिव्वयंते—संसार में

परिभ्रमण करता है, अण्णप्पमत्ते—अन्य स्वजन सम्बन्धियों के लिए दूषित प्रवृत्ति करके, धणमेसमाणे—धन की गवेषणा करता हुआ यह अन्त में, जरं—जरा, च—और, मच्चुं—मृत्यु को, पप्पोत्ति—प्राप्त हो जाता है ॥१४॥

इमं च मे अत्थि इमं च णत्थि,
इमं च मे किच्च इमं अकिच्च ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं,
हरा हरंति त्ति कहं पमाए ॥१५॥

— इमं—यह पदार्थ, मे—मेरे पास, अत्थि—है, च—और इमं—यह पदार्थ, णत्थि—नहीं है, च—तथा, इमं—यह कार्य तो, मे—मैंने, किच्च—कर लिया है, च—और, इमं—यह कार्य, अकिच्चं—अभी करना शेष है, एवमेवं—इस प्रकार, लालप्पमाणं—प्रलाप करते हुए अर्थात् विषय-भोगों की सामग्री जुटाने में व्याकुल बने हुए, तं—उस पुरुष के प्राणों को, हरा—रातदिन रूपी चोर, हरंति—हर कर परलोक में पहुँचा देते हैं, त्ति—तो फिर, पमाए—धर्म के विषय में प्रमाद, कहं—कैसे किया जा सकता है (अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष को धर्म के विषय में क्षणमात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिए) ॥१५॥

धणं पभूयं सह इत्थियाहिं,
सयणा तहा कामगुणा पगामा ।

तवं कए तप्पई जस्स लोगो,
तं सव्व-साहीण-मिहेव तुब्भं ॥१६॥

— भृगु पुरोहित अपने पुत्रों से कहता है कि हे पुत्रो ! इहेव—अपने घर में यहीं, इत्थियाहिं सह—स्त्रियों सहित, पभूयं—बहुत-सा, धणं—धन है (अर्थात् अपने पास धन भी बहुत है और स्त्रियाँ भी हैं) तहा—तथा, सयणा—स्वजन सम्बन्धी भी बहुत हैं और, कामगुणा—शब्दादि कामगुण भी, पगामा—पर्याप्त हैं, जस्स कए—जिन पदार्थों की प्राप्ति के लिए, लोगो— लोग, तवं तप्पई— तप-जपादि करते हैं, तं—वे, सव्व—सभी पदार्थ, तुब्भं—तुम्हारे, साहीणं—स्वाधीन हैं (अर्थात सब सुख तुम को स्वतः प्राप्त हैं तो फिर संयम क्यों लेते हो ?) ॥१६॥

धणेण किं धम्मधुराहिगारे,
सयणेण वा कामगुणेहि चेव ।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी,
बहिं विहारा अभिगम्म भिक्खं ॥१७॥

— कुमार अपने पिता से कहते हैं कि हे पिताजी ! धम्म धुराहिगारे—धर्मधुरा के अधिकार में अर्थात् धर्माचरण के विषय में धणेण—धन से, किं—क्या प्रयोजन है ? वा—अथवा, सयणेण—स्वजन सम्बन्धियों से, चेव—और, काम-गुणेहि—काम-भोगादि से भी क्या प्रयोजन है ? (अर्थात् धन,

स्वजन और काम-भोगादि ये सब धर्म के सामने अत्यन्त तुच्छ हैं, इसलिए हम दोनों) गुणोहधारी—सम्यग्दर्शनादि गुणों को धारण करने वाले, समणा भविस्सामु—श्रमण बनेंगे और, बहि विहारा—द्रव्य और भाव से अप्रतिबद्ध हो कर ग्रामानुग्राम विहार, अभिगम्म—करते हुए, भिक्खं—शुद्ध भिक्षावृत्ति से अपना जीवन व्यतीत करेंगे ॥१७॥

जहा य अग्गी अरणी असंतो,
खीरे घयं तेल्ल-महातिलेसु ।
एमेव जाया ! सरीरंसि सत्ता,
संमुच्छई णासइ णावचिट्ठे ॥१८॥

—भृगु पुरोहित कहता है कि, जाया—हे पुत्रो ! जहा—जिस प्रकार, अरणी—अरणि (काष्ठ) से, अग्गी—अग्नि, खीरे—दूध से, घयं—घी, य—और, महातिलेसु—तिलों से, तेल्ल—तैल, असंतो—प्रत्यक्ष रूप से दिखाई न देने पर भी ये सब वस्तुएँ संयोग मिलने से स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं, एमेव—इसी प्रकार, सरीरंसि—इस शरीर में, सत्ता—जीव, संमुच्छई—स्वतः उत्पन्न हो जाता है और, णासइ—शरीर का नाश होने के साथ ही नष्ट हो जाता है, णावचिट्ठे—किन्तु बाद में नहीं रहता है, इस प्रकार जब आत्मा नाम की कोई चीज ही नहीं है तो फिर संयम लेकर क्यों व्यर्थ कष्ट उठाते हो ? ॥१८॥

णो इंदियग्गेज्झ अमुत्तभावा,
अमुत्तभावा वि य होइ णिच्चो।
अज्झत्थ-हेउं णिययस्स बंधो,
संसार-हेउं च वयंति बंधं ॥१९॥

— कुमार कहते हैं कि हे पिताजी ! अमुत्तभावा— अमूर्त्त होने के कारण यह आत्मा, णोइंदियग्गेज्झ—इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जा सकता अर्थात् अरूपी होने के कारण यह आत्मा प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता, य—और, अमुत्तभावा- वि—अरूपी होने से ही यह आत्मा, णिच्चो—नित्य, होइ— है, क्योंकि जो-जो पदार्थ अरूपी होते हैं वे सब नित्य होते हैं जैसे आकाश, अज्झत्थ हेउं—अध्यात्म हेतु (मिथ्यात्वादि) णियय—निश्चय ही, अस्स—इस आत्मा के, बंधो—बन्ध के कारण हैं, अर्थात् यह आत्मा अमूर्त्त एवं नित्य होने पर भी मिथ्यात्वादि कारणों से कर्मों के बन्धन में बन्धा हुआ है, च—और, बंधं—यही बन्धन, संसार हेउं—संसार परिभ्रमण का कारण है, वयंति—ऐसा महापुरुष फरमाते हैं ॥१९॥

जहा वयं धम्म मजाणमाणा,
पावं पुरा कम्म-मकासि मोहा।
ओरुब्भमाणा परिरक्खयंता,
तं णेव भुज्जो वि समायरामो ॥२०॥

— वे दोनों कुमार कहते हैं कि हे पिताजी ! जहा—जिस प्रकार, मोहा— मोह के वश होकर, धम्मं—धर्म को, अजाणमाणा—न जानते हुए, वयं—हम, पुरा—पहले, पावं-पाप, कम्मं—कर्म, अकासि—करते थे और, ओरुब्भमाणा—आपके रोके हुए तथा, परिरक्खयंता—सब प्रकार से सुरक्षित किये हुए हम घर से बाहर भी नहीं निकल सकते थे परन्तु अब हम, तं—उस पापकर्म का, भुज्जो वि—कदापि, णेव-समायरामो—सेवन नहीं करेंगे ।२०॥

भावार्थ—कुमार कहते हैं कि पिताजी ! "पाप पुण्य कुछ नहीं है, परलोक नहीं है" इस प्रकार जैसा आप मानते हैं, अज्ञान के वश होकर हम भी वैसा ही मानते थे, किन्तु अब तत्त्व का यथार्थ स्वरूप जान लेने के बाद यह बात हमारे हृदय में बिलकुल नहीं जंचती है ।

अब्भाहयम्मि लोगम्मि, सव्वओ परिवारिए ।
अमोहाहिं पडंतीहिं, गिहंसि ण रइं लभे ॥२१॥

— लोगम्मि—यह लोक, अब्भाहयम्मि—सब प्रकार से पीड़ित हो रहा है और, सव्वओ—सब प्रकार से चारों ओर से, परिवारिए—घिरा हुआ है और, अमोहाहिं—अमोघ शस्त्र-धाराएँ, पडंतीहिं—गिर रही हैं ऐसी अवस्था में हमें, गिहंसि—गृहस्थावास में, रइं—किञ्चिन्मात्र भी आनन्द, ण लभे—प्राप्त नहीं होता ॥२१॥

केण अब्भाहओ लोगो, केण वा परिवारिओ ।
का वा अमोहा वुत्ता, जाया ! चिंतावरो हु मे ॥२२॥

— पुत्रों के उपरोक्त कथन को सुन कर भृगु पुरोहित पूछता है कि जाया—हे पुत्रों ! लोगो—यह लोक, केण—किससे, अब्भाहओ—पीड़ित हो रहा है, वा—और, केण—किसने इस लोक को, परिवारिओ—चारों ओर से घेर रखा है, वा—तथा अमोहा—अमोघ शस्त्र की धारा, का—कौन-सी, वुत्ता—कही गई है, हु—यह जानने के लिए, मे—मैं, चिंतावरो—बड़ा चिन्तित हो रहा हूँ ।२२॥

मच्चुणा अब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय ! वियाणह ॥२३॥

— इस पर दोनों पुत्रों ने उत्तर दिया कि, ताय—हे पिताजी ! लोगो—यह लोक, मच्चुणा—मृत्यु से, अब्भाहओ—पीड़ित हो रहा है, जराए—जरा से, परिवारिओ—घिरा हुआ है और, रयणी—रात-दिन रूपी, अमोहा—अमोघ शस्त्रधारा वुत्ता—कही गई है, जिससे प्रतिक्षण आयुष्य टूटता जा रहा है, एवं—इस प्रकार, वियाणह—आप समझो ॥२३॥

जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ ॥२४॥

— जा जा—जो-जो, रयणी—रात्रि, वच्चइ—व्यतीत

होती जा रही है, सा--वह, ण पडिणियत्तई--पुनः लौट कर नहीं आती अर्थात् गया समय फिर नहीं लौटता किन्तु, अहम्मं—अधर्म (पाप का), कुणमाणस्स--सेवन करने वाले प्राणी की, राइओ— वे सब रात्रियां, अफला--निष्फल, जंति-जाती हैं ॥२४॥

जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ॥२५॥

— जा जा—जो-जो, रयणी--रात्रि, वच्चइ—व्यतीत होती जा रही है, सा—वह, ण पडिणियत्तई—लौट कर नहीं आ सकती, च—किन्तु, धम्मं--धर्म का, कुणमाणस्स--सेवन करने वाले प्राणी की, राइओ—वे सब रात्रियां, सफला—सफल, जंति— हो जाती हैं अर्थात् धर्म का आचरण करने वाले पुरुष का जीवन सफल है ॥२५॥

एगओ संवसित्ताणं,दुहओ सम्मत्त-संजुया ।
पच्छा जाया ! गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले ।२६।

— अपने पुत्रों के उपरोक्त वचन सुन कर भृगु पुरोहित कहने लगा कि, जाया—हे पुत्रों ! दुहओ—हम सब पहले, सम्मत्तसंजुया--सम्यक्त्व सहित श्रावक व्रत को धारण करके, एगओ—यहीं गृहस्थावास में एक साथ, संवसित्ताणं—रहें,

केण अब्भाहओ लोगो, केण वा परिवारिओ ।
का वा अमोहा वुत्ता, जाया ! चितावरो हु मे ॥२२॥

— पुत्रों के उपरोक्त कथन को सुन कर भृगु पुरोहित पूछता है कि जाया—हे पुत्रों ! लोगो—यह लोक, केण—किससे, अब्भाहओ—पीड़ित हो रहा है, वा—और, केण—किसने इस लोक को, परिवारिओ—चारों ओर से घेर रखा है, वा—तथा अमोहा—अमोघ शस्त्र की धारा, का—कौन-सी, वुत्ता—कही गई है, हु—यह जानने के लिए, मे—मैं, चितावरो—बड़ा चिन्तित हो रहा हूँ ।।२२।।

मच्चुणा अब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय ! वियाणह ॥२३॥

— इस पर दोनों पुत्रों ने उत्तर दिया कि, ताय—हे पिताजी ! लोगो—यह लोक, मच्चुणा—मृत्यु से, अब्भाहओ—पीड़ित हो रहा है, जराए—जरा से, परिवारिओ—घिरा हुआ है और, रयणी—रात-दिन रूपी, अमोहा—अमोघ शस्त्रधारा वुत्ता—कही गई है, जिससे प्रतिक्षण आयुष्य टूटता जा रहा है, एवं—इस प्रकार, वियाणह—आप समझो ॥२३॥

जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ ॥२४॥

— जा जा—जो-जो, रयणी—रात्रि, वच्चइ—व्यतीत

होती जा रही है, सा--वह, ण पडिणियत्तई--पुनः लौट कर नहीं आती अर्थात् गया समय फिर नहीं लौटता किन्तु, अहम्मं--अधर्म (पाप का), कुणमाणस्स--सेवन करने वाले प्राणी की, राइओ-- वे सब रात्रियां, अफला--निष्फल, जंति-- जाती हैं ॥२४॥

जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ॥२५॥

— जा जा—जो-जो, रयणी--रात्रि, वच्चइ—व्यतीत होती जा रही है, सा—वह, ण पडिणियत्तई—लौट कर नहीं आ सकती, च—किन्तु, धम्मं--धर्म का, कुणमाणस्स-- सेवन करने वाले प्राणी की, राइओ—वे सब रात्रियां, सफला—सफल, जंति— हो जाती हैं अर्थात् धर्म का आचरण करने वाले पुरुष का जीवन सफल है ॥२५॥

एगओ संवसित्ताणं,दुहओ सम्मत्त-संजुया।
पच्छा जाया! गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले ।२६।

— अपने पुत्रों के उपरोक्त वचन सुन कर भृगु पुरोहित कहने लगा कि, जाया—हे पुत्रों! दुहओ—हम सब पहले, सम्मत्तसंजुया--सम्यक्त्व सहित श्रावक व्रत को धारण करके, एगओ—यहीं गृहस्थावास में एक साथ, संवसित्ताणं—रहें,

पच्छा--पीछे जब तुम्हारी अवस्था परिपक्व हो जायगी तब वृद्धावस्था आने पर, गमिस्सामो--दीक्षा ग्रहण कर लेंगे और, कुले-- ऊंच, नीच, मध्यम सभी कुलों में, भिक्खमाणा--शुद्ध भिक्षावृत्ति से संयम-यात्रा का निर्वाह करते हुए विचरेंगे ॥२६॥

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स अत्थि पलायणं ।
जो जाणे ण मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥२७॥

— पिता के वचन सुन कर पुत्रों ने उत्तर दिया कि हे पिताजी ! जस्स--जिस पुरुष को, मच्चुणा--मृत्यु के साथ, सक्खं-- मित्रता, अत्थि--हो, वा--अथवा, जस्स--जिस पुरुष की, पलायणं--मृत्यु के पाश से छूट कर भाग जाने की शक्ति, अत्थि--हो अथवा, जो-- जो पुरुष, जाणे--यह जानता हो कि, ण मरिस्सामि--में नहीं मरूँगा, हु--वास्तव में, सो--वही पुरुष, कंखे--ऐसी इच्छा कर सकता है कि, सुए सिया--यह कार्य में कल करलूँगा ॥२७॥

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो,
जहिं पवण्णा ण पुणब्भवामो ।
अणागयं णेव य अत्थि किंचि,
सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं ॥२८॥

— इसलिए हे पिताजी ! जहिं--जिस धर्म को, पवण्णा--स्वीकार करके, ण पुणब्भवामो--फिर जन्म हो न

लेना पड़े ऐसे, धम्मं – साधु-धर्म को हम, अज्जेव—आज ही, पडिवज्जयामो—अंगीकार करेंगे, य—और, किंचि—इस संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ, णेव—नहीं, अत्थि—है, अणागयं—जो इस जीव को प्राप्त न हुआ हो। अतः राग-भाव को, विणइत्तु—दूर करके, सद्धाखमं—धर्म में श्रद्धा रखना एवं साधुधर्म को अंगीकार करना, णे—हमारे लिए श्रेष्ठ है ॥२८॥

पहीण-पुत्तस्स हु णत्थि वासो,
वासिट्ठि ! भिक्खायरियाइ कालो।
साहाहि रुक्खो लहई समाहिं,
छिण्णाहि साहाहि तमेव खाणुं॥२९॥

— अब भृगु पुरोहित अपनी स्त्री को संबोध कर इस प्रकार कहने लगा, वासिट्ठि—हे वाशिष्ठि, भिक्खायरियाइ—अब मेरे लिए भिक्षाचर्या (दीक्षा अंगीकार करने का) कालो—अवसर आ पहुँचा है क्योंकि जिस प्रकार, साहाहि—शाखाओं से ही, रुक्खो—वृक्ष, समाहिं—समाधि एवं शोभा को, लहई—प्राप्त होता है और, साहाहि—शाखाओं के, छिण्णाहि—कट जाने से, तमेव—वही वृक्ष, खाणुं—स्थाणु (ठूंठ) कहलाता है। इसी प्रकार, पहीणपुत्तस्स—पुत्रों से रहित होकर अब मेरा, वासो—गृहस्थावास में रहना, णत्थि—अच्छा नहीं है और उस ठूंठ के समान शोभा रहित है ॥२९॥

पंखाविहूणोव्व जहेह पक्खी,
भिच्चविहूणो व्व रणे णरिंदो ।
विवण्णसारो वणिओ व्व पोए,
पहीणपुत्तो मि तहा अहं पि ॥३०॥

-- जहा—जैसे, इहं—इस संसार में, पंखाविहूणोव्व—पंख विना, पक्खी—पक्षी तथा, रणे—संग्राम में, भिच्चविहूणोव्व–सेवकों (सेना) रहित, णरिंदो—राजा और, पोए– जहाज में, विवण्णसारो—द्रव्य-रहित, वणिओव्व—व्यापारी शोभित नहीं होता, प्रत्युतः उन्हें शोक करना पड़ता है, तहा—वैसे ही, पहिणपुत्तो—पुत्रों से रहित, अहंवि—मैं भी, मि—शोभित नहीं होकर दुःखित होता हूँ ॥३०॥

सुसंभिया कामगुणा इमे ते,
संपिंडिया अग्ग-रसप्पभूया ।
भुंजामु ता कामगुणे पगामं,
पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं ॥३१॥

--पति के उपरोक्त वचन सुन कर यशा कहने लगी, अग्गरस—प्रधान रस वाले, इमे—ये, सुसंभिया—उत्तम, कामगुणा—काम-भोग, ते—तुम्हें, पभूया—पर्याप्त रूप से, संपिंडिया—प्राप्त हुए हैं, ता—इसलिए हम पहले, कामगुणे—इन काम-भोगों को, पगामं—उत्तम रीति से, भुंजामु—भोगों

और पच्छा--पीछे जब वृद्धावस्था आवेगी उस समय, पहाण-मग्गं— प्रधान मार्ग (संयम) को, गमिस्सामु— अंगीकार कर लेंगे ॥३१॥

भुत्ता रसा भोइ ! जहाइ णे वओ,
ण जीवियट्ठा पजहामि भोए ।
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं,
संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं ॥३२॥

— भृगु पुरोहित अपनी पत्नी को उत्तर देता है, भोइ— हे भाग्यशालिनि प्रिये, रसा—उत्तम रसों एवं काम-भोगों को, भुत्ता—हम भोग चुके हैं, वओ—युवावस्था अब, णे—हमें, जहाइ— छोड़ती जा रही है, इसलिए मैं, भोए—इन काम-भोगों को, पजहामि—छोड़ देना चाहता हूँ, ण जीवियट्ठा— असंयम जीवन के लिए एवं आगामी भव में उत्तम काम-भोगों की प्राप्ति की लालसा से मैं इन्हें नहीं छोड़ रहा हूँ, किन्तु त्यागी जीवन के, लाभं—लाभ, च—और, अलाभं—अलाभ, च—तथा, सुहं— सुख और, दुक्खं—दुःख इन सब को, संचिक्खमाणो—खूब सोच समझ कर मैं, मोणं—मुनिवृत्ति, चरिस्सामि— अंगीकार करता हूँ ॥३२॥

माहु तुमं सोयरियाण संभरे,
जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी ।

भुंजाहि भोगाइ मए समाणं,
दुक्खं खु भिक्खायरिया विहारो ॥३३॥

— यशा अपने पति से कहती है कि हे स्वामिन् ! व— जिस प्रकार, **पडिसोत्तगामी**—जल-प्रवाह के सम्मुख जाता हुआ, **जुण्णो**—बूढ़ा, **हंसो**—हंस अपनी असमर्थता के कारण बाद में पछताता है उसी प्रकार, **मा हु**—कहीं ऐसा न हो कि, **तुमं**—तुम भी दीक्षा लेकर फिर संयम के कष्टों से घबरा कर पश्चात्ताप करने लगो और, **सोयरियाण**— अपने स्वजन-सम्बन्धियों को तथा पहले भोगे हुए काम-भोगों को, **संभरे**— याद करने लगो। इसलिए में आपसे कहती हूँ कि, **मए**— मेरे, **समाणं**—साथ गृहस्थवास में रहते हुए, **भोगाइ**—इन प्राप्त हुए काम-भोगों को, **भुंजाहि**—भोगो, **खु**—क्योंकि, **भिक्खायरिया**—भिक्षु बन कर घर-घर भिक्षा माँगना तथा, **विहारो**—ग्रामानुग्राम अप्रतिबद्ध विहार करना आदि मुनि-जीवन की समस्त क्रियाओं का पालन करना, **दुक्खं**—बड़ा ही कष्टकारी है ॥३३॥

जहा य भोई तणुयं भुयंगो,
णिम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो।
एमेए जाया पयहंति भोए,
ते अहं कहं णाणुगमिस्समेक्को ?॥३४॥

— भृगु पुरोहित अपनी स्त्री से कहता है कि, भोई— हे भद्रे ! जहा—जिस प्रकार, भुयंगो—सर्प, तणुयं--अपने शरीर पर उत्पन्न हुई, णिम्मोयणि--कांचली को, हिच्च-- छोड़ कर, मुत्तो--निरपेक्ष हो कर, पलेइ —भाग जाता है, य—और वह पिछे फिर कर उसे देखता तक नहीं, एमेए— इसी प्रकार ये, जाया--मेरे दोनों पुत्र, भोए--कामभोगों को, पजहंति--छोड़ कर चले जा रहे हैं ऐसी अवस्था में, अहं— मैं भी, ते—उन दोनों के साथ, कहं--क्यों, ण--नहीं, अणुगमिस्सं—उनके साथ चला जाऊँ, इक्को—मैं अकेला पीछे रह कर क्या करूँ ॥३४॥

छिंदित्तु जालं अबलं व रोहिया,
मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।
धोरेय-सीला तवसा उदारा,
धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ॥३५॥

— उपरोक्त कथन सुन कर यशा अपने मन में विचार करने लगी कि जहा—जिस प्रकार, रोहिया—रोहित जाती के, मच्छा--मच्छ, अवलं—जीर्ण, जालं—जाल को, छिंदित्तु-- तोड़ कर उससे निकल कर भाग जाता है, व—उसी प्रकार ये सब लोग, कामगुणे—काम-भोगों को, पहाय—छोड़ कर जा रहे हैं और, हु— जैसे, धोरेयसीला—जातिवंत बैल रथ के भार को अपने कंधों पर उठाते हैं उसी प्रकार, धीरा— ये

धीर और, उदारा--गम्भीर पुरुष, तवसा--तपश्चर्या और, भिक्खायरियं—भिक्षाचर्या को—संयम मार्ग को, चरंति—अंगीकार करने के लिए उद्यत हो रहे हैं ॥३५॥

णहेव कुंचा समइक्कमंता,
तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा।
पलिंति पुत्ता व पई य मज्झं,
ते हं कहं णाणुगमिस्समेक्का ॥३६॥

— यशा अपने मन में विचार करती है कि व—जिस प्रकार, कुंचा—क्रौंच पक्षी, समइक्कमंता—अनेक प्रदेशों को उल्लंघन करते हुए, णहे—आकाश में उड़ जाते हैं, य—और हंसा—हंस, तयाणि—विस्तीर्ण, जालाणि— जालों को, दलित्तु---भेदन कर के, पलिंति---अपनी इच्छानुसार आकाश में उड़ जाते हैं इसी प्रकार, मज्झं---मेरे, पुत्ता---दोनों पुत्र, य—और, पई— पति सासांरिक बन्धनों को तोड़ कर एवं कामभोगों को छोड़ कर त्याग-मार्ग अंगीकार कर रहे हैं ऐसी अवस्था में, अहं--मैं भी ते—उनके साथ, कहं-- क्यों, ण--- नहीं, अणुगमिस्सं—अनुसरण करूँ (जाऊँ) अर्थात् इक्का— मैं अकेली पीछे रह कर क्या करूँ ? ॥३६॥

— भृगु पुरोहित, उसकी भार्या यशा और दोनों कुमार इन चारों की एक सम्मति हो गई। वे अपना घरबार एवं

संपत्ति छोड़ कर वे चारों दीक्षा लेने के लिए घर से निकल गये। उनकी संपत्ति का कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण वह सब राज्य-भंडार में लाई जाने लगी।

पुरोहियं तं ससुयं सदारं,
सोच्चाभिणिक्खम्म पहाय भोए।
कुडुंबसारं विउलुत्तमं च,
रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥३७॥

— भोए—समस्त काम-भोगों का, पहाय—त्याग करके, पुरोहियं—भृगु पुरोहित, ससुयं—अपने दोनों पुत्रों और, सदारं—स्त्री के साथ, अभिक्खम्म—दीक्षा अंगीकार करने के लिए घरबार छोड़ कर निकल गया है, तं—यह बात, सोच्चा—सुन कर, च—तथा, विउलुत्तमं—उसकी विपुल एवं विस्तीर्ण, कुडुंबसारं—धन संपत्ति को राजा लेना चाहता है, यह बात जान कर, देवी—उसकी पटरानी, कमलावती, अभिक्खं—बार-बार, रायं—राजा को इस प्रकार, समुवाय—कहने लगी ॥३७॥

वंतासी पुरिसो रायं!, ण सो होइ पसंसिओ।
माहणेण परिच्चत्तं, धणमादाउ मिच्छसि ॥३८॥

— रायं—हे राजन्! माहणेण—ब्राह्मण द्वारा,

परिच्चत्तं— छोड़े हुए, धणं—धन को, आदाउं—आप ग्रहण करना चाहते हैं, परन्तु आपको यह मालूम होना चाहिए कि, वंतासी—वमन किये हुए पदार्थ को खाने वाला, पुरिसो—पुरुष, पसंसिओ—प्रशंसित, ण होइ—नहीं होता, अपितु उसकी सर्वत्र निन्दा ही होती है ॥३८॥

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वावि धणं भवे ।
सव्वं वि ते अपज्जत्तं, णेव ताणाय तं तव ॥३९॥

— हे राजन् ! जइ—यदि, सव्वं—यह सारा, जगं—जगत्, तुहं—तुम्हारा हो जाय, वावि—अथवा, सव्वं—संसार का सारा, धणं—धन, भवे—तुम्हारा हो जाय तो भी, सव्वं वि—ये सब, ते—तुम्हारे लिए, अपज्जत्तं—अपर्याप्त ही है अर्थात् संसार के सारे पदार्थ भी तुम्हारी तृष्णा को पूर्ण करने में असमर्थ ही हैं क्योंकि तृष्णा आकाश के समान अनन्त है और धन असंख्यात ही है, तं—यह धन जन्म-मृत्यु के कष्टों से, तव—तुम्हारी, ताणाय—रक्षा, णेव—नहीं कर सकता ॥३९॥

मरिहिसि रायं ! जया तया वा,
मणोरमे कामगुणे पहाय ।
इक्को हु धम्मो णरदेव ! ताणं,
ण विज्जई अण्णमिहेह किंचि ॥४०॥

णाहं रमे पक्खिणी पंजरे वा,
संताण-छिण्णा चरिस्सामि मोणं ।
अकिंचणा उज्जुकडा णिरामिसा,
परिग्गहारंभ-णियत्तदोसा ॥४१॥

— रानी पुनः राजा से कहती है कि राजन्! पक्खिणी वा—जैसे पक्षिणी, पंजरे—पिंजरे में आनन्द नहीं पाती उसी प्रकार राज्य-सुखों से परिपूर्ण इस अन्तःपुर रूपी पिंजरे में, अहं—मैं भी, ण रमे—आनन्द नहीं मानती हूँ, इसलिए, संताण छिण्णा—स्नेह बन्धनों को तोड़ कर, परिग्गहारंभ-णियत्तदोसा—आरम्भ और परिग्रह रूपी दोषों से निवृत्त हो कर एवं, अकिंचणा—द्रव्य-भाव से परिग्रह-रहित हो कर तथा, णिरामिसा—कामभोगादि की लालसा रहित हो कर, उज्जुकडा—सरल स्वभावी बन कर, मोणं चरिस्सामि—मैं संयम स्वीकार करूँगी ॥४१॥

दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्झमाणेसु जंतुसु ।
अण्णे सत्ता पमोयंति, रागद्दोसवसं गया ॥४२॥

एवमेव वयं मूढा, कामभोगेसु मुच्छिया ।
डज्झमाणं ण बुज्झामो, रागद्दोसग्गिणा जगं ॥४३॥

— जहा—जैसे, अरण्णे—वन में, दवग्गिणा—दावाग्नि लगने से और उसमें, जंतुसु—जीवों को, डज्झमाणेसु—

जलते हुए देख कर, अण्णे—दूसरे, सत्ता—प्राणी, रागद्दोसवसंगया—राग-द्वेष के वश हो कर, पमोयंति—प्रसन्न होते हैं, किन्तु वे बिचारे यह नहीं जानते हैं कि बढ़ती हुई यह दावाग्नि हमें भी भस्म कर देगी, इसलिए हमें इससे बचने का उपाय करना चाहिए, एवमेव—इसी प्रकार, कामभोगेसु—कामभोगों में, मुच्छिया— मूर्च्छित बन कर, वयं— हम, मूढा—अज्ञानी लोग भी, ण बुज्झामो—यह नहीं समझते कि, जगं—सारा संसार, रागद्दोसग्गिणा—राग-द्वेष रूपी अग्नि से, डज्झमाणं—जल रहा है। यह अग्नि हमें भी, जला देगी, इसलिए हमें इस अग्नि से बचने का प्रयत्न करना चाहिए ॥४२-४३॥

भोगे भुच्चा वमित्ता य, लहुभूयविहारिणो ।
आमोयमाणा गच्छंति, दिया कामकमा इव ॥४४॥

— जो विवेकी मनुष्य होते हैं वे आयुपर्यन्त काम-भोगों में खुचे हुए नहीं रहते किन्तु, भुच्चा—पहले भोगे हुए, भोगे—काम-भोगों को, वमित्ता— छोड़ कर, आमोयमाणा—प्रसन्नता के साथ संयम स्वीकार करते हैं और, इव—जैसे, दिया—पक्षी, कामकमा—अपनी इच्छानुसार आकाश में उड़ते हैं उसी प्रकार वे भी, लहुभूयविहारिणो गच्छंति—वायु के समान लघुभूत होकर अप्रतिबद्ध विहार करते हैं ॥४४॥

इमे य बद्धा फंदंति, मम हत्थज्जमागया ।
वयं च सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे ॥४५॥

— अज्जं—हे आर्य ! मम—अपने को, हत्य आगया—प्राप्त हुए, कामेसु—काम-भोगों में, वयं—हम, सत्ता—गृद्ध बने हुए हैं, य— किन्तु, बद्धा—अनेक उपायों से इनकी रक्षा करने पर भी, इमे—ये काम-भोग, फंदंति—कभी स्थिर रहने वाले नहीं हैं अर्थात् कभी न कभी ये हमें छोड़ देंगे तो फिर, जहा—जिस प्रकार, इमे—इन भृगु पुरोहित आदि ने इनको छोड़ दिया है, उसी प्रकार हम भी क्यों न छोड़ दें ? भविस्सामो—हम भी दीक्षा अंगीकार करेंगे ॥४५॥

सामिस्सं कुललं दिस्स, वज्झमाणं णिरामिसं ।
आमिसं सव्वमुज्झित्ता, विहरिस्सामि णिरामिसा ॥४६॥

— कुललं—जैसे किसी पक्षी के मुँह में, सामिसं—मांस के टुकड़े को, दिस्स—देख कर, वज्झमाणं— दूसरे पक्षी उस पर झपटते हैं और उसे अनेक प्रकार से पीड़ा पहुँचाते हैं किन्तु, णिरामिसं—जब वही पक्षी मांस के टुकड़े को छोड़ देता है, तो फिर उसे कोई नहीं सताता। इसी प्रकार हे राजन् ! मैं भी, आमिसं—मांस के टुकड़े के समान, सव्वं—इस समस्त धन-धान्यादि परिग्रह को, उज्झित्ता—छोड़ कर तथा, णिरामिसा—समस्त बन्धनों से रहित होकर, विहरिस्सामि— संयम-मार्ग में विचरूँगी ॥४६॥

गिद्धोवमा उ णच्चा णं, कामे संसार-वड्ढणे।
उरगो सुवण्ण-पासे व्व, संकमाणो तणुं चरे ॥४७॥

— **गिद्धोवमा**—उपरोक्त गृद्ध पक्षी की उपमा सुन कर, **य**—और, **कामे**—काम-भोगों को, **संसार वड्ढणे**—संसार की वृद्धि करने वाले, **णच्चा णं**—जान कर मुमुक्षु पुरुष को चाहिए कि, **सुवण्ण पासे व्व उरगो**—जैसे सर्प, गरुड़ पक्षी के सामने **संकमाणो**—शंकित होकर, **तणुं**—धीरे-धीरे, **चरे**—निकल जाता है उसी प्रकार साधु विषय-भोगों से शंकित हो कर संयम-मार्ग में प्रवृत्ति करे ॥४७॥

णागो व्व बंधणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए।
एयं पत्थं महारायं, उस्सुयारित्ति! मे सुयं ॥४८॥

— **णागो व्व**—जैसे हाथी, **बंधणं**—सांकल आदि के बन्धन को, **छित्ता**—तोड़ कर, **अप्पणो**—अपने, **वसहिं**—स्थान पर, **वए**—चला जाता है और वहां सुखपूर्वक रहता है इसी प्रकार, **उस्सुयार महारायं**—हे इषुकार महाराज! कर्म बन्धनों से छूट जाने पर यह आत्मा भी परमानन्द स्वरूप मोक्ष को प्राप्त हो जाता है, **एयं त्ति**—ऐसा, **पत्थं**—हितकारी उपदेश, **मे**—मैंने, **सुयं**—तत्त्वज्ञ पुरुषों से सुना है ॥४८॥

चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए।
णिव्विसया णिरामिसा, णिण्णेहा णिप्परिग्गहा ॥४९॥

— रानी कमलावती के उपदेश से राजा को प्रतिबोध हो गया, फिर राजा और रानी दोनों, विउलं—विस्तीर्ण, रज्जं—राज्य को, चइत्ता—छोड़ कर, य—और दुच्चए—दुस्त्याज्य (कठिनता से छोड़े जाने योग्य) अथवा दुर्जय (कठिनाई से जीते जाने वाले) कामभोगे—कामभोगों को, चइत्ता—छोड़ कर, णिव्विसया—विषयों से रहित, णिरामिसा—धनधान्यादि के ममत्व से रहित, णिण्णेहा—स्नेह से रहित और, णिप्परिग्गहा—परिग्रह से रहित हो गये ॥४९॥

सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चिच्चा कामगुणे वरे ।
तवं पगिज्झहक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा ॥५०॥

— सम्मं—सम्यक्, धम्मं—धर्म को, वियाणित्ता—जान कर तथा, वरे—प्रधान, कामगुणे—कामभोगों को, चिच्चा—छोड़ कर के, अहक्खायं—तीर्थंकर भगवान् द्वारा कहे गये घोरं—घोर, तवं—तप को, पगिज्झ—स्वीकार कर के, घोरपरक्कमा—तप-संयम में घोर पराक्रम करने लगे ॥५०॥

एवं ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्म-परायणा ।
जम्म-मच्चु-भउव्विग्गा, दुक्खस्संत-गवेसिणो ॥५१॥

— एवं—इस प्रकार, ते—वे, सव्वे—सब (छहों) जीव, कमसो—क्रमशः, बुद्धा—प्रतिबोध पाकर, धम्मपरायणा—धर्म में तत्पर हुए तथा, जम्ममच्चुभउव्विग्गा—जन्म और मृत्यु

के भय से उद्विग्न होकर, दुक्खसंतगवेसिणो--दुःखों का समूल नाश करने के लिए उदयमवंत बने ॥५१॥

सासणे विगयमोहाणं, पुव्विं भावण-भाविणा ।
अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्संतमुवागया ॥५२॥

-- विगयमोहाणं---राग-द्वेष को जीतने वाले तीर्थंकर भगवान् के, सासणे— शासन में, पुव्विं— पूर्व-भव की, भावणभाविया---भावना से भावित हुए वे छहों जीव, अचिरेणेव--थोड़े ही, कालेण—समय में, दुक्खस्स—समस्त दुःखों के, अंतं—अन्त को, उवागया—प्राप्त हो गये अर्थात् सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गये ॥५२॥

राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ ।
माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिणिव्वुडे । त्तिबेमि । ।५३।

-- देवीए सह—कमलावती रानी सहित, राया—इषुकार राजा, य--और, माहणो पुरोहिओ--भृगु पुरोहित, चेव—तथा, माहणी-- उसकी भार्या यशा और, दारगा—दोनों कुमार, ते—वे, सव्वे—सभी जीव, परिणिव्वुडे—मोक्ष को प्राप्त हो गये । त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ॥५३॥

॥ चौदहवां अध्ययन समाप्त ॥

सभिक्खु पन्द्रहवाँ अध्ययन

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं,
सहिए उज्जुकडे णियाणछिण्णे।
संथवं जहिज्ज अकामकामे,
अण्णाय एसी परिव्वए स भिक्खू ॥१॥

— धम्मं—जिसने विवेकपूर्वक सच्चे धर्म का, समिच्च-विचार कर के, मोणं—मुनिवृत्ति, चरिस्सामि—अंगीकार की है, सहिए—जो सम्यग्दर्शनादि से युक्त है, उज्जुकडे—जो माया-रहित होकर सरल और, णियाणछिण्णे—नियाणा-रहित तप-संयमादि क्रिया करने वाला है, संथवं—जिसने अपने गृहस्थाश्रम के सम्बन्धियों के परिचय का, जहिज्ज—त्याग कर दिया है, अकामकामे—जो विषय-भोगों की अभिलाषा से रहित है, तथा, अण्णायएसी—अज्ञात कुलों में गोचरी करता हुआ, परिव्वए—अप्रतिबद्ध विहार करता है, स—वह, भिक्खू—भिक्षु कहलाता है ॥१॥

राओवरयं चरेज्ज लाढे,
विरए वेयवियायरक्खिए।
पण्णे अभिभूय सव्वदंसी,
जे कम्हि वि ण मुच्छिए स भिक्खू ॥२॥

राओवरयं— राग-रहित और, लाढे— संयम मार्ग में दृढ़तापूर्वक, चरेज्ज—विचरने वाला, — विरए--असंयम से निवृत्त, वेयविय--शास्त्रों का ज्ञाता, आयरक्खिए— आत्मरक्षक पण्णे—बुद्धिमान्, अभिभूय— परीषह (उपसर्गों) को समभावपूर्वक सहन करने वाला, सव्वदंसी—सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखने वाला तथा, जे--जो, कम्हि वि—किसी भी पदार्थ में, ण मुच्छिए—ममत्व नहीं रखता है, स—वह, भिक्खू--भिक्षु है ॥२॥

अक्कोसवहं विइत्तु धीरे,
मुणी चरे लाढे णिच्चमायगुत्ते ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे,
जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥३॥

-- यदि कोई साधु को, अक्कोस वहं—कठोर वचन कहे अथवा मारे-पीटे तो उसे, विइत्तु—अपने पूर्वकृत कर्मों का फल जान कर, मुणी--जो मुनि, धीरे—समभावपूर्वक सहन करता है और जो, लाढे—श्रेष्ठ कार्यों में, चरे— प्रवृत्ति करता है तथा, णिच्चं-- सदा, आयगुत्ते—आत्मगुप्त (पापकार्यों से) अपनी आत्मा की रक्षा करता है और, जे--जो, अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे—चित्त में किसी प्रकार का हर्ष-विषाद न लाते हुए, कसिणं—संयम मार्ग में आने वाले सभी कष्टों को, अहियासए—समभावपूर्वक सहन करता है, स—वह, भिक्खू—भिक्षु है ॥३॥

पंतं सयणासणं भइत्ता, सीउण्हं विवहं च दंसमसगं।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू॥

--पंतं--जीर्ण, सयणासणं--शय्या और आसन के, भइत्ता--मिलने पर, च--तथा, सीउण्हं--शीत-उष्ण, दंसमसगं--डांस-मच्छर आदि, विविहं--अनेक प्रकार के परीषहों के उत्पन्न होने पर, जे--जो, अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे--चित्त में किसी प्रकार की व्याकुलता न लाता हुआ एवं हर्ष-विषाद न करता हुआ, कसिणं--सभी कष्टों को, अहियासए--समभावपूर्वक सहन करता है, स--वह, भिक्खू--भिक्षु है॥४॥

णो सक्कियमिच्छई ण पूयं,
णो वि य वंदणगं कुओ पसंसं।
से संजए सुव्वए तवस्सी,
सहिए आयगवेसए स भिक्खू॥५॥

-- जो सक्कियं--सत्कार, य--और, पूयं--पूजा-प्रतिष्ठा की, णं इच्छई--इच्छा नहीं रखता है, वंदणगं--वन्दना और, पसंसं--प्रशंसा की, कुओ वि--किञ्चिन्मात्र भी, णो इच्छइ--इच्छा नहीं रखता है, से--वह, संजए--संयती, सुव्वए--सुव्रती, तवस्सी--तपस्वी, सहिए--सम्यग् ज्ञानवान् एवं, आयगवेसए--आत्म-गवेषक है, स--वह, भिक्खू--भिक्षु है॥५॥

जेण पुणो जहाइ जीवियं,
मोहं वा कसिणं णियच्छइ ।
णरणारीं पजहे सया तवस्सी,
ण य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू ॥६॥

— जेण—जिनका संग करने से, जीवियं—संयम रूप जीवन का, पुणो—सर्वथा, जहाइ—विनाश होता हो, वा—अथवा, कसिणं—सम्पूर्ण, मोहं—मोहनीय कर्म का, णियच्छइ—बन्ध होता हो, णरणारीं—ऐसे नर और नारी की संगति को, तवस्सी—जो तपस्वी मुनि, सया—सदा के लिए, पजहे—छोड़ देता है, य—और जो, कोऊहलं—कुतूहल को, ण उवेइ—प्राप्त नहीं होता एवं पूर्व भोगे हुए भोगादि का स्मरण नहीं करता है, स—वह, भिक्खू—भिक्षु है ॥६॥

छिण्णं सरं भोममंतलिक्खं,
सुमिणं लक्खण-दंड-वत्थुविज्जं ।
अंगवियारं सरस्स विजयं,
जे विज्जाहिं ण जीवइ स भिक्खू ॥७॥

— छिण्णं—वस्त्र-काष्ठादि छेदने की विद्या, सरं—स्वर-विद्या, भोमं—भूकम्प विद्या, अंत लिक्खं—आकाश सम्बन्धी विद्या, सुमिणं—स्वप्न-विद्या (स्वप्नों का फल बताने वाली विद्या) लक्खण—लक्षण शरीर के लक्षणों द्वारा सुख-दुःख बताने

जेण पुणो जहाइ जीवियं,
मोहं वा कसिणं णियच्छइ ।
णरणारीं पजहे सया तवस्सी,
ण य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू ॥६॥

— जेण—जिनका संग करने से, जीवियं—संयम रूप जीवन का, पुणो—सर्वथा, जहाइ—विनाश होता हो, वा—अथवा, कसिणं—सम्पूर्ण, मोहं—मोहनीय कर्म का, णियच्छइ—बन्ध होता हो, णरणारीं—ऐसे नर और नारी की संगति को, तवस्सी—जो तपस्वी मुनि, सया—सदा के लिए, पजहे—छोड़ देता है, य—और जो, कोऊहलं—कुतूहल को, ण उवेइ—प्राप्त नहीं होता एवं पूर्व भोगे हुए भोगादि का स्मरण नहीं करता है, स—वह, भिक्खू—भिक्षु है ॥६॥

छिण्णं सरं भोममंतलिक्खं,
सुमिणं लक्खण-दंड-वत्थुविज्जं ।
अंगवियारं सरस्स विजयं,
जे विज्जाहिं ण जीवइ स भिक्खू ॥७॥

— छिण्णं—वस्त्र-काष्ठादि छेदने की विद्या, सरं—स्वर-विद्या, भोमं—भूकम्प विद्या, अंत लिक्खं—आकाश सम्बन्धी विद्या, सुमिणं—स्वप्न-विद्या (स्वप्नों का फल बताने वाली विद्या) लक्खण—लक्षण शरीर के लक्षणों द्वारा सुख-दुःख बताने

वाली विद्या, दंड—दंड-विद्या, वित्थुविज्जं— वास्तु-विद्या, अंगवियारं—अंग-स्फुरण के शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या और, सरस्स विजयं—पशु-पक्षियों की बोली जानने की विद्या, विज्जाहिं—इन कुत्सित एवं निन्दित विद्याओं से, जो—जो, ण जीवइ—अपनी आजीविका नहीं करता है, स—वह, भिक्खू—भिक्षु है ॥७॥

मंतं मूलं विविहं वेज्जचितं,
वमण-विरेयण-धूमणेत्त-सिणाणं ।
आउरे सरणं तिगिच्छियं च,
तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू ॥८॥

— मंतं—मंत्र-तंत्रादि का प्रयोग, मूलं—जड़ी-बूंटी, विविहं—अनेक प्रकार के, वेज्जचितं—वैद्यक प्रयोग, वमण—वमन, विरेयण—विरेचन, धूम—धूम्र प्रयोग, णेत्त—आँख का अञ्जन, सिणाणं—स्नान, आउरे सरणं—रोग से पीड़ित होने पर 'हा मात ! हा तात !' इत्यादि विलाप करना, च—और, तिगिच्छियं—चिकित्सा इत्यादि प्रयोग, जो अपने लिए नहीं करे तथा दूसरों के लिए भी न करे-करावे, तं—इन सब को, परिण्णाय—ज्ञ-परिज्ञा से जान कर, परिव्वए—प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग देता है, स—वह, भिक्खू—भिक्षु है ॥८॥

खत्तियगण-उग्गरायपुत्ता,
माहण-भोइय विविहा य सिप्पिणो ।

णो तेसिं वयइ सिलोग-पूयं,
तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू ॥९॥

— खत्तिय— क्षत्रिय, गण— मल्ल-योद्धा, उग्ग--कोतवाल, रायपुत्ता—राजपुत्र, माहण—ब्राह्मण, भोइय--प्रधान, य—और, विविहा—नाना प्रकार के, सिप्पिणो--कलाकार, तेसिं—इन सब की, सिलोगपूयं णो वयइ—जो प्रशंसा नहीं करता और पूजा भी नहीं करता, किन्तु, तं--इन कार्यों को साधुओं के लिए अयोग्य, परिण्णाय—जान कर, परिव्वए--छोड़ देता है, स—वह, भिक्खू--भिक्षु है ॥९॥

गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अपव्वइएण व संथुया हविज्जा
तेसिं इह-लोइय-फलट्ठा, जो संथवं ण करेइ स भिक्खू ।१०।

— पव्वइएण— दीक्षा लेने के पश्चात्, जे— जिन, गिहिणो--गृहस्थों को, दिट्ठा—देखने का प्रसंग आया हो और जिनके साथ परिचय हुआ हो, व—अथवा, अपव्वइएण—गृहस्थावस्था में रहते समय जिन गृहस्थों के साथ, संथुया—परिचय, हविज्जा—हुआ हो, तेसिं—इस प्रकार दोनों अवस्था में परिचय में आने वाले गृहस्थों के साथ, इहलोइयफलट्ठा—इहलौकिक फल की प्राप्ति के लिए, जो--जो, संथवं—विशेष परिचय, ण करेइ—नहीं करता है, स—वह, भिक्खू—भिक्षु है ॥१०॥

सयणासणपाणभोयणं, विविहं खाइमं-साइमं परेसिं।
अदए पडिसेहिए णियंठे, जे तत्थ ण पउस्सई स भिक्खू।११।

-- सयणासणपाणभोयणं -- शय्या, आसन, पानी और आहार तथा, विविहं--अनेक प्रकार के, खाइमं साइमं -- खादिम और स्वादिम पदार्थ, परेसिं--गृहस्थ के घर में रहे हों, किन्तु मुनि द्वारा उन पदार्थों की याचना करने पर भी यदि वह, अदए--न दे और, पडिसेहिए--मना कर दे तो भी, जो--जो, णियंठे--निर्ग्रन्थ मुनि, तत्थ--उस गृहस्थ पर, ण पउस्सइ--द्वेष न करे, स--वह, भिक्खू--भिक्षु है ॥११॥

जं किंचि आहारपाणगं विविहं खाइमंसाइमं परेसिं लद्धुं।
जो तं तिविहेण णाणुकंपे, मणवयकाय सुसंवुडे जे स भिक्खू ॥

परेसिं-- गृहस्थों के घर से, जं किंचि--जो कुछ, आहार पाणगं--आहार-पानी और, विविहं-- अनेक प्रकार के, खाइमं साइमं--खादिम और स्वादिम, लद्धुं--प्राप्त करके, जो--जो, णा--साधु, तिविहेण--मन-वचन काया से, अणुकंपे--बाल, वृद्ध और ग्लान साधुओं पर अनुकम्पा करता है, अर्थात्, तं--उस आहारादि का संविभाग करने के पश्चात् स्वयं आहार करता है, जे--जो, -मणवयकाय सुसंवुडे--मन-वचन और काया को वश में रखता है, स--वह, भिक्खू--भिक्षु है, (इस गाथा में आये हुए 'णाणुकंपे' का अर्थ टीका में इस प्रकार भी किया है कि भिक्षु द्वारा प्राप्त हुए

आहारादि का जो, णाणुकंपे—साथी साधुओं में संविभाग नहं करता है वह भिक्षु नहीं है, जो संविभाग करता है वह भिक्ष कहलाता है। ऐसा करने में 'न' की पुनरावृत्ति करनी पड़त है, यह क्लिष्ट कल्पना है। इसलिए पहला अर्थ ही ठीक है क्योंकि दोनों तरह से वही अर्थ है, फिर सरल अर्थ को छोड़ कर क्लिष्ट कल्पना करना व्यर्थ है) ॥१२॥

आयामगं चेव जवोदणं च, सीयं सोवीर जवोदगं च।
णोहीलए पिंडं णीरसं तु, पंत-कुलाई परिव्वए स भिक्खू।१३

— गृहस्थों के घर से मिले हुए निर्दोष, आयामगं—ओसामण (चावल आदि का पानी) चेव—और, जवोदणं—जौ का दलिया, च—और, सीयं—ठंडा आहार, सोवीर—कांजी आदि का पानी, च—और, जवोदगं—जौ का पानी, तु—और णीरसं—नीरस, पिंडं—आहारादि के मिलने पर जो, णो हीलए—उसकी अवहेलना (निन्दा) नहीं करता तथा, पंतकुलाइं—प्रान्त कुल (दरिद्र कुल) एवं सामान्य स्थिति के घरों में भी, परिव्वए— भिक्षावृत्ति करता है, स—वह, भिक्खू—भिक्षु है ॥१.॥

सद्दा विविहा भवंति लोए,
दिव्वा माणुस्सगा तहा तिरिच्छा।
भीमा भयभेरवा उराला,
सोच्चा ण विहिज्जई स भिक्खू ॥१४॥

— लोए—लोक में, दिव्वा—देव, माणुस्सगा—मनुष्य, तहा—और, तिरिच्छा—तिर्यंच सम्बन्धी, विविहा—नाना प्रकार के, भीमा—भयंकर, भयभेरवा—भयोत्पादक और, उराला—महान्, सद्दा—शब्द, भवंति—होते हैं, उन्हें, सोच्चा—सुन कर, ण विहिज्जइ—जो भयभीत हो कर धर्मध्यान से चलित नहीं होता, स वह, भिक्खू—भिक्षु है ॥१४॥

वादं विविहं समिच्च लोए, सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा।
पण्णे अभिभूय सव्वदंसी, उवसंते अविहेडए स भिक्खू।१५।

— लोए—लोक में प्रचलित, विविहं—नाना प्रकार के, वादं—वादों को, समिच्च—जान कर जो, कोवियप्पा—विचक्षण साधु, सहिए—अपने आत्मधर्म में स्थिर रहता हुआ, खेयाणुगए—संयम में दत्तचित्त रहता है, य—और, पण्णे—जो बुद्धिमान् साधु, अभिभूय—सभी परीषहों को समभावपूर्वक सहन करता है, तथा, सव्वदंसी—समस्त जीवों को अपनी आत्मा के समान देखता हुआ, उवसंते—कषायों पर विजय प्राप्त करता है और, अविहेडए—किसी जीव को पीड़ा नहीं पहुँचाता, स—वह, भिक्खू—भिक्षु है ॥१५॥

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते,
जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्के।
अणुक्कसाई लहु अप्पभक्खी,
चिच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू। त्ति बेमि।

—असिप्पजीवी--शिल्प-कला द्वारा अपना निर्वाह न करने वाला, अगिहे--घरबार से रहित, अमित्ते—मित्र एवं शत्रु-रहित (रागद्वेष-रहित) जिइंदिए--जितेन्द्रिय, सव्वओ-विप्पमुक्के--बाह्य और आभ्यन्तर बन्धनों से रहित, अणुक्कसाई—अल्प कषाय वाला, लहुअप्पभक्खी—अल्प एवं परिमित आहार करने वाला, गिहं—द्रव्य और भाव परिग्रह को, चिच्चा—छोड़ कर, तथा एगचरे— रागद्वेष-रहित हो कर जो विचरता है, स-- वह, भिखू—भिक्षु है। त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ॥१६॥

॥ पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त ॥



ब्रह्मचर्य-समाधि नामक सोलहवाँ अ०

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं। इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहि-ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सुच्चा णिसम्म संजमबहुले संवर-बहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥

— श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि, आउसं— हे आयुष्मन् ! मे--मैंने, सुयं— सुना है,

तेणं—उन, भगवया—भगवंतों ने, एवं—इस प्रकार, अक्खायं—फरमाया है, इह—इस जिन-शासन में, थेरेहिं—स्थविर, भगवंतेहिं—भगवंतों ने, दस बंभचेर समाहिठाणा—ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थान, पण्णत्ता—बताये हैं, जे—जिन्हें, सुच्चा—सुन कर और, णिसम्म—हृदय में धारण करके, भिक्खू—साधु, संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले—संयम संवर और समाधि में दृढ़ हो कर, गुत्ते—मन-वचन-काय से गुप्त, गुत्तिदिए—गुप्तेन्द्रिय और, गुत्तबंभयारी—गुप्त ब्रह्मचारी होकर, सया—सदा, अप्पमत्ते—अप्रमत्त भाव से, विहरेज्जा—विचरे।

'कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहिठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सुच्चा णिसम्म संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥

— शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! खलु—निश्चय ही, ते—वे, दस बंभचेर समाहिठाणा—ब्रह्मचर्य के दस समाधि स्थान, कयरे—कौन-से जिन्हें, थेरेहिं—स्थविर, भगवंतेहिं—भगवंतों ने, पण्णत्ता—प्रतिपादन किये हैं। 'जे भिक्खू' से 'विहरेज्जा' तक का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥

इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहिठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सुच्चा णिसम्म संजमबहुले संवर-

बहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥

— गुरु कहते हैं कि, खलु— निश्चय ही, ते—वे, दस बंभचेरे समाहिठाणा— ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थान, थेरेहिं— स्थविर, भगवंतेहिं—भगवंतों ने, इमे— इस प्रकार, पण्णत्ता—फरमाये हैं। 'जे भिक्खू' से 'विहरेज्जा' तक का शब्दार्थ पूर्ववत् है।

तंजहा—विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से णिग्गंथे। णो इत्थीपसुपंडग संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे ? आयरियाह— णिग्गंथस्स खलु इत्थीपसुपंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीपसुपंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेविज्जा ॥१॥

— तंजहा— जैसे कि, विवित्ताइं—जो विविक्त अर्थात् स्त्री, पशु और नपुंसक रहित, सयणासणाइं—शय्या और आसनादि का, सेवित्ता— सेवन करता है, से— वह

णिग्गंथे—निर्ग्रंथ, हवइ—होता है और, इत्थीपसुपंडग संसत्ताई—जो स्त्री, पशु और नपुंसक से युक्त, सयणासणाइं—शय्या और आसनादि का, सेवित्ता हवइ—सेवन करता है, से—वह, णो णिग्गंथे—निर्ग्रंथ नहीं है। तं कहमिति चे—शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! निर्ग्रंथ को स्त्री पशु और नपुंसक युक्त शय्या-आसनादि का सेवन क्यों नहीं करना चाहिए? आयरियाह—आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि, खलु—निश्चय से, इत्थीपसुपंडग संसत्ताइं—स्त्री, पशु-नपुंसक युक्त, सयणासणाइं—शय्या और आसनादि का, सेवमाणस्स—सेवन करने वाले, णिग्गंथस्स—निर्ग्रंथ, बंभयारिस्स—ब्रह्मचारी को, बंभचेरे—ब्रह्मचर्य में, संका—शंका, वा—अथवा, कंखा—कांक्षा - भोग-भोगने की इच्छा, वा—अथवा, विइगिच्छा वा—ब्रह्मचर्य के फल के प्रति सन्देह, समुप्पज्जिज्जा—उत्पन्न हो सकता है, वा—अथवा विषयेच्छा जाग्रत होने से, भेदं—संयम का एवं ब्रह्मचर्य का विनाश, लभेज्जा—होने की, वा—तथा, उम्मायं—उन्माद की, लभेज्जा—प्राप्ति होने की संभावना रहती है वा—और ऐसे कुविचारों के तथा दुष्कार्य के फल-स्वरूप, दीहकालियं—दीर्घकाल तक रहने वाला, रोगायंका—शारीरिक रोग, हविज्जा—उत्पन्न हो जाता है, वा—इस प्रकार क्रमशः पतित होते हुए वह, केवलिपण्णत्ताओ—केवल-ज्ञानियों द्वारा प्ररूपित, धम्माओ—धर्म से, भंसिज्जा—भ्रष्ट हो जाता है, तम्हा—इसलिए, खलु—निश्चय से, णिग्गंथे—

निर्ग्रन्थ मुनि को, इत्थीपसुपंडग संसत्ताइं—स्त्री, पशु और नपुंसक से युक्त, सयणासणाइं—शय्या और आसनादि का, णो सेविज्जा—सेवन नहीं करना चाहिए ॥१॥

णो इत्थीणं कहं कहित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे ? आयरियाह— णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं कहं कहेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिजज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं कहं कहेज्जा ॥२॥

— जो, इत्थीणं—स्त्रियों की, कहं—कथा एवं स्त्रियों के श्रृंगारादि की कथा, णो कहित्ता हवइ—नहीं कहता है, से—वह, णिग्गंथे—निर्ग्रन्थ है। 'तं कहमिति' से 'कहेज्जा' तक का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥२॥

णो इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागए विहरित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे ? आयरियाह—णिग्गंथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागयस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिजज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलि-

पण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागए विहरेज्जा ॥३॥

— जो, इत्थीहिं सद्धिं—स्त्रियों के साथ, सण्णिसेज्जागए—एक आसन पर, णो विहरित्ता हवइ—नहीं बैठता है, से—वह, णिग्गंथे—निर्ग्रन्थ है । 'तं कहमिति' से 'विहरेज्जा' तक का शब्दार्थ पूर्ववत् है ।

टीकाकार लिखते हैं कि जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो, उसके उठ जाने पर भी एक मुहूर्त तक ब्रह्मचारी पुरुष को वहाँ नहीं बैठना चाहिए ॥३॥

णो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं अलोइत्ता णिज्झाइत्ता हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह— णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएमाणस्स णिज्झायमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा, तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएज्जा णिज्झाएज्जा ॥४॥

— जो इत्थीणं—स्त्रियों की, मणोहराइं—मनोहर और, मणोरमाइं— मनोरम (सुन्दर) इंदियाइं—नाक-आँख-मुख

आदि इन्द्रियों को, णो आलोइत्ता णिज्झाइत्ता हवइ—विकार दृष्टि से नहीं देखता, तथा उनका ध्यान नहीं करता है, से—वह, णिग्गंथे—निर्ग्रन्थ है। 'तं कहमिति' से 'णिज्झाएज्जा' तक शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥४।

णो इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेत्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह—णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेमाणे विहरेज्जा ॥५॥

— कुड्डंतरंसि—जो बांस आदि टाटी की ओट से, वा—

अथवा, दूसंतरंसि—वस्त्र के पर्दे की आड़ से, वा—अथवा, भित्तंतरंसि— भीत की ओट से, इत्थीणं— स्त्रियों के, कूइयसद्दं—कूजित (कोयल के समान मीठे) शब्द, रुइयसद्दं—प्रेममिश्रित रुदन का शब्द, गीयसद्दं—गीत का शब्द, हसियसद्दं-हँसने का शब्द, थणियसद्दं- स्तनित शब्द, कंदियसद्दं-क्रन्दित (विरह से व्याकुल होकर किया गया) शब्द, वा—अथवा, विलवियसद्दं— विलाप करने के शब्द को, णो सुणेत्ता हवइ – जो नहीं सुनता है से—वह, णिग्गंथे—निर्ग्रन्थ है। 'तं कहमिति' से 'विहरेज्जा' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है।५।

णो पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे ? आयरियाह— णिग्गंथस्स खलु पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा ॥६॥

— पुव्वरयं—गृहस्थाश्रम में पहले भोगे हुए काम-भोगों को तथा, पुव्वकीलियं—पूर्व अवस्था में की हुई क्रीड़ा को, णो अणुसरित्ता हवइ—जो स्मरण नहीं करता, से—वह,

णिग्गंथे – निर्ग्रन्थ है। 'तं कहमिति' से 'अणुसरेज्जा' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है ।।६।।

णो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह— णिग्गंथस्स खलु पणीयं आहारं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुपज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे पणीयं आहारं आहारेज्जा ।।७।।

— पणीयं—जो गरिष्ट (जिसमें से घी की बूंदें टपक रही हों—ऐसा सरस और काम को उत्तेजित करने वाला) आहारं—आहार, णो आहारित्ता हवइ—नहीं खाता है, से—वह, णिग्गंथे—निर्ग्रन्थ है। 'तं कहमिति' से 'आहारेज्जा' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है ।।७।।

णो अइमायाए पाणभोयणं आहारित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह— णिग्गंथस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ

भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे अइमायाए पाणभोयणं आहारेज्जा ॥८॥

— अइमायाए—जो अतिमात्र (शास्त्र में बतलाए हुए परिमाण ‡ से अधिक) पाणभोयणं— आहार-पानी का, णो आहारित्ता हवइ—सेवन नहीं करता, से— वह, णिग्गंथे— निर्ग्रन्थ कहलाता है । 'तं कहमिति', से 'आहारेज्जा' ॥८॥

णो विभूसाणुवादी हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति ? आयरियाह— णिग्गंथस्स खलु विभूसावत्तिए विभूसियसरीरे इत्थीजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ । तओ णं तस्स इत्थीजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पजेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे विभूसाणुवादी हवेज्जा ॥९॥

— णो विभूसाणुवादी हवइ—जो शरीर की विभूषा नहीं करता, से—वह, णिग्गंथे—निर्ग्रन्थ कहलाता है, तं—वह, कहं— कैसे ? इति चे—ऐसा प्रश्न करने पर, आयरिय—

— ‡ टीकाकार ने टीका में पुरुष के लिए ३२ कवल ग्रास और स्त्री के लिए २८ कवल आहार का परिमाण बतलाया है ।

आचार्य महाराज, आह—कहते हैं कि, विभूसावत्तिए—विभूषा करने वाला और, विभूसियसरीरे—विभूषित शरीर वाला, णिग्गंथस्स— निर्ग्रन्थ, इत्थीजणस्स— स्त्रियों का अभिलसणिज्जे—अभिलषणीय, हवइ—होता है अर्थात् स्त्रियां उसे चाहने लगती हैं, तओ णं—इसके पश्चात् इत्थीजणेणं—स्त्रियों द्वारा, अभिलसिज्जमाणस्स— प्रार्थना किये गये, तस्स—उस, बंभयारिस्स— ब्रह्मचारी साधु के, बंभचेरे—ब्रह्मचर्य में शंकादि दोष उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। 'संका वा' से 'हवेज्जा' तक शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥९॥

—णो सद्दरूवरसगंधफासाणुवादी हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह— णिग्गंथस्स खलु सद्दरूवरसगंध फासाणुवादिस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दोहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे सद्दरूवरसगंधफासाणुवादी हवेज्जा। दसमे बंभचेर-समाहिठाणे हवइ ॥१०॥

भवंति य इत्थ सिलोगा तं जहा—

— णो सद्दरूवरसगंधफासाणुवादी हवइ—जो मनोज्ञ शब्द रूप, रस, गंध और स्पर्श का सेवन नहीं करता, से—वह, णिग्गंथे—निर्ग्रन्थ है। 'तं कहमिति' से 'हवेज्जा' तक

शब्दार्थ पूर्ववत् है। दसमे – यह दसवां, बंभचेर समाहिठाणे— ब्रह्मचर्य समाधिस्थान, हवइ—है, य--और, इत्थ—इन दस ब्रह्मचर्य समाधिस्थानो के विषय में, सिलोगा--श्लोक भी, भवंति--हैं, तं जहा--वे इस प्रकार हैं:—

जं विवित्तमणाइण्णं, रहियं इत्थिजणेण य।
बंभचेरस्स रक्खट्ठा, आलयं तु णिसेवए॥१॥

— जं--जो स्थान, विवित्तं--विविक्त (एकान्त) हो अर्थात् जहां स्त्री आदि का निवास न हो, अणाइण्णं—जो स्त्री आदि से व्याप्त न हो, य—और जो स्थान, इत्थिजणेण— स्त्री, पशु, नपुंसक से, रहियं--रहित हो, बंभचेरस्स—ब्रह्मचर्य की, रक्खट्ठा--रक्षा के लिए साधु, तु--ऐसे, आलयं—स्थान का, णिसेवए--सेवन करे ॥१॥

मणपल्हायजणणी, कामरागविवड्ढणी।
बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए॥२॥

— बंभचेररओ—ब्रह्मचर्य में रत, भिक्खू—भिक्षु, मणपल्हायजणणी—मन में विकारी-भावजन्य आनन्द उत्पन्न करने वाली, तु—तथा, कामरागविवड्ढणी— कामभोगों में आसक्ति बढ़ाने वाली, थीकहं—स्त्री-कथा को, विवज्जए— त्याग दो ॥२॥

समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं।
बंभचेररओ भिक्खू, णिच्चसो परिवज्जए॥३॥

— बंभचेररओ—ब्रह्मचर्य में रत, भिक्खू—साधु को चाहिए कि, थीहि—स्त्रियों के, समं—साथ, संथवं—परिचय च—और, अभिक्खणं—बारम्बार, संकहं—स्त्रियों के साथ वार्तालाप, च—और, उनके साथ एक आसन पर बैठने आदि कार्यों को, णिच्चसो—सदा के लिए, परिवज्जए—त्याग दे ॥३॥

अंग-पच्चंग संठाणं, चारुल्लवियपेहियं ।
बंभचेररओ थीणं, चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥४॥

— बंभचेररओ—ब्रह्मचर्य में रत साधु को चाहिए कि थीणं—स्त्रियों के, अंगपच्चंगसंठाणं—अंग (मस्तक आदि) तथा प्रत्यंग (कुच-कक्षादि) को, चारुल्लवियपेहियं—बोलने का मनोहर ढंग एवं कटाक्षपूर्वक देखना इत्यादि बातें, चक्खुगिज्झं—जो कि चक्षु-इन्द्रिय के विषय हैं उन्हें, विवज्जए—वर्जे अर्थात् उन पर दृष्टि पड़ने पर तत्काल दृष्टि पीछी हटा ले, किन्तु रागवश हो कर बार-बार उनकी ओर न देखे ॥४॥

कूइयं रुइयं गीयं, हसियं थणियकंदियं ।
बंभचेररओ थीणं, सोयगिज्झं विवज्जए ॥५॥

— बंभचेररओ—ब्रह्मचारी साधु, थीणं—स्त्रियों का, कूइयं—कोयल के समान मीठा शब्द, रुइयं—प्रेममिश्रित रोना, गीयं—गाना, हसियं—हँसना, थणियं—काम विषयक सराग शब्द, कंदियं—क्रन्दित एवं विलाप का शब्द,

सोयगिज्झं—जो श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है, उनको, विवज्जए—वर्जे, भींत-पर्दे आदि के अन्तर से भी स्त्रियों के उपरोक्त शब्दों को न सुने ।।५।।

हासं किड्डं रइं दप्पं, सहसावित्तासियाणि य ।
बंभचेररओ थीणं, णाणुचिंते कयाइवि ।।६।।

— बंभचेररओ—ब्रह्मचारी साधु, थीणं—पहले गृहस्थाश्रम में स्त्रियों के साथ किये गये, हासं—हास्य, किड्डं—क्रीड़ा, रइं—रति—विषय सेवन, दप्पं—दर्प अहंकार, य—और, सहसा—एकदम, वित्तासियाणि—त्रास उत्पन्न करने के लिए की गई क्रिया इत्यादि का, कयाइ वि—कदापि, णाणुचिंते—स्मरण न करे अर्थात् पहले भोगे हुए भोगों का स्मरण कभी नहीं करे ।।६।।

पणीयं भत्तपाणं तु, खिप्पं मयविवड्ढणं ।
बंभचेर रओ भिक्खू, णिच्चसो परिवज्जए ।।७।।

— बंभचेररओ—ब्रह्मचर्य में रत, भिक्खू—साधु, खिप्पं—शीघ्र ही, मयविवड्ढणं—काम-विकार को, बढ़ाने वाले, पणीयं—गरिष्ठ, भत्तपाणं—आहार-पानी को, णिच्चसो—सदा के लिये, परिवज्जए—वर्जे (त्याग दे) ।।७।।

धम्मलद्धं मियं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं ।
णाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बंभचेररओ सया ।।८।।

सया— सदा, बंभचेररओ— ब्रह्मचर्य में रत साधु, काले—भिक्षा के समय, धम्मलद्धं—शुद्ध एषणा से प्राप्त हुए आहार को, पणिहाणवं—चित्त को स्वस्थ रख कर, जत्तत्थं—संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए, मियं— परिमित मात्रा में भोगवे, तु—किन्तु अइमत्तं - शास्त्रोक्त परिमाण से अधिक आहार, ण भुंजेज्जा—नहीं करे ॥८॥

विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमंडणं ।
बंभचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं ण धारए ॥९॥

— बंभचेररओ— ब्रह्मचर्य में रत, भिक्खू— साधु, विभूसं—शरीर की विभूषा और, सरीर परिमंडणं—शरीर-संस्कार को, परिवज्जेज्जा—छोड़ दे अर्थात् केश-श्मश्रु आदि को न संवारे एवं, सिंगारत्थं—शृंगार के लिए, ण धारए—कोई कार्य न करे ॥९॥

सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य ।
पंचविहे कामगुणे, णिच्चसो परिवज्जए ॥१०॥

— ब्रह्मचारी साधु, पंचविहे—पांच प्रकार के, कामगुणे—कामगुण अर्थात् पांच इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय, सद्दे—शब्द रूवे—रूप, गंधे—गन्ध, रसे—रस, य—और, तहेव—इसी प्रकार, फासे—स्पर्श इन का, णिच्चसो—सदा, परिवज्जए—त्याग करे ॥१०॥

आलओ थीजणाइण्णो, थीकहा य मणोरमा।
संथवो चेव णारीणं, तासिं इंदियदरिसणं ।११।
कूइयं रुइयं गीयं, हासभुत्तासियाणि य।
पणीयं भत्तपाणं च, अइमायं पाणभोयणं ।१२।
गत्तभूसणमिट्ठं च, काम-भोगा य दुज्जया।
णरस्सत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥१३॥

— १ थी जणाइण्णो—स्त्रियों से व्याप्त, आलओ—स्थान, य—और, मणोरमा—मनोरम (मन को आनन्द देने वाली) थी कहा—स्त्री-कथा, ३ णारीणं—स्त्रियों के साथ, संथवो—परिचय, ४ चेव—और, तासिं— उनकी, इंदिय-दरिसणं— नाक, आंख आदि इन्द्रियों को देखना, ५ कूइयं—कूजित अर्थात् कोयल के समान मीठे शब्द, रुइयं—रुदन, गीयं—गायन, हास—हंसी का शब्द, ६ य—और, भुत्तासियाणि—पहले भोगे हुए भोगों को, तथा स्त्री के साथ एक आसन पर बैठना आदि कार्यों का स्मरण करना, ७ च—तथा, पणीयं—गरिष्ठ, भत्तपाणं— आहार-पानी का सेवन करना, ८ और, अइमायं—शास्त्रोक्त मर्यादा से अधिक, पाणभोयणं—आहार-पानी का सेवन करना, ९ गत्तभूसणं—शरीर की विभूषा करना, १० च -और, इट्ठं—मनोज्ञ शब्दादि विषय, य—एवं, दुज्जया—दुर्जय अर्थात् कठिनाइ से जीते जाने योग्य, कामभोगा— कामभोग— ये दस बातें,

अत्तगवेसिस्स---आत्मगवेषी, णरस्स—पुरुष के लिए तालउडं-तालपुट, विसं—विष के, जहा--समान हैं अर्थात् जिस प्रकार तालपुट विष, होठों के भीतर जा कर तालु के लगते ही प्राणों का नाश कर देता है, उसी प्रकार ये पूर्वोक्त दस स्थान संयम रूपी जीवन का नाश करने वाले हैं। इसलिए ब्रह्मचारी पुरुष को इनका सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।११-१२-१३।

दुज्जए कामभोगे य, णिच्चसो परिवज्जए।
संकाठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥१४॥

— --पणिहाणवं--संयम में एकाग्र मन रखने वाले ब्रह्मचारी पुरुष को चाहिए कि, दुज्जए—दुर्जय (कठिनाई, से जीते जाने योग्य) कामभोगे-—कामभोगों को, णिच्चसो--सदा के लिए, परिवज्जए--त्याग दे, य---और, संकाठाणाणि-जिन-जिन बातों से ब्रह्मचर्य में किसी प्रकार की हानि पहुँचने की संभावना हो ऐसे, सव्वाणि--शंका के सभी स्थानों को भी, वज्जेज्जा--सदैव के लिए त्याग दे ॥१४॥

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मसारही।
धम्मारामे रए दंते, बंभचेर-समाहिए ॥१५॥

— धिइमं—धैर्यवान्, धम्मसारही—धर्म रूप रथ को चलाने में सारथि के समान, धम्मारामे—पाप के ताप से संतप्त प्राणियों को शान्ति देने वाले धर्म रूपी बगीचे में, रए—

अनुरक्त, दंते--इन्द्रियों को दमन करने वाला, बंभचेर-समाहिए--ब्रह्मचर्य में समाधिवंत, भिक्खू--साधु, सया--सदैव, धम्मारामे--धर्म (संयम रूपी) बगीचे में ही, चरे--रमण करे ॥१५॥

देवदाणवगंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किण्णरा ।
बंभयारिं णमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ॥१६॥

— जे--जो दुक्करं—दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत का, करंति—पालन करता है, तं—उस, बंभयारिं—ब्रह्मचारी पुरुष को, देवदाणवगंधव्वा—वैमानिक और ज्योतिषी देव, दानव—भवनपति देव और गन्धर्व देव तथा, जक्ख रक्खस किण्णरा—यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि व्यन्तर जाति के देव इस प्रकार चारों जाति के देव, णमंसंति—नमस्कार करते हैं ॥१६॥

एस धम्मे धुवे णिच्चे, सासए जिणदेसिए ।
सिद्धा सिज्झंति चाणेणं, सिज्झिस्संति तहावरे ।१७।त्तिबेमि।

— एस—यह, धम्मे—ब्रह्मचर्य रूप धर्म, धुवे—ध्रुव है, णिच्चे--नित्य है, सासए--शाश्वत है अर्थात् त्रिकाल स्थायी है और, जिणदेसिए--जिनेश्वर भगवान् द्वारा कहा हुआ है, अणेणं—इसका पालन करने से, सिद्धा—अनेक जीव गतकाल में सिद्ध हुए हैं, च—तथा सिज्झंति—वर्तमान काल में सिद्ध हो रहे हैं और, तहा—इसी प्रकार, अवरे—भविष्यत् काल में भी, सिज्झिस्संति--सिद्ध होंगे। त्तिबेमि--ऐसा मैं कहता हूँ।१७।

॥ सोलहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

पापश्रमणीय नामक सत्तरहवां अध्ययन

जे केइ उ पव्वइए णियंठे, धम्मं सुणित्ता विणओववण्णे।
सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं, विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु॥

-- धम्मं--श्रुत-चारित्र रूप धर्म को, सुणित्ता--सुन कर विणओववण्णे--ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी विनय से युक्त होकर, दुसुल्लहं--अत्यन्त दुर्लभ, बोहिलाभं--बोधि अर्थात् समकित, लहिउं--प्राप्त करके, जे केई उ--कोई एक, पव्वइए--दीक्षा लेकर, णियंठे--निर्ग्रन्थ बना है, तु--किन्तु, पच्छा--दीक्षा लेने के बाद, जहासुहं-- जिस प्रकार सुख प्रतीत हो उस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक, विहरेज्जा--विचरता है अर्थात् कोई-कोई पुरुष पहले तो सिंह की भांति शूरवीर होकर दीक्षा लेता है, किन्तु पीछे शृगाल के समान कायर बन जाता है।१।

सेज्जा दढा पाउरणम्मि अत्थि,
उप्पज्जइ भोत्तु तहेव पाउं।
जाणामि जं वट्टइ आउसुत्ति,
किं णाम काहामि सुएण भंते! ॥२॥

-- उपरोक्त रीति से स्वच्छन्दतापूर्वक विचरने वाले मुनि से जब गुरु आदि हितबुद्धि से, शास्त्र अध्ययन के लिए प्रेरणा करते हैं, तब वह उन्हें उत्तर देता है--भंते--हे पूज्य

गुरुदेव ! रहने के लिए मे--मुझे, दढा—दृढ़--वर्षा, धूप, ठंड आदि से रक्षा करने वाला, सेज्जा--स्थान, अत्थि--मिला हुआ है और, पाउरणं— ओढ़ने के लिए वस्त्र भी मेरे पास हैं, तहेव--इसी प्रकार, भोत्तुं—खाने के लिए आहार और, पाउं—पीने के लिए पानी भी, उपज्जइ—मिल जाता है, आउसं--हे आयुष्मन् ! गुरुदेव ! जं--वर्तमान काल में जो, वट्टइ—होरहा है उसे, जाणामि—जानता हूँ अर्थात् जैसे आप अधिक पढ़ कर भी वर्तमान कालीन भावों को ही जानते हैं और भूत-भविष्यत् के अतीन्द्रिय भावों को नहीं जान सकते, वैसे ही वर्तमानकाल के भावों को मैं भी जानता हू, त्ति--तो फिर, सुएण—शास्त्र पढ़ कर, किण्णाम—क्या, काहामि--करूँगा ?

जे केइ उ पव्वइए, णिद्दासीले पगामसो ।
भोच्चा पेच्चा सुहं सुवइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥३॥

--जे केई उ--जो कोई, पव्वइए--दीक्षा लेकर, पगामसो--बहुत, णिद्दासीले—निद्रालु हो जाता है अर्थात् खूब नींद लेता है एवं, भोच्चा पेच्चा--खूब खा-पीकर, सुहं—सुख से सुवइ—सो जाता है, पावसमणि त्ति—वह पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥३॥

आयरिय-उवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए ।
ते चेव खिसई बाले, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥४॥

—— आयरियउवज्झाएहिं—जिन आचार्य तथा उपाध्यायजी महाराज से, सुयं—शास्त्र, च—और, विणयं—विनय, गाहिए-ग्रहण किया है, ते चेव—उन्हीं की, बाले—जो अज्ञानी, खिसई—निन्दा करता है, पावसमणे त्ति—वह पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥४॥

आयरिय-उवज्झायाणं, सम्मं ण पडितप्पइ ।
अपडिपूयए थद्धे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥५॥

— आयरिय उवज्झायाणं —जो आचार्य तथा उपाध्यायजी की, सम्मं—सम्यक् प्रकार से, ण पडितप्पइ—सेवा नहीं करता और, अपडिपूयए—गुणीजनों के एवं अरिहंतादि के गुणग्राम नहीं करता तथा उपकारी पुरुषों के उपकार को नहीं मानता, और, थद्धे—अभिमान करता है, पावसमणे त्ति-वह पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥५॥

सम्मद्दमाणो पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।
असंजए संजयमण्णमाणो, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥६॥

— पाणाणि—बेइन्द्रियादि प्राणियों को बीयाणि—बीजों को, य—और, हरियाणि—हरी वनस्पति को, सम्मद्दमाणो—मर्दन करता हुआ अर्थात् चलते समय इनको पैरों तले कुचल कर चलने वाला तथा, असंजए—स्वयं असंयती होकर भी अपने आपको, संजय—संयती, मण्णमाणो—मानने वाला, तथा, पावसमणे त्ति—पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥६॥

संथारं फलगं पीढं, णिसिज्जं पाय-कंबलं ।
अप्पमज्जियमारुहइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥७॥

-- संथारं—तृणादि की शय्या, फलगं--बाजोठ (पाटा) पीढं—पीढ़ा (आसन) णिसिज्जं— स्वाध्याय करने का स्थान तथा, पायकंबलं—पाँव पोंछने का वस्त्र, इन सभी पर जो, अप्पमज्जियं-- विना पूंजे, आरुहइ-- बैठता है अर्थात् धर्मोपकरण को विना पूंजे उपयोग में लेता है, पावसमणे त्ति-वह पापश्रमण, वुच्चई--कहलाता है ॥७॥

दवदवस्स चरई, पमत्ते य अभिक्खणं ।
उल्लंघणे य चंडे य, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥८॥

-- दवदवस्स—जो ईर्यासमिति का उपयोग रखे विना अयतनापूर्वक शीघ्रता से, चरई--चलता है, य—तथा, पमत्ते-- धर्म-साधना में प्रमाद करता है, य—और, अभिक्खणं— बारबार, उल्लंघणे— मर्यादा का उल्लंघन करता है अथवा बालक आदि का उलंघन कर चलता है, य-- और, चंडे-- सुशिक्षा देने पर क्रोध करता है, पावसमणे त्ति—वह पापश्रमण वुच्चई—कहलाता है ॥८॥

पडिलेहेइ पमत्ते, अवउज्झइ पाय-कंबलं ।
पडिलेहा-अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥९॥

-- पमत्ते—जो प्रमाद युक्त हो कर बिना उपयोग, पडिलेहेइ--पडिलेहणा करता है और, पाय कंबलं—पांव पोंछने

के वस्त्र को अथवा पात्र और कम्बल एवं सभी धर्मो-पकरणों को, उवउज्झइ— इधर-उधर बिखेरे रखता है और, पडिलेहा—पडिलेहणा में, अणाउत्ते—उपयोग नहीं रखता है, पावसमणे त्ति—वह पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥९॥

पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु णिसामिया।
गुरु-परिभासए णिच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१०॥

— पमत्ते—जो प्रमादी हो कर, पडिलेहेइ—पडिलेहणा करता है, हु—और, किंचि—विकथा आदि, णिसामिया—सुनने में दत्तचित्त रहता है और इसीलिए पडिलेहणा के विषय में उपयोग शून्य हो जाता है और गुरु महाराज द्वारा प्रेरणा करने पर, णिच्चं—सदैव, गुरुपरिभासए—गुरु के सामने बोलता है अथवा उनका तिरस्कार करता है या उनके साथ विवाद करता हुआ असभ्य वचन बोलता है कि 'आपने हमको पडि-लेहण करना इसी प्रकार सिखाया था अथवा हम भली प्रकार पडिलेहणा करना नहीं जानते तो आप स्वयं कर लें' इस प्रकार जो बोलता है, से—वह, पावसमणे त्ति—पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥१०॥

बहुमाई पमुहरे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असंविभागी अवियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥११॥

— बहुमाई—बहुत छल-कपट करने वाला, पमुहरे—

वाचाल (बहुत बोलने वाला) थद्धे--अभिमानी, लुद्धे—आसक्ति रखने वाला, अणिग्गहे--इन्द्रियों को वश में नही करने वाला, असंविभागी--आहार का समविभाग न करने वाला, अवियत्ते—अप्रीतिकारी एवं साथी साधुओं के साथ प्रेम-वात्सल्य का व्यवहार न करने वाला, पावसमणे त्ति—पापश्रमण, वुच्चई--कहलाता है ॥११॥

विवादं च उदीरेइ, अहम्मे अत्तपण्णहा ।
वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१२॥

— विवादं— जो क्लेश शान्त हो चूका है उसे, उदीरेइ—फिर से उत्पन्न करने वाला, अहम्मे--सदाचार रहित, अत्तपण्णहा—आत्मा के अस्तित्व एवं परलोकादि के प्रश्न का नाश करने वाला अथवा कुतर्कों द्वारा अपनी और दूसरों की बुद्धि को मलीन बनाने वाला और, वुग्गहे—दंडादि द्वारा लड़ाई करने वाला तथा, कलहे--वचन द्वारा कलह करने वाला, पावसमणे त्ति— पापश्रमण, वुच्चई--कहलाता है ॥१२॥

अथिरासणे कुक्कुइए, जत्थ-तत्थ णिसीयई ।
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१३॥

— अथिरासणे— अस्थिर आसन वाला, कुक्कुइए—कुचेष्टा करने वाला अथवा अयतनापूर्वक हाथ-पाँव इधर-

उधर हिलाने वाला जत्थ तत्थ—सचित्त-अचित का विचार किये बिना जहाँ-तहाँ, णिसीयई--बैठ जाने वाला और, आसणम्मि-आसनादि के विषय में, अणाउत्ते—उपयोग न रखने वाला, पावसमणे त्ति—पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥१३॥

ससरक्खपाए सुवई, सेज्जं ण पडिलेहइ ।
संथारए अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१४॥

— ससरक्खयाए--जो सचित रज से भरे हुए पाँव को पूंजे बिना ही, सेज्जं—शय्या को, ण पडिलेहइ – प्रतिलेखना भी नहीं करता है तथा, संथारए—संस्तारक के विषय में, अणाउत्ते—उपयोग नहीं रखता है ऐसा साधु, पावसमणे त्ति-पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥१४॥

दुद्ध-दही-विगईओ, आहारेइ अभिक्खणं ।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१५॥

— दुद्धदही विगईओ---दूध, दही आदि विगयों का, अभिक्खणं—जो बाबार, आहारेइ—आहार करता है, य—और इसीलिए, तवोकम्मे---तपस्या करने में, अरए---जो अप्रीति रखता है, पावसमणे त्ति— वह पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥१५॥

अत्थंतम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं ।
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१६॥

— सूरम्मि—सूर्य के, अत्थंतम्मि—अस्त होने तक जो, अभिक्खणं—वार-वार, आहारेइ—आहार करता है अर्थात् प्रातःकाल से संध्या तक आहार करने में ही लगा रहता है, य—और, चोइओ—ऐसा न करने के लिए अथवा तपस्यादि करने के लिए गुरु महाराज द्वारा प्रेरणा करने पर, पडिचोएइ—उनके वचन का अनादर करते हुए प्रत्युत्तर देता है, पावसमणे त्ति—वह पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥१६॥

आयरियपरिच्चाई, परपासंड-सेवए ।
गाणं-गणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१७॥

— आयरिय परिच्चाई—आचार्य महाराज को छोड़ कर, परापासंड सेवए—अन्यमत में जाने वाला, गाणंगणिए—छः महीनों के भीतर एक गच्छ को छोड़ कर दूसरे गच्छ में जाने वाला, दुब्भूए—निन्दनीय साधु, पावसमणे त्ति—पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥१७॥

सयं गेहं परिच्चज्ज, परगेहंसि वावरे ।
णिमित्तेण य ववहरइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१८॥

सयं—अपना, गेहं—घर अर्थात् गृहस्थाश्रम, परिच्चज्ज—छोड़ कर जो संयमी बना है, फिर भी रसलोलुपी होकर जो, परगेहंसि—गृहस्थों के घरों में, वावरे—फिरता है, य—और, णिमित्तेण—शुभाशुभादि निमित्त-विद्या बता कर, ववहरइ—

द्रव्य उपार्जन करता है, पावसमणे त्ति—वह पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥१८॥

सण्णाइपिंडं जेमेइ, णेच्छइ सामुदाणियं ।
गिहिणिसेज्जं च वाहेइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१९॥

— सण्णाइपिंडं—जो स्वज्ञातिपिंड अर्थात् अपनी जाति एवं सगे-सम्बन्धियों के घर से ही, जेमेइ—आहार लेता है किन्तु सामुदाणियं— सामुदानिकी भिक्षा, णेच्छइ— नहीं लेना चाहता, च—और, गिहिणिसेज्जं—गृहस्थ की शय्या पर, वाहेइ— बैठता है, पावसमणे त्ति—वह पापश्रमण, वुच्चई—कहलाता है ॥१९॥

एयारिसे पंचकुसीलसंवुडे,
रूवंधरे मुणिपवराण हेट्ठिमे ।
अयंसि लोए विसमेव गरहिए,
ण से इहं णेव परत्थ लोए ॥२०॥

— एयारिसे—इस प्रकार, पंचकुसीलसंवुडे—पार्श्वस्थ, उसन्न, कुशील, संसक्त और स्वच्छन्द, इन पाँच प्रकार के कुशीलों का अनुसरण करने वाला, संवर से रहित— रूवंधरे—मुनि का वेष धारण करने वाला, मुणिपवराण— श्रेष्ठ मुनियों में, हेट्ठिमे—हीन अर्थात् संयम का यथावत् पालन करने वाले मुनियों की अपेक्षा हीन, से—वह मुनि,

अयंसि-- इस, लोए--लोक में, विसमेव--विष (जहर) के समान, गरहिए--निन्दनीय होता है और, ण इहं-- उसका न तो यह लोक सुधरता है और, णेव परत्थ लोए-- न परलोक सुधरता है अर्थात् उसके दोनों लोक बिगड़ते हैं ॥२०॥

जे वज्जए एए सया उ दोसे,
से सुव्वए होइ मुणीण-मज्झे ।
अयंसि लोए अमयं व पूइए,
आराहए लोगमिणं तहापरं ॥२१॥ त्तिबेमि॥

-- जे--जो मुनि, एए--इन उपरोक्त, दोसे--दोषों को, सया--सदा के लिए, वज्जए--छोड़ देता है, से--वह, मुणीण मज्झे--मुनियों में, सुव्वए--सुन्दर व्रत वाला अर्थात् श्रेष्ठ मुनि, होइ--होता है, अयंसि--इस, लोए--लोक में, अमयं व-- अमृत के समान, पूइए-- पूजनीय होता है, तहा--इस प्रकार, इणं--इस लोक और, परं लोगं-- परलोक दोनों को, अराहए--वह सम्यक् आराधना करता है। त्तिबेमि--एसा मैं कहता हूँ ॥२१॥

॥ सत्तरहवां अध्ययन समाप्त ॥

'संयतीय' नामक अठारहवाँ अध्ययन

कंपिल्ले णयरे राया, उदिण्ण-बलवाहणे ।
णमेणं संजओ णाम, मिगव्वं उवणिग्गए ॥१॥

—कंपिल्ले—कम्पिलपुर, णयरे—नगर में, उदिण्णबलवाहणे—विस्तीर्ण सेना तथा हाथी घोड़े और वाहनादि युक्त, णामेणं संजओणाम—संजय (संयति) नाम का, राया—राजा राज्य करता था। एक बार वह, मिगव्वं—शिकार खेलने के लिए, उवणिग्गए—नगर से बाहर निकला ॥१॥

हयाणीए गयाणीए, रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए ॥२॥
मिए छुहित्ता हयगओ, कंपिल्लुज्जाण-केसरे ।
भीए संते मिए तत्थ, वहेइ रसमुच्छिए ॥३॥

—हयाणीए—घोड़े, गयाणीए—हाथी, तहेव—तथा, रहाणीए—रथों के समूह से, य—और, पायत्ताणीए—पायदल—इन चार प्रकार की, महया—बड़ी सेनाओं से, सव्वओ—चारों ओर से, परिवारिए—घिरा हुआ वह राजा, हयगओ—घोड़े पर सवार होकर, कंपिल्लुज्जाण केसरे—कम्पिलपुर के केसर नामक उद्यान में पहुँचा और, रसमुच्छिए—रसमुच्छित अर्थात् मांस खाने में गृद्ध बना हुआ वह संयति राजा, तत्थ—उस उद्यान में, मिए—हिरणों को,

—छुहिता—क्षुभित कर के, भीए—भयभीत बने हुए, तथा, संते—थके हुए, मिए—हिरणों को, वहेइ—मारने लगा ॥२-३॥

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे ।
सज्झायज्झाणसंजुत्ते, धम्मज्झाणं झियायइ ॥४॥

—अह—उस, केसरम्मि उज्जाणे—केसर नाम के, उद्यान में, तवोधणे—तपोधनी, सज्झायज्झाणं संजुत्ते—स्वाध्याय और ध्यान में लगे हुए, अणगारे—एक अनगार महात्मा, धम्मज्झाणं—धर्मध्यान, झियायइ—ध्याते थे ॥४॥

अप्फोवमंडवम्मि, झायइ, क्खवियासवे ।
तस्सागए मिगे पासं, वहेइ से णराहिवे ॥५॥

—क्खवियासवे—कर्मबन्ध के हेतु स्वरूप हिंसादि आश्रवों का क्षय करने वाले वे महात्मा, अप्फोवमंडवम्मि—वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लताओं से युक्त तथा नागरवेल आदि से आच्छादित मंडप में, झायइ—ध्यान कर रहे थे, मिगे—राजा से भयभीत हुए कुछ मृग दौड़ कर, तस्स—उन मुनि के, पासं—पास, आगए—चले आये किन्तु, से—वह, णराहिवे—राजा, वहेइ—उन मृगों पर भी बाण चला कर मारने लगा ॥५॥

अह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तहिं ।
हए मिए उ पासित्ता, अणगारं तत्थ पासई ॥६॥

— अह— इसके बाद, आसगओ--घोड़े पर बैठा हुआ, सो—वह, राया—राजा, खिप्पमागम्म--शीघ्र तहिं--वहाँ, आगम्म--आकर, हए--अपने बाणों से विद्ध हो कर मरे हुए, मिए--हिरणों को, पासित्ता--देखा और, उ—इतने ही में, तत्थ--वहाँ, अणगारं-- ध्यानस्थ बैठे हुए महात्मा को भी, पासई---देखा ॥६॥

अह राया तत्थ संभंतो, अणगारो मणाहओ ।
मए उ मंदपुण्णेणं, रसगिद्धेण घंतुणा ॥७॥

— अह--इसके बाद, तत्थ--मुनिराज पर दृष्टि पड़ते ही, राया--राजा, संभंतो---अत्यन्त भयभीत हुआ और मन में अपने-आपको धिक्कारता हुआ विचारने लगा कि मेरे बाण से विद्ध होकर यह मृग दौड़ कर मुनिराज के पास आया है, इससे लगता है कि यह मृग इन मुनिराज का है, उ—इसलिए, मंदपुण्णेणं— मंदभागी, रसगिद्धेण— रसासक्त और, घंतुणा— निरपराध जीवों की हिंसा करने वाले, मए— मैंने इस मृग को मार कर, मणा— अल्प स्वार्थ के लिए, अणगारो— मुनिराज के चित्त को, आहओ—दुःखित किया है । अथवा भयभ्रान्त बन कर राजा इस प्रकार विचार करने लगा कि मैं अवश्य मंदभागी हूं । शिकार खेलने में अन्ध बने हुए मुझे इतना भी ध्यान नहीं रहा कि यहां मुनिराज बैठे हुए हैं

मृग पर चलाया हुआ मेरा वाण यदि ध्यानस्थ मुनिराज को लग जाता तो कैसा अनर्थ हो जाता ! इत्यादि विचारों से राजा अत्यन्त भयभ्रान्त बन गया ॥७॥

आसं विसज्जइत्ताणं, अणगारस्स सो णिवो ।
विणएण वंदए पाए, भगवं एत्थ मे खमे ॥८॥

— इसके बाद, सो—वह, णिवो—राजा, आसं—घोड़े को, विसज्जइत्ताणं— छोड़ कर अर्थात् घोड़े से उतर कर, अणगारस्स—मुनिराज के, पाए—पैरों में, विणएण—विनय पूर्वक, वंदए—वन्दना-नमस्कार करता हुआ कहने लगा कि, भगवं—हे भगवन् ! एत्थ—इस शिकार करने में मेरा जो अपराध हुआ है उसके लिए, मे—मुझे, खमे— क्षमा कीजिये ॥८॥

अह मोणेण सो भगवं, अणगारे झाणमस्सिए ।
रायाणं ण पडिमंतेइ, तओ राया भयद्दुओ ॥९॥

— राजा ने अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी, अह—किन्तु उस समय, सो—वे, भगवं—भगवान्—योगीश्वर, अणगारे—महात्मा, झाणमस्सिए—धर्मध्यान में लीन थे इस लिए, मोणेण—मौन रहे और उन्होंने, रायाणं— राजा को, णपडिमंतेइ—उत्तर नहीं दिया, तओ—तब मुनि द्वारा उत्तर

न पाने के कारण, राया-- राजा, भयद्दुओ-- अधिक भयभ्रान्त हुआ ॥९॥

संजओ अहमम्सीति, भगवं ! वाहराहि मे ।
कुद्धे तेएण अणगारे, डहेज्ज णरकोडिओ ॥१०॥

— राजा अपना परिचय देता हुआ कहने लगा कि, अहं—मैं, संजओ--संजय नाम का राजा, अम्मि— हूँ, इति— इसलिए, भगवं—हे भगवन् ! आप, मे—मुझ से, वाहराहि-- संभाषण कीजिये अर्थात् आप मुझे मेरे अपराध के लिए क्षमा प्रदान कीजिये क्योंकि, कुद्धे--कुपित हुए, अणगारे-- महात्मा तेएण—अपने तप-तेज से, णरकोडिओ— करोड़ों मनुष्यों को, डहेज्ज—जला कर भस्म कर सकता है ।१०॥

अभओ पत्थिवा ! तुज्झं, अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ॥११॥

— तत्पश्चात् मुनि कहने लगे कि पत्थिवा--हे राजन् ! तुज्झं—तुम, अभओ—अभय हो अर्थात् तुम मेरी ओर से किसी प्रकार का भय मत रखो, य—और हे राजन् ! तुम भी, अभयदाया--अभयदान देने वाले, भवाहि—बनो अर्थात् जिस प्रकार तुम मुझ से भय मान रहे हो उसी प्रकार वन के ये जीव भी तुम से भयभीत हो रहे हैं, किन्तु अब मैंने तुमको अभयदान दिया है, वैसे ही इन जीवों को तुम भी

अभयदान देकर निर्भय बना दो, अणिच्चे—इस अनित्य, जीवलोगम्मि—संसार में, हिंसाए—हिंसा करने में, किं—क्यों, पसज्जसि—आसक्त हो रहे हो ? अर्थात् संसार की कोई वस्तु नित्य नहीं है, तब इस क्षणभंगुर जीवन के लिए तुम हिंसा जैसे क्रूर कर्म में क्यों प्रवृत्त हो रहे हो ? ॥११॥

जया सव्वं परिच्चज्ज, गंतव्वमवसस्स ते ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि ॥१२॥

——जया—जब सव्वं—सभी वस्तुओं को, परिच्चज्ज—छोड़ कर, अवसस्स—अवश होकर अर्थात् कर्मों के वश होकर, ते—तुम को गंतव्वं—परलोक में अवश्य जाना पड़ेगा तो फिर, अणिच्चे—इस अनित्य, जीवलोगम्मि—संसार में तथा, रज्जम्मि—राज्य में, किं—क्यों, पसज्जसि—आसक्त हो रहे हो ? ॥१२॥

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपाय-चंचलं ।
जत्थ तं मुज्झसि रायं ! पेच्चत्थं णावबुज्झसि ॥१३॥

— रायं—हे राजन् ! जत्थ—जिस पर, तं—तू, मुज्झसि—मोहित हो रहा है, जीवियं—वह जीवन, चेव—और, रूवं—रूप तो, विज्जुसंपायचंचलं—बिजली के चमत्कार के समान एक क्षणविध्वंसी हैं, तो हे राजन् ! पेच्चत्थं—परलोक के विषय में, णावबुज्झसि—विचार क्यों नहीं करते ? अर्थात्

यौवन और रूप आदि सब अनित्य हैं इसलिए तुम्हारे सरीखे बुद्धिमान् को आत्मकल्याण में प्रवृत्ति करना ही श्रेष्ठ है ॥१३॥

दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बंधवा।
जीवंतमणुजीवंति, मयं णाणुव्वयंति य ॥१४॥

— दाराणि—स्त्री, य—और, सुया—पुत्र, मित्ता—मित्र, तह—और, बंधवा—बन्धु सब, जीवंतं—जीते हुए के साथ, अणुजीवंति—जीते हैं अर्थात् जब तक घर का स्वामी जीता है तब तक उसके कमाये हुए पैसे से मौज करते हैं और उसके पीछे-पीछे चलते हैं य—किन्तु मयं—मरे हुए के साथ, णाणुव्वयंति—पीछे नहीं जाते, ऐसे सम्बन्धियों के लिए दिन-रात अनर्थ करना और उनको अपने जीवन का आधार समझना बुद्धिमान् पुरुष के लिए कहाँ तक उचित है, इसका स्वयं विचार करना चाहिए ॥१४॥

णीहरंति मयं पुत्ता, पियरं परमदुक्खिया।
पियरोवि तहा पुत्ते, बंधू रायं! तवं चरे ॥१५॥

— मयं—मरे हुए, पियरं—पिता को, पुत्ता—पुत्र, परमदुक्खिया—अत्यन्त दुःखित हो कर, णीहरंति—निकाल देते हैं और जला कर घर लौट आते हैं, तहा—इसी प्रकार, पुत्ते—पुत्रों के मर जाने पर, पियरो वि—पिता और, बंधू—भाई के

मर जाने पर भाई करता है अर्थात् एक मरता है और दूसरा उसको ले जा कर जला आता है। यह संसार के सम्बन्ध की अवस्था है। कोई किसी के साथ नहीं जाता, इसलिए, रायं--हे राजन्! इन सब का मोह छोड़ कर, तवं--तप का चरे--सेवन करना चाहिए ॥१५॥

तओ तेणज्जिए दव्वे, दारे य परिरक्खिए।
कीलंतिण्णे णरा रायं! हट्ठतुट्ठमलंकिया ॥१६॥

— रायं--हे राजन्! तओ--उस पुरुष के मर जाने के बाद, तेण--उस मृत पुरुष के द्वारा, अज्जिए--उपार्जन किये हुए, दव्वे--धन का, य-- और, परिरक्खिए--सब प्रकार से रक्षा की हुई, दारे--स्त्रियों का अण्णे--दूसरे, णरा--पुरुष, हट्ठतुट्ठमलंकिया--जो कि हृष्ट-पुष्ट और विभूषित हैं वे, कीलंति--उपभोग करते हैं अर्थात् जो स्त्रियाँ पुरुषों के विना और जो पुरुष स्त्रियों के विना अपना जीवित रहना असंभव कहते थे, वे मृत्यु के थोड़े दिनों के बाद ही एक दूसरे को भूल कर मौज-शौक में लग जाते हैं ॥१६॥

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं।
कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छइ उ परं भवं ॥१७॥

— तेणावि--उस मृत आत्मा ने भी, जं--जो, सुहं--सुख (सुख का कारण रूप शुभकर्म) जइ-- अथवा,

दुहं—दुःख (दुःख का कारण रूप अशुभकर्म), कम्मं—कर्म, कयं--किया है, तेण कम्मुणा—उस शुभाशुभ कर्म से, संजुत्तो--युक्त होकर, परं भवं--परभव में, गच्छइ--चला जाता है। सगे-सम्बन्धी, पुत्र, स्त्री एवं धन और परिवार ये सब यहीं रह जाते हैं। केवल जीव के किये हुए शुभाशुभ कर्म ही उसके साथ जाते हैं ॥१७॥

सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अंतिए ।
महया संवेग-णिव्वेयं, समावण्णो णराहिवो ॥१८॥

--तस्स—उन गर्दभाली, अणगारस्स—अनगार के, अंतिए—समीप, धम्मं—धर्म, सोऊण--सुन कर, सो--वह, णराहिवो—राजा, महया--महान्, संवेगणिव्वेयं--संवेग-निर्वेद को, समावण्णो—प्राप्त हुआ अर्थात् उस योगीश्वर के धर्मोपदेश से तथा पूर्व संस्कारों की प्रबलता में उसी समय संवेग (मोक्ष की तीव्र अभिलाषा) और निर्वेद (संसार एवं काम-भोगों से विरक्ति) के भाव उत्पन्न हो गए। १८॥

संजओ चइउं रज्जं, णिक्खंतो जिणसासणे ।
गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अंतिए ॥१९॥

— संजओ-- संयति राजा, रज्जं--राज्य, चइउं—छोड़ कर, भगवओ-- भगवान्, गद्दभालिस्स—गर्दभाली, अणारस्स— अनगार के, अंतिए--- पास,

जिणसासणे— जिन-शासन में, णिक्खंतो— दीक्षित हो गया ॥१९॥

चिचा रट्ठं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ ।
जहा ते दीसइ रूवं, पसण्णं ते तहा मणो ॥२०॥

— गर्दभाली मुनीश्वर के शिष्य संजयमुनि, साधु जीवन में दृढ़ तथा गीतार्थ ज्ञानी बन कर गुरु-आज्ञा से ग्रामानुग्राम विचरते हुए उनकी क्षत्रिय राजर्षि से भेट हुई । वे क्षत्रिय राजर्षि पूर्व-जन्म में वैमानिक जाति के देव थे । वहाँ से चव कर वे क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए ।

— पूर्व संस्कारों की प्रवलता एवं किसी निमित्त विशेष से उनको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । उसके प्रभाव से, खत्तिए—वे क्षत्रिय नरेश संसार से विरक्त हो गये और, रट्ठं—राज्य, चिच्चा—छोड़ कर, पव्वइए—दीक्षा अंगीकार कर ली। ग्रामानुग्राम विचरते हुए उनकी संजय मुनि से भेट हुई । संजय मुनि को देख कर, परिभासइ— वे कहने लगे कि हे मुनिश्वर ! जहा— जिस प्रकार, ते—आपका, रूवं—रूप, पसण्णं— प्रसन्न (विकार रहित), दीसइ—दिखाई देता है, तहा—उसी प्रकार, ते—आपका, मणो—मन भी निर्मल एवं विकार रहित है ॥२०॥

किं णामे किं गोत्ते, कस्सट्ठाए व माहणे ।
कहं पडियरसि बुद्धे, कहं विणीए त्ति वुच्चसि ॥

क्षत्रिय मुनि, संयति मुनि से प्रश्न करते हैं कि हे मुनीश्वर! **किणामे**--आपका नाम क्या है? **किगोत्ते**--आपका गोत्र कौन-सा है? **व**--और, **कस्सट्ठाए**--किस लिए, **माहणे**--आप माहन बने हैं? आपके गुरु कौन हैं **कहं**--किस प्रकार आप, **बुद्धे**--उन अचार्यादि गुरुजनों की, **पडियरसि**--सेवा करते हैं? और, **कहं**--किस प्रकार, **विणिए त्ति**-- विनयवान्, **वुच्चसि**-- कहलाते हैं ॥२१॥

— मन वचन और काया से किसी भी जीव के मारने का भाव जिसमें नहीं है, उसे (माहन) कहते हैं अर्थात् किसी भी जीव को मत मारो 'मा-मत,— हन-मारो''--इस प्रकार जो 'मत मारो, मत मारो' उपदेश देता है वह 'माहन' कहलाता है। 'माहन' शब्द साधु और श्रावक दोनों अर्थों में आता है। इस गाथा में 'माहन' शब्द 'साधु' अर्थ में आया है। २१॥

संजओ णाम णामेणं, तहा गोत्तेण गोयमो।
गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचरण-पारगा ॥२२॥

— *संयति मुनि क्षत्रिय मुनि के प्रश्नों का उत्तर देते हैं* कि, **संजओ णाम णामेणं**--संयति मेरा नाम है **गोत्तेण गोयमो**-गौत्तम मेरा गोत्र है, **तहा**--और, **विज्जाचरणपारगा**—विद्या-ज्ञान और चारित्र के पारगामी, **गद्दभाली**—गर्दभाली, **मम**—मेरे, **आयरिया**--आचार्य हैं। ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति

के लिए मैंने दीक्षा अंगीकार की है जिसका अंतिम फल मोक्ष है। मैं अपने गुरुजनों की सेवा करता हूँ और उन्हीं का उपदेश सुनने से तथा उसी के अनुसार आचरण करने से मुझे विनय-धर्म की प्राप्ति हुई है ।।२२।।

किरियं अकिरियं विणयं, अण्णाणं च महामुणी ।
एएहिं चउहिं ठाणेहिं, मेयण्णे किं पभासइ ।।२३।।

— क्षत्रिय राजर्षि संयति मुनि से कहते हैं कि, महामुणी— हे महामुनीश्वर ! किरियं— क्रियावाद, अकिरियं— अक्रियावाद, विणयं— विनयवाद, य— और, अण्णाणं— अज्ञानवाद, एएहिं—इन, चउहिं—चार, ठाणेहिं— स्थानों (वादों) द्वारा, मेयण्णे—वादी लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार एकान्त पक्ष का, पभासइ—प्रतिपादन करते हैं, किन्तु उनका कथन युक्ति-संगत न होने से अयुक्त है ।।२३।।

भावार्थ— क्रियावादी लोग आत्मा को सदा क्रियाशील मानते हैं। उनका कथन है कि आत्मा सदा क्रिया करता ही रहता है। अक्रियावादी लोग आत्मा को अक्रिय मानते हैं। विनयवादी लोग केवल विनय से ही मोक्ष मानते हैं। अज्ञान-वादी लोग अज्ञान से मोक्ष मानते हैं। ये सब एकान्त पक्ष को लेकर विवाद करते हैं, । उनका कथन युक्तिसंगत नहीं है ।।

इइ पाउकरे बुद्धे, णायए परिणिव्वुए ।
विज्जाचरणसंपण्णे, सच्चे सच्चपरक्कमे ।।२४।।



— विज्जाचरण संपण्णे—क्षायिक ज्ञान और चारित्र से सम्पन्न, सच्चे— सत्य बोलने वाले, सच्चपरक्कमे— सत्य में पराक्रम करने वाले एवं कर्म-शत्रुओं का विनाश करने वाले, परिणिव्वुए—कषायों को शान्त करने वाले, बुद्धे—तत्त्ववेत्ता-केवलज्ञानी, णायए— ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर स्वामी ने, इइ— उपरोक्त चारों वादों का, पाउकरे— कथन किया है ॥२४॥

पडंति णरए घोरे, जे णरा पावकारिणो ।
दिव्वं च गइं गच्छंति, चरित्ता धम्ममारियं ॥२५॥

— जे—जो, णरा—मनुष्य, पावकरिणो—पाप करने वाले हैं अर्थात् असत् प्ररूपणा और हिंसादि पाप-कर्म में प्रवृत्ति करने वाले हैं वे, घोरे—घोर अन्धकार वाले भयानक, णरए—नरक में, पडंति—जाते हैं, च—और, आरियं—श्रुत चारित्र रूप आर्य, धम्मं—धर्म का, चरित्ता— आचरण करके जीव, दिव्वं गइं— देवगति को, गच्छंति— प्राप्त होते हैं, इसलिए पापकर्म का तथा मिथ्यापक्ष का त्याग करके सत्यरूपणा एवं आर्यधर्म का अनुसरण करना चाहिए ॥२५॥

मायावुइयमेयं तु मुसा भासा णिरत्थिया ।
संजममाणोवि अहं, वसामि इरियामि य ॥२६॥

--क्षत्रिय मुनि संजय मुनि से कहते हैं कि मुने! क्रियावादि आदि लोग, मायावुइयं— मायापूर्वक बोलते हैं, तु—इसलिए उनका, भासा--कथन, मुसा—मिथ्या, अवि-- ओर, णिरत्थिया— निरर्थक है। उनके कथन को सुनता हुआ भी, अहं—मैं, संजममाणो—संयम-मार्ग में, वसामि— भली प्रकार स्थित हूँ, य-- ओर, इरियामि--यतनापूर्वक गोचरी आदि के लिए जाता हूँ ॥२६॥

सव्वे ए विइया मज्झं, मिच्छादिट्ठी अणारिया।
विज्जमाणे परे लोए, सम्मं जाणामि अप्पगं ॥२७॥

— ए सव्वे —ये सब वादी लोग, मज्झं--मेरे, विइया— जाने हुए हैं। ये सब, मिच्छादिट्ठी--मिथ्यादृष्टि, अणारिया- अनार्य हैं। परे लोए--परलोक, विज्जमाणे-- विद्यमान है और इसी से, अप्पगं— मैं अपनी आत्मा को, सम्मं— सम्यक् प्रकार से, जाणामि—जानता हूँ ॥२७॥

अहमासो महापाणे, जुइमं वरिससओवमे।
जा सा पाली महापाली, दिव्वा वरिससओवमा ॥२८॥

--क्षत्रिय राजर्षि कहते हैं कि, अहं--मैं, महापाणे— ब्रह्मदेवलोक के महाप्राण नामक विमान में, जुइमं—देवों की कान्ति से युक्त देव था और, वरिसस ओवमा—यहाँ की सौ वर्ष आयु के साथ जिसकी उपमा दी जाती है ऐसी, दिव्वा--देवों

की, जा--जो, पाली—पल्योपम और, महापाली--सागर की स्थिति कही जाती है, सा-- वैसी, वरिससओवमा— वर्ष शतोपमा वाली मेरी आयु थी अर्थात् जैसे इस समय इस लोक में सौ वर्ष की विशिष्ट आयु मानी गई है, उसी प्रकार उस देवलोक में मेरी भी उत्कृष्ट आयु थी अर्थात् मेरी आयु दस सागर प्रमाण थी ॥२८॥

से चुए बंभलोगाओ, माणुसं भवमागए ।
अप्पणो य परेसिं च, आउं जाणे जहा तहा ॥२९॥

— से— दस सागर की स्थिति भोगने के बाद, बंभलोगाओ—ब्रह्मदेवलोक से, चुए—चव कर मैं, माणुसं-- मनुष्य के, भवं--भव में, आगए—आया हूँ, य--और, अप्पणो--मैं अपनी और, परेसिं--दूसरों की आउं—आयु को, जहा— जैसी है, तहा— वैसो (यथार्थ) जाणे— जानता हूँ ॥२९॥

णाणारुइं च छंदं च, परिवज्जेज्ज संजए ।
अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे ॥३०॥

— क्षत्रिय राजर्षि, संयति मुनि से कहते हैं कि, संजए— साधु को चाहिए कि, णाणारुइं--क्रियावादी अक्रियावादी आदि वादियों की नाना प्रकार की रुचि, च—और, छंदं— अपनी बुद्धि से कल्पित भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिप्रायों का, परिवज्जेज्ज-- सर्वथा त्याग कर दे, य—और, जे—जो,

अणट्ठा—हिंसा झूठ आदि अनर्थकारी पाप कार्य हैं उन सब का, सव्वत्था—सर्वथा एवं सर्वत्र त्याग कर दे, च—और, इइ—इस प्रकार, विज्जा—सम्यग् ज्ञान को अंगीकार करके, अणुसंचरे—संयम-मार्ग में प्रवृत्ति करे ॥३०॥

पडिक्कमामि पसिणाणं, परमंतेहिं वा पुणो ।
अहो उट्ठिए अहोरायं, इइ विज्जा तवं चरे ॥३१॥

— क्षत्रिय राजर्षि पुनः कहते हैं कि मैं, पसिणाणं—शुभाशुभ फल सूचक सावद्य प्रश्नों से, वा—और, परमंतेहिं—गृहस्थ सम्बन्धी सावद्य कार्यों के विचार-विनिमय से, पडिक्कमामि— निवृत्त हो गया हूँ, पुणो,—और, अहोरायं— रात-दिन, उट्ठिए—धर्म साधना में उद्यत रहता हूँ। जो शुद्ध संयम का पालन करना चाहते हैं, उन मुनियों को भी ऐसा ही करना चाहिए, इइ—इस प्रकार, विज्जा—जान कर बुद्धिमान् साधु को सदा, तवं—तप का, चरे—आचरण करना चाहिए। 'अहो' यह विस्मयार्थक अव्यय है ॥३१॥

जं च मे पुच्छसि काले, सम्मं सुद्धेण चेयसा ।
ताइं पाउकरे बुद्धे, तं णाणं जिणसासणे ॥३२॥

— हे मुनीश्वर ! सम्मं— सम्यक् प्रकार एवं, सुद्धेण—शुद्ध, चेयसा—चित्त से, जं—यदि तुम, मे—मुझ से, काले—किसी समय, पुच्छसि— प्रश्न करो तो मैं तुम्हारे

प्रश्नों का ठीक उत्तर दे सकता हूँ क्योंकि, तं णाणं--इस प्रकार का सारा ज्ञान, जिणसासणे--जिन-शासन में विद्यमान है, ताइं--जो कि, बुद्धे—सर्वज्ञ भगवान् ने, पाउकरे—फरमाया है और उन्हीं ज्ञानियों की कृपा से मैं भी बुद्ध हूँ। अतएव तुम्हारे सारे प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूँ। जिनशासन में रह कर संयम का पालन करने से तुम भी बुद्ध हो सकते हो ॥३२॥

किरियं च रोयए धीरे, अकिरियं परिवज्जए ।
दिट्ठिए दिट्ठिसंपण्णे, धम्मं चरसु दुच्चरं ॥३३॥

--हे मुने ! धीरे-- धीर पुरुषों को चाहिए कि किरियं—क्रिया अर्थात् आस्तिकता में, रोयए--विश्वास करे, च—और, अकिरियं— नास्तिकता का, परिवज्जए--त्याग कर दे तथा, दिट्ठिए--सम्यग्-दर्शन और, दिट्ठिसंपण्णे--सम्यग्ज्ञान से सम्पन्न हो कर, दुच्चरं—अति दुष्कर, धम्मं—धर्म का, चरसु--आचरण करे। अतः हे मुनीश्वर ! तुम भी दृढ़तापूर्वक धर्म का आचरण करो ॥३३॥

एयं पुण्णपयं सोच्चा, अत्थधम्मोवसोहियं ।
भरहो वि भारहं वासं, चिच्चा कामाइ पव्वए ॥३४॥

— संजय मुनि को संयम में विशेष स्थिर करने के लिए तथा मुमुक्षु जन को धर्म में दृढ़ करने के लिए क्षत्रिय राजर्षि कुछ महापुरुषों के उदाहरण देते हैं--

— हे मुनिश्वर ! अच्चंत णियाणखमा—कर्म-मल को शोधन करने में अत्यन्त समर्थ, एसा—सम्पूर्ण सत्य यह, वई—वाणी जो, मे—मैंने, भासिया—आपके प्रति कही है, इस वाणी के द्वारा, अतरिंसु—भूतकाल में अनेक जीव संसार-समुद्र तिर गये हैं, तरंतेगे—वर्तमान काल में अनेक जीव तिर रहे हैं और, अणागया—भविष्यत् काल में अनेक जीव तरिस्संति—तिरेंगे ॥५३॥

कहं धीरे अहेऊहिं,
अत्ताणं परियावसे ।
सव्व-संग-विणिम्मुक्के,
सिद्धे हवइ णीरए ॥५४॥ त्तिबेमि ॥

— कहं—कौन, धीरे—धीर एवं बुद्धिमान् पुरुष, अहेऊहिं—क्रियावादी, अज्ञानवादी आदि वादियों के कहे हुए कुतर्कों में फँस कर, अत्ताणं—अपनी आत्मा का, परियावसे—अहित करना चाहेगा अर्थात् कोई नहीं चाहेगा, क्योंकि इन कुहेतुओं में आत्मा को न फँसा कर जिनशासन का आश्रय लेने से ही, सव्व संग विणिम्मुक्के—सभी द्रव्य संग और भाव संगों से रहित होकर तथा, णिरए—कर्म रूपी रज से रहित होकर यह आत्मा, सिद्धे—सिद्ध, हवइ—हो जाता है ॥ त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ॥५४॥

॥ अठारहवां अध्ययन समाप्त ॥

'मृगापुत्रीय' उन्नीसवाँ अध्ययन

सुग्गीवे णयरे रम्मे, काणणुज्जाण-सोहिए ।
राया बलभद्दित्ति, मिया तस्सग्गमाहिसी ॥१॥

— काणणुज्जाण सोहिए—अनेक प्रकार के वन-उपवनों से सुशोभित, रम्मे—रमणीय, सुग्गीवे णयरे—सुग्रीव नाम के नगर में, बलभद्दित्ति—बलभद्र नाम का, राया—राजा राज्य करता था, तस्स—उसके, मिया—मृगा नाम की, अग्गमाहिसी—पटरानी थी ॥१॥

तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए ।
अम्मा-पिऊण दइए, जुवराया दमीसरे ॥२॥

— तेसिं—उनके, बलसिरी—बलश्री नाम का, पुत्ते—पुत्र था, किन्तु लोगों में वह, मियापुत्ते त्ति—मृगापुत्र के नाम से, विस्सुए—विख्यात था। वह, अम्मा पिऊण— माता पिता को, दइए—बड़ा प्रिय था। वह, जुवराया—युवराज और, दमीसरे—दमीश्वर था अर्थात् उद्धत पुरुषों का दमन करने वाले राजाओं का स्वामी था। यह अर्थ वर्तमान काल की अपेक्षा से किया गया है। भविष्यत् काल की अपेक्षा, 'दमीश्वर' शब्द का अर्थ है—इन्द्रियों का दमन करने वाले महात्माओं में श्रेष्ठ। ऐसा वह मृगापुत्र था ॥२॥

णंदणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं ।
देवो दोगुंदगो चेव, णिच्चं मुइयमाणसो ॥३॥

— सो उ—वह मृगापुत्र नामक राजकुमार, णंदणे--नन्दन वन के समान आनन्ददायक, पासाए---प्रासाद (भवन) में, इत्थिहिं सह— स्त्रियों के साथ, णिच्चं-- सदा, मुइयमाणसो---प्रसन्न चित्त वाला होकर, दोगुंदगो देवो चेव-इन्द्र के गुरुस्थानीय त्रायस्त्रिंश जाति के दोगुंदक देव के समान, कीलए—क्रीड़ा करता था ॥३॥

मणिरयणकोट्टिमतले, पासायालोयणट्ठिओ ।
आलोएइ णगरस्स, चउक्कत्तियचच्चरे ॥४॥

— मणिरयणकोट्टिम तले---जिसके आंगन में मणि और रत्न जड़े हुए थे ऐसे, पासायालोयणट्ठिओ — प्रासाद के झरोखे में बैठा हुआ वह राजकुमार एक समय, णगरस्स — उस सुग्रीव नगर के, चउक्कत्तिय चच्चरे— चतुष्क (जहाँ चार मार्गों का संगम हो) त्रिक (तीन मार्गों का मिलन स्थान) और चत्वर (अनेक) मार्गों को, आलोएइ--देख रहा था ॥४॥

अह तत्थ अइच्छंतं, पासई समण-संजयं ।
तंव-णियम-संजमधरं, सीलड्ढं गुण-आगरं ॥५॥

— अह--राजकुमार ने नगर अवलोकन करते हुए

तवणियम संजम धरे—तप, नियम और संयम को धारण करने वाले, **सीलड्ढं**--अठारह हजार शील के अंग रूप गुणों के धारक, **गुण आगरं**--ज्ञानादि गुणों के भण्डार, **समणसंजयं**-- एक संयती, (जैन साधु) को, **तत्थ**—राज-मार्ग पर, **अइच्छंतं**--जाते हुए **पासई**--देखा ॥५॥

तं पेहइ मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाइ उ ।
कहिं मण्णेरिसं रूवं, दिट्ठपुव्वं मए पुरा ॥६॥

—**मियापुत्ते**—मृगापुत्र, **तं**--उस मुनि को, **अणिमिसाए**-अनिमेष **दिट्ठीए**--दृष्टि से, **पेहइ**--देखने लगा **उ**—और मन में सोचने लगा कि, **मण्णे**--मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, **एरिसं**--इस प्रकार का, **रूवं**--रूप, **मए**—मैंने, **पुरा**--पहले, **कहिं**—कहीं, **दिट्ठपुव्वं**—अवश्य देखा है । ६॥

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि-सोहणे ।
मोहं गयस्स संतस्स, जाइसरणं समुप्पण्णं ॥७॥

— **तस्स**--उस, **साहुस्स**—साधु को, **दरिसणे**—देखने पर, **मोहं**— मोहनीय-कर्म का, **गयस्स संतस्स**--क्षयोपशम होने से तथा, **अज्झवसाणम्मि**-- आन्तरिक परिणामों में, **सोहणे**—शुद्धता होने से मृगापुत्र को, **जाइसरणं**--जाति-स्मरण ज्ञान, **समुप्पण्णं**—उत्पन्न हो गया ॥७॥

देवलोग चुओ संतो, माणुसं भवमागओ ।
सण्णिणाण-समुप्पण्णे, जाइं-सरइ-पुराणयं ॥८॥

— सण्णिणाण--संज्ञिज्ञान--जातिस्मरण ज्ञान, समुप्पण्णे-उत्पन्न हो जाने पर वह मृगापुत्र, पुराणयं जाई--अपने पूर्व-जन्म को, सरइ--स्मरण करने लगा कि मैं, देवलोग चुओ संतो—देवलोक से चव कर, माणुसं भवं—मनुष्य भव में, आगओ—आया हूँ ॥ ८ ॥

जाइसरणे समुप्पण्णे, मियापुत्ते महड्ढिए ।
सरइ पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं ॥९॥

— जाइसरणे—जातिस्मरण ज्ञान समुप्पण्णे—उत्पन्न होने पर, महड्ढिए-- महाऋद्धि वाला वह, मियापुत्ते—मृगापुत्र, पोराणियं जाइं--अपने पूर्व-जन्म को, च—और, पुराकयं—पूर्व-जन्म में पालन किये हुए, सामण्णं—साधुपन को, सरइ—स्मरण करने लगा ॥९॥

विसएसु अरज्जंतो, रज्जंतो संजमम्मि य ।
अम्मा-पियरमुवागम्म, इमं वयण-मब्बवी ॥१०॥

— विसएसु-- विषय-भोगों में, अरज्जंतो—आसक्ति नहीं रखता हुआ, य—और, संजमम्मि--संयम में, रज्जंतो--अनुराग रखता हुआ मृगापुत्र, अम्मापियरं--माता-पिता के उवागम्म--निकट आकर, इमं—इस प्रकार, वयण-- वचन, मब्बवी—कहने लगा ॥१०॥

माणुसत्ते असारम्मि, वाहिरोगाण आलए ।
जरामरणघत्थम्मि, खणं पि ण रमामहं ॥१५॥

— वाहिरोगाण-- कोढ़ आदि व्याधियाँ और ज्वर आदि रोगों के, आलए—घर रूप तथा, जरामरण घत्थम्मि--जरा और मृत्यु से घिरे हुए इस, असारम्मि--असार, माणुसत्ते--मनुष्य-जन्म में, अहं—मैं, खणं पि—एक क्षण भर भी, ण रमा--प्रसन्न नहीं होता ॥१५॥

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतवो ॥१६॥

— जम्मं—जन्म, दुक्खं--दुःख रूप है, जरा--बुढ़ापा, दुक्खं– दुःख रूप है तथा, रोगाणि—रोग य--और, मरणाणि–मृत्यु ये सभी दुःख रूप हैं, अहो—अहो ! हु—आश्चर्य है कि, संसारो--यह सारा संसार ही, दुक्खो—दुःख रूप है, जत्थ—इस दुःखमय संसार में, जंतवो--जीव अपने-अपने कर्मों के वश होकर, कीसंति--नाना प्रकार के दुःख और क्लेशों को प्राप्त हो रहे हैं ॥१६॥

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्तदारं च बंधवा ।
चइत्ताणं इमं देहं, गंतव्वमवसस्स मे ॥१७॥

— खेतं—क्षेत्र (खुली भूमि) वत्थुं—वास्तु (घर कान आदि) च—और, हिरण्णं— सोना-चांदी आदि,

पुत्तदारं— पुत्र-स्त्री, च— और, बंधवा— बान्धव तथा, इमं—इस, देहं—शरीर को भी, चइत्ताणं—छोड़ कर, मे—मेरे इस जीव को, अवसस्स—परवश होकर अवश्य, गंतव्वं—जाना पड़ेगा ॥१७॥

जह किंपागफलाणं, परिणामो ण सुंदरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो ण सुंदरो ॥१८॥

— जह—जिस प्रकार, किंपागफलाणं— किंपाक वृक्ष के फलों का, परिणामो--परिणाम, ण सुंदरो—सुन्दर नहीं होता, एवं—इसी प्रकार, भुत्ताण—भोगे हुए, भोगाणं—भोगों का, परिणामो— परिणाम भी, ण सुंदरो—सुन्दर नहीं होता ॥१८॥

अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छंतो सो दुही होइ, छुहातण्हाए-पीडिओ ॥१९॥

— अपाहेज्जो--पाथेय (खाने-पीने की सामग्री) साथ में लिए बिना ही, जो--जो पुरुष, महंतं—लंबे, अद्धाणं—मार्ग की, पवज्जइ—यात्रा करता है, गच्छंतो--मार्ग में जाता हुआ, सो—वह, छुहातण्हाए—भूख और प्यास से, पीडिओ—पीड़ित होकर, दुही—दुखी, होइ—होता है ॥१९॥

एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो दुही होइ, वाहीरोगेहिं पीडिओ ॥२०॥

— एवं—इसी प्रकार, धम्मं—धर्म का, अकाऊणं—आचरण किये विना, जो—जो पुरुष, परं भवं— परभव में, गच्छइ—जाता है तो, गच्छंतो—परभव में जाता हुआ, सो—वह, वाहीरोगेहिं—व्याधि और रोगों से, पीडिओ—पीड़ित होकर, दुहो—दुःखी, होइ—होता है ॥२०॥

अद्धाणं जो महंतं तु, सपाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छंतो सो सुही होइ, छुहातण्हा-विवज्जिओ ॥२१॥

— सपाहेज्जो—पाथेय सहित, जो—जो पुरुष, महंतं—लम्बे, अद्धाणं—मार्ग की, पवज्जइ—यात्रा करता है तो, गच्छंतो—मार्ग में जाता हुआ, सो—वह पुरुष, छुहातण्हा विवज्जिओ—भूख और प्यास से रहित होकर, सुही—सुखी होइ—होता है ॥२१॥

एवं धम्मं वि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥२२॥

—एवं—इसी प्रकार, जो—जो पुरुष, धम्मं वि—धर्म का, काऊणं—सेवन करके, परं भवं—परभव में, गच्छइ—जाता है तो, गच्छंतो—जाता हुआ, सो—वह, अप्पकम्मे— अल्पकर्म-अल्प पाप वाला और, अवेयणे—वेदना से रहित होकर, सुही—सुखी, होइ—होता है ॥२२॥

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभंडाणि णीणेइ, असारं अवउज्झइ ॥२३॥

एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमण्णिओ ॥२४॥

-- जहा—जिस प्रकार, गेहे—घर में, पलित्तम्मि—आग लग जाने पर, तस्स--उस, गेहस्स—घर का, जो--जो, पहू--स्वामी होता है वह, सारभंडाणि--सार वस्तु (मूल्यवान् आभूषण तथा वस्त्रादि) को, णीणेइ--बाहर निकालता है और, असारं-- असार वस्तुओं (फटे हुए वस्त्रादि) को, अवउज्झइ--छोड़ देता है, एवं—इसी प्रकार, जराए—बुढ़ापा, य —और, मरणेण—मृत्यु से, पलित्तम्मि —जलते हुए, लोए--इस लोक में, तुब्भेहिं-- आप की, अणुमण्णिओ—आज्ञा मिलने पर, अप्पाणं--मैं अपनी आत्मा को, तारइस्सामि--तारूँगा अर्थात् यह संसार जरा और मरण रूपी अग्नि से जल रहा है इसलिए मैं अपनी आत्मा रूपी सार पदार्थ को इससे निकाल लूंगा और कामभोग रूपी असार पदार्थों को छोड़ दूंगा ॥२३-२४॥

तं बितम्मापियरो, सामण्णं पुत्त ! दुच्चरं ।
गुणाणं तु सहस्साइं, धारेयव्वाइं भिक्खुणा ॥२५॥

— तं—उस मृगापुत्र को, अम्मापियरो—माता-पिता, बित –कहने लगे कि, पुत्त—हे पुत्र ! भिक्खुणा—साधु को, गुणाणं सहस्साइं--शील के अठारह हजार गुण तथा क्षमा

आदि अनेक गुण, धारेयव्वाइं--धारण करने पड़ते हैं। इसलिए, सामण्णं—साधु-धर्म का, दुच्चरं-- पालन करना अत्यन्त कठिन है ॥२५॥

समया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाए दुक्करं ॥२६॥

— हे पुत्र ! जावज्जीवाए-- जीवनपर्यन्त, जगे— संसार में, सव्वभूएसु-- सभी प्राणियों पर, वा--चाहे, सत्तुमित्तेसु--शत्रु हों या मित्र, समया—समभाव रखना तथा, पाणाइवायविरई--प्राणात्तिपात (हिंसा) से सर्वथा निवृत्त होना, (पहले महाव्रत का पालन करना) भी, दुक्करं— अत्यन्त कठिन है ॥२६॥

णिच्चकालप्पमत्तेणं, मुसावाय-विवज्जणं ।
भासियव्वं हियं सच्चं, णिच्चाउत्तेण दुक्करं ॥२७॥

— णिच्चकालं—सदैव के लिए, अप्पमत्तेणं—प्रमाद-रहित होकर, मुसावायविवज्जणं—मृषावाद का त्याग और, णिच्चाउत्तेण—सदा उपयोग रख कर, हियं—हितकारी, सच्चं-सत्य वचन, भासियव्वं— बोलना, (दूसरे महाव्रत का पालन करना) दुक्करं—बड़ा दुष्कर है ॥२७॥

दंत-सोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं ।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा वि दुक्करं ॥२८॥

— अदत्तस्स—बिना दिये हुए किसी भी पदार्थ को, विवज्जणं--नहीं लेना, यहाँ तक कि, दंतसोहणमाइस्स--दाँतों को स्वच्छ करने के लिए तृण भी बिना आज्ञा नहीं लेना तथा, अणवज्जेसणिज्जस्स—निर्दोष और एषणीय वस्तु, गिण्हणा-- ग्रहण करना, इस तीसरे महाव्रत का पालन करना भी, दुक्करं--बड़ा दुष्कर है ॥२८॥

विरई अबंभचेरस्स, कामभोगरसण्णुणा।
उग्गं महव्वयं बंभं, धारेयव्वं सुदुक्करं ॥२९॥

-- कामभोगरसण्णुणा—कामभोग के रस को जानने वाले पुरुष के लिए, अबंभचेरस्स--मैथुन से, विरई--सर्वथा निवृत्त होकर, उग्गं--उग्र (कठोर) बंभमहव्वयं—ब्रह्मचर्य रूप चतुर्थ महाव्रत को, धारेयव्वं--धारण करना, सुदुक्करं--अत्यन्त कठिन है ॥२९॥

धणधण्णपेसवग्गेसु, परिग्गह-विवज्जणं।
सव्वारंभपरिच्चाओ, णिम्ममत्तं सुदुक्करं ॥३०॥

-- सव्वारंभपरिच्चाओ-- सभी आरम्भ का त्याग करना तथा, परिग्गहविवज्जणं--परिग्रह का त्याग करना और, धणधण्णपेसवग्गेसु--धन-धान्य नौकर-चाकरों का त्याग करना एवं इन सभी के, णिम्ममत्तं--ममत्वभाव से रहित होना इस प्रकार परिग्रह-विरमण रूप पाँचवां महाव्रत, सुदुक्करं--अत्यन्त दुष्कर है ॥३०॥

पालने के लिए, पभू--समर्थ, ण--नहीं, हुसी--है । ३५॥

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महब्भरो ।
गुरुओ लोहभारुव्व, जो पुत्ता ! होइ दुव्वहो ॥३६॥

— गुरुओ लोहभारुव्व--जिस प्रकार लोह के बड़े भार को, दुव्वहो--सदा उठाए रखना बड़ा कठिन है, उसी प्रकार, पुत्ता--हे पुत्र ! गुणाणं--साधुपने के अनेक गुणों का, जो--जो, महब्भरो--महान् भार है उसको, अविस्सामो--विश्राम लिए बिना, जावज्जीवं--जीवनपर्यन्त धारण करना, दुव्वहो--बड़ा कठिन, होइ--है ॥३६॥

आगासे गंगसोउव्व, पडिसोउव्व दुत्तरो ।
बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो य गुणोदही ॥३७॥

— आगासे गंगसोउव्व—जिस प्रकार आकाश-गंगा की धारा को अर्थात् चुलहिमवंत पर्वत से निकलती हुई धारा को, दुत्तरो—तैरना बड़ा कठिन है तथा, पडिसोउव्व—धारा के सामने तैरना कठिन है, चेव—और जिस प्रकार, बाहाहिं—भुजाओं से, सागरो—सागर को पार करना कठिनतर है, य—उसी प्रकार, गुणोदही— ज्ञानादि गुणों के समूह को, तरियव्वो—पार करना भी अत्यन्त कठिन है ॥३७॥

वालुयाकवलो चेव, णिरस्साए उ संजमे ।
असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो ॥३८॥

— चेव— जिस प्रकार, वालुयाकवलो--वालू रेत का ग्रास नीरस होता है, उ--उसी प्रकार, विषय-भोगों में गृद्ध बने हुए मनुष्यों के लिए, संजमे—संयम, णिरस्साए—नीरस है, चेव—और जिस प्रकार, असिधारागमणं--तलवार की धार पर चलना कठिन है उसी प्रकार, तवो—तप का, चरिउं—आचरण करना भी, दुक्करं—बड़ा कठिन है ।।३८।।

अहीवेगंतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त ! दुच्चरे ।
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं ।।३९।।

— पुत्त— हे पुत्र ! अहीव--जिस प्रकार साँप, एगंत दिट्ठीए—एकाग्र दृष्टि रख कर चलता है, उसी प्रकार एकाग्र मन रख कर, चरित्ते— संयम-वृत्ति में चलना, दुच्चरे—कठिन है, चेव—और जिस प्रकार, लोहमया—लोह के, जवा—जौ अथवा चने, चावेयव्वा— चबाना, सुदुक्करं--अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार संयम का पालन करना भी कठिन है ।।३९।।

जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करा ।
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ।।४०।।

— जहा--जिस प्रकार, दित्ता--जलती हुई, अग्गिसिहा-अग्नि की ज्वाला को, पाउं--पीना, सुदुक्करा--अत्यन्त कठिन, होइ--है, तहा—उसी प्रकार, तारुण्णे--तरुण अवस्था में, समणत्तणं—साधुपन, करेउं--पालन करना, दुक्करं—अत्यन्त कठिन है ।।४०।।

जहा दुक्खं भरेउं जे, होइ वायस्स कोत्थलो ।
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं ॥४१॥

-- जहा--जिस प्रकार, कोत्थलो--कपड़े की कोथली को, वायस्स—हवा से, भरेउं—भरना दुक्खं—कठिन, होइ--है, तहा—उसी प्रकार, कीवेणं-- कायर एवं निर्बल से, समत्तणं--साधुपना, करेउं--पाला जाना, दुक्खं--दुष्कर है ॥

जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करं मंदरो गिरी ।
तहा णिहुअणीसंकं, दुक्करं समणत्तणं ॥ ४२ ॥

— जहा—जिस प्रकार, मंदरो गिरी--सुमेरु पर्वत को, तुलाए-- तराजु से तोलेउं—तोलना, दुष्करं—कठिन है, तहा – उसी प्रकार, णिहुअणीसंकं—कामभोगों की अभिलाषा और शरीर के ममत्व एवं सम्यक्त्व के शंकादि दोषों से रहित होकर, समणत्तणं--साधुपने का पालन करना, दुक्करं—बड़ा कठिन है ॥४२॥

जहा भुयाहि तरिउं, दुक्करं रयणायरो ।
तहा अणुवसंतेणं, दुक्करं दम-सायरो ॥ ४३ ॥

— जहा-- जिस प्रकार, रयणायरो— समुद्र को, भुयाहि--भुजाओं से, तरिउं—तैरना, दुक्करं--कठिन है, तहा--उसी प्रकार, अणुवसंतेणं— कषायों को उपशान्त किये बिना, दमसायरो--संयम रूपी समुद्र को तैरना, दुक्करं—बड़ा कठिन है ॥४३॥

भुंज माणुस्सए भोए, पंच लक्खणए तुमं।
भुत्त भोगी तओ जाया! पच्छा धम्मं चरिस्ससि।४४।

— मृगापुत्र के माता-पिता उसे कहते हैं कि तरुण अवस्था में संयम का पालन करना बड़ा कठिन है इसलिए, जाया—हे पुत्र! अभी तो, तुमं--तुम, पंचलक्खणए—शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श रूप पाँच लक्षण वाले, माणुस्सए--मनुष्य सम्बन्धी, भोए--भोगों को, भुंज--भोगो, तओ—इसके बाद, भुत्तभोगी--भुक्तभोगी होकर पच्छा--वृद्धावस्था में, धम्मं--धर्म का, चरिस्ससि--पालन करना ॥४४॥

सो बित अम्मापियरो, एवमेयं जहाफुडं।
इहलोगे णिप्पिवासस्स, णत्थि किंचिवि दुक्करं॥४५॥

— सो— वह मृगापुत्र, बित— कहने लगा कि, अम्मापियरो—हे माता पिता! एयं—संयम का पालन करना, एवं--ऐसा ही कठिन है, जहाफुडं--जैसा आपने कहा है किन्तु, इहलोगे—इस लोक में अर्थात् स्वजन सम्बन्धी परिग्रह तथा काम-भोगों में, णिप्पिवासस्स--निःस्पृह बने हुए पुरुष के लिए, किंचि वि-- कुछ भी, दुक्करं-- कठिन, णत्थि—नहीं है ॥४५॥

सारीरमाणसा चेव, वेयणाओ अणंतसो।
मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्ख-भयाणि य॥४६॥

— हे माता पिता ! मए—मैंने, अणंतसो—अनन्त बार, भीमाओ—भयंकर, सारीरमाणसा—शारीरिक और मानसिक, वेयणाओ — वेदनाएँ, सोढाओ— सहन की हैं, चेव— और, असइं— अनेक बार, दुक्ख भयाणि य— दुःख और भयों अनुभव किया है ॥ ४६ ॥

जरामरणकंतारे, चाउरंते भयागरे ।
मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ॥४७॥

— चाउरंते— चार गति वाले, भयागरे— भयंकर, जरामरणकंतारे— जरा-मरण रूपी अटवी में, मए— मैंने, भीमाणि— भयंकर, जम्माणि— जन्म, य— और, मरणाणि— मरण के दुःख अनेक बार, सोढाणि— सहे हैं ॥ ४७ ॥

जहा इहं अगणी उण्हो, इत्तो अणंतगुणो तहिं
णरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥४८॥

— इहं— यहाँ, जहा— जैसी, अगणी— अग्नि, उण्हो— उष्ण है, इत्तो— उससे, अणंतगुणो— अनन्तगुण, उण्हा— उष्णता, तहिं— उन, णरएसु— नरकों में है । वेयणा— उस उष्ण-वेदना रूप, अस्साया— असाता को, मए— मैंने अनन्ती वार, वेइया— सहन की है ॥४८॥

जहा इहं इमं सीयं, इत्तो अणंतगुणं तहिं ।
णरएसु वेयणा सीया, अस्साया वेइया मए ॥ ४९ ॥

--इहं— यहां, जहा— जैसी, इमं — यह, सीयं— शीत है, इत्तो —इससे, अणंतगुणं--अनन्तगुण अधिक, सीया- शीत, तहिं— उन, णरएसु— नरकों में हैं। वेयणा— उस शीत-वेदना रूप, अस्साया — असाता को, मए— मैंने अनन्ती बार, वेइया— सहन की है ॥४९॥

कंदंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो।
हुयासणे जलंतम्मि, पक्कपुव्वो अणंतसो ॥५०॥

— कंदुकुंभीसु— कंदुकुम्भियों में (वैक्रिय द्वारा बनाये हुए पकाने के बरतन विशेषों में) उड्ढपाओ—-ऊँचे पांव तथा, अहोसिरो— नीचे शिर करके, कंदंतो-- आक्रन्दन करता हुआ मैं, जलंतम्मि-- जलती हुई, हुयासणे— अग्नि में, अणंतसो— अनन्ती बार, पक्कपुव्वो—पकाया गया हूँ ॥५०॥

महादवग्गिसंकासे, मरुम्मि वइरवालुए।
कलंब-वालुयाए य, दड्ढपुव्वो अणंतसो ॥५१॥

— महादवग्गिसंकासे--- महादावाग्नि के समान और, मरुम्मि —मरुदेश की वालुका के समान, वइरवालुए—नरक की वज्र-वालुका में, य—और, कलंब वालुयाए--कदम्ब नदी की वालुका में, अणंतसो— अनन्ती बार, दड्ढपुव्वो—मैं जलाया गया हूँ ॥५१॥

रसंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढं बद्धो अबंधवो।
करवत्तकरकयाईहिं, छिण्णपुव्वो अणंतसो ॥५२॥

-रसंतो--दुःख के मारे चिल्लाते हुए, अबंधवो--बान्धव· स्वजनादि की शरण एवं सहायता रहित मुझे, कंदुकुंभीसु— कंदु कुम्भियों के, उड्ढं--ऊपर अर्थात् नीचे कंदुकुम्भी रख कर ऊपर किसी वृक्षादि की शाखा में, बद्धो—बांध दिया गया और फिर, करवत्त करकयाईहिं—करवत और क्रकच आदि शस्त्र विशेष से मैं, अणंतसो—अनन्ती वार, छिण्णपुव्वो— पूर्वभवों में छेदन-भेदन किया गया हूँ ॥५२॥

अइत्तिक्खकंटगाइण्णे, तुंगे सिंबलिपायवे ।
खेवियं पासबद्धेणं, कड्ढोकड्ढाहि दुक्करं ॥५३॥

— अइतिक्खकंटगाइण्णे—अत्यन्त तीक्ष्ण कांटों से व्याप्त, तुंगे--ऊंचे, सिंबलिपायवे--शाल्मलि वृक्ष पर, पासबद्धेणं— मुझे पाश से बांध दिया गया तथा, कड्ढोकड्ढाहि--कांटों पर इधर-उधर खींचे जाने से मैंने, दुक्करं--अत्यन्त असह्य, खेवियं- दुःखों को सहन किया है ॥५३॥

महाजंतेसु उच्छू वा, आरसंतो सुभेरवं ।
पीडिओमि सकम्मेहिं, पावकम्मो अणंतसो ॥५४॥

— सुभेरवं-- अत्यन्त रौद्रतापूर्वक, आरसंतो—रुदन करता हुआ, पावकम्मो— पापकर्मों वाला मैं, अणंतसो— अनन्ती बार, सकम्मेहिं—अपने अशुभ कर्मों से, महाजंतेसु-- बड़े-बड़े यंत्रों में डाल कर, उच्छू वा—गन्ने के समान, पीडिओ मि--पीला गया हूँ ॥५४॥

कूवंतो कोलसुणएहिं, सामेहिं सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिण्णो, विप्फुरंतो अणेगसो ।५५।

—कूवंतो--आक्रन्दन करता हुआ तथा भय से, विप्फुरंतो-इधर-उधर दौड़ता हुआ मैं, कोलसुणएहिं—सूअर और कुत्तों का रूप धारण करने वाले, सामेहिं--श्याम, य—और, सबलेहि—सबल जाति के परमाधार्मिक देवों द्वारा, पाडिओ-भूमि पर गिराया गया, फालिओ—जीर्ण कपड़े के समान चीर दिया गया और, छिण्णो—लकड़ी के समान छेदा गया ।।५५।।

असीहिं अयसिवण्णेहिं भल्लीहिं पट्टिसेहि य ।
छिण्णो भिण्णो विभिण्णो य, उववण्णो पावकम्मुणा ।५६।

— पावकम्मुणा-- पापकर्मों से, उववण्णो-- नरक में उत्पन्न हुआ मैं, अयसिवण्णेहिं— अलसी के वर्ण सरीखी, असीहिं—तलवारों से, भल्लीहिं--भालों से, य—और, पट्टिसेहि--पट्टिश नामक शस्त्र विशेष से, छिण्णो--छेदन किया गया, भिण्णो—भेदन किया गया, य—और, विभिण्णो—छोटे छोटे टुकड़े किया गया ।।५६।।

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलंते समिलाजुए ।
चोइओ तुत्तजुत्तेहिं, रोज्झो वा जह पाडिओ ।।५७।।

— अवसो-- परवश हुए मुझे, जलंते-- जलते हुए, समिलाजुए—समिला-युक्त जुआ वाले, लोहरहे--लोह के

रथ में, जुत्तो--जोड़ा गया और, तुत्तजुत्तेहिं--चाबुक और जोतों से, चोइओ--हांका गया तथा लाठी आदि से पीटा गया एवं, रोज्झो वा-- रोझ के समान, पाडिओ— भूमि पर गिराया गया ॥५७॥

हुयासणे जलंतम्मि, चियासु महिसो विव ।
दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ॥५८॥

— पावकम्मेहिं— पापकर्मों से, अवसो—परवश बना हुआ, पाविओ—पापी मैं, चियासु— परमाधार्मिक देवों द्वारा बनाई हुई ईंधन की चिताओं की, जलंतम्मि-- जलती हुई, हुयासणे--अग्नि में, महिसो विव—भैंसे के समान, दड्ढो-- जलाया गया, य – और, पक्को--पकाया गया ॥५८॥

बला संडासतुंडेहिं, लोहतुंडेहिं पक्खिहिं ।
विलुत्तो विलवंतोहं, ढंकगिद्धेहिं, अणंतसो ॥५९॥

— विलवंतो—विलाप करता हुआ, अहं--मैं, बला— बलपूर्वक, संडासतुंडेहिं—संडासी के समान मुख वाले और, लोहतुंडेहिं—लोह के समान कठोर मुख वाले, पक्खिहिं— पक्षिओं द्वारा और, ढंकगिद्धेहिं--ढंक और गृद्ध पक्षिओं द्वारा, अणंतसो--अनन्ती बार, विलुत्तो--छिन्न-भिन्न किया गया हूँ ॥५९॥

तण्हाकिलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणीं णइं ।
जलं पाहिं त्ति चिंतंतो, खुरधाराहिं विवाइओ ॥६०॥

— तण्हाकिलंतो--तृषा से अत्यन्त पीड़ित होकर, जलं-जल, पाहिं--पीऊँगा, त्ति--इस प्रकार, चिंतंतो-- विचार करता हुआ अर्थात् जल पीने की इच्छा से, धावंतो—दौड़ता हुआ मैं, वेयरणी—वैतरणी, णइं--नदी को, पत्तो—प्राप्त हुआ तो वहाँ, खुरधाराहिं--क्षुरधाराओं से अर्थात् उस वैतरणी नदी की धारा उस्तरे की धार के समान अति तीक्ष्ण थी जिससे मैं, विवाइओ—विनाश को प्राप्त हुआ ॥६०॥

उण्हाभितत्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं ।
असिपत्तेहिं पडंतेहिं, छिण्णपुव्वो अणेगसो ॥६१॥

— उण्हाभितत्तो— उष्णता से घबराया हुआ मैं, असिपत्तं--असिपत्र (तलवार) के समान तीक्ष्ण पत्तों वाले वृक्षों के महावणं--महावन में, संपत्तो—प्राप्त हुआ और इच्छा करता था कि अब मुझे वृक्षों की छाया में शान्ति मिलेगी, किन्तु, असिपत्तेहिं--तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तों के, पडंतेहिं--गिरने से मैं. अणेगसो—अनेक वार, छिण्णपुव्वो-पूर्वजन्मों में छेदन किया गया हूँ ॥६१॥

मुग्गरेहिं मुसुंढीहिं, सूलेहिं मूसलेहि य ।
गयासं भग्गगत्तेहिं, पत्तं दुक्खं अणंतसो ॥६२॥

— मुग्गरेहिं—मुद्गरों से, मुसुंढीहिं—मुसंढी नामक, शस्त्र विशेष से, सूलेहिं--त्रिशूलों से, य—और, मूसलेहिं--

मूसलों से, भग्गगत्तेहिं--मेरे गात्रों को भग्न कर दिया जिससे, गयासं—मेरे जीवन की आशा नष्ट होगई इस प्रकार मैंने, अणंतसो—अनन्ती वार, दुक्खं—दुःख, पत्तं--प्राप्त किया है ॥

खुरेहिं तिक्खधाराहिं, छुरियाहिं कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिण्णो, उक्कित्तो य अणेगसो ।६३।

— परमाधार्मिक देवों द्वारा मैं कप्पणीहि--कतरणियों से, अणेगसो--अनेक वार कप्पिओ--कतरा गया छुरियाहिं--छूरियों से, फालिओ--चीर कर दो टुकड़े कर दिया गया, य--और, तिक्खधाराहिं--तीक्ष्ण धार वाले, खुरेहिं--उस्तरों से, छिण्णो--छेदन कर दिया गया, य--और अनेक वार, उक्कित्तो - मेरी चमड़ी उतार कर काचरे के समान छील दिया गया ॥६३॥

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं
वाहिओ बद्धरुद्धो य, बहुसो चेव विवाइओ ।।६४।

— मिओ वा--मृगवत्, अवसो—परवश पड़ा हुआ, अहं—मैं, पासेहिं—पाशों से और, कूडजालेहिं--कूटपाशों से, वाहिओ--धोखा देकर, बद्धरुद्धो--बांध कर रोक लिया गया, चेव—और, बहुसो— बहुत वार, विवाइओ--मारा गया ।।६४।।

गलेहिं मगरजालेहिं, मच्छो व अवसो अहं ।
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणंतसो ।६५।

— गलेहिं--बड़िश यंत्र से, मगर जालेहिं--मगर के आकार वाले जालों से, मच्छो व — मछली के समान, अवसो-परवश अहं--मैं, अणंतसो —अनन्ती वार, उल्लिओ—खींचा गया, फालिओ--फाड़ा गया, गहिओ—पकड़ा गया, य--और मारिओ—मारा गया ॥६५॥

विदंसएहिं जालेहिं, लिप्पाहिं सउणो विव ।
गहिओ लग्गो य बद्धो य, मारिओ य अणंतसो ॥६६॥

— विदंसएहिं—बाज-पक्षियों से, जालेहिं—जालों से, लिप्पाहिं--लेपों से (पंख चिपक जाने वाले द्रव्यों से) सउणो विव—पक्षी के समान व अणंतसो--अनन्ती वार, गहिओ—पकड़ा गया, लग्गो—चिपटाया गया, बद्धो—बांधा गया, य—और, मारिओ--मारा गया ॥६६॥

कुहाडफरसुमाईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिण्णो, तच्छिओ य अणंतसो ॥६७॥

— वड्ढईहिं—सुथारों का रूप धारण किये हुए परमा-धार्मिक देवों द्वारा, कुहाडफरसुमाईहिं—कुल्हाड़े, फरसे आदि से मेरे, अणंतसो—अनन्ती वार, दुमो विव—वृक्ष के समान, कुट्टिओ — टुकड़े कर दिये गये, फालिओ--मुझे फाड़ा गया, छिण्णो--छदन किया गया, य—और, तच्छिओ—चमड़ी उतार कर छील दिया गया ॥६७॥

चवेडमुट्ठिमाईहिं, कुमारेहिं अयं विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिण्णो, तच्छिओ य अणंतसो ।६८।

— विव—जिस प्रकार, कुमारेहि— लोहार, अयं—लोह को कूटते-पीटते हैं उसी प्रकार मैं भी, चवेडमुट्ठिमाईहि-थप्पड़ और मुष्टि आदि से, अणंतसो—अनन्ती वार, ताडिओ-पीटा गया, कुट्टिओ— कूटा गया, भिण्णो— भेदन किया गया, य--और, चुण्णिओ--चूर्ण के समान बारीक पीस डाला गया ॥६८॥

तत्ताइं तंबलोहाइं, तउआइं सीसगाणि य ।
पाइओ कलकलंताइं, आरसंतो सुभेरवं ॥६९॥

— प्यास से अत्यन्त पीड़ित होने पर जब मैंने जल की प्रार्थना की तब उन परमाधामिक देवों ने, सुभेरवं—बहुत जोर से, आरसंतो---अरडाट शब्द करते हुए मुझे बलपूर्वक, तत्ताइं-तपाया हुआ तथा, कलकलंताइं—कलकल शब्द करता हुआ, तंब लोहाइं- ताम्बा और लोहा, तउआइं---कथीर, य—और, सीसगाणि—सीसा, पाइओ---पिला दिया ॥६९॥

तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य ।
खाविओ मि समंसाइं, अग्गिवण्णइ अणेगसो ॥७०॥

— जिन प्राणियों को इस लोक में मांस अधिक प्रिय होता है उनकी नरक में क्या दशा होती है सो कहते हैं, तुहं—

तुझे, मंसाइं--मांस, पियाइं—अधिक प्रिय था ऐसा याद दिला कर परमाधार्मिक देवों ने, समंसाइं--मेरे शरीर के मांस को, खंडाइं--काट कर, सोल्लगाणि--भूर्ता कर भर्त बना कर, य—और, अग्गिवण्णाइ— अग्नि के समान लाल करके मुझे, अणेगसो--अनेक बार, खाविओ मि—खिलाया ॥७०॥

तुहं पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य ।
पाइओ मि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणि य ॥७१॥

-- जिनको इस लोक में मदिरा प्रिय होती है, उनकी नरक में क्या दशा होती है सो कहते हैं--सुरा--मदिरा, सीहू--ताड़ वृक्ष की बनी हुई मदिरा, य—तथा, मेरओ--गुड़ से बनी हुई मदिरा, य--और, महूणि--महुए से बनी हुई मदिरा ये सभी मदिराएँ, तुहं--तुझे, पिया--प्रिय थीं, ऐसा याद दिला कर परमाधार्मिक देवों ने, जलंतीओ--जलती हुई, वसाओ--चर्बी, य—और, रुहिराणि--रुधिर मुझे, पाइओ मि--पिलाया ॥७१॥

णिच्चं भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेइया मए ॥७२॥

— अपने कथन का उपसंहार करता हुआ मृगापुत्र कहता है कि हे माता-पिता ! णिच्चं--सदैव, भीएण--भयभीत बने हुए, तत्थेण—उद्वेग पाये हुए, दुहिएण—दुःखित बने हुए, य—और, वहिएण--व्यथित बने हुए अर्थात् कम्पायमान

णिमेसंतरमित्तंपि—निमेष मात्र, (आंख मींच कर खोलने में जितना समय लगता है उतने समय के लिए) भी, साया वेयणा—साता वेदना, णत्थि—नहीं है ॥७५॥

तं बितअम्मापियरो, छंदेणं पुत्त ! पव्वया ।
णवरं पुण सामण्णे, दुक्खं णिप्पडिकम्मया ॥७६॥

—मृगापुत्र का उपरोक्त कथन सुन कर, अम्मापियरो—उसके माता-पिता, तं—उससे, बित—कहने लगे कि, पुत्त—हे पुत्र ! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो, छंदेणं—अपनी इच्छानुसार, पव्वया—प्रव्रज्या अंगिकार करो, णवरं—किन्तु, पुण—संयम लेने के पश्चात्, सामण्णे—साधुपने में, णिप्पडिकम्मया—यदि शरीर में कोई रोग उत्पन्न हो जाय, तो उसका प्रतिकार नहीं कराना, दुक्खं—यह बड़ा कष्ट है ॥७६॥

नोट—यह कथन जिनकल्प की अपेक्षा से है। जिनकल्पी मुनि रोगादि के होने पर भी उसकी निवृत्ति के लिए किसी प्रकार की औषधि का उपयोग नहीं करते। किन्तु जो स्थविरकल्पी हैं, वे अपनी इच्छा से किसी औषधि का भले ही उपयोग न करें, परन्तु निरवद्य औषधोपचार का उनके लिए प्रतिषेध नहीं है।

सो बेइ अम्मापियरो, एवमेयं जहाफुडं ।
पडिकम्मं को कुणई, अरण्णे मियपक्खिणं ॥७७॥

— सो—वह मृगापुत्र, बेइ—कहने लगा कि अम्मापियरो—हे माता-पिता ! एयं—यह, एवं—इसी प्रकार है, जहाफुडं—जिस प्रकार आपने बतलाया है, किन्तु आप यह बतलावें कि, अरण्णे—वन में, मियपक्खिणं— मृग और पक्षियों के रोग का, पडिकम्मं--उपचार, को—कौन, कुणई—करता है ? अर्थात कोई नहीं करता। फिर भी वे जीते हैं और आनन्दपूर्वक यथेच्छ विचरते हैं ॥७७॥

एगब्भूओ अरण्णे वा, जहा उ चरई मिगो।
एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवेण य ॥७८॥

— जहा—जैसे, अरण्णे-- अरण्य में, मिगो— मृग, एगब्भूओ - अकेला ही, चरई--विचरता है, एवं--वैसे ही मैं भी, संजमेण—संयम, य—और, तवेण--तप से युक्त होकर, धम्मं--धर्म का, चरिस्सामि—पालन करूँगा ॥७८॥

जया मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायई ।
अच्चंतं रुक्खमूलम्मि, को णं ताहे तिगिच्छई ॥७९॥

— महारण्णम्मि—भयानक वन में, जया--जब, मिगस्स-मृग के, आयंको--कोई रोग, जायई--हो जाता है, ताहे--तब उस रोग से पीड़ित होकर, रुक्खमूलम्मि—किसी वृक्ष के नीचे, अच्चंतं--बैठे हुए, णं--उस मृग का, को--कौन, तिगिच्छई—चिकित्सा करता है ? अर्थात् कोई नहीं करता है ।

को वा से ओसहं देइ, को वा से पुच्छई सुहं।
को से भत्तं व पाणं वा, आहरित्तु पणामई ॥८०॥

— को—कौन, से—उस मृग को, ओसहं—औषधि, देइ—देता है, वा—और, को—कौन, से—उसको, सुहं—सुखसाता, पुच्छई—पूछता है, व—तथा, को—कौन, से—उसे, भत्तं—आहार, वा—और, पाणं—पानी, आहरित्तु—लाकर, पणामई—देता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥८०॥

जया से सुही होइ, तया गच्छइ गोयरं।
भत्तपाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ॥८१॥

— जया—जब, से—वह मृग, सुही—सुखी (नीरोग) होइ—हो जाता है, तया—तब, भत्तपाणस्स—आहार-पानी के अट्ठाए—लिए, वल्लराणि—सघन वन में, य—और, सराणि—तालावों पर, गोयरं—गोचरी (मृगचर्या) के लिए, गच्छइ—जाता है ।८१॥

खाइत्ता पाणियं पाउं, वल्लरेहिं सरेहि य।
मिगचारियं चरित्ताणं, गच्छई मिगचारियं ॥८२॥

— वल्लरेहिं—सघन वन में, खाइत्ता—घास आदि खा कर, य - और, सरेहि—जलाशय में, पाणियं—पानी, पाउं—पी कर तथा, मिगचारियं—अपनी इच्छानुसार मृगक्रीड़ा चरित्ताणं—करके वह मृग, मिगचारियं—मृगचर्या में, गच्छई—चला जाता है ॥८२॥

एवं समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगए ।
मिगचारियं चरित्ताणं, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥८३॥

— एवं--इस प्रकार, समुट्ठिओ--संयम में सावधान बना हुआ, एवमेव--मृग के समान, अणेगए—अनेक स्थानों में भ्रमण करने वाला, भिक्खू—साधु मिगचारियं--मृगचर्या का, चरित्ताणं—आचरण करके अर्थात् जैसे रोगादि के हो जाने पर मृग, चिकित्सा की अपेक्षा नहीं रखता, उसी प्रकार चिकित्सा की अपेक्षा न रखता हुआ साधु, उड्ढं--ऊंची, दिसं--दिशा में अर्थात् मोक्ष में, पक्कमई—जाता है ॥८३॥

जहा मिगे एग अणेगचारी, अणेगवासे धुवगोयरे य ।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे, णो हीलए णो वि य खिसएज्जा ॥

— जहा— जिस प्रकार, मिगे— मृग, एगे--अकेला, अणेगचारी--अनेक स्थानों पर भ्रमण करने वाला, अणेगवासे-किसी एक नियत स्थान पर निवास नहीं करने वाला, य--और, धुवगोयरे—सदैव गोचरी जाने वाला एवं जो कुछ मिलता है उसे खा कर संतोष करने वाला होता है, एवं—उसी प्रकार, मुणी—मुनि भी, गोयरियं--गोचरी के लिए, पविट्ठे--जाता है। अच्छा आहार न मिलने पर दाता की अथवा आहार की, णो हीलए--अवहेलना नहीं करे, य--और, णो वि खिसएज्जा-निन्दा भी नहीं करे ॥८४॥

मिगचारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता जहासुहं ।
अम्मापिऊहिं अणुण्णाओ, जहाइ उवहिं तओ ॥८५॥

— मृगापुत्र कहने लगा कि हे माता-पिता ! मैं तो, मिगचारियं--ऊपर बताई हुई मृगसरीखी चर्या का, चरिस्सामि—सेवन करूँगा । तब उसके माता-पिता कहने लगे कि, पुत्ता—हे पुत्र ! जहासुहं—जैसे तुम्हें सुख हो वैसे ही करो, एवं—इस प्रकार, अम्मापिऊहिं—माता पिता की, अणुण्णाओ—आज्ञा मिलने के, तओ—पश्चात् मृगापुत्र, उवहिं—उपधि अर्थात् द्रव्य उपधि वस्त्र-आभूषणादि और भाव उपधि मायादि को, जहाइ—छोड़ने के लिए उद्यत हुआ ॥८५॥

मिगचारियं चरिस्सामि, सव्वदुक्ख-विमोक्खणिं ।
तुब्भेहिं अब्भणुण्णाओ, गच्छ पुत्त ! जहासुहं ॥८६॥

— मृगापुत्र फिर कहता है कि हे माता पिता ! तुब्भेहिं—आपकी, अब्भणुण्णाओ--आज्ञा मिलने पर मैं सव्वदुक्खविमोक्खणिं---सभी दुःखों से मुक्त कराने वाली, मिगचारियं—मृग सरीखी चर्या को, चरिस्सामि—अंगीकार करूँगा । तब उसके माता-पिता कहने लगे कि, पुत्त—हे पुत्र ! जहासुहं--जैसे तुम्हें सुख हो वैसा ही करो अर्थात् मृगचर्या के लिए, गच्छ—जाओ ॥८६॥

एवं सो अम्मापियरो, अणुमाणित्ताण बहुविहं ।
ममत्तं छिंदई ताहे, महाणागो व्व कंचुयं ॥८७॥

— एवं--इस प्रकार, सो--वह मृगापुत्र बहुविहं--अनेक प्रकार, से, अम्मापियरो--माता-पिता की, अणुमाणित्ताण--आज्ञा लेकर, ताहे—उसी समय, महाणागो व्व--जिस प्रकार महानाग (सर्प) कंचुयं--काँचली को छोड़ देता है, उसी प्रकार, ममत्तं—ममत्व भाव को, छिंदई—छोड़ने के लिए उद्यत हुआ॥

इड्ढी वित्तं च मित्ते य, पुत्तदारं च णायओ।
रेणुयं व पडे लग्गं, णिद्धुणित्ताण णिग्गओ ॥८८॥

— पडे—कपड़े पर, लग्गं--लगी हुई, रेणुयं व—धूल-वत्, इड्ढी— राज्यऋद्धि, वित्तं—धन, च—और, मित्ते—मित्र, य--तथा, पुत्तदारं--पुत्र-स्त्री, च—और, णायओ—जाति तथा, स्वजन सम्बन्धियों को, णिद्धुणित्ताण--छोड़ कर वह मृगापुत्र, णिग्गओ—निकल गया, अर्थात् दीक्षित हो गया ॥८८॥

पंचमहव्वयजुत्तो पंचहिं समिओ तिगुत्तिगुत्तो य।
सब्भिंतर-बाहिरओ, तवोकम्मंसि उज्जुओ ॥८९॥

— पंचमहव्वयजुत्तो—पाँच महाव्रतों से युक्त, पंचहिं समिओ—पाँच समिति सहित, य—और, तिगुत्तिगुत्तो—तीन गुप्तियों से गुप्त वह मृगापुत्र, सब्भिंतर बाहिरओ— आभ्यन्तर और बाह्य, तवोकम्मंसि—तप में, उज्जुओ--सावधान हुआ॥

णिम्ममो णिरहंकारो, णिस्संगो चत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥९०॥

— णिम्ममो— ममत्व-रहित, णिरहंकारो— अहंकार-रहित, णिस्संगो--सर्व-संग-रहित, य—और, चत्तगारवो—तीन गर्वों को छोड़ देने वाला वह मृगापुत्र, तसेसु--त्रस, य—और, थावरेसु— स्थावर, सव्वभूएसु— सभी प्राणियों पर, समो—समभाव रखने लगा ॥९०॥

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो णिंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥९१॥

— वह मृगापुत्र, लाभालाभे--लाभ और अलाभ में, सुहे--सुख और, दुक्खे—दुःख में, जीविए—जीवन में, तहा—तथा, मरणे--मरण में, णिंदापसंसासु--निन्दा और प्रशंसा में, तहा— तथा, माणावमाणओ— मान और अपमान में, समो—समभाव रखने लगे ।९१॥

गारवेसु कसाएसु, दंडसल्लभएसु य ।
णियत्तो हाससोगाओ, अणियाणो अबंधणो ॥९२॥

— अणियाणो--निदान रहित, अबंधणो—बन्धन रहित मृगापुत्र, गारवेसु--तीन गर्वों से, कसाएसु— चार कषायों से, दंडसल्लभएसु—तीन दंड से, तीन शल्य से, सात भय से, य—और, हाससोगाओ--हास्य तथा शोक से, णियत्तो—निवृत्त हो गए ॥९२॥

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ ।
वासी चंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥९३॥

— वे मृगापुत्रजी, इहं—इस, लोए—लोक में, अणिस्सिओ-किसी प्रकार की आकांक्षा रहित था और, परलोए—परलोक में भी अणिस्सिओ—आकांक्षा रहित था और, असणे—आहारादि मिलने पर, तहा—अथवा, अणसणे—आहारादि न मिलने पर हर्ष-शोक रहित था, य—और, वासीचंदणकप्पो—वासी चन्दन के समान था अर्थात् वसूले से शरीर को काटने वाले पुरुष पर और शरीर पर चन्दन से अर्चा करने वाले दोनों पुरुषों पर समान भाव रखने वाले थे ॥९३॥

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो ।
अज्झप्पज्झाण-जोगेहिं, पसत्थ-दमसासणो ॥९४॥

— मृगापुत्र, अप्पसत्थेहिं—सभी अप्रशस्त दारेहिं—द्वारों से निवृत्त हो गए और उसने, सव्वओ—सभी प्रकार से, पिहियासवो— आश्रवों का निरोध कर दिया और, अज्झप्पज्झाण जोगेहिं—आध्यात्मिक शुभ ध्यान के योग से, पसत्थदम सासणो—प्रशस्त संयमी और शास्त्रों के ज्ञाता हुए ॥९४॥

एवं णाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य ।
भावणाहिं य सुद्धाहिं, सम्मं भावित्तु अप्पयं ॥९५॥
बहुयाणि उ वासाणि, सामण्ण-मणुपालिया ।
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं ॥९६॥

— एवं—इस प्रकार, णाणेण—ज्ञान से, दंसणेण—दर्शन से, चरणेण—चारित्र से, य—और, तवेण—तप से, य—तथा, सुद्धाहि—शुद्ध, भावणाहि—भावनाओं से, सम्मं—सम्यक् प्रकार से अप्पयं—अपनी आत्मा को, भावित्तु—भावित करके, बहुयाणि—बहुत, वासाणि—वर्षों तक, सामण्णं—श्रमणपर्याय का, अणुपालिया—पालन करके, उ—और, मासिएण भत्तेण—मासिक भक्त से अर्थात् एक मास का संथारा करके वे मृगापुत्रजी अणुत्तरं—सर्वश्रेष्ठ, सिद्धि—सिद्ध गति को, पत्तो—प्राप्त हुए ॥९५-९६॥

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, मियापुत्ते जहामिसी ॥९७॥

— संबुद्धा—बोध को प्राप्त हुए, पवियक्खणा—विचक्षण, पंडिया—पंडित पुरुष, भोगेसु—भोगों से, विणियट्टंति—निवृत्त हो जाते हैं और, एवं—इसी प्रकार, करंति—करते हैं, मियापु जहामिसी—जैसे मृगापुत्रजी ऋषीश्वर ने किया ॥९७॥

महापभावस्स महाजसस्स,
मियाइपुत्तस्स णिसम्म भासियं।
तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं,
गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं ॥९८॥

— महापभावस्स—महा प्रभावशाली, च—और, महाजसस्स—महायशस्वी, मियाइपुत्तस्स—मृगापुत्रजी के, भासियं—

संसार को दुःखरूप बताने वाले कथन को, णिसम्म—सुन कर, तवप्पहाणं—तप प्रधान, उत्तमं—उत्तम, चरियं—चारित्र, च—और, तिलोग विस्सुयं—तीन लोक में विख्यात, गइप्पहाणं—प्रधान गति (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए धर्म में पुरुषार्थ करना चाहिए ॥९८॥

वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं,
ममत्तबंधं च महाभयावहं ।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं,
धारेज्ज णिव्वाण गुणावहं महं ॥त्तिबेमि॥ ।९९।

— हे भव्यपुरुषो ! धणं--धन को, दुक्खविवद्धणं—दुःख बढ़ाने वाला, ममत्तबंधं--ममत्व रूपी वन्धन का कारण, च--तथा, महाभयावहं--महाभय को प्राप्त कराने वाला, वियाणिया—जान कर, सुहावहं--सुखों को देने वाली, अणुत्तरं—प्रधान एवं, महं--महान्, णिव्वाण गुणावहं--ज्ञान-दर्शनादि गुणों को और मोक्ष को देने वाली, धम्मधुरं--धर्म रूपी धुरा को, धारेज्ज—धारण करो अर्थात् धर्म में पुरुषार्थ करो ॥ त्तिबेमि--ऐसा मैं कहता हूँ ॥९९॥

॥ उन्नीसवां अध्ययन समाप्त ॥

महानिर्ग्रंथीय बीसवाँ अध्ययन



सिद्धाणं णमो किच्चा, संजयाणं च भावओ ।
अत्थधम्मगइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे ॥१॥

— भावओ—भावपूर्वक, सिद्धाणं—सिद्ध भगवान् को, च-- और, संजयाणं-- संयती (महात्माओं को) अर्थात् अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सभी साधु रूप पंच परमेष्ठी को, णमो—नमस्कार, किच्चा--कर के, अत्थधम्मगइं—अर्थ और धर्म का ज्ञान कराने वाली, तच्चं—सच्ची, अणुसिट्ठिं—शिक्षा कहूँगा, अतः तुम, मे—मुझ से, सुणेह—सुनो ॥१॥

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्तं णिज्जाओ, मंडिकुच्छिसि चेइए ॥२॥

— पभूयरयणो--मरकत-मणि आदि बहुत से रत्नों वाला एवं श्रेष्ठ हाथी-घोड़े आदि ऋद्धि-सम्पन्न, मगहाहिवो--मगध देश का स्वामी, सेणिओ—श्रेणिक नाम का राया—राजा, मंडिकुच्छिसि—मंडिकुक्षि नामक, चेइए--उद्यान में, विहारजत्तं--विहार-यात्रा के लिए, णिज्जाओ--निकला ।२।

णाणादुमलयाइण्णं, णाणापक्खि-णिसेवियं ।
णाणाकुसुमसंछण्णं, उज्जाणं णंदणोवमं ॥३॥

-- णाणादुमलयाइणं--अनेक प्रकार के वृक्ष और लताओं

से युक्त, णाणापक्खि णिसेवियं—अनेक प्रकार के पक्षियों से सेवित, णाणाकुसुमसंछण्णं—अनेक प्रकार के फूलों से आच्छादित, उज्जाणं—वह उद्यान, णंदणोवमं—नन्दन वन के समान सुशोभित था ॥३॥

तत्थ सो पासइ साहुं संजयं सुसमाहियं ।
णिसण्णं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥४॥

— तत्थ—वहाँ, रुक्खमूलम्मि—एक वृक्ष के नीचे, णिसण्णं—बैठे हुए, सुकुमालं—सुकुमार, सुहोइयं—सुखोचित (सुखों के योग्य) सुसमाहियं—सुसमाधिवंत, संजयं—संयती, साहुं—साधु को, सो—उस राजा ने, पासइ—देखा ॥४॥

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए ।
अच्चंतपरमो आसी, अउलो रूव-विम्हओ ॥५॥

— तस्स—उस साधु का, रूवं—रूप, पासित्ता—देख कर, राइणो—राजा को, तम्मि—उस, संजए—संयती के, रूवं—रूप के विषय में, अच्चंत—अत्यन्त, परमो—परम और, अउलो—बहुत, विम्हओ—आश्चर्य, आसी—हुआ ॥५॥

अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया ।
अहो खंती अहो मुत्ति, अहो भोगे असंगया ॥६॥

— अहो—अहा ! कैसा आश्चर्यकारी, अज्जस्स—इस आर्य का, वण्णो—वर्ण है ? अहो—अहा ! रूवं—रूप,

अहो—अहा ! सोमया--सौम्यता, अहो—अहा ! खंती—क्षमा, अहो—अहा ! मुत्ती--निर्लोभता और, अहो—अहा ! भोगे--भोगों में, असंगया—अनासक्ति है अर्थात् इस मुनि का वर्ण, रूप, सौम्यता, क्षमा, निर्लोभता और भोगों में अनासक्ति सभी आश्चर्यकारी है ॥६॥

तस्स पाए उ वंदित्ता, काऊण य पयाहिणं ।
णाइदूर-मणासण्णे, पंजली पडिपुच्छई ॥७॥

— तस्स--उस मुनि के, पाए—चरणो में, वंदित्ता—वन्दना कर के, य—और, पयाहिण--प्रदक्षिणा, काऊण--कर के, णाइदूरं—न तो बहुत दूर और, अणासण्णे--न बहुत निकट खड़ा हुआ श्रेणिक राजा, पंजली--दोनों हाथ जोड़ कर, पडिपुच्छई—पूछने लगा ॥७॥

तरुणो सि अज्जो ! पव्वइओ, भोग-कालम्मि संजया ! ।
उवट्ठिओसि सामण्णे, एयमट्ठं सुणेमित्ता ॥८॥

— अज्जो--हे आर्य ! तरुणो सि--आप तरुण हैं, संजया--हे संयति ! भोगकालम्मि—इस भोग भोगने की अवस्था में, पव्वइओ—आपने दीक्षा ले ली है और सामण्णे--साधु-धर्म में, उवट्ठिओ सि—उपस्थित हुए हैं, एयं—इसका, अट्ठं--क्या कारण है सो, सुणेमि त्ता—मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥८॥

अणाहो मि महाराय ! णाहो मज्झ ण विज्जई।
अणुकंपगं सुहिं वावि, कंचि णाभिसमेमहं ॥९॥

— महाराय--हे राजन् ! अणाहोमि--मैं अनाथ हूँ, मज्झ--मेरा, णाहो—कोई नाथ, ण—नहीं विज्जई--है, तथा अणुकंपगं--मेरे पर अनुकम्पा कर के सुख देने वाला, वावि—और कंचि—कोई, सुहिं--मित्र भी, णाभिसमेमहं--नहीं है हे राजन्, तुमे--तुम, णाहि--जानो ॥९॥

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो।
एवं ते इड्ढिमंतस्स, कहं णाहो ण विज्जइ ॥१०॥

— तओ--मुनि के उपरोक्त वचन सुन कर, सो—वह मगहाहिवो—मगध देश का स्वामी, सेणिओ--श्रेणिक, राया--राजा पहसिओ—हँसा और कहने लगा कि एवं--इस प्रकार इड्ढिमंतस्स-- रूपादि की ऋद्धि से सम्पन्न, ते--आपका णाओ--- कोई नाथ, ण विज्जइ— नहीं है, कहं--यह कैसे हो सकता है ? ।१०॥

होमि णाओ भयंताणं, भोगे भुंजाहि संजया !।
मित्तणाई-परिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥११॥

— राजा श्रेणिक कहता है कि संजया—हे संयति ! मैं, भयंताणं--आपका, णाहो--नाथ, होमि--होने को तैयार हूँ मित्तणाइपरिवुडो—मित्र और सम्बन्धी जनों से परिवृत्त

होते हुए आप, भोगे--भोगों को, भुंजाहि--भोगो, क्योंकि, माणुस्सं--मनुष्य-जन्म, खु- निश्चय ही, सुदुल्लहं—अत्यन्त दुर्लभ है ॥११।

अप्पणा वि अणाहो सि, सेणिया मगहाहिवा ! ।
अप्पणा अणाहो संतो, कहं णाहो भविस्ससि ॥१२॥

— मगहाहिवा--हे मगध देश के अधिपति सेणिया—श्रेणिक ! अप्पणा वि—तुम स्वयं ही, अणाहो सि--अनाथ हो, अप्पणा—स्वयं, अणाहो— अनाथ, संतो—होते हुए, तुम दूसरों के, णाहो—नाथ, कहं—किस प्रकार, भविस्ससि-होओगे ? ॥१२॥

एवं वुत्तो णरिंदो सो, सुसंभंतो सुविम्हओ ।
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयण्णिओ ॥१३॥

— एवं— इस प्रकार, विम्हयण्णिओ--विस्मित बना हुआ एवं पुनः, साहुणा— साधु द्वारा, वुत्तो— कहे हुए, अस्सुयपुव्वं—अश्रुत-पूर्व (पहले कभी न सुने हुए) वयण—वचन सुन कर, सो— वह, णरिंदो-- राजा, सुसंभंतो—सुसम्भ्रान्त एवं व्याकुल और, सुविम्हिओ— अत्यन्त विस्मित बन गया ॥१३॥

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुरं अंतेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोगे, आणा इस्सरियं च मे ॥१४॥

— राजा श्रेणिक मुनि से कहने लगा कि हे मुने ! मे—मेरे पास, हत्थी--हाथी, अस्सा—घोड़े और, मणुस्सा—मनुष्य हैं, पुरं--नगर, च—और, अंतेउर—अन्तःपुर भी, मे—मेरे पास है तथा, माणुसे--मनुष्य सम्बन्धी, भोगे—भोगों को, भुंजामि--मैं भोगता हूं। मे—मेरी, आणा—आज्ञा चलती है, च—और, इस्सरियं--मेरे पास द्रव्यादि समृद्धि है ॥१४॥

एरिसे संपयग्गम्मि, सव्वकाम-समप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ, मा हु भंते ! मुसं वए ॥१५॥

— एरिसे— इस प्रकार की, संपयग्गम्मि—श्रेष्ठ ऋद्धि सम्पदा के होते हुए तथा, सव्वकामसमप्पिए—सभी प्रकार के काम-भोग स्वाधीन होते हुए मैं, कहं--कैसे, अणाहो—अनाथ, भवइ--हूँ। इसलिए, भंते—हे पूज्य ! मा हु--कहीं ऐसा न हो कि, वए—आपका वचन, मुसं—असत्य हो जाय ॥१५॥

ण तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं च पत्थिवा।
जहा अणाहो भवइ, सणाहो वा णराहिवा ! ॥१६॥

— पत्थिवा--हे राजन् ! णराहिवा--हे नराधिप ! तुमं--तुम, अणाहस्स--अनाथ शब्द के, अत्थं—अर्थ, च—और पोत्थं—उसकी मूल उत्पत्ति को, ण जाणे--नहीं जानते हो कि, अणाहो—अनाथ कैसा, भवइ—होता है, वा—और, सणाहो—सनाथ कैसा होता है ॥१६॥

सुणेह मे महाराय ! अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
जहा अणाहो भवइ, जहा मेयं पवत्तियं ॥१७॥

— महाराय—हे राजन ! अव्वक्खित्तेण चेयसा—एकाग्र चित्त से, मे—मुझ से, सुणेह—सुनो, जहा—जिस प्रकार यह जीव, अणाहो—अनाथ, भवइ—होता है और, जहा—जिस प्रकार, मेयं—मैंने अनाथता की, पवत्तियं—प्ररूपणा की है ॥

कोसंबी णाम णयरी, पुराणपुरभेयणी ।
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूय-धणसंचओ ॥१८॥

— पुराणपुरभेयणी—अपनी विशेषताओं के कारण पुरानी नगरियों से अपने-आपको प्रथक् करने वाली, (अति प्राचीन) एवं प्रधान, कोसंबी—कोशाम्बी, णाम—नामक, णयरी—नगरी है, तत्थ—वहां पर, पभूयधणसंचओ—बहुत धन का संचय करने वाले प्रभूतधनसंचय नाम के मज्झ—मेरे, पिया—पिता, आसी—रहते हैं ॥१८॥

पढमे वए महाराय ! अउला मे अच्छिवेयणा ।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वगत्तेसु पत्थिवा ॥१९॥

— महाराय—हे राजन् ! पढमे वए—प्रथम वय (यौवनावस्था) में, मे—मेरे, अउला—अत्यन्त, अच्छिवेयणा—आंखों की वेदना, अहोत्था—हुई थी, उनमें अत्यन्त पीड़ा होने लगी और, पत्थिवा—हे राजन् ! इसके साथ ही साथ,

सव्वगत्तेसु—मेरे सारे शरीर में, विउलो—अत्यन्त, दाहो—दाह (जलन) होने लगी ॥१९॥

सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीर-विवरंतरे ।
आवीलिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ॥२०॥

— जहा--जिस प्रकार, कुद्धो—क्रोध में आया हुआ, अरी—शत्रु, सरीरविवरंतरे—शरीर के आँख, नाक, कान, तथा मर्मस्थानो में, परमतिक्खं—अत्यन्त तीक्ष्ण, सत्थं—शस्त्र, आवीलिज्ज--घुसेड़ दे, उससे जिस प्रकार की वेदना होती है, एवं--उसी प्रकार की, मे--मेरी, अच्छिवेयणा—आंखों में असह्य वेदना हो रही थी ॥२०॥

तियं मे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडई ।
इंदासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ॥२१॥

— इंदासणिसमा—इन्द्र का वज्र लगने से जैसी वेदना होती है वैसी, घोरा—घोर, च—और, परमदारुणा—अत्यन्त दुख:दायी, वेयणा—वेदना, मे—मेरी, तियं--कमर के, अंतरिच्छं--मध्य भाग को, च—और उत्तमंगं—मस्तक को, पीडई—पीड़ित कर रही थी ॥२१॥

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामंत-तिगिच्छया ।
अबीया सत्थ कुसला, मंतमूल-विसारया ॥२२॥

— मे--मेरी चिकित्सा करने के लिए ऐसे, आयरिया—आचार्य, (वैद्याचार्य) उवट्ठिया—उपस्थित हुए थे जो,

विज्जामंततिगिच्छया— विद्या और मंत्र द्वारा चिकित्सा करने में, अबीया— अद्वितीय एवं प्रवीण थे तथा, सत्यकुसला—शस्त्रक्रिया में कुशल अथवा चिकित्सा शास्त्र में कुशल एवं, मंतमूल विसारया--मंत्र और मूल औषधि आदि के प्रयोग करने में अति निपुण थे ॥२२॥

ते मे तिगिच्छं कुव्वंति, चाउप्पायं जहाहियं ।
ण य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥२३॥

— जहाहियं--जिस उपचार से लाभ हो उसी से, ते--वे वैद्य, मे--मेरी, चाउप्पायं--चारपद वाली * तिगिच्छं-चिकित्सा, कुव्वंति--करते थे, य—किन्तु वे मुझे, दुक्खा—दुःख से, ण—नहीं, विमोयंति--छुड़ा सके, एसा--यह मज्झ-मेरी, अणाहया—अनाथता है ॥२३॥

पिया मे सव्वसारं पि, दिज्जाहि मम कारणा
ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥२४॥

— मे--मेरे, पिया—पिता, मम कारणा—मेरे लिए, सव्वसारं पि--सर्वश्रेष्ठ (बहुमूल्य) पदार्थ भी, दिज्जाहि--उन

---

* (१) योग्य वैद्य हो, (२) उत्तम औषधि हो, (३) रोगी श्रद्धा पूर्वक चिकित्सा कराने के लिए उत्सुक हो और (४) रोगी की सेवा करने वाले विद्यमान हों, इन चार बातों से युक्त चिकित्सा 'चतुष्पाद चिकित्सा' कहलाती है । इस प्रकार की गई चिकित्सा प्रायः सफल होती है ।

सव्वगत्तेसु—मेरे सारे शरीर में, विउलो—अत्यन्त, दाहो—दाह (जलन) होने लगी ॥१९॥

सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीर-विवरंतरे ।
आवीलिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ॥२०॥

— जहा—जिस प्रकार, कुद्धो—क्रोध में आया हुआ, अरी—शत्रु, सरीरविवरंतरे—शरीर के आँख, नाक, कान, तथा मर्मस्थानों में, परमतिक्खं—अत्यन्त तीक्ष्ण, सत्थं—शस्त्र, आवीलिज्ज—घुसेड़ दे, उससे जिस प्रकार की वेदना होती है, एवं—उसी प्रकार की, मे—मेरी, अच्छिवेयणा—आँखों में असह्य वेदना हो रही थी ॥२०॥

तियं मे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडई ।
इंदासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ॥२१॥

— इंदासणिसमा—इन्द्र का वज्र लगने से जैसी वेदना होती है वैसी, घोरा—घोर, च—और, परमदारुणा—अत्यन्त दुखःदायी, वेयणा—वेदना, मे—मेरी, तियं—कमर के, अंतरिच्छं—मध्य भाग को, च—और उत्तमंगं—मस्तक को, पीडई—पीड़ित कर रही थी ॥२१॥

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामंत-तिगिच्छया ।
अबीया सत्थ कुसला, मंतमूल-विसारया ॥२२॥

— मे—मेरी चिकित्सा करने के लिए ऐसे, आयरिया—आचार्य, (वैद्याचार्य) उवट्ठिया—उपस्थित हुए थे जो,

विज्जामंततिगिच्छया— विद्या और मंत्र द्वारा चिकित्सा करने में, अबीया— अद्वितीय एवं प्रवीण थे तथा, सत्थकुसला—शस्त्रक्रिया में कुशल अथवा चिकित्सा शास्त्र में कुशल एवं, मंतमूल विसारया--मंत्र और मूल ओषधि आदि के प्रयोग करने में अति निपुण थे ॥२२॥

ते मे तिगिच्छं कुव्वंति, चाउप्पायं जहाहियं ।
ण य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥२३॥

— जहाहियं--जिस उपचार से लाभ हो उसी से, ते--वे वैद्य, मे--मेरी, चाउप्पायं--चारपद वाली * तिगिच्छं-चिकित्सा, कुव्वंति--करते थे, य—किन्तु वे मुझे, दुक्खा—दुःख से, ण—नहीं, विमोयंति--छुड़ा सके, एसा--यह मज्झ-मेरी, अणाहया—अनाथता है ॥२३॥

पिया मे सव्वसारं पि, दिज्जाहि मम कारणा
ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥२४॥

— मे--मेरे, पिया—पिता, मम कारणा—मेरे लिए, सव्वसारं पि--सर्वश्रेष्ठ (बहुमूल्य) पदार्थ भी, दिज्जाहि--उन

---

* (१) योग्य वैद्य हो, (२) उत्तम ओषधि हो, (३) रोगी श्रद्धा पूर्वक चिकित्सा कराने के लिए उत्सुक हो और (४) रोगी की सेवा करने वाले विद्यामान हों, इन चार बातों से युक्त चिकित्सा 'चतुष्पाद चिकित्सा' कहलाती है। इस प्रकार की गई चिकित्सा प्रायः सफल होती है ॥

वैद्यों को देने के लिए तत्पर, य—फिर भी वे मुझे, दुक्खा—दुःख से, ण—नहीं, विमोएइ—छुड़ा सके, एसा—यह, मज्झ—मेरी, अणाहया—अनाथता है ॥२४॥

माया वि मे महाराय ! पुत्तसोग-दुहट्टिया ।
ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥२५॥

— महाराय—हे महाराज ! पुत्तसोगदुहट्टिया—पुत्र के शोक से अत्यन्त दुखी बनी हुई, मे—मेरी, माया वि—माता ने भी मेरी रोग निवृत्ति के लिए अनेक उपाय किये, य—किन्तु वह भी मुझे, दुक्खा—दुःख से, ण—नहीं, विमोएइ—छुड़ा सकी, एसा—यह, मज्झ—मेरी, अणाहया—अनाथता है ॥

भायरा मे महाराय ! सगा जेट्ठकणिट्ठगा ।
ण य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥२६॥

— महाराय—हे महाराज ! मे—मेरे, सगा—सहोदर, जेट्ठकणिट्ठगा—बड़े और छोटे, भायरा—भाइयों ने भी अनेक प्रयत्न किये, य—किन्तु वे भी मुझे, दुक्खा—दुःख से, ण विमोयंति—छुड़ाने में समर्थ नहीं हुए एसा—यह, मज्झ—मेरी, अणाहया—अनाथता है ॥२६॥

भइणीओ मे महाराय ! सगा जेट्ठकणिट्ठगा ।
ण य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥२७॥

— महाराज—हे महाराज ! मे—मेरी, सगा—

सहोदर(सगी) जेट्ठकणिट्ठगा—छोटी और बड़ी, भइणीओ—बहिनों ने भी अनेक उपाय किये, य—किन्तु वे भी मुझे, दुक्खा—दुःख से, ण विमोयंति—न छुड़ा सकीं, एसा—यह, मज्झ—मेरी, अणाहया—अनाथता है ॥२७॥

भारिया मे महाराय ! अणुरत्ता अणुव्वया ।
अंसुपुण्णेहिं णयणेहिं, उरं मे परिसिंचइ ॥२८॥
अण्णं पाणं च ण्हाणं च, गंधमल्ल-विलेवणं ।
मए णायमणायं वा, सा बाला णेव भुंजइ ॥२९॥
खणं पि मे महाराय ! पासाओ वि ण फिट्टई ।
ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥३०॥

— महाराय—हे महाराज ! अणुरत्ता—मुझ पर अत्यन्त अनुराग रखने वाली, अणुव्वया—पतिव्रता, मे—मेरी, भारिया—स्त्री, अंसुपुण्णेहिं—आंसुओं से भरे हुए, णयणेहिं—नेत्रों से, मे—मेरी, उरं—छाती को, परिसिंचइ—सिंचती थी अर्थात् मुझे दुखी देख कर वह मेरे पास बैठी हुई निरन्तर आंसू गिराती थी, सा—वह, बाला—मेरी स्त्री, मए—मेरे, णायमणायं वा—जानते हुए अथवा न जानते हुए, अणं—अन्न, पाणं—पानी, ण्हाणं—स्नान और, गंधमल्ल विलेवणं—सुगन्धित तेलादि तथा माला विलेपन आदि किसी भी पदार्थ का, णेव भुंजइ—सेवन नहीं करती थी । महाराय—हे महाराज ! और अधिक तो क्या, वह मेरी स्त्री, खणं पि—

एक क्षण भर के लिए भी, मे—मेरे, पासाओ—पास से, ण फिट्टइ—दूर नहीं होती थी, इतना करते हुए भी वह मुझे, दुक्खा—दुःख से, ण विमोएइ—छुड़ाने में समर्थ न हो सकी, एसा—यह, मज्झ—मेरी, अणाहया—अनाथता है।२८-२९-३०।

तओऽहं एवमाहंसु, दुक्खमा हु पुणो पुणो ।
वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणंतए ॥३१॥

सइं च जइ मुच्चेज्जा, वेयणा विउला इओ ।
खंतो दंतो णिरारंभो, पव्वइए अणगारियं ॥३२॥

—तओ—इसके बाद, (अनेक उपचार करने पर भी जब मेरा रोग शान्त न हुआ तब) अहं—मैं, एवं—इस प्रकार, आहंसु—विचार करने लगा कि, अणंतए—इस अनन्त, संसारम्मि—संसार में, दुक्खमा—ऐसी दुस्सह, वेयणा—वेदना, पुणो पुणो—बार बार, जे—जो इस आत्मा को, अणुभविउं—सहन करनी पड़ती है, इसलिए, जइ—यदी मैं, सइं—एक बार, इओ—इस, विउला—असह्य वेदना से, मुच्चेज्जा—छूट जाऊं तो, खंतो—क्षमावान्, दंतो—इन्द्रियों का दमन करने वाला, च—और, णिरारंभो—आरम्भ रहित होकर, अणगारियं—अणगार वृत्ति को, पव्वइए—धारण करलूं अर्थात् साधु बन कर वेदना के कारणभूत कर्मों का समूल नाश करने के लिए प्रयत्न करूँ, जिससे फिर कभी ऐसी वेदना का अनुभव ही नहीं करना पड़े ॥३१-३२॥

एवं च चिंतइत्ताणं, पसुत्तो मि णराहिवा ! ।
परियत्तंतीए राईए, वेयणा मे खयं गया ॥३३॥

— णराहिवा— हे राजन् ! एवं— इस प्रकार, चिंतइत्ताणं—विचार करके, पसुत्तो मि—में सो गया, राईए—ज्यों-ज्यों रात्रि, परियत्तंतीए—व्यतीत होती गई त्यों-त्यों, मे—मेरी, वेयणा—वेदना भी, खयं गया—क्षीण होती गई और मैं नीरोग हो गया ॥३३।

तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ताण बंधवे ।
खंतो दंतो णिरारंभो, पव्वइओ अणगारियं ॥३४॥

— तओ—इसके बाद, कल्ले—दूसरे दिन, पभायम्मि—प्रातः काल होते ही बंधवे—अपने माता-पिता आदि तथा बन्धुजनों को, आपुच्छित्ताण—पूछ कर, खंतो—क्षमावान्, दंतो—इन्द्रियों का दमन करने वाला और, णिरारंभो—आरम्भ-रहित हो कर मैंने, अणगारियं— अनगार-वृत्ति, पव्वइओ—धारण करली ॥३४॥

तोऽहं णाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य ।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाण थावराण य ॥३५॥

— तो—दीक्षा अंगीकार करने पर, अहं—मैं, अप्पणो—अपना, य—और, परस्स—दूसरों का एवं, तसाण—त्रस, य—और, थावराण—स्थावर, सव्वेसिं चेव—सभी, भूयाणं—जीवों का, णाहो—नाथ, जाओ—हो गया हूँ ॥३५॥

अप्पा णई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे णंदणं वणं ॥३६॥

— मे—मेरी, अप्पा—आत्मा ही, वेयरणी—वैतरणी, णई—नदी है और, अप्पा—आत्मा ही, कूडसामली—कूट-शाल्मली वृक्ष है । मे—मेरी, अप्पा—आत्मा ही, कामदुहा धेणू—सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली कामदुधा धेनु है और, अप्पा—आत्मा ही, णंदणं—नन्दन, वणं—वन है ॥

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुपट्ठिय सुपट्ठिओ ॥३७॥

— अप्पा—आत्मा ही, सुहाण—सुखों का, य—और, दुहाण—दुःखों का, कत्ता—करने वाला है, य—और, विकत्ता—सुख-दुःखों को हटाने वाला भी आत्मा ही है । सुपट्ठिओ—श्रेष्ठ मार्ग में चलने वाला, अप्पा—आत्मा मित्तं—मित्र है, य—और, दुप्पट्ठिय—दुराचार में प्रवृत्ति करने वाला आत्मा, अमित्तं—शत्रु है । तात्पर्य यह है कि यह आत्मा स्वयं ही सुख-दुःख का कर्त्ता और भोक्ता है, अन्य कोई नहीं है ॥३७॥

इमा हु अण्णावि अणाहया णिवा !
तमेग-चित्तो णिहुओ सुणेहि ।
णियंठधम्मं लहियाण वि जहा,
सीयंति एगे बहु कायरा णरा ॥३८॥

— णिवा—हे राजन् ! इमा—यह, अण्णा वि—दूसरे प्रकार की और भी, अणाहया—अनाथता है, तं – उसको तुम, णिहुओ— स्थिरता पूर्वक, एगचित्तो— एकाग्र चित्त होकर, सुणेहि—सुनो, जहा—जैसे कि, णियंठधम्मं— निर्ग्रन्थ धर्म को, लहियाण वि—प्राप्त करके भी, एगे—कई एक, वहुकायरा— बहुत-से कायर, णरा—मनुष्य, सीयंति—धर्म के विषय में शिथिल हो जाते हैं ॥३८॥

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं,
समं च णो फासयई पमाया ।
अणिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
ण मूलओ छिण्णइ बंधणं से ॥३९॥

— जो—जो साधु, पव्वइत्ताण—दीक्षा लेकर, पमाया— प्रमादवश, महव्वयाइं—पांच महाव्रतों का, समं—सम्यक् प्रकार से, णो फासयई—पालन नहीं करता, च—और, अणिग्गहप्पा— इन्द्रियों के अधीन होकर, रसेसु—रसों में, गिद्धे—गृद्धिभाव रखता है, से—वह साधु, बंधण—कर्मों के बन्धन को, मूलओ— मूल से, ण—नहीं, छिण्णइ—काट सकता ॥३९॥

आउत्तया जस्स य णत्थि काइ,
इरियाए भासाए तहेसणाए ।
आयाणणिक्खेव-दुगुंछणाए,
ण वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥४०॥

— इरियाए-- ईर्यासमिति, भासाए— भाषासमिति, एसणाए- एषणासमिति, य--और, आयाण णिक्खेव दुगुंछणाए- आदान-भंडमात्र निक्षेपणा समिति, तहा--तथा उच्चार-प्रस्रवण खेल-सिंघाण-जल्ल-परिस्थापनिका समिति इन पाँच समितियों में, जस्स— जिस साधु का, काइ—कुछ भी, आउत्तया-- उपयोग, णत्थि--नहीं है, वह, वीरजायं--वीर भगवान् तथा शूरवीर पुरुषों द्वारा सेवित, मग्गं—मार्ग का, ण अणुजाइ-- अनुसरण नहीं कर सकता अर्थात् संयम-मार्ग का यथावत् पालन नहीं कर सकता ॥४०॥

चिरं पि से मुंडरुई भवित्ता,
अथिरव्वए तवणियमेहि भट्ठे ।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता,
ण पारए होइ हु संपराए ॥४१॥

— जो साधु, चिरं पि—बहुत काल तक, मुंडरुई-- मुण्डरुचि, भवित्ता--होकर, अथिरव्वए--अस्थिर व्रत वाला और, तवणियमेहि--तप और नियमों से, भट्ठे--भ्रष्ट है अर्थात् जो ग्रहण किये हुए पाँच महाव्रतों का सम्यक् पालन नहीं करता और जो केवल मुण्डरुचि है अर्थात् जिसने सिर मुंडा कर वेष तो साधु का पहन लिया है, किन्तु जो भाव से मुंडित नहीं हुआ है, से—वह साधु, चिरं पि--बहुत काल तक, अप्पाण—अपनी आत्मा को, किलेसइत्ता-- क्लेशित

करके भी, हु—निश्चय से, संपराए--संसार से, पारए—पार, ण होइ— नहीं हो सकता ॥४१॥

पोल्लेव मुट्ठी जह से असारे,
अयंतिए कूडकहावणे वा ।
राढामणी वेरुलियप्पगासे,
अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥४२॥

— जह—जिस प्रकार, पोल्लेव--पोली (खाली) मुट्ठी- मुट्ठी, असारे—असार है, वा--और जिस प्रकार, कूडकहावणे- खोटा सिक्का असार है और जैसे, राढामणी--कांच का टुकड़ा, वेरुलियप्पगासे--वैडूर्यमणि के समान प्रकाश करने वाला होने पर भी, जाणएसु—जानकार पुरुषों के सामने, हु— निश्चय ही वह, अमहग्घए—अल्प मूल्य वाला, होइ—हो जाता है। इसी प्रकार, अयंतिए—अनियमित अर्थात् द्रव्य- लिंगी साधु भी विवेकी पुरुषो में प्रशंसनीय नहीं होता ॥४२॥

कुसीललिंगं इह धारइत्ता,
इसिज्झयं जीविय बूहइत्ता ।
असंजए संजय-लप्पमाणे,
विणिग्घाय-मागच्छइ से चिरं पि ॥४३॥

— इह—इस मनुष्य जन्म में, कुसीललिंगं—कुशी- लिये (पासत्थे) आदि का लिंग, धारइत्ता--धारण करके तथा

इसिज्झयं—रजोहरण आदि मुनि के बाह्य-चिन्हों को धारण करके उनके द्वारा, जीविय--अपनी आजीविका का, वूहइत्ता-पोषण करता हुआ अर्थात् असंयमपूर्ण जीवन व्यतीत करता हुआ और, असंजए—असंयती होते हुए भी, संजय लप्पमाणे-अपने आपको संयती बतलाने वाला, से—वह द्रव्यलिंगी साधु, चिरं पि —बहुत काल तक, विणिग्घायं--विनाश को, आगच्छइ-प्राप्त होता है (नरक आदि गतियों में दुःख भोगता है) ॥४३॥

विसं तु पीयं जह कालकूडं,
हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं ।
एसो वि धम्मो विसओववण्णो,
हणाइ वेयाल इवाविवण्णो ॥४४॥

— जह--जिस प्रकार, पीयं--पीया हुआ कालकूडं—कालकूट नामक, विसं--विष, हणाइ--प्राणों का नाश कर देता है, जह—और जिस प्रकार, कुग्गहीयं--उलटा पकड़ा हुआ, सत्थं--शस्त्र अपना ही घात करता है, इव—जैसे, अविवण्णो--सम्यक् प्रकार मंत्र आदि से वश में न किया हुआ, वेयाल—वैताल (पिशाच) अपने साधक को ही मार डालता है उसी प्रकार, विसओववण्णो--शब्दादि विषयों से युक्त हुआ, एसो—यह, धम्मो वि— धर्म भी, हणाइ--द्रव्य-लिंगी साधु का विनाश कर देता है ॥४४॥

जो लक्खणं सुविणं पउंजमाणे,
णिमित्त-कोऊहल-संपगाढे ।

कुहेडविज्जासवदारजीवी,
ण गच्छई सरणं तम्मि काले ।।४५।।

— जो—जो साधु, लक्खणं--लक्षण शास्त्र और, सुविणं-स्वप्नशास्त्र का, पउंजमाणे—प्रयोग करता है अर्थात् स्त्री-पुरुषों के शारीरिक चिन्हों द्वारा शुभाशुभ फल बतलाता है और स्वप्नों का शुभाशुभ फल बतलाता है तथा जो, णिमित्त कोऊहल संपगाढे--भूकम्पादि निमित्त शास्त्र और कौतुकादि के प्रयोग करने में आसक्त रहता है और जो, कुहेडविज्जासवदारजीवी —कुहेटक विद्या (आश्चर्य में डाल देने वाली मंत्र-तंत्रादि विद्या) जिससे हिंसा झूठ आदि आस्रवों का आगमन होता है उस विद्या से आजीविका करता है, वह साधु, तम्मि काले— कर्मों का फल भोगने के समय, सरणं—किसी की शरण को, णगच्छई--प्राप्त नहीं होता अर्थात अपने कर्मों का फल स्वयं को ही भोगना पड़ता है ।४५।।

तमं तमेणेव उ से असीले,
सया दुही विप्परियामुवेइ ।
संधावई णरगतिरिक्ख-जोणिं,
मोणं विराहेत्तु असाहुरूवे ।।४६।।

— असाहुरूवे—साधु का वेष धारण करने वाला किन्तु भाव से असाधु रूप, से--वह, असीले—कुशीलिया साधु,

तमं तमेणेव—अत्यन्त अज्ञानान्धकार से, मोणं—चारित्र की, विराहेत्तु— विराधना करके, सया—सदैव, दुही--दुःखी होता हुआ, विप्परियामुवेइ—विपरीत भाव को प्राप्त होता है और, णरगतिरिक्ख जोणिं-- नरक-तिर्यञ्च गतियों में संधावई—जाता है ॥४६॥

उद्देसियं कीयगडं णियागं,
ण मुंचई किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता,
इत्तो चुए गच्छइ कट्टु पावं ॥४७॥

— जो साधु, उद्देसियं—औद्देशिक, कीयगड— क्रीतकृत, णियागं—नियागपिण्ड (नित्यपिण्ड) और, अणेसणिज्जं—अनेषणीय अहार आदि, किंचि—कुछ भी, ण—नहीं, मुंचई—छोड़ता, अपितु सब को ग्रहण कर लेता है वह, अग्गी विवा—अग्नि के समान, सव्वभक्खी--सर्वभक्षी, भवित्ता—होकर, इत्तो--यहाँ का, चुए--आयुष्य पूरा करके तथा, पावं--पापकर्मों को, कट्टु— उपार्जन करके, गच्छइ--दुर्गति में चला जाता है ॥४७॥

नोट—औद्देशिक-किसी खास साधु के लिए बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो 'आधाकर्म' और यदि दूसरा साधु ले तो 'औद्देशिक' कहलाता है। कीयगड-क्रीतकृत साधु के लिए खरीदा हुआ आहारादि 'क्रीतकृत' कहलाता

है। नियाग- 'नियागमित्यामंत्रितस्य पिण्डस्य ग्रहणं नित्यं न त्वनामंत्रितस्य' किसी का आमन्त्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार 'नियागपिण्ड-नित्यपिण्ड' कहलाता है।

ण तं अरी कंठछित्ता करेइ,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से णाहइ मच्चुमुहं तु पत्ते,
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥४८॥

— दुरप्पा—दुराचार में प्रवृत्त हुआ, से—अपना, अप्पणिया—आत्मा, जं—जितना, करे—अनर्थ करता है, तं—उतना अनर्थ तो, कंठछित्ता—कंठ को छेदन करने वाला, अरी—शत्रु भी, ण—नहीं, करेइ—कर सकता, दयाविहूणो—दया-रहित अर्थात् संयम-रहित, से—यह आत्मा मच्चुमुहं—मृत्यु के मुख में, पत्ते—पहुँचा हुआ, पच्छाणुतावेण—पश्चात्ताप करता हुआ, णाहइ—इस बात को जानेगा अर्थात् अपनी दुष्ट प्रवृत्तियों का स्मरण करके पश्चात्ताप करेगा॥४८॥

णिरट्ठिया णग्गरुई उ तस्स,
जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ ।
इमे वि से णत्थि परे वि लोए,
दुहओ वि से झिज्झइ तत्थ लोए ॥४९॥

— तस्स—ऐसे द्रव्यलिंगी व्यक्ति की, णग्गरुई—संयम

तमं तमेणेव—अत्यन्त अज्ञानान्धकार से, मोणं—चारित्र की, विराहेत्तु— विराधना करके, सया—सदैव, दुही--दुःखी होता हुआ, विपरियामुवेइ—विपरीत भाव को प्राप्त होता है और, णरगतिरिक्ख जोणिं-- नरक-तिर्यञ्च गतियों में संधावई—जाता है ॥४६॥

उद्देसियं कीयगडं णियागं,
ण मुंचई किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता,
इत्तो चुए गच्छइ कट्टु पावं ॥४७॥

— जो साधु, उद्देसियं—औद्देशिक, कीयगड— क्रीतकृत, णियागं—नियागपिण्ड (नित्यपिण्ड) और, अणेसणिज्जं—अनेषणीय अहार आदि, किंचि—कुछ भी, ण—नहीं, मुंचई—छोड़ता, अपितु सब को ग्रहण कर लेता है वह, अग्गी विवा-अग्नि के समान, सव्वभक्खी--सर्वभक्षी, भवित्ता—होकर, इत्तो--यहाँ का, चुए--आयुष्य पूरा करके तथा, पावं--पापकर्मों को, कट्टु— उपार्जन करके, गच्छइ---दुर्गति में चला जाता है ॥४७॥

नोट—औद्देशिक-किसी खास साधु के लिए बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो 'आधाकर्म' और यदि दूसरा साधु ले तो 'औद्देशिक' कहलाता है। कीयगड—क्रीतकृत साधु के लिए खरीदा हुआ आहारादि 'क्रीतकृत' कहलाता

है। नियाग- 'नियागमित्यामंत्रितस्य पिण्डस्य ग्रहणं नित्यं न त्वनामंत्रितस्य' किसी का आमन्त्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार 'नियागपिण्ड-नित्यपिण्ड' कहलाता है।

ण तं अरी कंठछित्ता करेइ,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से णाहइ मच्चुमुहं तु पत्ते,
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥४८॥

— दुरप्पा—दुराचार में प्रवृत्त हुआ, से—अपना, अप्पणिया—आत्मा, जं—जितना, करे—अनर्थ करता है, तं—उतना अनर्थ तो, कंठछित्ता—कंठ को छेदन करने वाला, अरी—शत्रु भी, ण—नहीं, करेइ—कर सकता, दयाविहूणो—दया-रहित अर्थात् संयम-रहित, से—यह आत्मा मच्चुमुहं—मृत्यु के मुख में, पत्ते—पहुँचा हुआ, पच्छाणुतावेण—पश्चात्ताप करता हुआ, णाहइ—इस बात को जानेगा अर्थात् अपनी दुष्ट प्रवृत्तियों का स्मरण करके पश्चात्ताप करेगा॥४८॥

णिरट्ठिया णग्गरुई उ तस्स,
जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ ।
इमे वि से णत्थि परे वि लोए,
दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए ॥४९॥

— तस्स—ऐसे द्रव्यलिंगी व्यक्ति की, णग्गरुई—संयम

में रुचि रखना, णिरट्ठिया—निरर्थक है, जे--जो, उत्तमट्ठं--उत्तम अर्थ में भी, विवज्जासमेइ--विपरीत भाव रखता है अर्थात् सदाचार को दुराचार और दुराचार को सदाचार मानता है, से--उस आत्मा के लिए, इमे—यह, लोए—लोक वि—और, परे वि—परलोक दोनों, णत्थि—नहीं हैं अर्थात् दोनों विगड़ जाते हैं. तत्थ—इस प्रकार उभय-लोक के अभाव में, से--वह, लोए—लोक में, दुहओ वि—दोनों प्रकार से, झिज्झइ—चिन्तित होकर क्षीण होता है अर्थात् इस लोक में तो केशलुंचन आदि क्रियाओं से क्लेशित होता है और परलोक मे नरक-तिर्यच आदि गतियों में दुःख भोगता है ॥४९॥

एमेवऽहाछंद कुसील-रूवे,
मग्गं विराहेतु जिणुत्तमाणं ।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा,
णिरट्ठसोया परियावमेइ ॥५०॥

— एमेव--इस प्रकार, अहाछंद कुसीले रूवे--स्वच्छन्दाचारी और कुशीलिया साधु, जिणुत्तमाणं— जिनेन्द्र भगवान् के उत्तम, मग्गं--मार्ग की, विराहेतु—विराधना करके, भोगरसाणुगिद्धा--- भोगरस में अर्थात् मांस के टुकड़े में आसक्त बनी हुई, णिरट्ठसोया--निरर्थक शोक करने वाली, कुररी विवा—कुररी-पक्षिणी के समान भोगों में आसक्त बन कर, परियावमेइ—परिताप को प्राप्त होता है-पश्चात्ताप करता है ॥५०॥

सोच्चाण मेहावि सुभासियं इमं,
अणुसासणं णाणगुणोववेयं ।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं,
महाणियंठाण वए पहेणं ॥५१॥

— अनाथी मुनि राजा श्रेणिक को एवं समस्त भव्य पुरुषों को सम्बोधित करके कहते हैं कि, सुभासियं--सुभाषित-भली प्रकार कही हुई, णाणगुणोववेयं –ज्ञानगुण से युक्त, इमं-इस, अणुसासणं –शिक्षा को, सोच्चाण--सुन कर, मेहावी--बुद्धिमान् साधु, कुसीलाण--कुशीलियों के, मग्गं--कुत्सित मार्ग को, सव्वं— सर्वथा प्रकार से, जहाय--छोड़ कर, महाणियंठाण--महा निर्ग्रन्थों के, पहेण--मार्ग का, वए--अनुसरण करे ॥५१॥

चरित्तमायारगुणण्णिए तओ,
अणुत्तरं संजम पालियाणं ।
णिरासवे संखवियाण कम्मं,
उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥५२॥

— महा निर्ग्रंथों के मार्ग का अनुसरण करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसका वर्णन करते हैं कि, चरित्त-मायारगुणण्णिए--चारित्र और ज्ञानादि गुणों से युक्त होकर, अणुत्तरं— प्रधान, संजम-- संयम का, पालियाणं--पालन करने के, तओ--पश्चात्, णिरासवे--आस्रवों से रहित होकर

तथा, कम्मं—कर्मों का, संखवियाण--सर्वथा क्षय कर के, विउलुत्तमं--विशाल एवं सर्वोत्तम, धुवं--शाश्वत, ठाणं--स्थान को अर्थात् जहां जाकर पुनः संसार में लोटना न पड़े ऐसे मोक्ष स्थान को, उवेइ—प्राप्त हो जाता है ॥५२॥

एवुग्गदंते वि महातवोधणे,
महामुणी महापइण्णे महायसे ।
महाणियंठिज्जमिणं महासुयं,
से काहए महया वित्थरेणं ॥५३॥

—उग्गदंते वि—कर्म शत्रुओं का उग्ररूप से दमन करने वाले, महातवोधणे-- महान् तपस्वी, महापइण्णे--दृढ़ प्रतिज्ञा वाले, महायसे--महा यशस्वी, से--उन, महामुणी--महामुनि ने, इण--इस, महाणियंठिज्जं--महा-निर्थयों के लिए हितकारी महानिर्ग्रन्थीय नामक, महासुयं—महाश्रुत अध्ययन का, महया-बहुत, वित्थेरणं—विस्तार के साथ महाराज श्रेणिक के सामने, एवं--इस प्रकार, काहए—कथन किया ॥५३॥

तुट्ठो य सेणिओ राया, इणमुदाहु कयंजली ।
अणाहत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥५४॥

— तुट्ठो—मुनि के उपदेश से संतुष्ट एवं प्रसन्न हुआ, सेणिओ—श्रेणिक, राया—राजा, कयंजली—दोनों हाथ जोड़ कर, इणं--इस प्रकार कहने लगा कि हे भगवन् ! आपने, अणाहत्तं--अनाथता का, जहाभूयं—यथार्थ स्वरूप, मे—मुझे,

सुट्ठु—भली प्रकार से, उवदंसियं—समझाया है ॥५४॥

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्स-जम्मं,
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी !
तुब्भे सणाहा य सबंधवा य,
जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं ॥५५॥

— राजा श्रेणिक अनाथी मुनि का हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ कहता है कि, महेसी—हे महर्षि ! तुज्झं—आपका, मणुस्स जम्मं—मनुष्य-जन्म पाना, खु—वास्तव में, सुलद्धं—सुलब्ध (सफल) है, य—और, तुमे—आपने ही, लाभा—वास्तविक लाभ, सुलद्धा—प्राप्त किया है, य—तथा, तुब्भे—आप ही, सणाहा—सनाथ, य—और, सबंधवा—सबान्धव हैं, जं—क्योंकि, भे—आप, जिणुत्तमाणं—सर्वोत्तम जिनेन्द्र भगवान् के, मग्गे—मार्ग में, ठिया—स्थित हुए हैं ॥५५॥

तंसि णाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण संजया !
खामेमि ते महाभाग ! इच्छामि अणुसासिउं ।५६।

— महाभाग—हे महाभाग ! तं—आप, अणाहाणं—अनाथों के, णाहो—नाथ, सि—हैं, संजया—हे संयति ! आप, सव्वभूयाण—समस्त प्राणियों, णाहो—नाथ हैं। हे पूज्य ! यदि कोई मेरा अपराध हुआ हो तो उसके लिए मैं, ते—आप से, खामेमि—क्षमा मांगता हूँ और मैं आपके द्वारा, अणुसासिउं—शिक्षा प्राप्त करने का, इच्छामि—इच्छा करता हूँ ॥

तथा, कम्मं—कर्मों का, संखवियाण--सर्वथा क्षय कर के, विउलुत्तमं--विशाल एवं सर्वोत्तम, धुवं—शाश्वत, ठाणं--स्थान को अर्थात् जहां जाकर पुनः संसार में लोटना न पड़े ऐसे मोक्ष स्थान को, उवेइ—प्राप्त हो जाता है ॥५२॥

एवुग्गदंते वि महातवोधणे,
महामुणी महापइण्णे महायसे ।
महाणियंठिज्जमिणं महासुयं,
से काहए महया वित्थरेणं ॥५३॥

—उग्गदंते वि—कर्म शत्रुओं का उग्ररूप से दमन करने वाले, महातवोधणे--महान् तपस्वी, महापइण्णे--दृढ़ प्रतिज्ञा वाले, महायसे--महा यशस्वी, से--उन, महामुणी—महामुनि ने, इण--इस, महाणियंठिज्जं--महा-निर्थथों के लिए हितकारी महानिर्ग्रन्थीय नामक, महासुयं—महाश्रुत अध्ययन का, महया-बहुत, वित्थेरणं—विस्तार के साथ महाराज श्रेणिक के सामने, एवं--इस प्रकार, काहए--कथन किया ॥५३॥

तुट्ठो य सेणिओ राया, इणमुदाहु कयंजली ।
अणाहत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥५४॥

— तुट्ठो—मुनि के उपदेश से संतुष्ट एवं प्रसन्न हुआ, सेणिओ—श्रेणिक, राया—राजा, कयंजली—दोनों हाथ जोड़ कर, इणं--इस प्रकार कहने लगा कि हे भगवन् ! आपने, अणाहत्तं--अनाथता का, जहाभूयं—यथार्थ स्वरूप, मे—मुझे,

ऊससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिणं।
अभिवंदिऊण सिरसा, अइयाओ णराहिवो ॥५९॥

— ऊससियरोमकूवो—हर्ष से रोमांचित हुआ वह, णराहिवो—राजा श्रेणिक, पयाहिणं—प्रदक्षिणा, काऊण--कर के य--और, सिरसा—मस्तक झुका कर, अभिवंदिऊण—वन्दना कर के, अइयाओ--अपने स्थान चला गया ॥५९॥

इयरो वि गुणसमिद्धो,
तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य।
विहग इव विप्पमुक्को,
विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥६०॥ त्ति बेमि॥

— गुणसमिद्धो—गुणों से समृद्ध, तिगुत्ति गुत्तो—तीन गुप्तियों से गुप्त, य--और, तिदंडविरओ—तीन दण्ड से निवृत्त बने हुए, इयरो वि—अनाथी मुनि, विगयमोहो—मोह (ममत्व) से रहित हो कर तथा, विहग इव—पक्षी के समान, विप्पमुक्को--प्रतिबन्ध रहित हो कर, वसुहं--पृथ्वी पर, विहरइ--विचरने लगे ॥६०॥ त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ बीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥



पुच्छिऊण मए तुब्भं, झाणविग्घो य जो कओ ।
णिमंतिया य भोगेहिं, तं सव्वं मरिसेहि मे ।।५७।।

--मए--मैने आप से प्रव्रज्या का कारण, पुच्छिऊण--पूछ कर, जो—जो, तुब्भं--आपके, झाणविग्घो—ध्यान में विघ्न, कओ--किया है, य—और, भोगेहिं—भोगों के लिए, णिमंतिया—निमंत्रित करके आपका जो अपराध किया है, तं—उन, सव्वं--सभी अपराधों के लिए आप, मे--मुझे, मरिसेहि--क्षमा प्रदान करें ।।५८।।

एवं थुणित्ताण स रायसीहो,
अणगारसीहं परमाइ भत्तिए ।
सओरोहो सपरियणो सबंधवो,
धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ।।५८।।

-- एवं--इस प्रकार, रायसीहो--राजाओं में सिंह के समान पराक्रमी, स—वह राजा श्रेणिक, अणगारसीहं--कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करने में सिंह के समान उस अनाथी मुनि की, परमाइ--उत्कृष्ट, भत्तिए—भक्तिपूर्वक, थुणित्ताण—स्तुति करके, सओरोहो—अपने अन्तःपुर सहित, सपरियणो--परिवार सहित और, सबंधवो--बन्धुओं सहित, विमलेण चेयसा—मिथ्यात्व--रहित निर्मल चित्त से, धम्माणुरत्तो--धर्म में अनुरक्त बन गया ।।५८।।

ऊससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिणं।
अभिवंदिऊण सिरसा, अइयाओ णराहिवो ॥५९॥

— ऊससियरोमकूवो—हर्ष से रोमांचित हुआ वह, णराहिवो—राजा श्रेणिक, पयाहिणं—प्रदक्षिणा, काऊण--कर के य--और, सिरसा--मस्तक झुका कर, अभिवंदिऊण—वन्दना कर के, अइयाओ--अपने स्थान चला गया ॥५९॥

इयरो वि गुणसमिद्धो,
तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य।
विहग इव विप्पमुक्को,
विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥६०॥ त्ति बेमि ॥

— गुणसमिद्धो—गुणों से समृद्ध, तिगुत्ति गुत्तो--तीन गुप्तियों से गुप्त, य--और, तिदंडविरओ—तीन दण्ड से निवृत्त बने हुए, इयरो वि—अनाथी मुनि, विगयमोहो—मोह (ममत्व) से रहित हो कर तथा, विहग इव—पक्षी के समान, विप्पमुक्को--प्रतिबन्ध रहित हो कर, वसुहं--पृथ्वी पर, विहरइ--विचरने लगे ॥६०॥ त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ बीसवां अध्ययन समाप्त ॥

'समुद्रपालीय' इक्कीसवां अध्ययन



चंपाए पालिए णाम, सावए आसी वाणिए।
महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥१॥

— चंपाए--चम्पा नगरी में, पालिए--पालित नामक, वाणिए--एक वणिक, सावए--श्रावक, आसी—रहता था, सो-वह, महप्पणो--महात्मा, भगवओ—भगवान्, महावीरस्स—महावीर का, सीसे—शिष्य था ॥१॥

णिग्गंथे पावयणे, सावए से वि कोविए।
पोएण ववहरंते, पिहुंडं णगरमागए॥२॥

— से---वह, सावए--श्रावक, णिग्गंथे पावयणे--निर्ग्रंथ-प्रवचन में, विकोविए--विशेष पंडित था अर्थात् वह जीव-अजीव आदि तत्त्वों का विशेष ज्ञाता था। उसका व्यापार जहाजों से चलता था, इसलिए, पोएण—पोत (जलयान) से, ववहरंते--व्यापार करता हुआ वह, पिहुंडं--पिहुण्ड नामक, णगरं--नगर में, आगए—पहुँचा ॥२॥

पिहुंडे ववहरंतस्स, वाणिओ देइ धूयरं।
तं ससत्तं पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ ॥३॥

पिहुंडे—पिहुंड नगर में, ववहरंतस्स--व्यापार करते पालित श्रावक को, वाणिओ—किसी व्यापारी ने,

धूयरं-अपनी कन्या, देइ—दे दी अर्थात् पालित श्रावक के गुणों से आकृष्ट हो कर अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया, अह—कुछ समय पश्चात् वह गर्भवती हुई। इधर पालित श्रावक के व्यापार का कार्य भी पूरा होगया तब वह, तं ससत्तं—अपनी उस गर्भवती स्त्री को, पइगिज्झ—साथ लेकर, सदेसं—अपने देश के लिए, पत्थिओ—रवाना हुआ ॥३॥

अह पालियस्स घरणी, समुद्दम्मि पसवइ ।
अह दारए तहिं जाए, समुद्दपालित्ति णामए ॥४॥

— अह—समुद्र में यात्रा करते हुए उस, पालियस्स—पालित श्रावक की, घरणी—स्त्री के, समुद्दम्मि—समुद्र में, पसवइ - प्रसव हुआ, तहिं—समुद्र में, दारए—बालक का, जाए—जन्म हुआ, अह—इसलिए, णामए—उसका नाम, समुद्दपालित्ति—समुद्रपाल रखा गया ॥४॥

खेमेण आगए चंपं, सावए वाणिए घरं ।
संवड्ढई घरे तस्स, दारए से सुहोइए ॥५॥

— वाणिए—वह वणिक, सावए—श्रावक, खेमेण—शान्तिपूर्वक, चंपं—चम्पा नगरी में, घरं—अपने घर, आगए—आ गया और, सुहोइए—सुख के साथ, से—वह, दारए—बालक, तस्स—उस पालित श्रावक के, घरे—घर में, संवड्ढई—बढ़ने लगा ॥५॥

बावत्तरी-कलाओ य, सिक्खिए णीइकोविए ।
जोव्वणेण य अप्फुण्णे, सुरूवे पियदंसणे ॥६॥

— शिक्षा ग्रहण के योग्य होने पर समुद्रपाल को विद्या-गुरु के पास भेजा गया वहाँ, सुरूवे--अत्यन्त सुरूप और, पियदंसणे--सभी को प्रिय लगने वाले उस समुद्रपाल ने, बावत्तरी—पुरुष की बहत्तर, कलाओ—कलाएँ, सिक्खिए—सीखीं, य--और, णीइकोविए—वह नीति में पंडित बन गया। क्रमशः वह, जोव्वणेण—योवन अवस्था को, अप्फुण्णे--प्राप्त हुआ ॥६॥

तस्स रूववई भज्जं, पिया आणेइ रूविणि।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुंदगो जहा ॥७॥

— समुद्रपाल की विवाह योग्य अवस्था देख कर, तस्स—उसका, पिया--पिता, रूविणि--उसके लिए रूपिणी (रुक्मिणी) नाम की, रूववई--रूपवती, भज्जं--भार्या, आणेइ--लाया अर्थात् रूपिणी नाम की एक सुन्दर कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया। वह उसके साथ रम्मे—रमणीय, पासाए—प्रासाद में, दोगुंदगो देवो जहा--दोगुन्दक जाति के देवों के समान निर्विघ्नरूप से कीलए—क्रीड़ा करने लगा ॥७॥

अह अण्णया कयाई, पासायालोयणे ठिओ।
वज्झ-मंडण-सोभागं, वज्झं पासइ वज्झगं ॥८॥

— अह अण्णया कयाई—किसी समय, पासायालोयणे--भवन के गवाक्ष (खिड़की) में, ठिओ--बैठे हुए समुद्रपाल ने, वज्झमंडणसोभागं—मृत्यु दण्ड पाये हुए पुरुष के योग्य रक्त

चन्दन, कनेर की माला आदि मृत्यु-चिन्हों से युक्त, वज्झं—एक अपराधी पुरुष को मारने के लिए, वज्झगं—फांसी के स्थान पर ले जाते हुए, पासइ—देखा ॥८॥

तं पासिऊण संविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी ।
अहोऽसुहाण कम्माणं, णिज्जाणं पावगं इमं ॥९॥

— तं—उस अपराधी को, पासिऊण—देख कर समुद्दपालो—समुद्रपाल, संविग्गो—संवेग को प्राप्त हो कर, इणं—इस प्रकार, अब्बवी—कहने लगा कि, अहो—अहो !, असुहाण अशुभ, कम्माणं—कर्मों का, णिज्जाणं—अन्तिम फल, पावगं—पाप रूप ही होता है, इमं—जैसा कि यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है ॥९॥

संबुद्धो सो तहिं भगवं, परमसंवेगमागओ ।
आपुच्छऽम्मापियरो, पव्वए अणगारियं ॥१०॥

— तहिं—प्रासाद के गवाक्ष में बैठा हुआ, भगवं—ऐश्वर्यसम्पन्न, सो—वह समुद्रपाल को, संबुद्धो—बोध प्राप्त हुआ और, परमसंवेगं—परम संवेग को, आगओ—प्राप्त हुआ। इसके बाद, अम्मापियरो—अपने माता-पिता को, आपुच्छ—पूछ कर उसने, अणगारियं—अनगार वृत्ति पव्वए—अंगीकार कर ली ॥१०॥

जहित्तु सग्गंथमहाकिलेसं,
महंतमोहं कसिणं भयावहं ।

परियायधम्मं चाभिरोयएज्जा,
वयाणि सीलाणि परीसहे य ॥११॥

— महाकिलेसं--महा क्लेशकारी, महंतमोहं--महा मोहोत्पादक, भयावहं--अनेक भयों को उत्पन्न करने वाले, कसिणं---सम्पूर्ण, सग्गंथ—परिग्रह एवं स्वजनादि के प्रतिबन्ध को, जहित्तु—छोड़ कर वे, परियायधम्मं--प्रव्रज्या धर्म में, अभिरोयएज्जा---लीन रहने लगे, वयाणि—पाँच महाव्रतों और, सीलाणि---पिण्ड-विशुद्धयादि उत्तर-गुणों का पालन करने लगे, च---तथा, परीसहे--परीषहों को सहन करने लगे ॥११॥

अहिंस सच्चं च अतेणगं च,
तत्तो य बंभं अपरिग्गहं च ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि,
चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विदू ॥१२॥

— अहिंस---अहिंसा, सच्चं--सत्य, अतेणगं---अस्तेय (अदत्त का त्याग), बंभं---ब्रह्मचर्य, य---और, अपरिग्गहं---अपरिग्रह रूप, पंच---पाँच, महव्वयाणि--महाव्रतों को, पडिवज्जिया--अंगीकार कर के, विदू---वे विद्वान् मुनि, जिणदेसियं—जिनेन्द्र देव द्वारा उपदिष्ट (धम्मं) धर्म का, चरिज्ज---सेवन करने लगे ॥१२॥

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी,
खंतिक्खमे संजय-बंभयारी ।

सावज्ज जोगं परिवज्जयंतो,
चरिज्ज भिक्खू सुसमाहि इंदिए ॥१३॥

— सव्वेहिं--सभी, भूएहिं--जीवों पर, दयाणुकंपी--दयापूर्वक अनुकम्पा करने वाला, खंतिक्खमे—कठोर वचनों को क्षमा एवं शांतिपूर्वक सहन करने वाला, संजयबंभयारी--संयती एवं ब्रह्मचारी, सुसमाहि इंदिए—सुसमाधि युक्त तथा इन्द्रियों को वश में रखने वाला, भिक्खू--साधु, सावज्ज जोगं—सभी प्रकार के सावद्य व्यापारों को, परिवज्जयंतो--छोड़ कर, चरिज्ज--विचरे। समुद्रपाल मुनि इसी प्रकार विचरने लगे ॥

कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठं,
बलाबलं जाणिय अप्पणो य।
सीहो व सद्देण ण संतसेज्जा,
वयजोग सुच्चा ण असब्भमाहु ॥१४॥

—मुनि, कालेण कालं—कालोकाल (यथा समय प्रतिलेखनादि क्रियाएँ करता हुआ), अप्पणो--अपने आत्मा के, बलाबलं—बलाबल अर्थात् सहिष्णुता और असहिष्णुता रूप शक्ति को, जाणिय-जान कर, रट्ठं - देश में. विहरेज्ज--विचरे, य—और सीहोव--जिस प्रकार सिंह किसी भयानक शब्द को सुन कर भयभीत नहीं होता उसी प्रकार साधु भी, सद्देण—भयानक शब्दों को सुन कर, ण संतसेज्जा—डरे नहीं और, वयजोग—दुःखोत्पादक शब्दों को, सुच्चा—सुन कर, असब्भं--असभ्य एवं

कठोर वचन, ण आहु—न कहे। समुद्रपाल मुनि भी उपरोक्त प्रकार से आचरण करते थे ॥१४॥

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा,
पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा।
ण सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा,
ण यावि पूयं गरहं च संजए ॥१५॥

— संजय—मुनि उपरोक्त बातों का, उवेहमाणो—विचार करता हुआ, परिव्वएज्जा—विचरे, उ—तथा, पियं—प्रिय और, अप्पियं—अप्रिय, सव्वं—सभी को, तितिक्खएज्जा—समभाव से सहन करे (इष्ट-वियोग अनिष्ट-संयोग में सहनशील हो कर मध्यस्थ भाव रखे), सव्वत्थ—सर्वत्र, सव्व—सभी पदार्थों की, ण अभिरोयएज्जा—अभिलाषा न करे (जिन-जिन सुन्दर वस्तुओं को देखे, उन सभी की इच्छा नहीं करे) च—तथा, पूयं—पूजा-सत्कार, यावि—और, गरहं—गर्हा (निन्दा) को भी, ण—न चाहे ॥१५॥

अणेगछंदामिह माणवेहिं,
जे भावओ संपगरेइ भिक्खू।
भयभेरवा तत्थ उइंति भीमा,
दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा ॥१६॥

— इह—इस लोक में, माणवेहिं—मनुष्यों के, अणेग—अनेक प्रकार के अभिप्राय हो सकते हैं, भावओ—औद-

यिक आदि भावों के कारण, जे—वैसे अभिप्राय, भिक्खू—साधु के मन में भी, संपगरेइ—उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु साधु अपने संयम में दृढ़ रहे, तत्थ—साधु अवस्था में, भयभेरवा—अत्यन्त भयोत्पादक, भीमा—भयंकर, दिव्वा—देव सम्बन्धी, मणुस्सा—मनुष्य सम्बन्धी, अदुवा—और, तिरिच्छा—तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग, उइंति—प्राप्त होते हैं, उन्हें समभावपूर्वक सहन करे ॥१६॥

परीसहा दुव्विसहा अणेगे,
सीयंति जत्था बहु कायरा णरा ।
से तत्थ पत्ते ण वहिज्ज भिक्खू,
संगाम-सीसे इव णागराया ॥१७॥

— साधु अवस्था में, अणेगे—अनेक प्रकार के, दुव्विसहा—दुःसह्य, परीसहा—परीषह उपस्थित होते हैं, जत्थ—जिससे, बहु—बहुत-से, कायरा—कायर, णरा—मनुष्य, सीयंति—संयम में शिथिल हो जाते हैं किन्तु, संगाम सीसे—संग्राम के अग्रभाग में रहे हुए, णागराया इव—शूरवीर हाथी के समान, भिक्खू—संयम में दृढ़ साधु, तत्थ—उन परीषह (उपसर्गों) के, पत्ते—प्राप्त होने पर, ण वहिज्ज—घबरावे नहीं अर्थात् संयम-मार्ग से चलित न होवे। इसी प्रकार, से—वे समुद्रपाल मुनि भी परीषह-उपसर्गों से चलित नहीं होते थे ॥१७॥

सीओसिणा दंसमसगा य फासा,
आयंका विविहा फुसंति देहं ।

अकुक्कुओ तत्थऽहियासएज्जा,
रयाइ खेवेज्ज पुरेकडाइं ॥१८॥

—साधु अवस्था में, सीओसिणा—शीत और उष्ण, य—और, दंसमसगा—डाँस-मच्छर, फासा—तृणस्पर्शादि परीषह और, विविहा—अनेक प्रकार के, आयंका—रोग, देहं—शरीर को, फुसंति—स्पर्श करते हैं, तत्थ—उस समय, अकुक्कुओ—आक्रन्दन नहीं करता हुआ, अहियासएज्जा—उन्हें समभावपूर्वक सहन करे और, पुरेकडाइं—पूर्वकृत, रयाइ—कर्म रूपी रज को, खेवेज्ज—क्षय करे। समुद्रपाल मुनि भी इसी प्रकार आचरण करते थे ॥१८॥

पहाय रागं च तहेव दोसं, मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणो।
मेरुव्व वाएण अकंपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा ॥

—वियक्खणो—विचक्षण, भिक्खू—साधु, रागं—राग, च—और, दोसं—द्वेष को, च—तथा, तहेव—इसी प्रकार मोहं—मोह को, सययं—निरन्तर, पहाय—छोड़ कर वाएण—वायु से, अकंपमाणो—कम्पित न होने वाले, मेरुव्व—मेरु पर्वत के समान अडोल हो कर, आयगुत्ते—आत्मा को वश कर के, परीसहे—परीसहों को, सहेज्जा—समभावपूर्वक सहन करे। समुद्रपाल मुनि ऐसा ही आचरण करते थे ॥१९॥

अणुण्णए णावणए महेसी, ण यावि पुयं गरहं च संजए।
से उज्जुभावं पडिवज्ज संजए, णिव्वाणमग्गं विरए उवेइ ॥

— महेसी--महर्षि, पूयं--पूजा को प्राप्त कर के, अणुण्णए--उन्नत न हो, यावि--और, गरहं--निन्दा के प्रति णावणए संजए—अवनत भाव को प्राप्त न हो अर्थात् जो साधु अपनी पूजा से गर्वित नहीं होता और निन्दा से जिसके मन में द्वेष या दीनभाव उत्पन्न नही होता, किन्तु समभाव रखता है, से--वह, संजए--साधु, विरए—कामभोगों से सर्वथा विरत हो कर तथा, उज्जुभावं--सरल भाव को, पडिवज्ज--प्राप्त हो कर, णिव्वाणमग्गं--मोक्षमार्ग को, उवेइ--प्राप्त होता है। समुद्रपाल मुनि भी इसी प्रकार शुद्ध आचरण करते हुए मोक्षमार्ग की आराधना करते थे ॥२०॥

अरइरइसहे पहीणसंथवे, विरए आयहिए पहाणवं।
परमट्ठपएहिं चिट्ठई, छिण्णसोए अममे अकिंचणे ।२१।

— अरइरइसहे—संयम में अरति और असंयम में रति रूप परीषह को सहन करने वाला, पहीणसंथवे--गृहस्थों के परिचय को छोड़ देने वाला, विरए—काम-भोगों का सर्वथा त्याग करने वाला, आयहिए—आत्म-हित साधन में तत्पर, पहाणवं--संयम में रत, छिण्णसोए—आश्रवादि स्रोतों का निरोध करने वाला एवं शोक-रहित, अममे—ममत्व रहित, अकिंचणे-- अकिंचन अर्थात् द्रव्य-भाव परिग्रह-रहित वे, समुद्रपाल मुनि, परमट्ठपएहिं—परमार्थ पद में अर्थात् मोक्षमार्ग में, चिट्ठई--स्थित थे ॥२१॥

विवित्त लयणाइं भएज्ज ताई,
णिरोवलेवाइं असंथडाइं ।
इसीहिं चिण्णाइं महायसेहिं,
काएण फासेज्ज परीसहाइं ॥२२॥

— ताई—छः काय जीवों के रक्षक साधु, णिरोवलेवाइं-उपलेप रहित अर्थात् आसक्ति के कारणों से रहित, अथवा साधु के लिए नहीं लीपे हुए, असंथडाइं—बीजादि से रहित और, महायसेहिं—महायशस्वी, इसीहिं— ऋषियों द्वारा, चिण्णाइं— सेवित, विवित्त लयणाइं— स्त्री-पशु-नपुंसक से रहित स्थानों का, भएज्ज—सेवन करे और ऐसे उपाश्रम में रहते हुए यदि, परीसहाइं—परीषह उपस्थित हों तो साधु उन्हें समभावपूर्वक, काएण—काया से, फासेज्ज—सहन करे। *समुद्रपाल मुनि ऐसा ही करते थे ॥२२॥*

सण्णाण-णाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउं
अणुत्तरे णाणधरे जसंसी, ओभासई सूरिए.व॰

दुविहं खवेऊण य पुण्णपावं,
णिरंजणे सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुद्दं च महाभवोघं,
समुद्दपाले अपुणागमं गए ॥२४॥ त्ति बेमि ॥

— दुविहं--दोनों प्रकार के कर्मों का अर्थात् घाती और अघाती कर्मों का, य—तथा, पुण्णपावं--पुण्य और पाप का, खवेऊण—सर्वथा क्षय करके, णिरंजणे--निरञ्जन (कर्ममल से रहित अथवा संयम में निश्चल अर्थात् शैलेशी अवस्था को प्राप्त हुआ) सव्वओ--बाह्य और आभ्यन्तर सभी प्रकार के बन्धनों से, विप्पमुक्के—मुक्त होकर, च--तथा, महाभवोघं-महाभव रूपी, समुद्दं— समुद्र को, तरित्ता— तिर कर समुद्दपाले--समुद्रपाल मुनि, अपुणागमं—पुनरागमन रहित (जहां जाकर लौटना नहीं पड़े ऐसे स्थान) मोक्ष को, गए--प्राप्त हुए। त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ॥२४॥

॥ इक्कीसवां अध्ययन समाप्त ॥

विवित्त लयणाइं भएज्ज ताई,
णिरोवलेवाइं असंथडाइं ।
इसीहि चिण्णाइं महायसेहि,
काएण फासेज्ज परीसहाइं ॥२२॥

— ताई—छः काय जीवों के रक्षक साधु, णिरोवलेवाइं-उपलेप रहित अर्थात् आसक्ति के कारणों से रहित, अथवा साधु के लिए नहीं लीपे हुए, असंथडाइं--बीजादि से रहित और, महायसेहि—महायशस्वी, इसीहि-- ऋषियों द्वारा, चिण्णाइं— सेवित, विवित्त लयणाइं-- स्त्री-पशु-नपुंसक से रहित स्थानों का, भएज्ज--सेवन करे और ऐसे उपाश्रम में रहते हुए यदि, परीसहाइं--परीषह उपस्थित हों तो साधु उन्हें समभावपूर्वक, काएण--काया से, फासेज्ज—सहन करे। समुद्रपाल मुनि ऐसा ही करते थे ॥२२॥

सण्णाण-णाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं ।
अणुत्तरे णाणधरे जसंसी, ओभासई सूरिए वंऽतलिक्खे ॥

-- सण्णाणणाणोवगए--अनेक प्रकार के श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके, अणुत्तरं— प्रधान, धम्मसंचयं— क्षमा आदि यतिधर्मों के समुदाय का, चरिउं— सेवन करके, अणुत्तरे णाणधरे-- सर्वश्रेष्ठ केवलज्ञान को धारण करने वाला, जसंसी--यशस्वी मुनि, अंतलिक्खे--आकाश में, सूरिए व--सूर्य के समान, ओभासई--प्रकाशित होता है ॥२३॥

दुविहं खवेऊण य पुण्णपावं,
णिरंजणे सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुद्दं च महाभवोघं,
समुद्दपाले अपुणागमं गए ॥२४॥ त्ति बेमि ॥

— दुविहं--दोनों प्रकार के कर्मों का अर्थात् घाती और अघाती कर्मों का, य—तथा, पुण्णपावं--पुण्य और पाप का, खवेऊण—सर्वथा क्षय करके, णिरंजणे--निरञ्जन (कर्ममल से रहित अथवा संयम में निश्चल अर्थात् शैलेशी अवस्था को प्राप्त हुआ) सव्वओ--बाह्य और आभ्यन्तर सभी प्रकार के बन्धनों से, विप्पमुक्के—मुक्त होकर, च--तथा, महाभवोघं–महाभव रूपी, समुद्दं— समुद्र को. तरित्ता— तिर कर समुद्दपाले--समुद्रपाल मुनि, अपुणागमं—पुनरागमन रहित (जहाँ जाकर लौटना नहीं पड़े ऐसे स्थान) मोक्ष को, गए—प्राप्त हुए। त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ॥२४॥

॥ इक्कीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

रथनेमीय बाईसवाँ अध्ययन



सोरियपुरम्मि णयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
वसुदेवत्ति णामेणं, रायलक्खण-संजुए ॥१॥

— सोरियपुरम्मि— शौर्यपुर नामक, णयरे--नगर में, रायलक्खण संजुए—चक्र स्वस्तिक अंकुश आदि तथा सत्य शूरवीरता आदि राजा के लक्षणों से युक्त तथा, महिड्ढिए—महाऋद्धि वाले, वसुदेवत्ति णामेणं--वसुदेव नाम के, राया—राजा, आसि—थे ॥१॥

तस्स भज्जा दुवे आसि, रोहिणी देवई तहा ।
तासिं दोण्हं दुवे पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

— तस्स—उस वसुदेव के, रोहिणी—रोहिणी, तहा—और, देवई--देवकी नाम की, दुवे--दो, भज्जा--स्त्रियाँ, आसि —थीं तासिं—उन, दोण्हं—दोनों के, इट्ठा—इष्ट (सभी को प्रिय लगने वाले), रामकेसवा—राम और केशव (रोहिणी के राम बलदेव और देवकी के कृष्ण-वासुदेव), दुवे—दो, पुत्ता--पुत्र थे ॥२॥

सोरियपुरम्मि णयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजए णामं, रायलक्खण-संजुए ॥३॥

— सोरियपुरम्मि णयरे—शौर्यपुर नगर में, महिड्ढिए—महाऋद्धि वाले रायलक्खण संजुए—राजा के लक्षणों से युक्त, समुद्दविजए—समुद्रविजय, णामं—नामक, राया—राजा, आसि—थे ॥३॥

तस्स भज्जा सिवा णाम, तीसे पुत्तो महायसो।
भयवं अरिट्ठणेमित्ति, लोगणाहे दमीसरे ॥४॥

— तस्स—समुद्रविजय के, सिवा णाम—शिव नाम की, भज्जा—भार्या थी, तीसे—उसके, पुत्तो—पुत्र, महायसे—महायशस्वी, दमीसरे—परम जितेन्द्रिय लोगणाहे—तीनों लोक का नाथ, भयवं—भगवान् अरिट्ठणेमित्ति—अरिष्टनेमि थे ।४।

सोऽरिट्ठणेमि-णामो य, लक्खणस्सरसंजुओ।
अट्ठसहस्स-लक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवि ॥५॥

—सो—वे, अरिट्ठणेमि णामो—अरिष्टनेमि नामक कुमार, लक्खणस्सरसंजुओ— लक्षण और स्वरों से संयुक्त, अट्ठसहस्स लक्खणधरो—एक हजार आठ शुभ लक्षणों को धारण करने वाले, गोयमो—गौतम गोत्रीय, य—और, कालगच्छवि—कृष्ण कांति वाले थे ॥५॥

वज्जरिसह-संघयणो, समचउरंसो झसोयरो।
तस्स राईमई कण्णं, भज्जं जायइ केसवो ॥६॥

—वे अरिष्टनेमि कुमार, वज्जरिसह संघयणो—वज्र-

ऋषभनाराच संहनन वाले, समचउरंसो—समचतुरस्र संस्थान वाले और, झसोयरो—मछली के उदर के समान सुन्दर उदर वाले थे। केसवो—श्रीकृष्ण वासुदेव ने, तस्स—अरिष्टनेमि कुमार की, भज्जं—भार्या बनाने के लिए उग्रसेन राजा से, कण्णं—उनकी कन्या, राईमई—राजमती की, जायइ—याचना की ॥६॥

अह सा रायवरकण्णा, सुसीला चारुपेहिणी।
सव्वलक्खण-संपण्णा, विज्जुसोया-मणिप्पभा ॥७॥

—अह—अथ, सा—वह, रायवर कण्णा—उग्रसेन राजा की श्रेष्ठ कन्या राजमती, सुसीला—उत्तम आचार वाली, चारुपेहिणी—सुन्दर दृष्टि वाली, सव्वलक्खण संपण्णा—स्त्री के सभी शुभ लक्षणों से संपन्न, विज्जुसोयामणिप्पभा—विद्युत् और सौदामिनी के समान प्रभा वाली थी ॥७॥

अहाह जणओ तीसे, वासुदेवं महड्ढियं।
इहागच्छउ कुमरो, जा से कण्णं ददामिऽहं ॥८॥

— अह—इसके बाद, तीसे—उस राजमती के, जणओ—पिता राजा उग्रसेन ने, महड्ढियं—महाऋद्धि वाले, वासुदेवं—कृष्ण-वासुदेव से, आह—कहा कि यदि, कुमरो—अरिष्टनेमि कुमार, इह—यहाँ, आगच्छउ—पधारें, जा—तो, अहं—मैं, से—उन्हें, कण्णं—अपनी कन्या, ददामि—दूं अर्थात् यदि अरिष्टनेमि कुमार बरात सजा कर यहाँ पधारें तो मैं अपनी

कन्या राजमती का उनके साथ विधिपूर्वक विवाह कर सकता हूँ।

सव्वोसहीहिं ण्हविओ, कयकोउयमंगलो।
दिव्वजुयल-परिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ ।९।

— उग्रसेन राजा के वचन को स्वीकार करने पर विवाह निश्चित हो गया। अरिष्टनेमि कुमार को, सव्वोसहीहिं—सभी औषधियों से मिश्रित जल द्वारा, ण्हविओ—स्नान कराया गया, कयकोउयमंगलो--कौतुक-मंगल किये गये, दिव्वजुयल परिहिओ--दिव्य वस्त्र-युगल पहनाया गया और, आभरणेहिं-आभूषणों से, विभूसिओ--विभूषित किया गया ॥९॥

मत्तं च गंधहत्थिं च, वासुदेवस्स जेट्ठगं।
आरूढो सोहए अहियं, सिरे चूडामणी जहा ॥१०॥

— जहा—जिस प्रकार, सिरे—सिर पर, चूडामणी--चूडामणि शोभित होती है उसी प्रकार, वासुदेवस्स—कृष्ण-वासुदेव के, मत्त—मदोन्मत्त, जेट्ठगं--सब से प्रधान एवं बड़े, गंधहत्थि--गन्ध-हस्ती पर, आरूढो—चढ़े हुए अरिष्टनेमि कुमार, अहियं--अत्यधिक, सोहए--शोभित होने लगे ॥१०॥

अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिओ।
दसारचक्केण य सो, सव्वओ परिवारिए ॥११॥

— अह--इसके पश्चात्, ऊसिएण--सिर पर किये जाने वाले, छत्तेण--छत्र, य--और दोनों ओर ढुलाये जाने

वाले, चामराहि--चँवर, य--और, दसारचक्केण--दशार्हचक्र से, (समुद्रविजय आदि दस यादवों के परिवार से) सव्वओ—चारों ओर से, परिवारिए--घिरे हुए, सो—वे नेमिकुमार, सोहिओ—अत्यधिक शोभित होने लगे ॥११॥

चउरंगिणीए सेणाए, रइयाए जहक्कमं ।
तुरियाण-सण्णिणाएण, दिव्वेण गगणं फुसे ॥१२॥

— जहक्कमं--यथाक्रम से, रइयाए--सज्जित की हुई, चउरंगिणीए-- हाथी, घोड़े रथ और पैदल रूप चतुरंगिणी, सेणाए--सेना से तथा, तुरियाण—मृदंग ढोल आदि वादित्रों के, सण्णिणाएण—शब्द से, गगणं— आकाश को, फुसे--गुञ्जित करने लगे ॥१२॥

एयारिसाए इड्ढीए, जुईए उत्तमाइ य ।
णियगाओ भवणाओ, णिज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥१३॥

— एयारिसाए—इस प्रकार की, उत्तमाइ--उत्तम, इड्ढीए--ऋद्धि, य—और, जुईए--द्युति (कान्ति) से सम्पन्न, वण्हिपुंगवो--यादवों में प्रधान वे अरिष्टनेमि कुमार, णियगाओ--अपने, भवणाओ--भवन से, णिज्जाओ—निकले ।१३।

अह सो तत्थ णिज्जंतो, दिस्स पाणे भयद्दुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सण्णिरुद्धे सुदुक्खिए ॥१४॥

– अह--इसके बाद, तत्थ—भवन से, णिज्जंतो—

निकलते हुए और क्रमशः आगे बढ़ते हुए विवाह-मंडप के निकट पहुँचने पर, सो--अरिष्टनेमि कुमार, भयद्दुए—मृत्यु के भय से भयभीत बने हुए, वाडेहिं—वाड़ों में, सण्णिरुद्धे--रोके हुए अतएव, सुदुक्खिए--दुःखित, पाणे--पशुओं को, च—और, पंजरेहिं--पिंजरों में पक्षियों को, दिस्स—देख कर विचार करने लगे ॥१४॥

जीवियंतं तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासित्ता से महापण्णे, सारहिं इणमब्बवी ॥१५॥

— जीवियंतं--जीवन के अन्त को, संपत्ते—प्राप्त हुए, मंसट्ठा--मांस के लिए भक्खियव्वए--खाये जाने वाले अर्थात् मांसभोजी बरातियों के लिए मारे जाने वाले प्राणियों को, पासित्ता--देख कर, महापण्णे—अतिशय प्रज्ञावान्, से—वह अरिष्टनेमि कुमार, सारहिं--सारथि * (महावत) से, इणं—इस प्रकार, मब्बवी—पूछने लगे ॥१५॥

---

* यद्यपि 'सारथि' शब्द का अर्थ रथवान्— रथ को चलाने वाला होता है, तथापि यहां सारथि शब्द का अर्थ महावत (हाथी को चलाने वाला) करना ही प्रकरण-संगत है क्योंकि भगवान् अरिष्टनेमि कुमार हाथी पर आरूढ़ हुए थे। इस बात का उल्लेख दसवीं गाथा में किया गया है। अथवा ऐसा भी संभव है कि कुछ दूर जाने पर भगवान् हाथी से उतर कर रथ में बैठे हों। उस दृष्टि से सारथि शब्द का अर्थ 'रथवान' ठीक है।

कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सण्णिरुद्धा य अच्छहिं ॥१६॥

–एए– ये विचारे, इमे—गरीब, सुहेसिणो–सुख को चाहने वाले, सव्वे—सभी, पाणा—प्राणी, कस्स अट्ठा—किस लिए, वाडेहिं—बाड़ों में, य—और, पंजरेहिं—पिंजरो में, सण्णिरुद्धा अच्छहिं—रोके हुए हैं ॥१६॥

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झं विवाहकज्जम्मि, भोयावेउं बहुं जणं ॥१७॥

– अह—इसके बाद, तओ—भगवान् के प्रश्न को सुन कर सारही—सारथि, भणइ—कहने लगा कि हे भगवन् !, एए—इन सभी, भद्दा—भद्र एवं निर्दोष प्राणियों को, तुज्झं—आपके विवाह कज्जमि—विवाह में आये हुए, बहुं जणं—बहुत-से मांसभोजी मनुष्यों को, भोयावेउं—भोजन कराने के लिए यहां बन्द कर रखा है ॥१७॥

सोऊण तस्स वयणं, बहुपाणिविणासणं ।
चिंतेइ से महापण्णे, साणुक्कोसे जिएहि उ ॥१८॥

— बहुपाणिविणासणं—बहुत से प्राणियों का विनाश रूप अर्थ को बतलाने वाले, तस्स—उस सारथि के, वयणं—वचन को, सोऊण—सुन कर, जिएहिउ—जीवों के विषय में, साणुक्कोसे–करुणाभाव सहित (प्राणियों पर दया) युक्त होकर, से—वे महापण्णे-महा प्रज्ञावान् भगवान् नेमिनाथ, चिंतेइ—

विचार करने लगे ॥१८॥

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मंति सुबहू जिया ।
ण मे एयं तु णिस्सेसं, परलोगे भविस्सइ ॥१९॥

— जइ--यदि, मज्झ कारणा--मेरे कारण, एए—ये, सुबहू--बहुत-से, जिया—जीव, हम्मंति--मारे जाएँगे, तु—तो, एयं--यह कार्य, मे--मेरे लिए, परलोगे—परलोक में, णिस्सेसं--कल्याणकारी, ण भविस्सइ--नहीं होगा ॥१९॥

सो कुंडलाण जुयलं, सुत्तगं च महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामए † ॥२०॥

— महायसो--महायशस्वी, सो—भगवान् अरिष्टनेमि ने, कुंडलाण जुयलं—कुण्डलों की जोड़ी, च—और, सुत्तगं—कन्दोरा य—तथा, सव्वाणि--सभी, आभरणाणि—आभूषण, सारहिस्स--सारथि को, पणामए—प्रदान किये ॥२०॥

मणपरिणामे य कए, देवा य जहोइयं समोइण्णा ।
सव्विड्ढीइ सपरिसा, णिक्खमणं तस्स काउं जे ॥२१॥

— मरते हुए प्राणियों पर अनुकम्पा कर के उन्हें बन्धन से मुक्त करवा कर तथा सारथि को पुरस्कृत कर भगवान्

† टीका-एवं च विदितभगवदाकूतेन सारथिना मोचितेषु सत्त्वेषु परितोषितोऽसौ यत्कृतवांस्तदाह-- अर्थात भगवान् नेमिनाथ के अभिप्राय को समझ कर सारथि ने जब उन प्राणियों को बन्धन से मुक्त कर दिया तब प्रसन्न होकर आभूषण प्रदान किये ।

नेमिनाथ द्वारका में लौट आये। तत्पश्चात् उन्होंने दीक्षा अंगीकार करने के लिए, मणपरिणामे--मन में विचार, कए—किया तब, तस्स--उनका, णिक्खमणं--निष्क्रमण (दीक्षा-महोत्सव) काउं--करने के लिए, जहोइयं--यथोचित समय पर, सव्विड्ढीइ--सभी प्रकार की ऋद्धि से युक्त, य--और, सपरिसा—परिषद सहित, देवा—लौकान्तिक आदि देव, समोइण्णा—मनुष्य लोक में आये ॥२१॥

देवमणुस्स-परिवुडो, सिवियारयणं तओ समारूढो।
णिक्खमिय बारगाओ, रेवययम्मि ठिओ भयवं ॥२२॥

— तओ--इसके बाद, देवमणुस्सपरिवुडो--देव और मनुष्यों से घिरे हुए, भयवं--भगवान्, सिवियारयणं—देवनिर्मित उत्तम पालकी पर, समारूढो— आरूढ़ हो कर, बारगाओ--द्वारकापुरी से, णिक्खमिय--निकल कर, रेवययम्मि--रैवतक पर्वत पर, ठिओ—पधारे ॥२२॥

उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तमाओ सीयाओ।
साहस्सीए परिवुडो, अह णिक्खमइ उ चित्ताहिं ॥२३॥

— अह--इसके पश्चात् वे, उज्जाणं--सहस्राम्र वन नामक उद्यान में, संपत्तो--पधारे और उत्तमाओ--उस उत्तम, सीयाओ--शिविका से, ओइण्णो--नीचे उतरे, उ--तत्पश्चात्, चित्ताहिं--चित्रा नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग मिलने पर, साहस्सीए—एक हजार पुरुषों से, परिवुडो--परिवृत्त हो कर, णिक्खमइ – दीक्षा अंगीकार की ॥२३॥

अह सो सुगंधगंधिए, तुरियं मउकुंचिए ।
सयमेव लुंचइ केसे, पंच-मुट्ठीहिं समाहिओ ॥२४॥

— अह—इसके पश्चात्, समाहिओ – समाधिवान्, सो-भगवान् अरिष्टनेमि ने, सुगंधगंधिए-- सुगंध से सुवासित, मउकुंचिए-- कोमल और आकुञ्चित केसे— केशों का, सयमेव--स्वयमेव, तुरियं – शीघ्र ही, पंचमुट्ठीहिं--पंचमुष्टि, लुंचइ--लोच कर डाला ॥२४॥

वासुदेवो य णं भणई, लुत्तकेसं जिइंदियं ।
इच्छिय-मणोरहं तुरियं, पावसू तं दमीसरा ॥२५॥

वासुदेवो--वासुदेव, य—और बलराम, समुद्रविजय आदि, लुत्तकेसं—केशों का लोच किये हुए, जिइंदियं—जितेन्द्रिय, णं--अरिष्टनेमि को, भणइ--कहने लगे कि, दमीसरा--हे दमीश्वर ! तुरियं—शीघ्र ही, इच्छियमणोरहं--मुक्ति प्राप्ति रूप इच्छित मनोरथ को, पावसू-- प्राप्त करो ॥२५॥

णाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेणं तवेण य ।
खंतीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य ॥२६॥

— वासुदेव आदि फिर कहने लगे कि, णाणेणं--ज्ञान से, च--और, दंसणेणं—दर्शन से, चरित्तेण--चरित्र से, य—और, तवेण—तप से, य—तथा, खंतीए--क्षमा से और, मुत्तीए--निर्लोभता से, वड्ढमाणो— वृद्धिवंत, भवाहि—हो

अर्थात् आप ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, क्षमा, निर्लोभता आदि गुणों की वृद्धि करें ॥२६॥

एवं ते रामकेसवा, दसारा य बहू जणा।
अरिट्ठणेमिं वंदित्ता, अइगया बारगापुरिं ॥२७॥

— एवं— इस प्रकार, ते—वे बलराम और श्रीकृष्ण, दसारा—दशार्ह प्रमुख यादव, य—और, बहू जणा—बहुत से मनुष्य, अरिट्ठणेमि—अरिष्टनेमि को, वंदित्ता—वन्दना करके, बारगापुरिं—द्वारका नगरी में, अभिगया—लौट आये और भगवान् भी अन्यत्र विहार कर गये ॥२७॥

सोऊण रायकण्णा, पव्वज्जं सा जिणस्स उ।
णीहासा य णिराणंदा, सोगेण उ समुत्थिया ॥२८॥

— सा—वह, रायकण्णा—राजकन्या राजमती, जिणस्स—जिनेन्द्र भगवान् की, पव्वज्जं—दीक्षा होना, सोऊण—सुन कर, णीहासा—हास्यरहित, उ—और, णिराणंदा—आनन्द से रहित होकर, सोगेण—शोक से, समुत्थिया—व्याप्त होगई ॥२८॥

राईमई विचिंतेइ, धिरत्थु मम जीवियं।
जाऽहं तेणं परिच्चत्ता, सेयं पव्वइउं मम ॥२९॥

— राईमई—राजमती, विचिंतेइ—विचार करने लगी कि, मम—मेरे, जीवियं—जीवन को, धिरत्थु—धिक्कार है, जा—जो, अहं—मैं, तेणं—उन भगवान् नेमिनाथ द्वारा,

परिच्चत्ता--त्याग दी गई हूँ। अब तो, मम--मेरे लिए, पव्वइउं--दीक्षा लेना ही, सेय--श्रेष्ठ है ॥२९॥

अह सा भमरसण्णिभे, कुच्चफणगप्पसाहिए।
सयमेव लुंचई केसे, धिइमंता ववस्सिया ॥३०॥

— अह—इसके बाद धिइमंता--धैर्य वाली, ववस्सिया-संयम के लिए उद्यत हुई, सा--उस राजमती ने, भमरसण्णिभे-भ्रमर सरीखे काले, कुच्चफणगप्पसाहिए—कुर्च और कंघी से संवारे हुए, केसे—केशों का, सयमेव—स्वयमेव, लुंचई—लोच कर डाला ॥३०॥

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइंदियं।
संसारसायरं घोरं, तर कण्णे लहुं लहुं ॥३१॥

— वासुदेवो—श्रीकृष्ण वासुदेव, य—और बलदेव तथा समुद्रविजय आदि, लुत्तकेसं—केशों का लोच की हुई, जिइंदियं—जितेन्द्रिय, णं—उस राजमती से, भणइ--कहने लगे कि, कण्णे—हे कन्ये! तू, लहुं लहुं—बहुत शीघ्र, घोरं—इस घोर, संसारसायरं--संसारसागर को, तर—पार कर (मोक्ष प्राप्त कर) ॥३१॥

सा पव्वइया संती, पव्वावेसी तहिं बहुं।
सयणं परियणं चेव, सीलवंता बहुस्सुया † ॥३२॥

† राजमती के लिए 'बहुश्रुता' विशेषण देने का अभिप्राय यह है कि गृहवास में भी उसने बहुत श्रुत का अभ्यास किया था और गृहस्थ भी श्रुत का पठन-पाठन एवं अभ्यास कर सकते हैं ॥३२॥

— सीलवंता--शीलवती, बहुस्सुया—बहुश्रुत, सा—उस राजमती ने, पव्वइया संती--दीक्षित होकर, तहिं--द्वारकापुरी में, बहुं—बहुत से, सयणं—स्वजन, चेव--और, परियणं--परिजन की स्त्रियों को, पव्वावेसी—दीक्षा दी ॥

गिरिं रेवययं जंती, वासेणुल्ला उ अंतरा।
वासंते अंधयारम्मि, अंतो लयणस्स सा ठिया ॥३३॥

— जिन्हें राजमती ने दीक्षा दी थी उन सभी साध्वियों को साथ ले कर रैवतगिरि पर विराजमान भगवान् नेमिनाथ को वन्दना करने चली, रेवययंगिरिं—रैवत पर्वत पर, जंती—जाती हुई वह, अंतरा–बीच रास्ते में, उ—ही, वासेण--वर्षा से, उल्ला—भीग गई और उस घनघोर वर्षा के कारण साथ वाली दूसरी साध्वियां इधर-उधर बिखर गई तब, सा—वह राजमती, वासंते—वर्षा के होते हुए, अंधयारम्मि--अन्धकार युक्त, लयणस्स अंतो–एक पर्वत की गुफा में, ठिया--जाकर ठहर गई ॥३३॥

चीवराणि विसारंति, जहाजायत्ति पासिया।
रहणेमि भग्गचित्तो, पच्छ दिट्ठो य तीइ वि ॥३४॥

— चीवराणि— भीगे हुए कपड़ों को, विसारंती—सुखाती हुई वह राजमती, जहाजाय—यथाजात (जन्म के समय बालक जैसा निर्वस्त्र होता है वैसी निर्वस्त्र) हो गई।

त्ति—उसे निर्वस्त्र, पासिया—देख कर उस गुफा में पहले से ध्यानस्थ बैठे हुए, रहणेमि—रथनेमि मुनि का, भग्गचित्तो—चित्त सयम से विचलित होगया। गुफा में प्रवेश करते समय अन्धकार के कारण राजमती को रथनेमि दिखाई नहीं दिया, क्योंकि बाहर से भीतर आने वाले को भीतर अन्धकार में बैठा हुआ व्यक्ति दिखाई नहीं देता है किन्तु, पच्छा—पीछे, सीइवि—राजमती ने भी, दिट्ठो—उसे देखा ॥३४॥

भीया य सा तहिं दट्ठुं, एगंते संजयं तयं।
बाहाहिं काउं संगोप्फं, वेवमाणी णिसीयई ॥३५॥

—तहिं—वहाँ, एगंते—एकान्त स्थान में, तयं—उस, संजयं—संयती रथनेमि को दट्ठुं—देख कर, सा—वह राजमती, भीया—अत्यन्त भयभीत हुई कि कहीं ऐसा न हो कि बलात्कार करके यह मेरा शील भंग कर दे। इसलिए, बाहाहिं—दोनों भुजाओं से, संगोप्फं काउं-अपने अंगों को ढक कर अर्थात् दोनों हाथों से स्तनादि को वेष्टित करके मर्कटबन्ध से अपने अंगों को छिपाती हुई, वेवमाणी—कांपती हुई, णिसीयई—बैठ गई ॥ ५॥

अह सोऽवि रायपुत्तो, समुद्दविजयंगओ।
भीयं पवेवियं दट्ठुं, इमं वक्कमुदाहरे ॥३६॥

—अह—इसके बाद, समुद्दविजयंगओ—समुद्रविजय का पुत्र, सोऽवि—वह, रायपुत्तो—राजपुत्र रथनेमि, भीयं—राज-

— सीलवंता--शीलवती, बहुस्सुया—बहुश्रुत, सा—उस राजमती ने, पव्वइया संती--दीक्षित होकर, तहिं--द्वारकापुरी में, बहुं—बहुत से, सयणं—स्वजन, चेव--और, परियणं--परिजन की स्त्रियों को, पव्वावेसी—दीक्षा दी ॥

गिरिं रेवययं जंती, वासेणुल्ला उ अंतरा।
वासंते अंधयारम्मि, अंतो लयणस्स सा ठिया ॥३३॥

— जिन्हें राजमती ने दीक्षा दी थी उन सभी साध्वियों को साथ ले कर रैवतगिरि पर विराजमान भगवान् नेमिनाथ को वन्दना करने चली, रेवययंगिरि—रैवत पर्वत पर, जंती—जाती हुई वह, अंतरा-बीच रास्ते में, उ—ही, वासेण--वर्षा से, उल्ला--भींग गई और उस घनघोर वर्षा के कारण साथ वाली दूसरी साध्वियां इधर-उधर बिखर गईं तब, सा—वह राजमती, वासंते—वर्षा के होते हुए, अंधयारम्मि--अन्धकार युक्त, लयणस्स अंतो—एक पर्वत की गुफा में, ठिया--जाकर ठहर गई ॥३३॥

चीवराणि विसारंति, जहाजायत्ति पासिया।
रहणेमि भग्गचित्तो, पच्छ दिट्ठो य तीइ वि ॥३४॥

— चीवराणि-- भीगे हुए कपड़ों को, विसारंती—सुखाती हुई वह राजमती, जहाजाय—यथाजात (जन्म के समय बालक जैसा निर्वस्त्र होता है वैसी निर्वस्त्र) हो गई।

त्ति—उसे निर्वस्त्र, पासिया—देख कर उस गुफा में पहले से ध्यानस्थ बैठे हुए, रहणेमि—रथनेमि मुनि का, भग्गचित्तो—चित्त सयम से विचलित होगया। गुफा में प्रवेश करते समय अन्धकार के कारण राजमती को रथनेमि दिखाई नहीं दिया, क्योंकि बाहर से भीतर आने वाले को भीतर अन्धकार में बैठा हुआ व्यक्ति दिखाई नहीं देता है. किन्तु, पच्छा—पीछे, तीइवि—राजमती ने भी, दिट्ठो—उसे देखा ॥३४॥

भीया य सा तहिं दट्ठुं, एगंते संजयं तयं।
बाहाहिं काउं संगोप्फं, वेवमाणी णिसीयई ॥३५॥

—तहिं—वहां, एगंते—एकान्त स्थान में, तयं—उस, संजयं—संयती रथनेमि को दट्ठुं—देख कर, सा—वह राजमती, भीया—अत्यन्त भयभीत हुई कि कहीं ऐसा न हो कि बलात्कार करके यह मेरा शील भंग कर दे। इसलिए, बाहाहिं—दोनों भुजाओं से, संगोप्फं काउं—अपने अंगों को ढक कर अर्थात् दोनों हाथों से स्तनादि को वेष्टित करके मर्कटबन्ध से अपने अंगों को छिपाती हुई, वेवमाणी—कांपती हुई, णिसीयई—बैठ गई ॥ ५॥

अह सोऽवि रायपुत्तो, समुद्दविजयंगओ।
भीयं पवेवियं दट्ठुं, इमं वक्कमुदाहरे ॥३६॥

—अह—इसके बाद, समुद्दविजयंगओ—समुद्रविजय का पुत्र, सोऽवि—वह, रायपुत्तो—राजपुत्र रथनेमि, भीयं—राज-

मती को डरी हुई और, पवेवियं--काँपती हुई, दट्ठुं--देख कर, इमं--इस प्रकार, वयकं--वचन, उदाहरे--कहने लगा ॥

रहणेमी अहं भद्दे ! सुरूवे चारुभासिणि !
ममं भयाहि सुयणु, ण ते पीला भविस्सई ॥३७॥

— भद्दे--हे भद्रे ! हे कल्याणकारिणी ! सुरूवे—हे सुन्दर रूप वाली ! चारुभासिणी--हे मनोहर बोलने वाली ! सुयणु—हे सुतनु ! हे श्रेष्ठ शरीर वाली ! अहं—मैं, रहणेमी--रथनेमि हूँ। तू, मम—मुझे, भयाहि—सेवन कर। ते--तुझे, पीला--किसी प्रकार की पीड़ा, ण भविस्सई-नहीं होगी, अर्थात् हे सुन्दरी ! तू निर्भय होकर मेरे समागम में आ। तुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा ॥३७॥

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।
भुत्तभोगी तओ पच्छा, जिणमग्गं चरिस्समो ॥३८॥

— खु--निश्चय ही, माणुस्सं—मनुष्य-जन्म का मिलना, सुदुल्लहं--अत्यन्त दुर्लभ है, ता--इसलिए हे भद्रे ! एहि--इधर आओ पहले हम दोनों, भोए—भोगों का, भुंजिमो—उपभोग करें, पुणो--फिर, भुत्तभोगी—भुक्तभोगी होकर, पच्छा--बाद में अपन दोनों, जिणमग्गं--जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग का, चरिस्सामो—अनुसरण करेंगे ॥३८॥

दट्ठूण रहणेमिं तं, भग्गुज्जोय-पराइयं ।
राईमई असंभंता, अप्पाणं संवरे तहिं ॥३९॥

— भग्गुज्जोय पराइयं—संयम में हतोत्साह बने हुए और स्त्रीपरीषह से पराजित, तं— उस, रहणेमि— रथनेमि को, दट्ठूण— देख कर, असंभंता— भय-रहित बनी हुई, राईमई—राजमती ने, तहिं—उसी समय गुफा में, अप्पाणं— अपने शरीर को, संवरे—वस्त्र से ढक लिया ॥३९॥

अह सा रायवरकण्णा, सुट्ठिया णियमव्वए ।
जाइं कुलं च सीलं च, रक्खमाणी तयं वए ॥४०॥

— अह—इसके बाद, णियमव्वए—नियम और व्रतों में, सुट्ठिया—भलीभांति स्थित, सा—वह, रायवरकण्णा—राज-कन्या राजमती, जाइं—जाति, च—और, कुलं—कुल, च—तथा, सीलं—शील की, रक्खमाणी—रक्षा करती हुई, तयं—उस रथनेमि को, वए—इस प्रकार कहने लगी । ४०॥

जइऽसि रूवेण वेसमणो, ललिएण णलकूबरो ।
तहा वि ते ण इच्छामि, जइऽसि सक्खं पुरंदरो ।४१।

— जइ—यदि तू, रूवेण—रूप में, वेसमणो—वैश्रमण देव के समान, असि—हो और, ललिएण— लीला-विलास में, णलकूबरो—नलकुबर देव के समान हो । अधिक तो क्या, जइ—यदि, सक्खं—साक्षात्, पुरंदरो—इन्द्र भी, असि—हो, तहा वि—तो भी मैं, ते—तेरी, ण इच्छामि— इच्छा नहीं करती ॥४१॥

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
णेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ।।४२।।

— अगंधणे—अगन्धन नामक, कुले—कुल में, जाया—उत्पन्न हुए सर्प, जलियं—जलती हुई, धूमकेउं—धूँआ निकलती हुई, दुरासयं—कठिनाई से सहने योग्य, जोइं—अग्नि में, पक्खंदे—गिर जाते हैं अर्थात् अग्नि में गिर कर मर जाना तो पसंद करते हैं किन्तु, वंतयं—वमन किये हुए विष को, भोत्तुं—पुनः पीने को, ण इच्छंति—इच्छा नहीं करते ।।४२।।

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीविय-कारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ।।४३।।

— अजसोकामी—हे अपयश के इच्छुक ! ते—तुझे, धिरत्थु—धिक्कार हो, जो—जो, तं—तू जीवियकारणा—असंयम रूप जीवन के लिए, वंत—वमन किये हुए को, आवेउं—पुनः पीना, इच्छसि—चाहता है । इसकी अपेक्षा तो, ते—तेरे लिए, मरणं—मर जाना, सेयं—श्रेष्ठ भवे—है, क्योंकि संयम धारण कर के असंयम में आना निन्दनीय है । ऐसे असंयमपूर्ण और पतित जीवन की अपेक्षा तो संयमावस्था में मृत्यु हो जाना अच्छा है ।।४३।।

अहं च भोगरायस्स, तं चऽसि अंधगवण्हिणो ।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं णिहुओ चर ।।४४।।

— अहं--मैं राजमती, भोगरायस्स—भोजराज (उग्रसेन की पुत्री हूँ), च--और तं—तू, अंधगवण्हिणो--अन्धकवृष्णि (समुद्रविजय का पुत्र), असि—है। अतः, गंधणा कुले—गन्धन-कुल में उत्पन्न हुए सर्प के समान, मा होमो--मत हो, थीर, णिहुओ—मन को स्थिर रख कर; संजमं—संयम का, चर—भली प्रकार पालन कर ॥४४॥

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि णारीओ।
वाया-विद्धुव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥४५॥

-- हे रथनेमि! तं--तुम, जा जा--जिन जिन, णारीओ—स्त्रियों को, दिच्छसि--देखोगे, जइ—यदि उन-उन पर, भावं--बुरे भाव, काहिसि—करोगे तो, वायाविद्धुव्व-हडो—वायु से प्रेरित हड नामक वनस्पति की भाँति, अट्ठि अप्पा--अस्थिर आत्मा वाले, भविस्ससि--हो जाओगे अर्थात् हे रथनेमि! जिस किसी भी स्त्री को देख कर यदि तुम इस प्रकार काम-मोहित हो जाओगे तो जैसे नदी के किनारे खड़ा हुआ हड नाम का वृक्ष, जड़ मजबूत न होने के कारण हवा के झोके से नदी में गिर कर समुद्र में पहुँच जाता है, वैसे ही संयम में अस्थिर तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से निचे गिर जायगी और फिर संसार-समुद्र में परिभ्रमण करती रहेगी ॥४५॥

गोवालो भंडवालो वा जहा तद्दव्वऽणिस्सरो।
एवं अणीसरो तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि ॥४६॥

—जहा—जिस प्रकार, गोवालो—ग्वाल, वा—या भंडवालो—भण्डारी, तद्दव्वऽणिस्सरो—उस द्रव्य का स्वामी नहीं है, एवं—इसी प्रकार, तं पि—तू भी, सामण्णस्स—श्रमणपन का, अणीसरो—अनीश्वर, भविस्ससि—हो जायगा ॥४६॥

राजमती रथनेमि को दृष्टांत देकर समझाती है कि हे मुने ! जैसे गौओं को चराने वाला ग्वाला उन गौओं का स्वामी नहीं होता और न उसे उनके दूध आदि को ग्रहण करने का अधिकार होता है, और जैसे कोषाध्यक्ष उस धन का स्वामी नहीं होता और न उसे उस धन को खर्च करने का अधिकार होता है, उसी प्रकार तू भी संयम का वास्तविक स्वामी नहीं होगा क्योंकि द्रव्य-संयम से आत्माका कल्याण कभी नहीं हो सकता।

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाइ सुभासियं ।
अंकुसेण जहा णागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥४७॥ ‡

---

‡ गाथा ४७ और ४८ के क्रम में अन्तर हो रहा है। अनुवादक महोदयने ४७ वीं को ४८ वीं और ४८ को ४७ वां स्थान दिया। किंतु लुधियाना की प्रति में प्रस्तुत क्रमानुसार ही है और हैदराबादवाली प्रति में बीकानेरवाली सम्पादक महोदय की आवृत्ति के समान है। पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. वाली प्रति में तो यह गाथा है ही नहीं। इसी प्रकार श्री संतबाल सम्पादित पुस्तक में भी नहीं है और आचार्य श्री नेमिचन्द्र की वृत्ति (संवत् ११२९) में भी यह गाथा नहीं है, इतना ही नहीं गा. ४२ भी नहीं है और कुल ४९ गाथा ही है। हमारे विचार से इसमें जो क्रम और अर्थ दिया वही उपयुक्त लगता है– डोशी।

— सो—वह रथनेमि, तीसे—उस, संजयाइ—संयमवती साध्वी के, सुभासियं—सुभाषित, वयणं—वचनों को, सोच्चा—सुन कर, धम्मे—धर्म में, संपडिवाइओ—स्थिर हो गया, जहा—जैसे, अंकुसेण—अंकुश से, णागो—हाथी वश में हो जाता है ॥४७॥

कोहं माणं णिगिण्हित्ता, माया लोभं च सव्वसो।
इंदियाइं वसे काउं, अप्पाणं उवसंहरे ॥४८॥

— कोहं—क्रोध, माणं—मान, माया— माया, च—और, लोभं— लोभ— इन सब को, सव्वसो— सर्वथा प्रकार से, णिगिण्हित्ता— जीत कर और, इंदियाइं—पांचों इन्द्रियों को, वसे—वश में, काउं—कर के, अप्पाणं—अपनी आत्मा को, उवसंहरे—वश में किया ॥४८॥

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ।
सामण्णं णिच्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ॥४९॥

— मणगुत्तो— मन-गुप्त, वयगुत्तो— वचन-गुप्त, कायगुत्तो—काय-गुप्त जिइंदिओ—जितेन्द्रिय और, दढव्वओ—व्रतों में दृढ़ एवं, णिच्चलं—निश्चल होकर उस रथनेमि ने, जावज्जीवं—जीवनपर्यन्त, सामण्णं—साधु-धर्म का, फासे—पालन किया ॥४९॥

उग्गं तवं चरित्ता णं, जाया दोण्णि वि केवली।
सव्वं कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥५०॥



— उग्गं—उग्र, तवं—तप का, चरित्ता णं--सेवन करके, दोण्णि वि--राजमती और रथनेमि दोनों ही, केवली-केवलज्ञानी, जाया—हो गये । तत्पश्चात्, सव्वं--सभी, कम्मं-कर्मों का, खवित्ता णं--क्षय करके, अणुत्तरं—सब से प्रधान, सिद्धिं—सिद्ध गति को, पत्ता—प्राप्त हुए ॥५०॥

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो ।५१। त्ति बेमि।

— संबुद्धा—तत्त्वज्ञ, पंडिया--पाप से डरने वाले पण्डित, पवियक्खणा--विचक्षण पुरुष, एवं--ऐसा ही, करंति--करते हैं अर्थात्, भोगेसु—भोगों से, विणियट्टंति—निवृत्त होजाते हैं, जहा—जैसे, से—वह, पुरिसुत्तमो—पुरुषों में उत्तम रथनेमि भोगों से निवृत्त होगया अर्थात् जो विवेकी होते हैं वे विषय-भोगों के दोषों को जान कर रथनेमि के समान भोगों का परित्याग कर देते हैं ॥५१॥ त्तिबेमि--ऐसा मैं कहता हूँ ।

केशि-गौतमीय तेइसवाँ अध्ययन

जिणे पासित्ति णामेणं, अरहा लोगपूइओ ।
संबुद्धप्पा य सव्वण्णू, धम्म-तित्थयरे जिणे ॥१॥

— जिणे—राग-द्वेप को जीतने वाले, अरहा—नरेन्द्र देवेन्द्रों से वन्दित, लोगपूइए—लोक में पूजित, संबुद्धप्पा—तत्त्वज्ञान से युक्त आत्मा वाले, सव्वण्णू— सर्वज्ञ, धम्म-तित्थयरे—धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले, जिणे—समस्त कर्मों को जीतने वाले, पासित्ति णामेणं—पार्श्वनाथ नाम के भगवान् थे ॥१॥

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे ।
केसीकुमार समणे, विज्जाचरण-पारगे ॥२॥

— लोगपईवस्स—लोक में दीपक के समान अर्थात् संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को अपने ज्ञान द्वारा प्रकाशित करने वाले, तस्स—उन पार्श्वनाथ भगवान् के, विज्जाचरण पारगे—ज्ञान और चारित्र के पारगामी, महायसे—महायशस्वी, केसीकुमार समणे—केशीकुमार श्रमण, सीसे—शिष्य, आसि—थे।

ओहिणाणसुए बुद्धे, सीससंघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयंते, सावत्थि पुरमागए ॥३॥

— ओहिणाण सुए—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान से युक्त, बुद्धे—तत्त्वों को जानने वाले, सीससंघसमाउले—

शिष्यों के परिवार सहित, गामाणुगामं--ग्रामानुग्राम, रीयंते—विचरते हुए वे केशीकुमार श्रमण, सावत्थि पुरं—श्रावस्ती नामक नगरी में, आगए—पधारे ॥३॥

तिंदुयं णाम उज्जाणं, तम्मि णगरमंडले।
फासुए सिज्ज-संथारे, तत्थ वासमुवागए ॥४॥

— तम्मि णगरमंडले-- उस श्रावस्ती नगरी के समीप, तिंदुयं णाम--तिन्दुक नाम का, उज्जाणं---एक उद्यान था। तत्थ--वहां, फासुए-- प्रासुक (जीव-रहित) सिज्जसंथारे—संस्तारक युक्त स्थान में वे केशीकुमार श्रमण, वासमुवागए--ठहरे ॥४॥

अह तेणेव कालेणं, धम्मतित्थयरे जिणे।
भगवं वद्धमाणित्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥५॥

— अह -- अथ, तेणेव कालेणं -- उसी समय, धम्मतित्थयरे--धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले, जिणे---राग-द्वेष को जीतने वाले भगवं—भगवान् वद्धमाणित्ति--वर्द्धमान स्वामी, सव्वलोगम्मि—समस्त संसार में, विस्सुए—सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर रूप से प्रसिद्ध थे ॥५॥

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे।
भगवं गोयमे णाम, विज्जाचरण-पारगे ॥६॥

— लोक में दीपक के समान अर्थात् संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को अपने ज्ञान द्वारा प्रकाशित करने वाले, तस्स—

उन भगवान् वर्द्धमान स्वामी के, विज्जाचरणपारगे—ज्ञान और चारित्र के पारगामी, महायसे—महायशस्वी, भगवं—भगवान्, गोयमे—गौतम, सीसे—शिष्य, आसि—थे ॥६॥

बारसंगविऊ बुद्धे, सीस-संघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयंते, सेऽवि सावत्थिमागए ॥७॥

—बारसंगविऊ—बारह अंगों के ज्ञाता, बुद्धे—तत्त्वज्ञानी, सीससंघसमाउले—शिष्यों के परिवार सहित, गामाणुगामं—ग्रामानुग्राम, रीयंते—विचरते हुए, सेऽवि—गौतम स्वामी भी, सावत्थि—श्रावस्ती नगरी में, आगए—पधारे ॥७॥

कोट्ठगं णाम उज्जाणं, तम्मि णगरमंडले ।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥८॥

—तम्मि णगरमंडले—उस श्रावस्ती नगरी के समीप, कोट्ठगं णाम—कोष्टक नाम का, उज्जाणं—एक उद्यान था, तत्थ—वहां, फासुए—प्रासुक (जीव-रहित), सिज्जसंथारे—संस्तारक युक्त स्थान में, वासमुवागए—ठहर गये ॥८॥

केसीकुमार समणे, गोयमे य महायसे ।
उभओऽवि तत्थ विहरिंसु, अल्लीणा सुसमाहिया ।९।

—अल्लीणा—मन-वचन-काया से गुप्त, सुसमाहिया—ज्ञान दर्शन-चारित्र की समाधिवंत, महायसे—महा यशस्वी, केसीकुमार समणे—केशीकुमार श्रमण, य—और, गोयमे—

शिष्यों के परिवार सहित, गामाणुगामं—ग्रामानुग्राम, रीयंते—विचरते हुए वे केशीकुमार श्रमण, सावत्थि पुरं—श्रावस्ती नामक नगरी में, आगए—पधारे ॥३॥

तिंदुयं णाम उज्जाणं, तम्मि णगरमंडले।
फासुए सिज्ज-संथारे, तत्थ वासमुवागए ॥४॥

— तम्मि णगरमंडले— उस श्रावस्ती नगरी के समीप, तिंदुयं णाम—तिन्दुक नाम का, उज्जाणं—एक उद्यान था। तत्थ—वहां, फासुए— प्रासुक (जीव-रहित) सिज्जसंथारे—संस्तारक युक्त स्थान में वे केशीकुमार श्रमण, वासमुवागए—ठहरे ॥४॥

अह तेणेव कालेणं, धम्मतित्थयरे जिणे।
भगवं वद्धमाणित्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥५॥

— अह — अथ, तेणेव कालेणं — उसी समय, धम्मतित्थयरे—धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले, जिणे—राग-द्वेष को जीतने वाले भगवं—भगवान् वद्धमाणित्ति—वर्द्धमान स्वामी, सव्वलोगम्मि—समस्त संसार में, विस्सुए—सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर रूप से प्रसिद्ध थे ॥५॥

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे।
भगवं गोयमे णाम, विज्जाचरण-पारगे ॥६॥

— लोक में दीपक के समान अर्थात् संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को अपने ज्ञान द्वारा प्रकाशित करने वाले, तस्स—

उन भगवान् वर्द्धमान स्वामी के, विज्जाचरणपारगे--ज्ञान और चारित्र के पारगामी, महायसे--महायशस्वी, भगवं--भगवान्, गोयमे—गौतम, सीसे--शिष्य, आसि—थे ॥६॥

बारसंगविऊ बुद्धे, सीस-संघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयंते, सेऽवि सावत्थिमागए ॥७॥

--बारसंगविऊ—बारह अंगों के ज्ञाता, बुद्धे—तत्त्वज्ञानी, सीससंघसमाउले—शिष्यों के परिवार सहित, गामाणुगामं—ग्रामानुग्राम, रीयंते—विचरते हुए, सेऽवि--गौतम स्वामी भी, सावत्थि—श्रावस्ती नगरी में, आगए—पधारे ॥७॥

कोट्ठगं णाम उज्जाणं, तम्मि णगरमंडले ।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥८॥

-- तम्मि णगरमंडले---उस श्रावस्ती नगरी के समीप, कोट्ठगं णाम—कोष्टक नाम का, उज्जाणं--एक उद्यान था, तत्थ—वहाँ, फासुए--प्रासुक (जीव-रहित), सिज्जसंथारे—संस्तारक युक्त स्थान में, वासमुवागए—ठहर गये ॥८॥

केसीकुमार समणे, गोयमे य महायसे ।
उभओऽवि तत्थ विहरिंसु, अल्लीणा सुसमाहिया ।९।

— अल्लीणा--मन-वचन-काया से गुप्त, सुसमाहिया—ज्ञान दर्शन चारित्र की समाधिवंत, महायसे--महा यशस्वी, केसीकुमार समणे--केशीकुमार श्रमण, य--और, गोयमे--

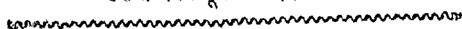
गौतम स्वामी, उभओ—दोनों ही, तत्थ—वहाँ सुख-शान्ति-पूर्वक, विहरिसु— विचरते थे ॥९॥

उभओ सीस-संघाणं, संजयाणं तवस्सिणं ।
तत्थ चिंता समुप्पण्णा गुणवंताण ताइणं ॥१०॥

— उभओ--केशीकुमार श्रमण और गौतम स्वामी दोनों के, संजयाणं--संयती, तवस्सिणं--तपस्वी, गुणवंताण—ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुण सम्पन्न, ताइणं--छःकाय जीवों के रक्षक, सीससंघाणं--शिष्य-समुदाय के मन में, तत्थ--वहाँ, चिंता--शंका, समुप्पण्णा--उत्पन्न हुई अर्थात् गोचरी के लिए निकले हुए उन दोनों के शिष्य-समुदाय को, एक ही धर्म के उपासक होने पर भी, एक-दूसरे के वेष आदि में अन्तर दिखाई देने के कारण एक-दूसरे के प्रति शंका उत्पन्न हुई ॥१०॥

केरिसो वा इमो धम्मो ? इमो धम्मो व केरिसो ? ।
आयार-धम्मप्पणिही, इमा वा सा व केरिसी ?।११।

— वे शिष्य इस प्रकार शंका करने लगे कि, इमो—यह हमारा, धम्मो--धर्म, केरिसो— कैसा है, वा--और इमो--यह इनका, धम्मो--धर्म, केरिसो--कैसा है ? वा—तथा, इमा--यह हमारी, आयारधम्मप्पणिही—आचार धर्म की व्यवस्था अर्थात् बाह्य वेष धारणादि क्रिया, केरिसी—कैसी है, व—और, सा--उनकी आचार-धर्म की व्यवस्था कैसी है ? ॥



चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंच-सिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेणं, पासेण य महामुणी ॥१२॥

— महामुणी--महामुनि, पासेण--पार्श्वनाथ भगवान् ने, जो--जो, चाउज्जामो—चतुर्याम अर्थात् चार महाव्रत वाला धम्मो—धर्म, देसिओ—कहा है, य—और, वद्धमाणेणं—वर्द्धमान स्वामी ने, जो—जो, इमो--यह, पंचसिक्खिओ—पांच महाव्रत वाला धर्म कहा है, तो इस भेद का क्या कारण है ? ॥१२॥

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो।
एगकज्जपवण्णाणं, विसेसे किण्णु कारणं ॥१३॥

— भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, जो—जो, अचेलगो--परिमाणोपेत श्वेत एवं अल्पमूल्य वाले वस्त्र रखने का, धम्मो-धर्म कहा है, य--और भगवान् पार्श्वनाथ ने, जो--जो, इमो—यह, संतरुत्तरो –विशिष्ट एवं बहुमूल्य वस्त्र रखने रूप धर्म कहा है तो, एगकज्जपवण्णाणं--मोक्ष प्राप्ति रूप एक कार्य के लिए प्रवृत्ति करने वालों के बाह्य-आचार में, विसेसे-इतना अन्तर होने का, किण्णु--क्या, कारणं--है ? ॥१३॥

अह ते तत्थ सीसाणं, विण्णाय पवितक्कियं।
समागमे कयमई, उभओ केसिगोयमा ॥१४॥

— अह—इसके बाद, तत्थ--वहाँ पर, सीसाणं--अपने

अपने शिष्यों की, पवितक्कियं—शंका को, विण्णाय—जान कर उसकी निवृत्ति के लिए, ते—उन, केसिगोयमा—केशी-कुमार श्रमण और गौतम स्वामी, उभओ—दोनों महापुरुषों ने, समागमे—एक स्थान पर मिलने का, कयमई—विचार किया।

गोयमो पडिरूवण्णू, सीससंघसमाउले ।
जेट्ठं कुलमवेक्खंतो, तिंदुयं वणमागओ ॥१५॥

— केशीकुमार श्रमण तेवीसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्व-नाथ के सन्तानिये (शिष्यानुशिष्य) थे, इसलिये उनके, कुलं—कुल को, जेट्ठं—ज्येष्ठ (बड़ा), अवेक्खंतो—मान कर, पडि-रूवण्णू—विनय-धर्म के ज्ञाता, गोयमो—गौतम स्वामी, सीससंघसमाउले—अपने शिष्य-समुदाय सहित, तिंदुयं—तिंदुक, वणं—उद्यान में जहां केशीकुमार श्रमण थे वहां, आगओ—आये ॥१५॥

केसीकुमार-समणे, गोयमं दिस्समागयं ।
पडिरूवं पडिवत्ति, सम्मं संपडिवज्जई ॥१६॥

— केसीकुमार समणे—केशीकुमार श्रमण, गोयमं—गौतम स्वामी को आगयं—आते हुए, दिस्स—देख कर बहुमान भक्ति के साथ, पडिरूवं—उनके योग्य, पडिवत्तिं—सत्कार-संमान, सम्मं संपडिवज्जई—करने लगे ॥१६॥

पलालं फासुयं तत्थ, पंचमं कुसतणाणि य ।
गोयमस्स णिसेज्जाए, खिप्पं संपणामए ॥१७॥

— केशीकुमार श्रमण ने, तत्थ--वहाँ, गोयमस्स—गौतम स्वामी के, णिसेज्जाए--बैठने के लिए, फासुयं--प्रासुक, पलालं--पलाल अर्थात् शाली, व्रीहि, कोद्रव, राल यह चार, य—और, पंचमं--पाँचवाँ, कुसतणाणि— डाभ के तृण ये पाँच प्रकार का पलाल, संपणामए—दिये ॥१७॥

केसीकुमार-समणे, गोयमे य महायसे ।
उभओ णिसण्णा सोहंति, चंदसूरसमप्पभा ॥१८॥

— चंदसूरसमप्पभा--चन्द्र और सूर्य के समान कान्ति वाले, महायसे--महा यशस्वी, केसीकुमार समणे—केशीकुमार श्रमण, य--और, गोयमे--गौतम स्वामी, उभओ—दोनों, णिसण्णा--आसन पर बैठे हुए चन्द्रमा और सूर्य के समान, सोहंति—शोभित हो रहे थे ॥१८॥

समागया बहू तत्थ, पासंडा कोउगा मिया ।
गिहत्थाण अणेगाओ, साहस्सीओ समागया ॥१९॥

— उन दोनों मुनियों की चर्चा-वार्ता को सुनने के लिए, गिहत्थाण--गृहस्थों के, अणेगाओ-- अनेक, साहस्सीओ—हजारों गृहस्थ, तत्थ—वहाँ तिन्दुक वन में, समागया--आये और, बहु—बहुत-से, मिया--मृग के समान अज्ञानी, पासंडा—पाखंडी लोग और, कोउगा--कुतूहली लोग भी, समागया--वहाँ आकर इकट्ठे हुए ॥१९॥

देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किण्णरा ।
अदिस्साणं च भूयाणं, आसी तत्थ समागमो ।२०।

— देवदाणवगंधव्वा--ज्योतिषी और वैमानिक देव, दानव (भवनपति, गन्धर्व) जक्खरक्खस किण्णरा--यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि देव भी वहाँ आये च—और, अदिस्साणं--दिखाई न देने वाले, भूयाणं--भूतों का भी, तत्थ--वहाँ, समागमो--समागम, आसी--था अर्थात् अदृश्य भूत भी वहाँ आये थे ।।२०।।

पुच्छामि ते महाभाग ! केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ।।२१।।

— केसी—केशीकुमार श्रमण ने, गोयमं--गौतम स्वामी से, अब्बवी- कहा कि, महाभाग--हे महाभाग ! मैं, ते--आपसे, पुच्छामि - कुछ पूछना चाहता हूँ, तओ--तब बुवंतं--इस प्रकार बोलते हुए केसिं—केशीकुमार श्रमण को, गोयमो—गौतम स्वामी, इण—इस प्रकार, अब्बवी--कहने लगे ।।२१।।

पुच्छ भंते ! जहिच्छं ते, केसिं गोयम-मब्बवी ।
तओ केसी अणुण्णाए, गोयमं इणमब्बवी ।।२२।।

— गोयमं--गौतम स्वामी ने, केसिं—केशीकुमार श्रमण से, अब्बवी--कहा कि, भंते--हे भगवन् !, ते--आपकी, जहिच्छं—जैसी इच्छा हो वैसा, पुच्छ—प्रश्न करो । तओ--इसके बाद, अणुण्णाए--गौतम स्वामी की अनुमति प्राप्त होने

पर, केसी--केशीकुमार श्रमण, गोयमं - गौतम स्वामी से, इणं--इस प्रकार, अब्बवी--पूछने लगे ॥२२॥

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥२३॥

— पहला प्रश्न:— महामुणी— महामुनि, पासेण-- पार्श्वनाथ भगवान् ने, जो--जो, चाउज्जामो—यह चार महाव्रत वाला, धम्मो— धर्म, देसिओ— कहा है और, वद्धमाणेण--भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, जो—जो, इमो— यह पंचसिक्खिओ--पाँच महाव्रत वाला धर्म कहा है ॥२३।

एगकज्ज पवण्णाणं, विसेसे किण्णु कारणं ! ।
धम्मे दुविहे मेहावि ! कहं विप्पच्चओ ण ते ? ॥२४॥

— एगकज्जपवण्णाणं--एक ही कार्य (मोक्ष प्राप्ति रूप कार्य) के लिए प्रवृत्ति करने वालों में परस्पर, विसेसे-- विशेषता का, किण्णु--क्या. कारणं-- कारण है अर्थात् इस, दुविहे—दो प्रकार के, धम्मे—धर्म के विषय में, मेहावी— हे बुद्धिमन् ! कहं--क्या, ते--आपको, विप्पच्चओ--संशय, ण--नहीं होता ? अर्थात् भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् वर्द्धमान स्वामी दोनों सर्वज्ञ हैं, तो फिर मतभेद का क्या कारण है ? ॥२४।

तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ।
पण्णा समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्तविणिच्छियं ॥२५॥

— तओ—इसके बाद, वुवंतं—इस प्रकार कहते हुए, केसिं—केशीकुमार श्रमण से, गोयमो—गौतम स्वामी, इणं—इस प्रकार, अब्बवी—कहने लगे कि, तत्तविणिच्छियं—जीवादि तत्त्वों का जिसमें निश्चय किया जाता है, धम्मं तत्तं-ऐसे धर्म तत्त्व को, पण्णा—बुद्धि ही, समिक्खए—ठीक समझ सकती है अर्थात् बुद्धि द्वारा ही तत्त्वों का निर्णय होता है।२५।

पुरिमा उज्जुजडा उ, वक्कजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपण्णा उ, तेण धम्मे दुहा कए ॥२६॥

— पुरिमा—पहले तीर्थंकर के साधु, उज्जुजडा—ऋजुजड़ होते हैं उ—और, पच्छिमा—अन्तिम तीर्थंकर के साधु, वक्कजडा—वक्रजड़ होते हैं, य—और, मज्झिमा—मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधु, उज्जुपण्णा—ऋजुप्राज्ञ होते हैं, तेण—इसलिए, धम्मे—धर्म, दुहा—दो प्रकार का, कए—कहा गया है ॥२६॥

भावार्थ—प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजुजड़ होते हैं। वे तत्त्वों के अभिप्राय को शीघ्र नहीं समझ पाते हैं। अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्रजड़ होते हैं, उन्हें हितशिक्षा दी जाने पर भी वे अनेक प्रकार के कुतर्कों द्वारा परमार्थ की अवहेलना करने में उद्यत रहते हैं, तथा वक्रता के कारण छलपूर्वक व्यवहार करते हुए अपनी मूर्खता को चतुरता के रूप में प्रदर्शित करने की चेष्टा करते हैं। मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधु ऋजुप्राज्ञ अर्थात्

सरल और बुद्धिमान् होते हैं। वे सरलतापूर्वक समझाये जा सकते हैं और ऐसे बुद्धिमान् होते हैं कि संकेतमात्र कर देने से ही वे उस तत्त्व के मर्म तक पहुँच जाते हैं। इसलिए धर्म के नियमों में भेद किया गया है अर्थात् प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के लिए पाँच महाव्रतों का विधान किया गया है और मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के लिए चार महाव्रतों का कथन किया गया है।

पुरिमाण दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥२७॥

— पुरिमाणं—पहले तीर्थंकर के साधुओं का, कप्पो—आचार, दुव्विसोज्झो—दुर्विशोध्य है, उ—और, चरिमाणं—अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं का आचार, दुरणुपालओ—दुरनुपालक है, तु—और, मज्झिमगाणं—मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधुओं का आचार, सुविसोज्झो—सुविशोध्य और, सुपालओ—सुपालक है अर्थात् प्रथम तीर्थंकर के साधु अपने कल्प (आचार) को शीघ्र नहीं समझ पाते हैं। उनकी प्रकृति सरल होती है, इसलिए उनकी बुद्धि शीघ्रता से पदार्थों के अवधारण करने में समर्थ नहीं होती। अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्रजड़ होते हैं, वे किसी बात को सरलतापूर्वक समझते नहीं और समझ जाने पर भी उसका सरलता से पालन नहीं करते, क्योंकि इस काल के जीव कुतर्क उत्पन्न करने में बड़े कुशल होते हैं। मध्य के बाईस तीर्थंकरों के मुनियों को

शिक्षित करना या साधु-कल्प का वोध देना और उनके द्वारा उसका पालन किया जाना ये दोनों वातें सुलभ होती हैं, इसलिए इनके लिए चार महाव्रतों का विधान किया गया है और प्रथम तीर्थंकर तथा अन्तिम तीर्थंकर के मुनियों के लिए पाँच महाव्रतों का विधान किया गया है ॥२७॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो।
अण्णो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ।२८।

— **गोयम**--हे गौतम ! **ते**—आपका, **पण्णा**— बुद्धि, **साहु**—श्रेष्ठ है । आपने, **मे**--मेरा **इमो**--यह, **संसओ**--संशय, **छिण्णो**--दूर कर दिया है । **मज्झं**--मेरा, **अण्णोवि**--और भी, **संसओ**--संशय है इसलिए, **गोयम**—हे गौतम ! **तं**--उसके विषय में भी, **मे**—मुझे, **कहसु**—कहिये अर्थात् मेरा जो दूसरा संशय है उसे भी दूर कीजिए ॥२८॥

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महाजसा ॥२९॥
एगकज्जपवण्णाणं, विसेसे किण्णु कारणं ।
लिंगे दुविहे मेहावी ! कहं विप्पच्चओ ण ते ॥३०॥

— दूसरा प्रश्न:—**महाजसा**— महायशस्वी महामुनीश्वर, **वद्धमाणेण**— भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, **जो**— जो यह, **अचेलगो**--अचेलक (परिमाणोपेत श्वेत तथा अल्प मूल्य वाले वस्त्र रखने) रूप, **धम्मो**—धर्म, **देसिओ**—कहा है, **य**--और,

पासेण—भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी ने, जो—जो, इमो—यह संतरुत्तरो—मानोपेत-रहित, विशिष्ट एवं बहुमूल्य वस्त्र रखने रूप धर्म कहा है तो, एगकज्जपवण्णाणं—एक ही कार्य के लिए अर्थात् मोक्ष प्राप्ति रूप कार्य के लिए प्रवृत्ति करने वालों में परस्पर, विसेसे—विशेषता होने में, किण्णु—क्या, कारणं—कारण है ? मेहावी—हे मेधाविन् ! लिंगे—बाह्य वेश के, दुविहे--दो भेद हो जाने पर, किं--क्या, ते--आपके मन में' विप्पच्चओ ण--सन्देह उत्पन्न नहीं होता है ? जब दोनों बातें सर्वज्ञ-कथित है तो फिर मतभेद का क्या कारण है ? ॥२९-३०॥

केसिमेवं बुवाणं तु, गोयमो इणमब्बवी ।
विण्णाणेण समागम्म, धम्म-साहण-मिच्छियं ॥३१॥

— एवं—इस प्रकार, बुवाणं—कहते हुए, केसिं—केशीकुमार श्रमण को, गोयमो—गोतम स्वामी, इणं—इस प्रकार, अब्बवी—कहने लगे—भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी ने और भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, विण्णाणेण—विज्ञान द्वारा अर्थात् केवलज्ञान द्वारा, समागम्म—जान कर यथायोग्य, धम्मसाहण—धर्म-उपकरणों की, इच्छियं--आज्ञा दी है ॥३१॥

पच्चयत्थं च लोगस्स, णाणाविह-विगप्पणं ।
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगपओयणं ॥३२॥

— णाणाविह विगप्पणं—अनेक प्रकार के उपकरणों की कल्पना, लोगस्स—लोगों की, पच्चयत्थं--प्रतीति एवं विश्वास

के लिए है, च—और, जत्तत्थं--संयम-यात्रा का निर्वाह करने के लिए, च – तथा, गहणत्थं--ज्ञानादि ग्रहण के लिए, लोगे--लोक में, लिंगपओयणं—लिंग (वेश) का प्रयोजन है ॥३२॥

भावार्थ—'यह साधु है' लोक में ऐसी प्रतीति हो इसके लिए लिंग का प्रयोजन है। अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूजा के लिए अपनी इच्छानुसार वेश धारण कर के साधु कहलाने का ढोंग कर सकता है। संयम यात्रा के निर्वाह के लिए तथा ज्ञानादि के ग्रहण के लिए भी वेश की आवश्यकता है। कदाचित् कर्मोदय से संयम के प्रति अरुचि अथवा मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाय तो यह विचार करना चाहिए कि मेरा साधु-वेश है। मुझे इसके अनुसार ही प्रवृत्ति करनी चाहिए।

अह भवे पइण्णा उ, मोक्ख-सब्भूयसाहणा।
णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं चेव णिच्छए॥३३॥

— अह—भगवान् पार्श्वनाथ की और भगवान् वर्द्धमान स्वामी की दोनों तीर्थंकरों की, पइण्णा--प्रतिज्ञा उ – तो यही, भवे—है कि णिच्छए--निश्चय में, मोक्ख सब्भूयसाहणा--मोक्ष के वास्तविक साधन, णाणं—ज्ञान, दंसणं--दर्शन, च--और, चरित्तं—चारित्र ही हैं, इसलिए निश्चय में दोनों महापुरुषों की एक ही प्रतिज्ञा है, इसमें कोई मतभेद नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि से बाह्य वेश में उपरोक्त कारणों से भेद है ॥३३॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥३४॥

— इस गाथा का अन्वयार्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥३४॥

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा ! ।
ते य ते अहिगच्छंति, कहं ते णिज्जिया तुमे ? ।३५।

— तीसरा प्रश्न:—गोयमा—हे गौतम ! आप, अणेगाणं—अनेक, सहस्साणं—हजारों शत्रुओं के, मज्झे—बीच में, चिट्ठसि—खड़े हो, य—और, ते—वे शत्रु, ते—आप पर, अहिगच्छंति—आक्रमण कर रहे हैं, तुमे—आपने, ते—उन सब शत्रुओं को, कहं—कैसे, णिज्जिया—जीत लिया है ? ॥ ५॥

एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्व-सत्तू जिणामहं ॥३६॥

— एगे—एक के, जिए—जीतने पर, पंच—पाँच, जिया—जीते गये और, पंच—पाँचों को, जिए—जीतने पर, दस—दस, जिया—जीते गये, उ—और, दसहा—दसों शत्रुओं को, जिणित्ता णं—जीत कर, अहं—मैंने, सव्वसत्तू—सभी शत्रुओं को जिणा—जीत लिया है ॥३६॥ इस गाथा का खुलासा ३८ वीं गाथा में है

सत्तू य इइ के वुत्ते ? केसी गोयम मब्बवी ।
तओ केसिं बुवंत तु, गोयमो इणमब्बवी ॥३७॥

— उपरोक्त विषय को स्पष्ट करने के लिए, **केसी**—केशीकुमार श्रमण, **गोयमं**—गौतम स्वामी से, **इइ**—इस प्रकार, **अब्बवी**—पूछने लगे कि, **सत्तू**—वे शत्रु, **के**—कौन-से, **वुत्ते**—कहे गये हैं ? **तओ**—इसके पश्चात्, **तु**—उक्त प्रकार से, **बुवंतं**—प्रश्न करते हुए, **केसिं**—केशीकुमार श्रमण को, **गोयमो**—गौतम स्वामी, **इणं**—इस प्रकार, **अब्बवी**—कहने लगे ॥३७॥

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य ।
ते जिणित्तु जहाणायं, विहरामि अहं मुणि ! ॥३८॥

— गौतम स्वामी कहते हैं कि, **मुणी**—हे मुने ! **अजिए**-वश में न किया हुआ, **एगप्पा**—एक आत्मा ही, **सत्तू**—शत्रु है **य**—और, **कसाया**—कषाय तथा, **इंदियाणि**—इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं, **ते**—उनको, **जहाणायं**—न्यायपूर्वक, **जिणित्तु**—जीत कर, **अहं**—मैं, **विहरामि**—विचरता हूँ ॥३८॥

भावार्थ—इस गाथा में दिये गये उत्तर से ऊपर की गाथा का स्पष्टीकरण हो जाता है अर्थात् वश में न किया हुआ आत्मा ही शत्रु है। उस एक शत्रु को जीत लेने पर पाँच (चार कषाय और एक आत्मा) शत्रु जीत लिये जाते हैं और पाँच को जीत लेने पर दस (पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय और एक आत्मा) शत्रु जीत लिए जाते हैं। इन को जीत लेने पर नोकषाय आदि समस्त शत्रु जीत लिए जाते हैं।

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ।।३९।।

— अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ।।३९।।

दीसंति बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो ।
मुक्क-पासो लहुब्भूओ, कहं तं विहरसि मुणी ! ।४०।

— चौथा प्रश्न:--केशीकुमार श्रमण पूछते हैं कि, लोए—लोक में, बहवे—बहुत से प्राणी, पासबद्धा—पाश में बन्धे हुए, दीसंति—दिखाई देते हैं किन्तु, मुणी—हे मुने ! आप, मुक्क-पासो--बन्धन से मुक्त हो कर तथा, लहुब्भूओ—वायु के समान लघुभूत (हलके) हो कर, कहं—कैसे, विहरसि—विचरते हैं ।।४०।।

ते पासे सव्वसो छित्ता, णिहंतूण उवायओ ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, विहरामि अहं मुणी ! ।।४१।।

— गौतम स्वामी कहते हैं कि, मुणी—हे मुने ! उवायओ—उपाय द्वारा, ते--उन, पासे--बन्धनों को, सव्वसो—सर्वथा प्रकार से, छित्ता—काट कर एवं, णिहंतूण—उनका, सर्वथा नाश कर के, अहं—मैं, मुक्कपासो—बन्धन-रहित हो कर तथा, लहुब्भूओ—अप्रतिबद्धविहारी होने से वायु के समान लघुभूत हो कर, विहरामि—विचरता हूँ ।।४१।।

पासा य इइ के वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ।।४२।।

— उपरोक्त विषय को स्पष्ट करने के लिए, केसी—केशीकुमार श्रमण, गोयमं--गौतम स्वामी से, इइ--इस प्रकार, अब्बवी--पूछने लगे कि, पासा—वे पाश, के--कौन से, वुत्ता--कहे गये हैं ? एवं--इस प्रकार, बुवंतं—प्रश्न करते हुए, केसि—केशीकुमार श्रमण को, गोयमो--गौतम स्वामी, इणं--इस प्रकार, अब्बवी--कहने लगे ॥४२॥

रागद्दोसादओ तिव्वा, णेहपासा भयंकरा ।
ते छिंदित्तु जहाणायं, विहरामि जहक्कमं ॥४३॥

—- गौतम स्वामी कहते हैं कि, रागद्दोसादओ—राग-द्वेष आदि तथा मोह और, तिव्वा--तीव्र, णेहपासा—धन-धान्य-पुत्र-कलत्र आदि के स्नेह रूपी पाश, भयंकरा--बड़े भयंकर हैं, ते—उनको, जहाणायं—यथान्याय, छिंदित्ता--छेदन कर के मैं, जहक्कमं—यथाक्रम अर्थात् शान्तिपूर्वक, विहरामि--विचरता हूँ ॥४३॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥४४॥

—अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान ॥४४॥

अंतो-हियय संभूया, लया चिट्ठइ गोयमा ! ।
फलेइ विसभक्खीणि, सा उ उद्धरिया कहं ॥४५॥

—- पाँचवां प्रश्न:—गोयमा--हे गौतम !, अंतोहियय-संभूया—हृदय के अन्दर उत्पन्न हुई, लया--एक लता, चिट्ठइ-

है। वह लता, विसभक्खीणि--विष के समान जहरीले, फलेइ-फल देती है, सा--उस लता को आपने, कहं--किस प्रकार, उद्धरिया—उखाड़ कर समूल नष्ट कर दिया है ? ॥४५॥

तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं ।
विहरामि जहाणायं, मुक्को मि विसभक्खणं ॥४६॥

-- गौतम स्वामी कहने लगे कि मैंने, तं—उस, लयं—लता को, सव्वसो—सर्वथा, छित्ता--काट कर, समूलियं--मूल सहित उद्धरित्ता--उखाड़ कर के फेंक दिया है, इसी कारण, विसभक्खणं--उसके विष समान फल खाने से, मुक्कोमि—में मुक्त हूँ। अतएव मैं, जहाणायं—जिनेश्वर देव के न्याय युक्त मार्ग में, विहरामि—शान्तिपूर्वक विचरता हूँ ॥४६॥

लया य इइ का वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥४७॥

— केसी - केशीकुमार श्रमण, गोयमं--गौतम स्वामी से, इइ—इस प्रकार, अब्बवी--पूछने लगे कि, लया--वह लता, का--कोन-सी- वुत्ता – कही गई है ? एवं--उपरोक्त प्रकार से, बुवंतं—प्रश्न करते हुए, केसिं—केशीकुमार श्रमण को, गोयमो--गौतम स्वामी, इणं—इस प्रकार, अब्बवी—कहने लगे ॥४७॥

भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया ।
तमुद्धित्तु जहाणायं, विहरामि महामुणी ॥४८॥

-- महामुणी—हे महामुने ! भवतण्हा--संसार में तृष्णा रूपी, लया--लता, वुत्ता-कही गई है। भीमा--वह अत्यन्त भयंकर है तथा, भीमफलोदया—भयंकर फल देने वाली है, तं—उसको, जहाणायं—यथान्याय (जिनशासन की रीति के अनुसार), उद्धित्तु ' उच्छेदन कर के, विहरामि--सुख· पूर्वक विचरता हूँ ।

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥४९॥

— इस गाथा का अन्वयार्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है।

संपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा ! ।
जे डहंति सरीरत्था, कहं विज्झाविया तुमे ? ॥५०॥

— छठा प्रश्न:— गोयमा--हे गोतम ! घोरा—भयंकर, संपज्जलिया—जलती हुई, अग्गी—एक अग्नि, चिट्ठइ--है, जे--जो, सरीरत्था—शरीर में रह कर, डहंति—आत्मगुणों को जलती है। तुमे--आपने, कहं—किस प्रकार, विज्झाविया- उसे बुझाया है ॥५०॥

महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तमं ।
सिंचामि सययं ते उ, सित्ता णो व डहंति मे ॥५१॥

-- गौतम स्वामी कहते हैं कि, महामेहप्पसूयाओ— महामेघ से उत्पन्न हुए, जलुत्तमं—उत्तम, वारि—जल को,

गिज्झ—ग्रहण करके मैं, तेउ—शरीर में रही हुई उस अग्नि को, सययं—निरंतर, सिंचामि—बुझाता रहता हूँ इस प्रकार, सित्ता—बुझाई हुई वह अग्नि, मे—मुझे अर्थात् मेरे आत्म-गुणों को, णो डहंति—जलाती नहीं है ॥५१॥

अग्गी य इइ के वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥५२॥

— केसी—केशीकुमार श्रमण, गोयमं—गौतम स्वामी से, इइ—इस प्रकार, अब्बवी—पूछने लगे कि, अग्गी—वह अग्नि, के— कौन-सी, वुत्ता— कही गई है, य— और महामेघ तथा जल कौन-सा कहा गया है ? एवं—उपरोक्त प्रकार से, बुवंतं—प्रश्न करते हुए, केसिं—केशीकुमार श्रमण से, गोयमो—गौतम स्वामी, इणं—इस प्रकार, अब्बवी—कहने लगे ॥५२॥

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय-सील-तवो जलं ।
सुयधाराभिहया संता, भिण्णा हु ण डहंति मे ॥५३॥

— कसाया— क्रोध-मान-माया-लोभ ये कषाय रूप, अग्गिणो—अग्नि, वुत्ता—कही गई है और, सुयसीलतवो—श्रुत शील-तप रूप, जलं—जल कहा गया है । सुयधाराभिहया संता—उस श्रुत रूप जल से सिंचित की जाने पर, भिण्णा—नष्ट हुई वह अग्नि, मे—मुझे, ण डहंति—नहीं जलाती है ॥

भावार्थ— श्री तीर्थंकर देव, महामेघ के समान हैं। जिस प्रकार मेघ से जल उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् के मुखारविन्द से श्रुत-आगम उत्पन्न होता है। उसमें वर्णित श्रुतज्ञान, शील और तप रूप जल है। उस श्रुत-शील और तप रूप जल के छिड़कने से कषाय रूपी अग्नि शान्त हो जाती है, फिर वह आत्मगुणों को नहीं जला सकती॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥५४॥

— अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है॥५४॥

अयं साहस्सिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
जंसि गोयम ! आरूढो, कहं तेण ण हीरसि ?॥५५॥

— सातवाँ प्रश्न:— **गोयम**—हे गौतम ! **अयं**—यह, **साहस्सिओ**—साहसिक और, **भीमो**—भयानक, **दुट्ठस्सो**—दुष्ट घोड़ा, **परिधावई**—चारों ओर भागता फिरता है, **जंसि**—उस पर, **आरूढो**—चढ़े हुए आप, **तेण**—उस घोड़े द्वारा, **कहं ण हीरसि**—उन्मार्ग में क्यों नहीं ले जाये जाते हो अर्थात् वह दुष्ट घोड़ा आपको उन्मार्ग में क्यों नहीं ले जाता ?॥५५॥

पहावंतं णिगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं।
ण मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जई॥५६॥

— गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मुने ! **पहावंतं**—उन्मार्ग की ओर जाते हुए उस दुष्ट घोड़े को, **सुयरस्सीसमाहियं**—

श्रुतज्ञान रूपी लगाम से बांध कर, णिगिण्हामि--मैं वश कर लेता हूँ। इससे वह, मे--मुझे, उम्मग्गं--उन्मार्ग में, ण--नहीं, गच्छइ--ले जाता है, च--किन्तु, मग्गं--सन्मार्ग में ही, पडिवज्जई--प्रवृत्ति करता है ॥५६॥

आसे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥५७॥

— केसी--केशीकुमार श्रमण, गोयमं--गौतम स्वामी से, इइ--इस प्रकार, अब्बवी--पूछने लगे कि, आसे--वह घोड़ा, के--कौन-सा, वुत्ते--कहा गया है ? एवं--इस प्रकार, बुवंतं--प्रश्न करते हुए, केसिं--केशीकुमार श्रमण से, गोयमो--गौतम स्वामी, इणं--इस प्रकार, अब्बवी--कहने लगे ॥५७॥

मणो साहस्सिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।
तं सम्मं तु णिगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कंथगं ॥५८॥

— मणो--मन रूपी साहसिक और भीमो--भयानक, दुट्ठस्सो--दुष्ट घोड़ा परिधावई--चारों ओर भागता रहता है। जिस प्रकार, कंथगं--जातिवान घोड़ा शिक्षा द्वारा सुधर जाता है, उसी प्रकार, तं--इस मन रूपी घोड़े को, सम्मं--सम्यक् प्रकार से, धम्मसिक्खाइ--धर्म की शिक्षा द्वारा, णिगिण्हामि--मैं वश में रखता हूँ ॥५८॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु, गोयमा ! ॥५९॥

-- अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥५९॥

कुप्पहा बहवो लोए, जेहिं णासंति जंतवो ।
अद्धाणे कहं वट्टंतो, तं ण णाससि गोयमा ?॥६०॥

आठवाँ प्रश्नः--लोए – लोक में, बहवे – बहुत-से कुप्पहा-कुमार्ग हैं, जेहिं-- जिनसे, जंतुणो – प्राणी, णासंति–सुमार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं। गोयमा--हे गौतम ! अद्धाणे–सुमार्ग में, वट्टंतो—रहे हुए, तं—आप, कहं—कैसे, ण णाससि-सुमार्ग से भ्रष्ट नहीं होते हो ? ॥६०॥

जे य मग्गेण गच्छंति, जे य उम्मग्ग-पट्ठिया ।
ते सव्वे वेइया मज्झं, तो ण णस्सामहं मुणी ॥६१॥

— गौतम स्वामी कहते हैं कि जे--जो मग्गेण--सुमार्ग से, गच्छंति--जाते हैं, य—और, जे--जो, उम्मग्ग पट्ठिया—उन्मार्ग में प्रवृत्ति करते हैं, ते सव्वे—उन सब को, मज्झं--मैंने, वेइया—जान लिया है, तो—इस लिए, मुणी—हे मुने ! अहं—मैं, ण णस्सं--सुमार्ग से भ्रष्ट नहीं होता ।६१।

मग्गे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥६२॥

-- केसी—केशीकुमार श्रमण, गोयमं--गौतम स्वामी से, इइ—इस प्रकार, अब्बवी—पूछने लगे कि, मग्गे—वह सुमार्ग और कुमार्ग, के--कौन-सा, वुत्ते--कहा गया है, एवं-

इस प्रकार, बुवंतं—प्रश्न करते हुए, केसिं—केशीकुमार श्रमण से, गोयमो—गौतम स्वामी, इणं—इस प्रकार, अब्बवी—कहने लगे ॥६२॥

कुप्पवयण-पासंडी, सव्वे उम्मग्ग-पट्ठिया ।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे ।६३।

—कुप्पवयणपासंडी—जो कुप्रवचन को मानने वाले पाखण्डी लोग हैं, सव्वे—वे सभी, उम्मग्गपट्ठिया—उन्मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले हैं। जिणक्खायं—जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्ररूपित मार्ग ही, सम्मग्गं—सन्मार्ग है। इसलिए, एस—यह, मग्गे—मार्ग, हि—ही, उत्तमे—उत्तम है ॥६३॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥६४॥

—अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥६४॥

महा-उदगवेगेण, वुज्झमाणाण पाणिणं ।
सरणं गई पइट्ठा य, दीवं कं मण्णसि मुणी ? ॥६५॥

—नौवां प्रश्न:—केशीकुमार श्रमण पूछते हैं कि, मुणी—हे मुने ! महाउदगवेगेण—पानी के महान् प्रवाह द्वारा, वुज्झमाणाण—बहाये जाते हुए, पाणिणं—प्राणियों के लिए, सरणं—शरण रूप, य—तथा, गई—गति रूप और, पइट्ठा—प्रतिष्ठा रूप अर्थात् दुःख से पीड़ित प्राणी जिसका आश्रय ले कर सुख-पूर्वक रह सकें ऐसा, दीवं—द्वीप आप, कं—किसे, मण्णसि—मानते हैं ॥६५॥

अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ ।
महाउदगवेगस्स, गई तत्थ ण विज्जई ॥६६॥

— वारिमज्झे—पानी (समुद्र) के मध्य में, महालओ—बहुत ऊँचा एवं विस्तृत, एगो—एक, महादीवो—महाद्वीप, अत्थि—है, तत्थ—उस पर, महाउदगवेगस्स—पानी के महान् प्रवाह की, गई—गति, ण विज्जई—नहीं है अर्थात् उस महाद्वीप में जल का प्रवेश नहीं हो सकता ॥६६॥

दीवे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥६७॥

— केसी—केशीकुमार श्रमण, गोयमं—गौतम स्वामी से, इइ—इस प्रकार, अब्बवी—पूछने लगे कि, दीवे—वह द्वीप, के—कौन-सा वुत्ते—कहा गया है ? एवं—उपरोक्त प्रकार से, बुवंतं—प्रश्न करते हुए केसिं—केशीकुमार श्रमण से, गोयमो—गौतम स्वामी, इणं—इस प्रकार, अब्बवी—कहने लगे ॥६७॥

जरामरणवेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ॥६८॥

— जरामरणवेगेणं—जरा और मरण के वेग से, बुज्झमाणाण—प्रवाहित होते हुए, पाणिणं—प्राणियों के लिए, धम्मो—धर्म रूपी, दीवो—द्वीप है, गई—वह गति रूप है, य—और, उत्तमं—उत्तम, सरणं—शरण रूप है तथा, पइट्ठा—

प्रतिष्ठा रूप है अर्थात् धर्म ही एक ऐसा द्वीप है, जिसका आश्रय ले कर प्राणी संसार रूपी समुद्र से पार हो सकते हैं ॥६८॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥६९॥

-- अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥६९॥

अण्णवंसि महोहंसि, णावा विपरिधावई ।
जंसि गोयम आरूढो, कहं पारं गमिस्ससि ? ॥७०॥

-- दसवां प्रश्न:--महोहंसि--महाप्रवाह वाले, अण्णवंसि--समुद्र में, णावा--एक नौका, विपरिधावई--विपरीत दिशा में--इधर-उधर जा रही है । गोयम--हे गौतम ! जंसि--उस पर, आरूढो--चढ़े हुए आप, कहं--कैसे, पारं--पार, गमिस्ससि--जाओगे ? ॥७०॥

जा उ अस्साविणी णावा, ण सा पारस्स गामिणी ।
जा णिरस्साविणी णावा, सा उ पारस्स गामिणी ॥७१॥

-- गौतम स्वामी कहते हैं कि, जा--जो, णावा--नौका, अस्साविणी--छिद्रों वाली होती है, सा--वह, उ--कभी, पारस्स गामिणी--पार ले जाने वाली, ण--नहीं होती, अपितु वह स्वयं समुद्र में डूब जाती है और उसमें बैठे हुए मनुष्यों को भी डूबा देती है किन्तु, जा--जो, णावा--नौका, णिरस्साविणी-छिद्रों रहित है, सा--वह, उ--अवश्य ही, पारस्स गामिणी--पार ले जाने वाली होती है ॥७१॥

णावा य इइ का वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७२॥

— केसी—केशीकुमार श्रमण, गोयमं—गौतम स्वामी से, इइ—इस प्रकार, अब्बवी—पूछने लगे कि, णावा—वह नौका, का—कौन-सी, वुत्ता—कही गई है ? एवं—उपरोक्त प्रकार से, बुवंतं—प्रश्न करते हुए, केसिं—केशीकुमार श्रमण से, गोयमो—गौतम स्वामी, इणं—इस प्रकार अब्बवी—कहने लगे ॥७२॥

सरीरमाहु णावत्ति, जीवो वुच्चइ णाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ॥७३॥

— तीर्थंकर देव ने, सरीरं—इस शरीर को, णावा—नौका, आहु—कही है और, जीवो—जीव, णाविओ—नाविक (नौका) को चलाने वाला, वुच्चइ—कहा जाता है तथा, संसारो— संसार, अण्णवो—समुद्र, वुत्तो—कहा गया है, जं—जिसे, महेसिणो—महर्षि लोग तरंति—तिर कर पार हो जाते हैं ॥७३॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥७४॥

— *अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है* ॥७४॥

अंधयारे तमे घोरे, चिट्ठंति पणिणो बहू ।
को करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ॥७५॥

ग्यारहवाँ प्रश्नः— अंधयारे—जहाँ आंखों की प्रवृत्ति रुक जाने से पुरुष अन्धे के समान बन जाता है ऐसे, घोरे—घोर तमे—अन्धकार में, बहू—बहुत-से, पाणिणो—प्राणी, चिट्ठंति—रहते हैं। पाणिणं—उन प्राणियों के लिए, सव्वलोयम्मि—सम्पूर्ण लोक में, को—कौन, उज्जोयं—उद्योत (प्रकाश) करिस्सइ—करेगा ? ॥७५॥

उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोय-पभंकरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ॥७६॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि, सव्वलोयपभंकरो—सम्पूर्ण लोक में प्रकाश करने वाला एक, विमलो—निर्मल, भाणू—सूर्य, उग्गओ—उदय हुआ है, सो—वह, पाणिणं—प्राणियों के लिए, सव्वलोयम्मि—सारे संसार में, उज्जोयं—उद्योत, करिस्सइ—करेगा ॥७६॥

भाणू य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७७॥

— केसी—केशीकुमार श्रमण, गोयमं—गौतम स्वामी से, इइ—इस प्रकार, अब्बवी—पूछने लगे कि, भाणू—वह सूर्य, के—कौन-सा, वुत्ते—कहा गया है ? एवं—उपरोक्त प्रकार से, बुवंतं—प्रश्न करते हुए, केसिं—केशीकुमार श्रमण से, गोयमो—गौतम स्वामी, इणं—इस प्रकार, अब्बवी—कहने लगे ॥७७॥

णावा य इइ का वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७२॥

— केसी—केशीकुमार श्रमण, गोयमं--गौतम स्वामी से, इइ--इस प्रकार, अब्बवी—पूछने लगे कि, णावा--वह नौका, का—कौन-सी, वुत्ता—कही गई है ? एवं--उपरोक्त प्रकार से, वुवंतं--प्रश्न करते हुए, केसिं--केशीकुमार श्रमण से, गोयमो—गौतम स्वामी, इणं--इस प्रकार अब्बवी—कहने लगे ॥७२॥

सरीरमाहु णावत्ति, जीवो वुच्चइ णाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ॥७३॥

— तीर्थंकर देव ने, सरीरं—इस शरीर को, णावा--नौका, आहु—कही है और, जीवो--जीव, णाविओ--नाविक (नौका) को चलाने वाला, वुच्चइ—कहा जाता है तथा, संसारो— संसार, अण्णवो—समुद्र, वुत्तो-- कहा गया है, जं-- जिसे, महेसिणो--महर्षि लोग तरंति--तिर कर पार हो जाते हैं ॥७३॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥७४॥

— अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥७४॥

अंधयारे तमे घोरे, चिट्ठंति पणिणो बहू ।
को करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ।७५।

ग्यारहवाँ प्रश्न:— अंधयारे—जहाँ आँखों की प्रवृत्ति रुक जाने से पुरुष अन्धे के समान बन जाता है ऐसे, घोरे—घोर तमे—अन्धकार में, बहू—बहुत-से, पाणिणो—प्राणी, चिट्ठंति—रहते हैं। पाणिणं—उन प्राणियों के लिए, सव्वलोयम्मि—सम्पूर्ण लोक में, को—कौन, उज्जोयं—उद्योत (प्रकाश) करिस्सइ—करेगा ? ॥७५॥

उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोय-पभंकरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ॥७६॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि, सव्वलोयपभंकरो—सम्पूर्ण लोक में प्रकाश करने वाला एक, विमलो—निर्मल, भाणू—सूर्य, उग्गओ—उदय हुआ है, सो—वह, पाणिणं—प्राणियों के लिए, सव्वलोयम्मि—सारे संसार में, उज्जोयं—उद्योत, करिस्सइ—करेगा ॥७६॥

भाणू य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७७॥

— केसी—केशीकुमार श्रमण, गोयमं—गौतम स्वामी से, इइ—इस प्रकार, अब्बवी—पूछने लगे कि, भाणू—वह सूर्य, के—कौन-सा, वुत्ते—कहा गया है ? एवं—उपरोक्त प्रकार से, बुवतं—प्रश्न करते हुए, केसिं—केशीकुमार श्रमण से, गोयमो—गौतम स्वामी, इणं—इस प्रकार, अब्बवी—कहने लगे ॥७७॥

उग्गओ खीणसंसारो, सव्वण्णू जिणभक्खरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ॥७८॥

— खीणसंसारो—क्षीण हो गया है संसार जिसका अर्थात् संसार के मूलभूत कर्मों का क्षय कर देने वाला, सव्वण्णू—सर्वज्ञ, जिणभक्खरो—जिनेन्द्र भगवान् रूपी सूर्य, उग्गओ—उदय हुआ है, सो—वह, पाणिणं—प्राणियों के लिए, सव्वलोयम्मि—सम्पूर्ण लोक में, उज्जोयं—प्रकाश, करिस्सइ—करेगा ॥७८॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥७९॥

— अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥७९।

सारीरमाणसे दुक्खे, बज्झमाणाण पाणिणं ।
खेमं सिव-मणाबाहं, ठाणं किं मण्णसी मुणी ॥८०॥

— बारहवां प्रश्नः— मुणी – हे मुने !, सारीरमाणसे—शारीरिक ओर मानसिक, दुक्खे—दुःखों से, बज्झमाणाण—पीड़ित होते हुए अथवा आकुल-व्याकुल बने हुए, पाणिणं—प्राणियों के लिए, खेमं—क्षेम रूप सिवं—शिव रूप और, अणाबाहं—बाधा-पीड़ा रहित, ठाणं—स्थान आप, किं—कौन-सा, मण्णसी—मानते हैं ? ॥८०॥

अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गम्मि दुरारुहं ।
जत्थ णत्थि जरामच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ॥८१॥

— गौतम स्वामी कहते हैं कि, लोगग्गम्मि--लोक के अग्रभाग पर, एगं--एक, धुवं—ध्रुव (निश्चल), ठाणं--स्थान अत्थि--है, जत्थ--जहाँ जरा--बुढ़ापा, मच्चू—मृत्यु, वाहिणो--व्याधि, तहा—तथा, वेयणा--वेदना, णत्थि--नहीं है किन्तु, दुरारुहं--वह स्थान दुरारुह है अर्थात् उस स्थान तक पहुँचना बड़ा कठिन है ॥८१॥

ठाणे य इइ के वुत्ते? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥८२॥

— केसी--केशीकुमार श्रमण, गोयमं--गौतम स्वामी से, इइ--इस प्रकार, अब्बवी--पूछने लगे कि, ठाणे--वह स्थान, के--कौन-सा, वुत्ते--कहा गया है? एवं—उपरोक्त प्रकार से, बुवंतं—प्रश्न करते हुए, केसिं—केशीकुमार श्रमण से, गोयमो--गौतम स्वामी, इणं--इस प्रकार, मब्बवी--कहने लगे ॥८२॥

णिव्वाणं ति अबाहं ति, सिद्धी लोगग्गमेव य ।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो ॥८३॥

—गौतम स्वामी केशीकुमार श्रमण से कहते हैं कि हे मुने! जिस स्थान वह, णिव्वाणं--निर्वाण, अबाहं--अव्याबाध, सिद्धी--सिद्धि, खेमं--क्षेम, सिवं--शिव और अणाबाहं--अनाबाध इत्यादि नामों से कहा जाता है, य--और वह स्थान, लोगग्गमेव--लोकाग्र पर स्थित है, जं--उस स्थान को,

महेसिणो--महर्षि (महात्मा) लोग, चरंति--प्राप्त करते हैं ॥

तं ठाणं सासयं वासं, लोगग्गम्मि दुरारुहं ।
जं संपत्ता ण सोयंति, भवोहंतकरा मुणी ॥८४॥

— तं--वह, ठाणं--स्थान, सासयं वासं--शाश्वत है, लोगग्गम्मि—लोक के अग्रभाग पर स्थित है, दुरारुहं--वह दुरारुह है अर्थात् वहाँ पर पहुँचना अत्यन्त कठिन है। भवोहंतकरा—नरकादि भवों की परम्परा का अन्त करने वाले, मुणी--मुनि, जं—उस स्थान को, संपत्ता--प्राप्त होते हैं और वहाँ पहुँचने पर, ण सोयंति--शोक नहीं करते अर्थात् वहाँ पहुँचने के बाद शोक, क्लेश, जन्म, जरा आदि दुःख कभी भी नहीं होते फिर कभी संसार में नहीं आना पड़ता ॥८४॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
णमो ते संसयातीत ! सव्वसुत्तमहोयही । ८५॥

— केशीकुमार श्रमण कहने लगे कि, गोयम – हे गौतम ! ते--आपकी, पण्णा--बुद्धि साहु—बहुत उत्तम है, आपने, मे--मेरे, इमो--इन, संसओ--संशयों को, छिण्णो— दूर कर दिया है, संसयातीत--हे संशयातीत ! सव्वसुत्तमहोयही-- हे सर्वसूत्रमहोदधि ! अर्थात् सर्वशास्त्रों के ज्ञाता ! ते--आपको णमो--नमस्कार करता हूँ ॥८५॥

एवं तु संसए छिण्णे, केसी घोरपरक्कमे ।
अभिवंदित्ता सिरसा, गोयमं तु महायसं ॥८६॥

पंचमहव्वयधम्मं पडिवज्जइ भावओ।
पुरिमस्स पच्छिममम्मि, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥८७॥

— एवं—इस प्रकार, संसए—संशय, छिण्णे—दूर हो जाने पर, घोर परक्कमे—घोर पराक्रम वाले, केसी—केशी-कुमार श्रमण ने, महायसं—महायशस्वी, गोयमं—गौतम स्वामी को, सिरसा—मस्तक से, अभिवंदित्ता—वन्दना करके (हाथ जोड़ कर तथा सिर झुका कर), तत्थ—वहीं तिन्दुक वन में, पंचमहव्वयधम्मं—पांच महाव्रत रूप धर्म को, भावओ—भाव-पूर्वक, पडिवज्जइ—अंगीकार किया और वे, सुहावहे—उस सुखकारी, मग्गे—मार्ग में विचरण करने लगे जो, पुरिमस्स पच्छिममम्मि—प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर देवों के साधुओं के लिए प्ररूपित किया गया है ॥८६–८७॥

केसीगोयमओ णिच्चं, तम्मि आसि समागमे।
सुय-सील-समुक्कसो, महत्थत्थ-विणिच्छओ ।८८।

— तम्मि—उस तिन्दुक उद्यान में, केसीगोयमओ—केसीकुमार श्रमण और गौतम स्वामी का जो, णिच्चं—नित्य, समागमे—समागम, आसि—हुआ, सुयसील समुक्कसो—उससे श्रुत और चारित्र की वृद्धि करने वाले, महत्थत्थविणिच्छओ—महान् पदार्थों का निर्णय हुआ ॥८८॥

भावार्थ—श्री केशीकुमार श्रमण और उनके शिष्य तथा श्री गौतम स्वामी और उनके शिष्य जब तक श्रावस्ती नगरी

महेसिणो--महर्षि (महात्मा) लोग. चरंति--प्राप्त करते हैं॥

तं ठाणं सासयं वासं, लोगग्गम्मि दुरारुहं।
जं संपत्ता ण सोयंति, भवोहंतकरा मुणी ॥८४॥

— तं--वह, ठाणं--स्थान, सासयं वासं--शाश्वत है, लोगग्गम्मि—लोक के अग्रभाग पर स्थित है, दुरारुहं--वह दुरारुह है अर्थात् वहाँ पर पहुँचना अत्यन्त कठिन है। भवोहंतकरा—नरकादि भवों की परम्परा का अन्त करने वाले, मुणी--मुनि, जं--उस स्थान को, संपत्ता--प्राप्त होते हैं और वहाँ पहुँचने पर, ण सोयंति--शोक नहीं करते अर्थात् वहाँ पहुँचने के बाद शोक, क्लेश, जन्म, जरा आदि दुःख कभी भी नहीं होते फिर कभी संसार में नहीं आना पड़ता ॥८४॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो।
णमो ते संसयातीत ! सव्वसुत्तमहोयही। ८५॥

— केशीकुमार श्रमण कहने लगे कि, गोयम– हे गौतम ! ते--आपकी, पण्णा--बुद्धि साहु—बहुत उत्तम है, आपने, मे--मेरे, इमो--इन, संसओ--संशयों को, छिण्णो—दूर कर दिया है, संसयातीत--हे संशयातीत ! सव्वसुत्तमहोयही--हे सर्वसूत्रमहोदधि ! अर्थात् सर्वशास्त्रों के ज्ञाता ! ते--आपको णमो--नमस्कार करता हूँ ॥८५॥

एवं तु संसए छिण्णे, केसी घोरपरक्कमे।
अभिवंदित्ता सिरसा, गोयमं तु महायसं ॥८६॥

पंचमहव्वयधम्मं पडिवज्जइ भावओ।
पुरिमस्स पच्छिमम्मि, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥८७॥

— एवं—इस प्रकार, संसए--संशय, छिण्णे—दूर हो जाने पर, घोर परक्कमे—घोर पराक्रम वाले, केसी—केशीकुमार श्रमण ने, महायसं--महायशस्वी, गोयमं--गोतम स्वामी को, सिरसा--मस्तक से, अभिवंदित्ता--वन्दना करके (हाथ जोड़ कर तथा सिर झुका कर), तत्थ—वहीं तिन्दुक वन में, पंचमहव्वयधम्मं--पाँच महाव्रत रूप धर्म को, भावओ--भावपूर्वक, पडिवज्जइ--अंगीकार किया और वे, सुहावहे—उस सुखकारी, मग्गे---मार्ग में विचरण करने लगे जो, पुरिमस्स पच्छिमम्मि—प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर देवों के साधुओं के लिए प्ररूपित किया गया है ॥८६–८७॥

केसीगोयमओ णिच्चं, तम्मि आसि समागमे।
सुय-सील-समुक्कसो, महत्थत्थ-विणिच्छओ ।८८।

— तम्मि---उस तिन्दुक उद्यान में, केसीगोयमओ—केसीकुमार श्रमण और गोतम स्वामी का जो, णिच्चं—नित्य, समागमे--समागम, आसि—हुआ, सुयसील समुक्कसो--उससे श्रुत और चारित्र की वृद्धि करने वाले, महत्थत्थविणिच्छओ—महान् पदार्थों का निर्णय हुआ ॥८८॥

भावार्थ--श्री केशीकुमार श्रमण और उनके शिष्य तथा श्री गोतम स्वामी और उनके शिष्य जब तक श्रावस्ती नगरी

में रहे तब तक नित्य प्रति उनका समागम (मिलन) होता रहा।

तोसिया परिसा सव्वा, सम्मग्गं समुवट्ठिया।
संथुया ते पसीयंतु, भयवं केसिगोयमे।८९। त्तिबेमि।

— सव्वा--देव, असूर और मनुष्यों से युक्त वह सारी, परिसा—सभा, तोसिया--अत्यन्त संतुष्ट हुई और सभी, सम्मग्गं--सन्मार्ग में, समुवट्ठिया—प्रवृत्त हुए तथा, ते--वे सभी, संथुया--स्तुति करने लगे कि, भयवं--भगवान्, केसी-गोयमे--केशीकुमार और गौतम स्वामी, पसीयंतु--सदा प्रसन्न रहें एवं जयवंत रहें ॥८९॥ त्तिबेमि--ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ तेइसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

'प्रवचन माता' चौवीसवाँ अध्ययन

अट्ठ पवयण-मायाओ, समिई गुत्ती तहेव य।
पंचेव य समिईओ, तओ गुत्तीउ आहिया॥१॥

— समिई—समिति, तहेव य--और, गुत्ती--गुप्ति, अट्ठ--ये आठ, पवयणमायाओ—प्रवचन-माता हैं। समिईओ—समितियाँ, पंचेव—पाँच, य—और, गुत्तीउ--गुप्तियाँ, तओ—तीन, आहिया--कही गई हैं ॥१॥

इरिया-भासे-सणादाणे, उच्चारे समिई इय ।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ॥२॥

— इरियाभासेसणादाणे—ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभंडमात्र-निक्षेपणा समिति, य—और, उच्चारे— उच्चार-पासवण-जल्ल-मल-सिंघाण-परिस्थापनिका समिति, इय—ये पांच, समिई—समितियाँ हैं, मणगुत्ती—मन गुप्ति, वयगुत्ती—वचनगुप्ति, य—और, कायगुत्ती—कायगुप्ति, अट्ठमा—आठवीं है। ये आठ प्रवचन माताएँ हैं ॥२॥

एयाओ अट्ठ समिईओ, समासेण वियाहिया ।
दुवालसंगं जिणक्खायं, मायं जत्थ उ पवयणं ॥३॥

— एयाओ—ये, समिईओ—पांच समिति और तीन गुप्ति रूप, अट्ठ—अष्ट प्रवचन-माता, समासेण—संक्षेप से, वियाहिया—कही गई है। जिणक्खायं—जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित, दुवालसंगं—द्वादशांग रूप, पवयणं—प्रवचन, जत्थ उ—इन्हीं में, मायं—समाया हुआ है, इसलिए ये 'प्रवचन-माता' कहलाती हैं ॥३॥

आलंबणेण कालेण, मग्गेण जयणाइ य ।
चउकारण-परिसुद्धं, संजए इरियं रिए ॥४॥

— आलंबणेण—आलम्बन, कालेण—काल, मग्गेण—मार्ग, य—और, जयणाइ—यतना, चउकारणपरिसुद्धं—इन चार कारणों से शुद्ध, इरियं—ईर्यासमिति से, संजए—साधु,

रिए--गमन करे ।४॥

तत्थ आलंबणं णाणं, दंसणं चरणं तहा।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए ॥५॥

— तत्थ—ईर्यासमिति के लिए, णाणं दंसणं तहा चरणं—ज्ञान-दर्शन और चारित्र, आलंबणं—आलम्बन है, काले—काल, दिवसे—दिन, वुत्ते—कहा गया है, य—और, मग्गे—मार्ग, उप्पहवज्जिए—उत्पथवर्जित (सुमार्ग) कहा गया है ॥

भावार्थ--ज्ञान, दर्शन और चारित्र ईर्यासमिति में आलंबन (कारण) हैं। इन्हीं का आलम्बन लेकर साधु को गमन करना चाहिए। दिवस, ईर्यासमिति का काल है अर्थात् साधु को दिन में ही गमन करना चाहिए। रात्रि में ईर्या शुद्ध नहीं होती। इसलिए रात्रि में साधु को बाहर गमन करने की मनाही है।उत्पथ को छोड़ कर साधु को सुमार्ग से गमन करना चाहिए, क्योंकि कुमार्ग में जाने से संयम की विराधना होने की सम्भावना है।

दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा।
जयणा चउव्विहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण ॥६॥

— दव्वओ—द्रव्य, खेत्तओ—क्षेत्र, तहा--तथा, कालओ—काल, चेव—और, भावओ—भाव से, जयणा—यतना, चउव्विहा—चार प्रकार की, वुत्ता—कही गई है, तं—उसका, मे—मैं, कित्तयओ—वर्णन करूँगा, सुण—तुम ध्यान-

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण-जल्लियं ।
आहारं उवहिं देहं, अण्णं वावि तहाविहं ॥१५॥

पाँचवीं परिस्थापनिका समिति कहते हैं, उच्चारं--बड़ी-नीत (विष्ठा), पासवणं--प्रश्रवण--लघुनीत (मूत्र), खेलं--खंखारा, सिंघाण--नाक का मैल, जल्लियं--शरीर का मैल, आहारं--न खाने योग्य आहार, उवहिं--जीर्ण वस्त्रादि उपधि, देहं--मृत शरीर, वावि--अथवा, तहाविहं--इसी प्रकार की, अण्णं--अन्य कोई वस्तु जो परठने योग्य हो, इन सब को यतनापूर्वक दस विशेषणों वाले स्थण्डिल में परठे ॥१५॥

अणावायमसंलोए, अणावाए चेव होइ संलोए ।
आवायमसंलोए, आवाए चेव संलोए ॥१६॥

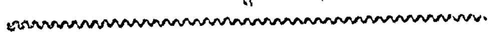
-- कैसे स्थण्डिल में परठना चाहिए ? इसके लिए प्रथम बोल के चार भांगे करके बतलाये जाते हैं:--अणावायमसंलोए--१- जहाँ कोई आता भी न हो और देखता भी न हो, चेव--और, अणावाए होइ संलोए-- २- जहाँ आता तो कोई नहीं किन्तु दूर खड़ा हुआ देखता हो, आवायमसंलोए--३- जहाँ कोई आता तो है, परन्तु देखता नहीं. चेव--और, आवाए संलोए--४- जहाँ कोई आता भी है और देखता भी है। ये चार भंग हैं। इनमें पहला भंग शुद्ध है। शेष तीन भंग अशुद्ध हैं।।१६।

अणावायमसंलोए, परस्सऽणुवघाइए ।
समे अज्झुसिरे यावि, अचिर-कालकयम्मि य ।१७।

वित्थिण्णे दूरमोगाढे, णासण्णे बिलवज्जिए।
तसपाण-बीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥१८॥

— अब स्थण्डिल के दस विशेषण कहे जाते हैं:—**परस्स अणावायमसंलोए**— १— जहाँ स्वपक्ष और परपक्ष वाले किसी का आना-जाना न हो और न दृष्टि पड़ती हो, **अणुवघाइए**—२— जहाँ संयम की अर्थात् छःकाय जीवों की विराधना न हो तथा आत्मा की और संयम की भी विराधना न हो, **समे**-- ३- जहाँ ऊँची-नीची भूमि न हो अर्थात् समतल भूमि हो, **अज्झुसिरे**-- ४- जहाँ पोलार न हो या घास और पत्तों आदि से ढ़की हुई न हो अर्थात् साफ खुली हुई भूमि हो, **यावि**---और, **अचिर काल कयम्मि**-- ५- जो भूमि दाह आदि से थोड़े काल पहले अचित्त हुई हो, **वित्थिण्णे**— ६- जो भूमि विस्तृत हो अर्थात् कम से कम एक हाथ लम्बी चौड़ी हो, **दूरमोगाढे**— ७ जहाँ कम से कम चार अंगुल नीचे तक भूमि अचित्त हो, **णासण्णे**-- ८- जहाँ गांव बगीचा आदि अति निकट न हो, **बिलवज्जिए**- ९- जहाँ चूहे आदि का बिल न हो, **तसपाण बीयरहिए**-- १०- जहाँ बेइन्द्रियादि त्रस जीव तथा शालि आदि बीज न हों। इन दस विशेषणों वाले स्थण्डिल में **उच्चाराईणि**--मल-मूत्रादि का, **वोसिरे**--त्याग करे ॥१७-१८॥

एयाओ पंच समिईओ, समासेण वियाहिया।
इत्तो य तओ गुत्तीओ, वोच्छामि अणुपुव्वसो।१९।



— एयाओ –ये, पंच--पाँच, समिईओ--समितियाँ, समासेण--संक्षेप से वियाहिया—कही गई हैं। इत्तो--अब इसके पश्चात्, तओ– तीन, गुत्तीओ--गुप्तियों का, अणुपुव्वसो–अनुक्रम से, वुच्छामि—वर्णन करूँगा ॥१९।

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चमोसा तहेव य।
चउत्थो असच्चमोसा य, मणगुत्तिओ चउव्विहा।२०।

— सच्चा--सत्या, य--और, मोसा--मृषा, तहेव—तथा, सच्चमोसा—सत्यामृषा, तहेव य—और, चउत्थी—चौथी, असच्चमोसा—असत्यामृषा। इस प्रकार, मणगुत्तिओ—मनोगुप्ति, चउव्विहा--चार प्रकार की कही गई है ॥२०॥

संरंभ-समारंभे, आरंभे य तहेव य।
मणं पवत्तमाणं तु, णियत्तेज्ज जयं जई ॥२१॥

— संरंभसमारंभे--संरंभ और समारम्भ में, तहेव य--और, आरंभे-- आरम्भ में, पवत्तमाणं—प्रवृत्ति करते हुए, मणं--मन को, जई—साधु, जयं--यतनापूर्वक, णियत्तेज्ज—हटा लेवे ॥२१॥

भावार्थ--संरंभ अर्थात् मानसिक संकल्प, जैसे— 'मैं ऐसा ध्यान करूंगा जिससे वह मर जायगा'। मानसिक ध्यान द्वारा दूसरे को पीड़ा पहुंचाना या उच्चाटन आदि करने वाला ध्यान करना मन-समारम्भ है। मानसिक ध्यान द्वारा दूसरे के प्राणों को अत्यन्त क्लेशपूर्वक हरण करना मन-आरम्भ है। इन अशुभ संकल्पों से मन को हटाना चाहिए।

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चमोसा तहेव य।
चउत्थी असच्चमोसा य, वयगुत्ती चउव्विहा।२२।

— सच्चा—सत्या, य—और, मोसा—मृषा, तहेव—तथा, सच्चमोसा--सत्यामृषा, तहेव य—और, चउत्थी--चौथी, असच्चमोसा—असत्यामृषा। इस प्रकार वयगुत्ती—वचनगुप्ति, चउव्विहा--चार प्रकार की कही गई है ॥२२॥

संरंभ-समारंभे, आरंभे य तहेव य।
वयं पवत्तमाणं तु, णियत्तेज्ज जयं जई ॥२३॥

— संरंभसमारंभे—संरंभ और समारम्भ में, तहेव य—और, आरंभे--आरम्भ में, पवत्तमाणं—प्रवृत्ति करते हुए, वयं--वचन को, जई—साधु, जयं—यतनापूर्वक, णियत्तेज्ज--हटा लेवे ॥२३॥

भावार्थ--दूसरों को मारने में समर्थ ऐसी क्षुद्र विद्या गुणने के संकल्प को सूचित करने वाला शब्द बोलना वचन-संरंभ है। दूसरों को पीड़ा करने वाला मन्त्र गुणने को उद्यत होना वचन-समारम्भ है। प्राणियों के प्राणों का अत्यन्त क्लेश-पूर्वक नाश करने में समर्थ मन्त्रादि गुणना वचन-आरम्भ है। संरंभ आदि में प्रवृत्ति करने वाले वचन का साधु यतना से रोके।

ठाणे णिसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे।
उल्लंघणे पल्लंघणे, इंदियाण य जुंजणे ॥२४॥

पूर्वक सुनो ॥६॥

दव्वओ चक्खुसा पेहे, जुगमित्तं च खेत्तओ ।
कालओ जाव रीइज्जा, उवउत्ते य भावओ ॥७॥

— दव्वओ--द्रव्य की अपेक्षा, चक्खुसा—आँखों से, पेहे—जीवादि द्रव्यों को देख कर चले । यह 'द्रव्य उपयोग' कहलाता है, य--और, खेत्तओ--क्षेत्र से, जुगमित्तं—युग-प्रमाण (चार हाथ भूमि) आगे देख कर चले । यह 'क्षेत्र उपयोग' कहलाता है । कालओ—काल से, जाव--जब तक, रीइज्जा—चले अर्थात् जब तक दिन रहे तब तक यतनापूर्वक चले यह 'काल उपयोग' कहलाता है, य—और, भावओ—भाव से, उवउत्ते--उपयोगपूर्वक चले अर्थात् चलते समय अपने उपयोग को ठीक रखना 'भाव उपयोग' कहलाता है ॥

इंदियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा ।
तम्मुत्ती तप्पुरकारे, उवउत्ते रियं रिए ॥८॥

— इंदियत्थे--पाँच इन्द्रियों के विषयों, चेव—और, पंचहा--पाँच प्रकार की सज्झायं--स्वाध्याय को, विवज्जित्ता-वर्ज कर, तम्मुत्ती--ईर्यासमिति में अपने शरीर को लगा कर तथा, तप्पुरकारे—ईर्यासमिति को ही प्रधान मान कर साधु, उवउत्ते—उपयोगपूर्वक रियं रिए—ईर्यासमिति से चले अर्थात् चलते समय शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श इन पाँच इन्द्रियों के विषय की ओर ध्यान न देवे और चलते समय वाचना,

पृच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा रूप पाँच प्रकार की स्वाध्याय में से कोई भी स्वाध्याय नहीं करे, क्योंकि इनमें ध्यान देने से जीवों की यतना भलीं प्रकार नहीं हो सकती, जिससे जीव-विराधना होने की सम्भावना रहती है। इसलिए चलते समय चलने की क्रिया की ओर ही उपयोग रखे।

कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया ।
हासे भए मोहरिए, विकहासु तहेव य ॥९॥
एयाइं अट्ठ ठाणाइं, परिवज्जित्तु संजए ।
असावज्जं मियं काले, भासं भासिज्ज पण्णवं ॥१०॥

— अब भाषासमिति के विषय में कहते हैं:— कोहे—क्रोध माणे—मान, मायाए—माया, य—और, लोभे—लोभ, हासे—हास्य, भए—भय, मोहरिए—मौखर्य, (वाचालता) तहेव य—और, विकहासु—विकथाओं में, उवउत्तया—उपयुक्त रहना, एयाइं—इन, अट्ठ ठाणाइं—आठ स्थानों (दोषों) को, परिवज्जित्तु—त्याग कर, पण्णवं—बुद्धिमान, संजए—साधु, काले—समय पर, असावज्जं—निरवद्य और, मियं—परिमित, भासं—भाषा, भासिज्ज—बोले अर्थात् उपरोक्त क्रोधादि आठ दोषों को छोड़ कर समय पर हित-मित और पाप-रहित निर्दोष भाषा बोले ॥९-१०॥

गवेसणाए गहणे य परिभोगेसणा य जा ।
आहारोवहि-सेज्जाए, एए तिण्णि विसोहए ॥११॥

— अब एषणासमिति के विषय में कहते हैं:— आहारोवहि सेज्जाए-आहार, उपधि और शय्या की, गवेसणाए-गवेषणैषणा, य—और, गहणे—ग्रहणैषणा, य—तथा, परिभोगेसणा—परिभोगैषणा (ग्रासैषणा) एए—ये प्रत्येक की, जा—जो, तिण्णि—तीन-तीन एषणाएँ हैं, विसोहए—उनकी विशुद्धि को अर्थात् गवेषण, ग्रहण और ग्रास (परिभोग) सम्बन्धी दोषों से अदूषित अतएव विशुद्ध आहार, पानी, रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि उपधि और शय्या, पाट, पाटलादिका ग्रहण करना एषणासमिति है ॥११॥

उग्गमुप्पायणं पढमे, बीए सोहेज्ज एसणं ।
परिभोयम्मि चउक्कं, विसोहेज्ज जयं जई ॥१२॥

— जयं—यतनावान्, जई—साधु, पढमे—पहली गवेषणैषणा में, उग्गमुप्पायणं—उद्गम के १६ और उत्पादन के १६ दोषों की और, बीए—दूसरी ग्रहणैषणा में, एसणं—एषणा के शंकितादि दस दोषों की, सोहेज्ज—शुद्धि करे तथा, परिभोयम्मि—परिभोगैषणा में, चउक्कं—संयोजना प्रमाण, अंगार, धूम और कारण ‡ इनचार मांडला के दोषों की, विसोहेज्ज—विशुद्धि करे अर्थात् आहार, शय्या, वस्त्र और पात्र इन चारों को उद्गमादि के

‡ मोहनीय-कर्म के अन्तर्गत होने के कारण अंगार और धूम इन दोनों दोषों को यहाँ एक ही गिना गया है । इन दोनों को पृथक् गिनने से मांडला के पांच दोष होते हैं । यथा:— (१) संयोजना (२) प्रमाण (३) अंगार (४) धूम (५) कारण ।

दोष टाल कर भोगे ॥१२॥

ओहोवहोवग्गहियं, भंडयं दुविहं मुणी ।
गिण्हतो णिक्खिवंतो य, पउंजेज्ज इमं विहिं ॥१३॥

— अब आदानभंड मात्र-निक्षेपणा समिति के विषय में कहते हैं:— आहोवहोवग्गहियं—ओघ उपधि और औपग्रहिक उपधि ‡ दुविहं—इन दोनों प्रकार की उपधि तथा, भंडयं—भंडोपकरण को, गिण्हतो—ग्रहण करता हुआ, य—और, णिक्खिवंतो—रखता हुआ, मुणी—मुनि, इमं—इस, विहिं—विधि का, पउंजेज्ज—प्रयोग करे ॥१३॥

चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जयं जई ।
आइए णिक्खिवेज्जा वा, दुहओ वि समिए सया ॥१४॥

— समिए—समितिवन्त, जई—साधु, सया—सदैव, जयं—यतनापूर्वक, चक्खुसा—आंखों से, पडिलेहित्ता—देख कर और पमज्जेज्ज—प्रमार्जन कर के, दुहओ वि—दोनों प्रकार की उपधि को, आइए—ग्रहण करे, वा—तथा, णिक्खिवेज्जा—रखे ॥१४॥

---

‡ जो सदैव पास रखी जाती है, वह 'ओघ उपधि' कहलाती है। यथा— रजोहरण वस्त्र-पात्र आदि। जो संयम-रक्षार्थ थोड़े समय के लिए ग्रहण की जाती है वह 'औपग्रहिक' उपधि कहलाती है। जैसे— पाट-पाटला शय्या आदि।

— ठाणे--खड़े रहने में, णिसीयणे--बैठने में, चेव—और, तुयट्टणे—सोने में, तहेव य— तथा उल्लंघण--किसी कारण ऊँची भूमि तथा खाड आदि के उल्लंघन में, पल्लंघणे-सीधे चलने में, य--और, इंदियाण--इन्द्रियों के, जुंजणे—शब्दादि में प्रवृत्ति करने में साधु यतनापूर्वक काय-गुप्ति करे ॥

संरंभ-समारंभे, आरंभे य तहेव य।
कायं पवत्तमाणं तु, णियत्तेज्ज जयं जई ॥२५॥

— संरभसमारंभे—संरम्भ और समारंभ में, तहेव य--और, आरंभे—आरम्भ में, पवत्तमाणं—प्रवृत्ति करती हुई, कायं--काया को, जई—साधु, जयं—यतनापूर्वक, णियत्तेज्ज--हटा लेवे ॥२५॥

भावार्थः— किसी प्राणी को लकड़ी आदि से पीटने के लिए तैयार होना काय-संरम्भ है। दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के लिए लकड़ी आदि का प्रहार करना कायसमारम्भ है। किसी प्राणी का वध करने के लिए प्रवृत्ति करना काय-आरम्भ है। इन कार्यों में प्रवृत्त होते हुए अपने शरीर (काया) को साधु रोके।

एयाओ पंच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे।
गुत्ती णियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ॥२६॥

— एयाओ—उपरोक्त, पंच—पाँच, समिईओ—समितियाँ, चरणस्स--चारित्र की, पवत्तणे -प्रवृति के लिए, वुत्ता--कही गई हैं, य—और, गुत्ती—गुप्तियाँ, असुभत्थेसु--

अशुभ कार्य से, सव्वसो —सर्वथा, णियत्तणे—निवृत्ति के लिए कही गई है ॥२६॥

भावार्थः—समिति का प्रयोजन चारित्र में प्रवृत्ति कराना है और गुप्ति का प्रयोजन शुभ और अशुभ सभी प्रकार के व्यापारों से निवृत्ति कराना है अर्थात् मन वचन काया रूप तीनों योगों का सर्वथा निरोध करना गुप्ति का प्रयोजन है। समिति प्रवृत्तिरूप और गुप्ति निवृत्ति रूप है।

एसा पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी।
सो खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए।२७। त्तिबेमि।

— जे—जो, मुणी—मुनि, एसा—इन, पवयणमाया—आठ प्रवचन माताओं का, सम्मं—सम्यक् प्रकार से, आयरे—आचरण करता है, सो—वह, पंडिए—पंडित साधु, सव्वसंसारा—संसार के समस्त बन्धनों से, खिप्पं—शीघ्र, विप्पमुच्चइ—छूट कर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है ॥२७॥ त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ चोवीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

'यज्ञ' पच्चीसवाँ अध्ययन



बाणारसी नगरी में काश्यप गोत्र के जयघोष और विजय-घोष नाम के दो भाई रहते थे। दोनों में परस्पर अत्यधिक प्रेम था। वे बड़े विद्वान् और वेदों के पारगामी थे। यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह रूप छः कर्म का आचरण करते हुए वे आनन्दपूर्वक जीवन बिताते थे। एक बार जयघोष गंगास्नान के लिए गया। वहां उसने देखा कि एक साँप ने एक मेंढ़क को पकड़ रखा है और उसी साँप को कुलल पक्षी पकड़े हुए है। साँप तड़प रहा था और उसे कुलल पक्षी खा रहा था। इस अवस्था में भी साँप मेंढ़क को छोड़ नहीं रहा था, परन्तु चींचीं शब्द करते हुए मेढ़क को खा रहा था। इस प्रकार एक-दूसरे की घात करते हुए उन्हें देख कर जयघोष को संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। वहाँ से लौट कर संसार का त्याग कर दीक्षा धारण कर ली।

एक बार ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जयघोष मुनि बनारस आये। उनके अपने भाई विजयघोष के साथ तात्त्विक प्रश्नोत्तर हुए। उनका विशद वर्णन इस अध्ययन में किया गया है—

माहण-कुल-संभूओ, आसी विप्पो महाजसो।
जायाई जम्मजण्णम्मि, जयघोसित्ति णामओ ॥१॥

अशुभ कार्य से, सव्वसो —सर्वथा, णियत्तणे—निवृत्ति के लिए कही गई है ॥२६॥

भावार्थः—समिति का प्रयोजन चारित्र में प्रवृत्ति कराना है और गुप्ति का प्रयोजन शुभ और अशुभ सभी प्रकार के व्यापारों से निवृत्ति कराना है अर्थात् मन वचन काया रूप तीनों योगों का सर्वथा निरोध करना गुप्ति का प्रयोजन है। समिति प्रवृत्तिरूप और गुप्ति निवृत्ति रूप है।

एसा पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी।
सो खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए।२७। त्तिबेमि।

— जे—जो, मुणी—मुनि, एसा—इन, पवयणमाया—आठ प्रवचन माताओं का, सम्मं—सम्यक् प्रकार से, आयरे—आचरण करता है, सो—वह, पंडिए—पंडित साधु, सव्वसंसारा—संसार के समस्त बन्धनों से, खिप्पं—शीघ्र, विप्पमुच्चइ—छूट कर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है ॥२७॥ त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ चौवीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

विजयघोष नाम का, माहणे—एक ब्राह्मण, जण्णं—यज्ञ, जयइ—करता था ॥४॥

अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमण-पारणे ।
विजयघोसस्स जण्णम्मि, भिक्खमट्ठा उवट्ठिए ।५।

—अह— अब, से—वे जयघोष, अणगारे—मुनि, मासक्खमणपारणे—मासखमण के पारणे के दिन, विजयघोसस्स— विजयघोष ब्राह्मण की, जण्णम्मि— यज्ञशाला में, भिक्खमट्ठा—भिक्षा के लिए, उवट्ठिए—पधारे ॥५॥

समुवट्ठियं तहिं संतं, जायगो पडिसेहए ।
ण हु दाहामि ते भिक्खं, भिक्खू ! जायाहि अण्णओ ॥

— तहिं—वहां, समुवट्ठियं संतं—आये हुए भिक्षु को, पडिसेहए—निषेध करता हुआ वह कहने लगा कि, भिक्खू—हे भिक्षो ! ते—तुझे, भिक्खं ण दाहामि—मैं भिक्षा नहीं दूंगा । अण्णओ—अन्यत्र जा कर, जायाहि—भिक्षा मांगो ।

जे य वेयविऊ विप्पा, जण्णमट्ठा य जे दिया ।
जोइसंगविऊ जे य, जे य धम्माण-पारगा ॥७॥

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
तेसिं अण्णमिणं देयं, भो भिक्खू ! सव्वकामियं ।८।

— जे—जो, विप्पा— ब्राह्मण, वेयविऊ— वेदों को जानने वाले हैं, य— और, जे—जो, दिया— ब्राह्मण,

विजयघोष नाम का, माहणे—एक ब्राह्मण, जण्णं—यज्ञ, जयइ—करता था ॥४॥

अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमण-पारणे ।
विजयघोसस्स जण्णम्मि, भिक्खमट्ठा उवट्ठिए ।५।

—अह— अब, से—वे जयघोष, अणगारे—मुनि, मासक्खमणपारणे—मासखमण के पारणे के दिन, विजयघोसस्स— विजयघोष ब्राह्मण की, जण्णम्मि— यज्ञशाला में, भिक्खमट्ठा—भिक्षा के लिए, उवट्ठिए—पधारे ॥५॥

समुवट्ठियं तहिं संतं, जायगो पडिसेहए ।
ण हु दाहामि ते भिक्खं, भिक्खू ! जायाहि अण्णओ ॥

—तहिं—वहां, समुवट्ठियं संतं—आये हुए भिक्षु को, पडिसेहए—निषेध करता हुआ वह कहने लगा कि, भिक्खू—हे भिक्षो ! ते—तुझे, भिक्खं ण दाहामि—मैं भिक्षा नहीं दूंगा । अण्णओ—अन्यत्र जा कर, जायाहि—भिक्षा मांगो ।

जे य वेयविऊ विप्पा, जण्णमट्ठा य जे दिया ।
जोइसंगविऊ जे य, जे य धम्माण-पारगा ॥७॥

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
तेसिं अण्णमिणं देयं, भो भिक्खू ! सव्वकामियं ।८।

—जे—जो, विप्पा— ब्राह्मण, वेयविऊ— वेदों को ने वाले हैं, य— और, जे—जो, दिया— ब्राह्मण,

ण वि जाणासि वेयमुहं, ण वि जण्णाण जं मुहं ।
णक्खत्ताण मुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं ।११।
जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
ण ते तुमं वियाणासि, अह जाणासि तो भण ।१२।

— ण वि--तुम न तो, वेयमुहं--वेदों का मुख, जाणासि-जानते हो और, ण वि—न तुम, जण्णाण—यज्ञों का, जं—जो, मुहं—मुख जानते हो, च--और, जं--जो, णक्खत्ताण—नक्षत्रों के, मुहं--मुख, च--तथा, जं--जो, धम्माण वा—धर्मों के मुहं—मुख को तुम नहीं जानते अर्थात् वेद, यज्ञ, नक्षत्र और धर्मों में किसे प्रधानता दी गई है, तथा इनका क्या रहस्य है, इस बात को भी नहीं जानते हो, य--और, जे—जो, परमप्पाणमेव-अपनी तथा दूसरों की आत्मा का, समुद्धत्तुं-उद्धार करने में समत्था--समर्थ हैं, ते—उनको भी, तुमं—तुम, ण वियाणासि--नहीं जानते। अह—यदि तुम इन सभी बातों को, जाणासि—जानते हो, तो--तो, भण--बताओ ॥११-१२॥

तस्सक्खेवपमोक्खं च, अचयंतो तहिं दिओ ।
सपरिसो पंजलीहोउं, पुच्छई तं महामुणिं ॥१३॥

— तस्सक्खेवपमोक्खं--मुनि के प्रश्नों का उत्तर देने में, अचयंतो—असमर्थ दिओ--वह विजयघोष ब्राह्मण, तहिं—उस यज्ञशाला में, सपरिसो—परिषद् सहित (अन्य समस्त ब्राह्मणों के साथ), पंजलीहोउं—हाथ जोड़ कर, तं—उस, महामुणिं—

महामुनि से, पुच्छई--पूछने लगा ॥१३॥

वेयाणं च मुहं बूहि, बूहि जण्णाण जं मुहं।
णक्खत्ताण मुहं बूहि, बूहि धम्माण वा मुहं ।१४।

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
एयं मे संसयं सव्वं, साहू ! कहसु पुच्छिओ ॥१५॥

— हे मुने ! वेयाणं--वेदों में, मुहं—मुख (प्रधान) कौन है उसे, बूहि— बताओ और, जण्णाणं—यज्ञ में, जं--जो, मुहं—मुख है उसे, बूहि--बताओ तथा, णक्खत्ताण--नक्षत्रों में, मुहं--मुख कौन है उसे, बूहि--बताओ, वा--और, धम्माण--धर्म में, मुहं—मुख, बूहि—बताओ, य--और, जे—जो, परमप्पाणमेव--अपनी और दूसरों की आत्मा का, समुद्धत्तुं—उद्धार करने में, समत्था—समर्थ हैं वे कौन हैं ? मे—मेरे मन में, एयं—यह, सव्वं--सभी, संसयं—संशय है। इस लिए, साहू—हे साधो ! पुच्छिओ--मैं आप से पूछता हूँ, कहसु—आप कृपा कर के कहिए ॥१४-१५॥

अग्गिहुत्तमुहा वेया, जण्णट्ठी वेयसां मुहं ।
णक्खत्ताण मुहं चंदो, धम्माणं कासवो मुहं ॥१६॥

—मुनि कहने लगे, वेया--वेद, अग्गिहुत्तमुहा--अग्निहोत्र की मुख्यता वाले हैं, अर्थात् वेदों में अग्निहोत्र प्रधान है। धर्म-ध्यान रूप अग्नि में सद्भावना की आहुति दे कर कर्म रूप

ईंधन का जलाना भाव अग्निहोत्र है। जण्णट्ठी—यज्ञार्थी अर्थात् अशुभ-कर्मों का नाश करने के लिए भाव-यज्ञ करने वाला यज्ञार्थी, वेयसां—यज्ञों में, मुहं—मुख है, णवखत्ताण—नक्षत्रों में, चंदो—चन्द्रमा, मुहं—मुख्य है और, धम्माण—धर्म में, कासवो—काश्यप गोत्रीय भगवान् ऋषभदेव मुहं—प्रधान हैं, क्योंकि युग की आदि में धर्म की प्ररूपणा इन्हीं ने की थी ॥१६॥

जहा चंदं गहाइया, चिट्ठंति पंजलीउडा ।
वंदमाणा णमंसंता, उत्तमं मणहारिणो ॥१७॥

— जहा—जिस प्रकार, गहाइया—ग्रह-नक्षत्र आदि, चंदं—चन्द्रमा के सम्मुख, पंजलीउडा—हाथ जोड़ कर, वंदमाणा—स्तुति करते हुए, णमंसंता—नमस्कार करते हुए तथा, मणहारिणो—मन को हरण करते हुए, उत्तमं—अति विनम्र भाव से, चिट्ठंति—खड़े रहते हैं, उसी प्रकार इन्द्र, चक्रवर्ती आदि सभी देव और मनुष्य तीर्थंकर भगवान् को विनम्र भाव से नमस्कार करते हैं ॥१७॥

अजाणगा जण्णवाई, विज्जा-माहणसंपया ।
मूढा सज्झाय-तवसा, भासच्छण्णा इवग्गिणो ॥१८॥

— विज्जामाहण संपया—ब्रह्म विद्या रूपी ब्राह्मणों की सम्पत्ति को, अजाणगा—नहीं जानने वाले, सज्झायतवसा—स्वाध्याय और तप के विषय में, मूढा—मूढ (अज्ञानी) जण्णवाई—

यज्ञ करने वाले ये ब्राह्मण, **भासच्छण्णा अग्गिणो इव**—राख से दबी हुई अग्नि के समान हैं अर्थात् ये ऊपर से शान्त दिखाई देते हैं किन्तु इनका हृदय कषायों से जल रहा है ॥१८॥

जो लोए बंभणो वुत्तो, अग्गीव महिओ जहा ।
सया कुसल-संदिट्ठं, तं वयं बूम माहणं ॥१९॥

— तत्त्वज्ञ पुरुषों द्वारा, **जो**—जो **लोए**—लोक में, **बंभणो**—ब्राह्मण, **वुत्तो**—कहा गया है और जो, **अग्गीव जहा**—अग्नि के समान, **सया**—सदा, **महिओ**—पूजनीय होता है। **कुसल संदिट्ठं**—तत्त्वज्ञ पुरुषों द्वारा कहे गये, **तं**—उसे, **वयं**—हम, **माहणं**—ब्राह्मण, **बूम**—कहते हैं ॥१९॥

जो ण सज्जइ आगंतुं, पव्वयंतो ण सोयई ।
रमए अज्जवयणम्मि, तं वयं बूम माहणं ॥२०॥

— **जो**—जो, पुरुष, **आगंतुं**—स्वजनादि के समीप आने पर, **ण सज्जइ**—उनमें आसक्त नहीं होता है और, **पव्वयंतो**—स्वजनादि से पृथक् हो कर दूसरे स्थान जाता हुआ, **ण सोयई**—शोक नहीं करता किन्तु, **अज्जवयणम्मि**—तीर्थंकर देव के वचनों में, **रमए**—जो रमण करता है **तं**—उसे, **वयं**—हम, **माहणं**—ब्राह्मण, **बूम**—कहते हैं ॥२०॥

जायरूवं जहामट्ठं, णिद्धंतमल-पावगं ।
रागद्दोसभयाईयं, तं वयं बूम माहणं ॥२१॥

— णिद्धंतमलपावगं--पाप रूपी मल का नाश करके जो, जहामट्ठं—कसौटी पर कसे हुए एवं अग्नि में डाल कर शुद्ध किये हुए, जायरूवं—सोने के समान निर्मल है और जो, रागद्दोसभयाईयं--राग-द्वेष तथा भय से रहित है, तं--उसे, वयं--हम, माहणं--ब्राह्मण, बूम--कहते हैं ॥२१॥

तवस्सियं किसं दंतं, अवचिय-मंस-सोणियं ।
सुव्वयं पत्तणिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं ॥२२॥

— तवस्सियं--उग्र तप का आचरण कर जिसने, किसं-अपना शरीर कृश कर डाला है और, अवचियमंससोणियं--रक्त तथा मांस सूखा डाला है, दंतं--जिसने पांचों इन्द्रियों का दमन किया है, पत्तणिव्वाणं- कषायाग्नि को शान्त कर जो, सुव्वयं—श्रेष्ठ व्रत वाला है । तं--उसे, वयं--हम, माहणं--ब्राह्मण, बूम--कहते हैं ॥२२॥

तसे पाणे वियाणित्ता, संगहेण य थावरे ।
जो ण हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं ॥२३॥

— जो—जो, तसे—त्रस, य--और, थावरे—स्थावर, पाणे--प्राणियों को, संगहेण--संक्षेप में और विस्तार से भली प्रकार, वियाणित्ता--जान कर, तिविहेणं—तीन करण तीन योग से, ण हिंसइ--उनकी हिंसा नहीं करता तं--उसे, वयं-हम, माहणं--ब्राह्मण, बूम—कहते हैं ॥२३॥

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया ।
मुसं ण वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं ॥२४॥

— कोहा—क्रोध से जइ वा—अथवा हासा—हास्य से, लोहा—लोभ से, जइ वा—अथवा, भया—भय से जो—जो तीन करण तीन योग से, मुसं—झूठ ण वयई—नहीं बोलता, तं—उसे वयं—हम, माहणं—ब्राह्मण बूम—कहते हैं ॥२४॥

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
ण गिण्हइ अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं ॥२५॥

— चित्तमंतं अचित्तंवा—सचित्त अथवा अचित्त, वा—तथा, अप्पं—अल्पमूल्य वाली एवं अल्प परिमाण वाली, जइ वा—अथवा बहुं—बहु मूल्य वाली एवं बहु परिमाण वाली, अदत्तं—बिना दी हुई वस्तु को, जो—तीन करण तीन योग से, ण गिण्हइ—ग्रहण नहीं करता है, तं—उसको, वयं—हम, माहणं—ब्राह्मण, बूम—कहते हैं ॥२५॥

दिव्व-माणुस्स-तेरिच्छं, जो ण सेवेइ मेहुणं ।
मणसा काय-वक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥२६॥

— जो—जो, मणसा काय वक्केणं—मन, वचन, काया रूपी तीन योग तीन करण से दिव्वमाणुस्स तेरिच्छं—देव-मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी, मेहुणं—मैथुन का, ण सेवेइ-सेवन नहीं करता, तं—उसे, वयं—हम, माहणं—ब्राह्मण, बूम—कहते हैं ॥२६॥

जहा पोमं जले जायं, णोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२७॥

— जहा—जिस प्रकार, जले—पानी में, जायं—उत्पन्न होकर भी, पोम्मं—कमल, वारिणा—पानी से, णोवलिप्पइ—लिप्त नहीं होता, एवं—उसी प्रकार जो पुरुष, कामेहिं—कामभोगों से, अलित्तं—लिप्त नहीं होता, तं—उसे, वयं—हम, माहणं—ब्राह्मण, बूम—कहते है ॥२७॥

अलोलुयं मुहाजीविं, अणगारं अकिंचणं ।
असंसत्तं गिहत्थेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२८॥

— अलोलुयं—जो लोलुपता-रहित, मुहाजीविं—निस्पृह और निःस्वार्थ भाव से अज्ञात कुल से निर्दोष भिक्षा ग्रहण कर संयम जीवन बिताने वाला, अकिंचणं— परिग्रह-रहित, गिहत्थेहिं—गृहस्थों के, असंसत्तं—परिचय रहित, अणगारं—अनगार है तं—उसको, वयं—हम, माहणं—ब्राह्मण बूम—कहते हैं ।।२८।।

जहित्ता पुव्वसंजोगं, णाइसंगे य बंधवे ।
जो ण सज्जइ भोगेसु, तं वयं बूम माहणं ॥२९॥

— पुव्वसंजोगं—पूर्वसंयोग (माता-पितादि के संयोग) को, य—और, णाइसंगे—सास-ससुर आदि ज्ञाति-सम्बन्धीजनों के संयोग को तथा, बंधवे—बन्धुओं को, जहित्ता—छोड़ कर, जो—जो भोगेसु—कामभोगों में, ण सज्जइ—आसक्त नहीं होता, तं—उसे, वयं—हम, माहणं—ब्राह्मण, बूम—कहते हैं।

पसुबंधा सव्ववेया, जट्ठं च पावकम्मुणा ।
ण तं तायंति दुस्सीलं, कम्माणि बलवंति हि ।३०

— पसुबंधा—पशुवध का विधान करने वाले, सव्ववेया—सभी वेद, च—और, पावकम्मुणा—पाप-कर्मकारी, जट्ठं—यज्ञ, तं दुस्सीलं—हिंसादि कुकृत्यों में प्रवृत्ति करने वाले शील-रहित पुरुष की, ण तायंती—दुर्गति से रक्षा नहीं कर सकते, हि—क्योंकि, कम्माणि—कर्म, बलवंति—बड़े बलवान् होते हैं, वे अपना फल दिये बिना नहीं रहते ॥३०॥

ण वि मुंडिएण समणो, ण ओंकारेण बंभणो ।
ण मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण ण तावसो ।३१।

— मुंडिएण—मस्तक मुंडाने से, समणो—कोई श्रमण, ण वि—नहीं होता और, ओंकारेण—ओंकार का उच्चारण करने से, ण बंभणो—कोई ब्राह्मण नहीं होता, रण्णवासेणं—बन में निवास करने मात्र से, ण मुणी—कोई मुनि नहीं बन जाता और कुसचीरेण—वृक्षों की छाल पहनने से, ण तावसो—कोई तापस नहीं होता ॥३१॥

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
णाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥३२॥

— समयाए—समताभाव धारण करने से, समणो—श्रमण, होइ—होता है और, बंभचेरेण—ब्रह्मचर्य का पालन करने से, बंभणो—ब्राह्मण होता है। णाणेण—ज्ञान की आराधना करने से, मुणी—मुनि, होइ—होता है, य—और, तवेण—तप का सेवन करने से, तावसो—तपस्वी, होइ—होता है ।३२।

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥३३॥

— कम्मुणा--कर्म से, बंभणो—ब्राह्मण, होइ--होता है, कम्मुणा—कर्म से खत्तियो —क्षत्रिय, होइ--होता है, कम्मुणा-कर्म से, वइस्सो--वैश्य, होइ--होता है और, कम्मुणा--कर्म से, सुद्दो--शूद्र, हवइ--होता है ॥३३॥

एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ।
सव्वकम्म-विणिमुक्कं, तं वयं बूम माहणं ॥३४॥

— बुद्धे--तीर्थंकर देवों ने, एए—ये उपरोक्त अहिंसादि गुण, पाउकरे—बतलाये हैं, जेहिं—जिनका आचरण करने से मनुष्य क्रमशः सिणायओ—स्नातक अर्थात् केवलज्ञानी, होइ—हो जाता है और, सव्वकम्म विणिमुक्के—सभी कर्मों से मुक्त हो जाता है, तं--उसे, वयं--हम, माहणं—ब्राह्मण, बूम—कहते हैं ॥३४॥

एवं गुणसमाउत्ता, जे भवंति दिउत्तमा।
ते समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ॥३५॥

— एवं—इस प्रकार, गुणसमाउत्ता--उपरोक्त गुणों से युक्त, जे--जो, दिउत्तमा—उत्तम ब्राह्मण, भवंति--होते हैं, ते—वे, परमप्पाणमेव य—अपनी और दूसरों की आत्मा का, समुद्धत्तुं—उद्धार करने में, समत्था--समर्थ हैं ॥३५॥

— **पसुबंधा**—पशुवध का विधान करने वाले, **सव्ववेया**—सभी वेद, **च**—और, **पावकम्मुणा**—पाप-कर्मकारी, **जट्ठं**—यज्ञ, **तं दुस्सीलं**—हिंसादि कुकृत्यों में प्रवृत्ति करने वाले शील-रहित पुरुष की, **ण तायंती**—दुर्गति से रक्षा नहीं कर सकते, **हि**—क्योंकि, **कम्माणि**—कर्म, **बलवंति**—बड़े बलवान् होते हैं, वे अपना फल दिये बिना नहीं रहते ॥३०॥

ण वि मुंडिएण समणो, ण ओंकारेण बंभणो ।
ण मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण ण तावसो ।३१।

— **मुंडिएण**—मस्तक मुंडाने से, **समणो**—कोई श्रमण, **ण वि**—नहीं होता और, **ओंकारेण**—ओंकार का उच्चारण करने से, **ण बंभणो**—कोई ब्राह्मण नहीं होता, **रण्णवासेणं**—वन में निवास करने मात्र से, **ण मुणी**—कोई मुनि नहीं बन जाता और **कुसचीरेण**—वृक्षों की छाल पहनने से, **ण तावसो**—कोई तापस नहीं होता ॥३१॥

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
णाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥३२॥

— **समयाए**—समताभाव धारण करने से, **समणो**—श्रमण, **होइ**—होता है और, **बंभचेरेण**—ब्रह्मचर्य का पालन करने से, **बंभणो**—ब्राह्मण होता है। **णाणेण**—ज्ञान की आराधना करने से, **मुणी**—मुनि, **होइ**—होता है, **य**—और, **तवेण**—तप का सेवन करने से, **तावसो**—तपस्वी, **होइ**—होता है ।३२।

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥३३॥

— कम्मुणा--कर्म से, बंभणो—ब्राह्मण, होइ--होता है, कम्मुणा—कर्म से खत्तियो—क्षत्रिय, होइ--होता है, कम्मुणा-कर्म से, वइस्सो--वैश्य, होइ--होता है और, कम्मुणा--कर्म से, सुद्दो--शूद्र, हवइ--होता है ॥३३॥

एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ।
सव्वकम्म-विणिमुक्कं, तं वयं बूम माहणं ॥३४॥

— बुद्धे--तीर्थंकर देवों ने, एए—ये उपरोक्त अहिंसादि गुण, पाउकरे—बतलाये हैं, जेहिं—जिनका आचरण करने से मनुष्य क्रमशः सिणायओ—स्नातक अर्थात् केवलज्ञानी, होइ—हो जाता है और, सव्वकम्म विणिमुक्के—सभी कर्मों से मुक्त हो जाता है, तं--उसे, वयं--हम, माहणं—ब्राह्मण, बूम—कहते हैं ॥३४॥

एवं गुणसमाउत्ता, जे भवंति दिउत्तमा।
ते समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ॥३५॥

— एवं—इस प्रकार, गुणसमाउत्ता—उपरोक्त गुणों से युक्त, जे—जो, दिउत्तमा—उत्तम ब्राह्मण, भवंति--होते हैं, ते—वे, परमप्पाणमेव य—अपनी और दूसरों की आत्मा का, समुद्धत्तुं—उद्धार करने में, समत्था--समर्थ हैं ॥३५॥

एवं तु संसए छिण्णे, विजयघोसे य माहणे ।
समुदाय तओ तं तु, जयघोसं महामुणिं ॥३६॥

— एवं--इस प्रकार, संसए—संशय, छिण्णे--नष्ट हो जाने पर, विजयघोसे—विजयघोष, माहणे— ब्राह्मण ने, तयं-जयघोष मुनि की वाणी, समुदाय सुन कर और हृदय में, धारण कर, तं—यह जान लिया कि, जयघोसं—यह मेरा संसारावस्था का भाई जयघोष है, महामुणि—महामुनि है।३६।

तुट्ठे य विजयघोसे, इणमुदाहु कयंजली ।
माहणत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥३७॥

---विजयघोसे- विजयघोष, तुट्ठे—प्रसन्न हुआ, और कयंजली-हाथ जोड़ कर, इणं—इस प्रकार, उदाहु--कहने लगा कि हे मुने ? जहाभूयं--वास्तविक, माहणत्तं—ब्राह्मणत्व का स्वरूप आपने, मे—मुझे, सुट्ठु--भली प्रकार, उवदंसियं— समझाया है ॥३७॥

तुब्भे जइया जण्णाणं, तुब्भे वेयविऊ विऊ ।
जोइसंगविऊ तुब्भे, तुब्भे धम्माण पारगा ॥३८॥

— तुब्भे--वास्तव में आप ही, जण्णाणं— यज्ञ के, जइया—करने वाले हैं तुब्भे--आप ही, वेयविऊ--वेदों के ज्ञाता, विऊ--विद्वान हैं, तुब्भे--आप ही, जोइसंगविऊ--ज्योतिष शास्त्र एवं उसके अंग जानने वाले हैं और, तुब्भे--आप ही, धम्माण—धर्मों के, पारगा— पारगामी हैं ॥३८॥

तुब्भे समत्था उद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य।
तमणुग्गहं करेहम्हं, भिक्खेणं भिक्खुउत्तमा! ।३९।

— हे मुने! तुब्भे—आप, परमप्पाणमेव य—अपनी और दूसरों की आत्मा का, उद्धत्तुं—उद्धार करने में, समत्था—समर्थ हैं, तं—इसलिए, भिक्खु उत्तमा—हे भिक्षुओं में श्रेष्ठ भिक्षु! भिक्खेणं—भिक्षा ग्रहण कर के, अम्हं—हम पर, अणुग्गहं—अनुग्रह, करेह—कीजिये ।।३९।।

ण कज्जं मज्झ भिक्खेणं, खिप्पं णिक्खमसू दिया।
मा भमिहिसि भयावट्टे, घोरे संसार-सागरे ।।४०।।

— मुनि फरमाते हैं कि, दिया—हे द्विज! मज्झं—मुझे, भिक्खेण—भिक्षा से, ण कज्जं—प्रयोजन नहीं है, किन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम, खिप्पं—शीघ्र, णिक्खमसू—प्रव्रज्या स्वीकार करो। ऐसा करने से तुमको, भयावट्टे—भय रूप आवर्त्त वाले घोरे—घोर, संसार सागरे—संसार-सागर में, मा भमिहिसि—परिभ्रमण नहीं करना पड़ेगा ।।४०।।

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी णोवलिप्पइ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चइ ।।४१।।

— भोगेसु—भोगों को भोगने से, उवलेवो—कर्मों का बन्ध होइ—होता है और, अभोगी—भोगों का सेवन न करने वाला, णोवलिप्पइ—कर्मों से लिप्त नहीं होता। यही कारण है कि, भोगी—भोगी आत्मा, संसारे—संसार में, भमइ—

परिभ्रमण करता रहता है और, अभोगी—भोगों का त्याग करने वाला आत्मा, विप्पमुच्चइ--मुक्त हो जाता है ॥४१॥

उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोऽया मट्टियामया।
दो वि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सोऽत्थ लग्गई ।४२।

— उल्लो--गीले, य— और, सुक्को— सूखे, मट्टियामया- मिट्टी के, दो—दो, गोलया--गोलों को यदि, कुड्डे—भींत पर, छूढा--फेंका जाय तो, दो वि--वे दोनों, आवडिया—भींत से टकरायेंगे, अत्थ--उनमें, जो--जो, उल्लो--गीला होगा, सो— वह वहीं, लग्गई—चिपक जायगा ॥४२॥

एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे णरा कामलालसा।
विरत्ता उ ण लग्गंति, जहा से सुक्कगोलए ॥४३॥

— एवं--इसी प्रकार, जे—जो, दुम्मेहा--दुर्बुद्धि, णरा- पुरुष, कामलालसा— कामभोगों में आसक्त रहते हैं वे, लग्गंति- कर्मों से लिप्त हो कर संसार में फँसे रहते हैं, उ--और विरत्ता— जो विरक्त हैं, से—वे, जहा सुक्क गोलए--मिट्टी के सूखे गोले के समान, ण लग्गंति--कर्मों से लिप्त नहीं होते ॥

एवं से विजघोसे, जयघोसस्स, अंतिए ।
अणगारस्स णिक्खंतो, धम्मं सुच्चा अणुत्तरं ॥४४॥

— एवं--इस प्रकार, अणुत्तरं--श्रेष्ठ, धम्मं--धर्म, सुच्चा—सुन कर, से—उस, विजयघोसे--विजयघोस ब्राह्मण ने, जयघोसस्स—जयघोष, अणगारस्स--मुनि के, अंतिए--

समीप, णिक्खंतो—दीक्षा धारण कर ली ॥४४॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
जयघोस विजयघोसा, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥त्ति बेमि ॥

— संजमेण--संयम, य--और, तवेण-तप से, पुव्वकम्माइं—पूर्वकृत कर्मों का, खवित्ता--नाश कर के, जयघोस-विजयघोसा—जयघोष और विजयघोष दोनों मुनि, अणुत्तरं—प्रधान, सिद्धि--सिद्ध गति को, पत्ता—प्राप्त हुए ॥४५॥ त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ पच्चीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

'समाचारी छब्बीसवाँ अध्ययन

सामायारिं पवक्खामि, सव्व-दुक्ख-विमोक्खणिं ।
जं चरित्ताण णिग्गंथा, तिण्णा संसार-सागरं ॥१॥

— सव्वदुक्ख विमोक्खणिं— सभी दुःखों से छुड़ाने वाली, सामायारिं--समाचारी, पवक्खामि —कहूँगा, जं--जिसका, चरित्ताण--सेवन करके, णिग्गंथा-- अनेक निर्ग्रन्थ मुनि, संसारसागरं-- संसारसागर को, तिण्णा--तिर गये हैं । —१

प्रकार इसका सेवन करके अनेक निर्ग्रन्थ मुनि वर्तमान काल में संसारसागर से पार हो रहे हैं और आगामी काल में भी पार होंगे ॥१॥

पढमा आवस्सिया णामं, बिइया य णिसीहिया।
आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥२॥
पंचमी छंदणा णामं, इच्छाकारो य छट्ठओ।
सत्तमो मिच्छाकारो य, तहक्कारो य अट्ठमो ॥३॥
अब्भुट्ठाणं च णवमं, दसमी उवसंपया।
एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेइया ॥४॥

— अब दस समाचारी के नाम कहे जाते हैं। यथा—पढमा—पहली, आवस्सिया—आवश्यकी, णामं—नाम वाली है, य—और, बिइया—दूसरी, णिसीहिया—नैषेधिकी, तइया—तीसरी, आपुच्छणा—आपृच्छना, य—और, चउत्थी—चौथी, पडिपुच्छणा—प्रतिपृच्छना है। पंचमी—पांचवीं, छंदणा णामं—छंदना नाम की, य—और, छट्ठओ—छठी, इच्छाकारो—इच्छाकार, य—और सत्तमो—सातवीं, मिच्छाकारो—मिथ्याकार, य—और, अट्ठमो—आठवीं, तहक्कारो—तथाकार है। णवमं—नवमी, अब्भुट्ठाणं—अभ्युत्थान, च—और, दसमी—दसवीं, उवसंपया—उपसंपदा है, एसा—यह, साहूणं—साधुओं की, दसंगा—दस प्रकार की, सामायारी—समाचारी, पवेइया—तीर्थंकर भगवान् ने फरमाई है ॥२-३-४॥

गमणे आवस्सियं कुज्जा, ठाणे कुज्जा णिसीहियं।
आपुच्छणा सयंकरणे, परकरणे पडिपुच्छणा ॥५॥

— गमणे--बाहर जाने में, आवस्सियं--आवश्यकी समाचारी, कुज्जा--करे अर्थात् आवश्यक कार्य के लिए अपने स्थान से बाहर जाते समय साधु को 'आवस्सिया आवस्सिया' कहना चाहिए अर्थात् मैं आवश्यक कार्य के लिए जाता हूँ। ठाणे—स्थान में, णिसीहियं--नैषेधिकी समाचारी, कुज्जा--करे, अर्थात् बाहर से लौट कर अपने स्थान में प्रवेश करते समय साधु को 'णिसीहिया णिसीहिया' कहना चाहिए (अब मैं बाहर के कार्यों से निवृत्त हो गया हूँ) सयंकरणे--स्वयं कार्य करने के लिए, आपुच्छणा—आपृच्छना समाचारी करनी चाहिए अर्थात् किसी भी कार्य में प्रवृत्ति करने से पहले गुरु से पूछना कि 'क्या मैं यह कार्य करूँ?' इत्यादि। परकरणे—दूसरे मुनियों का कार्य करने के लिए, पडिपुच्छणा-प्रतिपृच्छना समाचारी करनी चाहिए अर्थात् दूसरे मुनि का जो कार्य करने के लिए गुरु ने पहले आज्ञा फरमाई हो उस कार्य में प्रवृत्ति करते समय गुरु महाराज से फिर पूछना कि 'हे भगवन्! मैं अमुक मुनि का अमुक कार्य करूँ?' इस प्रकार पूछना प्रतिपृच्छना है। फिर से पूछने का अभिप्राय यह है कि कदाचित् वह कार्य किसी दूसरे मुनि ने कर दिया हो अथवा इस समय गुरु किसी दूसरे कार्य के लिए आज्ञा प्रदान करें' इसलिए प्रतिपृच्छना समाचारी का सेवन करना चाहिए।५।

छंदणा दव्वजाएणं, इच्छाकारो य सारणे।
मिच्छाकारो य णिंदाए, तहक्कारो पडिस्सुए।६।

— **दव्वजाएण**--अशन-पान-खादिम-स्वादिम आदि के लिए दूसरे साधुओं को निमंत्रण देना, **छंदणा**--छंदना समाचारी है जैसे—यदि आपके उपयोग में आ सके तो इस आहार में से ग्रहण कीजिये, **य**--और, **सारणे**--स्वयं कार्य करने में अथवा दूसरों से कोई कार्य करवाने में, **इच्छाकारो**--इच्छाकार समाचारी की जाती है जैसे--'हे भगवन्! यदि आपकी इच्छा हो तो आप मुझे ज्ञानादि दे कर मुझ पर उपकार करें' इस प्रकार पूछना 'इच्छाकार' समाचारी है। **णिंदाए**--कोई दोष लग जाने पर आत्म-निंदा करना, **मिच्छाकारो**--'मिथ्याकार' समाचारी है। यदि साधुवृत्ति से विपरीत आचरण हो गया हो तो उसके लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' देना, पश्चात्ताप करना तथा आत्मनिन्दा करना कि 'मेरी आत्मा को धिक्कार हो जो मैंने अमुक अकार्य किया,' यह मिथ्याकार समाचारी कहलाती है, **य**--और, **पडिस्सुणे**--गुरुमहाराज के वचनों को सुन कर, **तहक्कारो**—'तहत्ति' या 'तथास्तु' कहना 'तथाकार' समाचारी है ॥६॥

अब्भुट्ठाणं गुरुपूया, अच्छणे उवसंपया।
एवं दुपंचसंजुत्ता, सामायारी पवेइया ॥७॥

— **गुरुपूया**—गुरु महाराज एवं अपने से बड़े साधुओं की

विनय-भक्ति करना तथा बाल, वृद्ध और ग्लान साधुओं को यथोचित आहार औषधि आदि ला कर देना, अब्भुट्ठाणं—'अभ्युत्थान' नाम की समाचारी है और, अच्छणे—ज्ञानादि के लिए अन्य गच्छ के आचार्य के पास रहना, उवसंपया—'उपसंपदा' समाचारी है एवं—इस प्रकार, दुपंचसंजुत्ता—दस प्रकार की, सामायारी—समाचारी, पवेइया—कही गई है ॥७॥

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, आइच्चम्मि समुट्ठिए ।
भंडयं पडिलेहित्ता, वंदित्ता य तओ गुरुं ॥८॥

पुच्छिज्ज पंजलिउडो, किं कायव्वं मए इह ।
इच्छं णिओइउं भंते, ! वेयावच्चे व सज्झाए ॥९॥

— आइच्चम्मि—सूर्य के, समुट्ठिए—उदय होने पर, पुव्विल्लम्मि—प्रथम प्रहर के, चउब्भाए—चौथे भाग में, भंडयं—भंडोपकरण की, पडिलेहित्ता—प्रतिलेखना करे, तओ-उसके बाद, गुरुं—गुरु महाराज को, वंदित्ता—वंदना कर के, पंजलिउडो—हाथ जोड़ कर, पुच्छिज्ज—पूछे कि, भंते—'हे भगवन् ! इह—इस समय, मए—मुझे, किं—क्या, कायव्वं—करना चाहिए ? सज्झाए—स्वाध्याय और, वेयावच्चे—वैयावृत्य, इन दोनों में से किस कार्य में, णिओइउं—आप मुझे, नियुक्त करना चाहते हैं ? इच्छं—आपकी इच्छानुसार आज्ञा दीजिये' ॥८-९॥

छंदणा दव्वजाएणं, इच्छाकारो य सारणे।
मिच्छाकारो य णिंदाए, तहक्कारो पडिस्सुए ।६।

— दव्वजाएण--अशन-पान-खादिम-स्वादिम आदि के लिए दूसरे साधुओं को निमंत्रण देना, **छंदणा**--छंदना समाचारी है जैसे—यदि आपके उपयोग में आ सके तो इस आहार में से ग्रहण कीजिये, **य**--और, **सारणे**--स्वयं कार्य करने में अथवा दूसरों से कोई कार्य करवाने में, **इच्छाकारो**--इच्छाकार समाचारी की जाती है जैसे--'हे भगवन् ! यदि आपकी इच्छा हो तो आप मुझे ज्ञानादि दे कर मुझ पर उपकार करें' इस प्रकार पूछना 'इच्छाकार' समाचारी है। **णिंदाए**--कोई दोष लग जाने पर आत्म-निंदा करना, **मिच्छाकारो**--'मिथ्याकार' समाचारी है। यदि साधुवृत्ति से विपरीत आचरण हो गया हो तो उसके लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' देना, पश्चात्ताप करना तथा आत्मनिन्दा करना कि 'मेरी आत्मा को धिक्कार हो जो मैंने अमुक अकार्य किया,' यह मिथ्याकार समाचारी कहलाती है, **य**--और, **पडिस्सुणे**--गुरुमहाराज के वचनों को सुन कर, **तहक्कारो**—'तहत्ति' या 'तथास्तु' कहना 'तथाकार' समाचारी है ॥६॥

अब्भुट्ठाणं गुरुपूया, अच्छणे उवसंपया।
एवं दुपंचसंजुत्ता, सामायारी पवेइया ॥७॥

— **गुरुपूया**—गुरु महाराज एवं अपने से बड़े साधुओं की

विनय-भक्ति करना तथा बाल, वृद्ध और ग्लान साधुओं को यथोचित आहार औषधि आदि ला कर देना, अब्भुट्ठाणं— 'अभ्युत्थान' नाम की समाचारी है और, अच्छणे--ज्ञानादि के लिए अन्य गच्छ के आचार्य के पास रहना, उवसंपया— 'उपसंपदा' समाचारी है एवं--इस प्रकार, दुपंचसंजुत्ता— दस प्रकार की, सामायारी— समाचारी, पवेइया— कही गई है ॥७॥

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, आइच्चम्मि समुट्ठिए ।
भंडयं पडिलेहित्ता, वंदित्ता य तओ गुरुं ॥८॥

पुच्छिज्ज पंजलिउडो, किं कायव्वं मए इह ।
इच्छं णिओइउं भंते, ! वेयावच्चे व सज्झाए ॥९॥

— आइच्चम्मि —सूर्य के, समुट्ठिए—उदय होने पर, पुव्विल्लम्मि--प्रथम प्रहर के, चउब्भाए—चौथे भाग में, भंडयं—भंडोपकरण की, पडिलेहित्ता—प्रतिलेखना करे, तओ- उसके बाद, गुरुं—गुरु महाराज को, वंदित्ता—वंदना कर के, पंजलिउडो--हाथ जोड़ कर, पुच्छिज्ज—पूछे कि, भंते--'हे भगवन् ! इह—इस समय, मए—मुझे, किं--क्या, कायव्वं-- करना चाहिए ? सज्झाए—स्वाध्याय और, वेयावच्चे—वैयावृत्य, इन दोनों में से किस कार्य में, णिओइउं—आप मुझे, नियुक्त करना चाहते हैं ? इच्छं—आपकी इच्छानुसार आज्ञा दीजिये' ॥८-९॥

वेयावच्चे णिउत्तेणं, कायव्व-मगिलायओ।
सज्झाए वा णिउत्तेणं, सव्वदुक्ख विमोक्खणे ।१०।

— वेयावच्चे—वैयावृत्य में, णिउत्तेणं--नियुक्त साधु को चाहिए कि वह, अगिलायओ--बिना ग्लानि के, कायव्वं—वैयावृत्य करे, वा—अथवा, सज्झाए—स्वाध्याय में, णिउत्तेणं-नियुक्त साधु को चाहिए कि, सव्व दुक्ख विमोक्खणे—समस्त दुःखों से मुक्त कराने वाली स्वाध्याय में दत्तचित्त हो कर लग जाय ॥१०॥

दिवसस्स चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसुवि ॥११॥

— वियक्खणो--विचक्षण, भिक्खू--साधु, दिवसस्स—दिन के, चउरो--चार, भागे--भाग, कुज्जा--करे, तओ—इसके बाद दिणभागेसु चउसु वि—दिन के चारों भागों में, उत्तर गुणे--उत्तरगुणों का, कुज्जा—सेवन करें (स्वाध्यायादि करे) ॥११॥

पढमं पोरिसि सज्झायं, बीयं झाणं झियायई।
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीइ सज्झायं ।१२।

— पढमं—प्रथम, पोरिसि--पहर में, सज्झायं--स्वाध्याय करे, बीयं--दूसरे पहर में, झाणं—ध्यान, झियायई--करे, तइयाए—तीसरे पहर में, भिक्खायरियं--भिक्षाचर्या करे और, चउत्थीइ—चौथे पहर में, पुणो--पुनः, सज्झायं—स्वाध्याय करे ॥१२॥

आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया।
चित्तासोएसु मासेसु, तिप्पया हवइ पोरिसि ।१३।

— आसाढे--आषाढ़, मासे—मास में, दुपया--दो पाँव जितनी, पोसे—पौष, मासे--मास में, चउप्पया--चार पाँव और, चित्तासोएसु--चैत्र और आसोज, मासेसु--मासों में, तिप्पया—तीन पाँव की, पोरिसी--पोरिसी, हवइ—होती है ॥१३॥

अंगुलं सत्तरत्तेणं, पक्खेणं च दुरंगुलं।
वड्ढए हायए वावि, मासेणं चउरंगुलं ॥१४॥

— ऊपर की गाथा में चार महीनों में पोरिसी का परिमाण बताया गया है। शेष आठ महीनो का परिमाण बतलाया जाता है:— सत्तरत्तेणं—प्रत्येक सात दिन-रात में, अंगुलं—एक-एक अंगुल च—और, पक्खेणं--पक्ष, (पन्द्रह दिनों) में, दुरंगुलं-दो-दो अंगुल और, मासेणं- प्रत्येक मास में, चउरंगुलं—चार-चार अंगुल छाया, वड्ढए हायए वावि--बढ़ती और घटती है ‡ ॥१४॥

आसाढ-बहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य।
फग्गुण-वइसाहेसु य, बोद्धव्वा ओमरत्ताओ ॥१५॥

‡ बारह महीनों में पोरिसी के परिमाण का टीकानुसार विस्तृत खुलासा 'श्री जैन सिद्धान्त बोलसंग्रह' चौथे भाग में नं. ८०३ में देखना चाहिए।

—— आसाढ—— आषाढ़, भद्दवए—— भाद्रपद, कत्तिए—कार्तिक, य——और, पोसे——पौष, य—तथा, फग्गुण वइसाहेसु य—फाल्गुन और वैशाख, इन सब महीनों के, बहुलपक्खे——कृष्ण-पक्ष में, ओमरत्ताओ—एक-एक तिथि घटती है. बोद्धव्वा—ऐसा जानना चाहिए अर्थात उपरोक्त महीनों का कृष्णपक्ष १४ दिन का होता है ॥१५॥

जेट्ठामूले आसाढ-सावणे, छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा ।
अट्ठहिं बीयतयम्मि, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥१६॥

— जेट्ठामूले—जेठ, आसाढसावणे——आसाढ़ और श्रावण मास में पोरिसी का जो परिमाण कहा गया है उसमें, छहिं——छह, अंगुलेहिं—अंगुल और मिला देने से, पडिलेहा——प्रतिलेखना का समय होता है, बीयतयम्मि—— दूसरे त्रिक में (भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक में) पोरिसी के परिमाण में, अट्ठहिं—आठ अंगुल मिलाने से और, तइए——तीसरे त्रिक (मार्गशीर्ष पौष और माघ मास) में, दस——दस अंगुल मिलाने से तथा, चउत्थे——चौथे त्रिक (फाल्गुन, चैत्र और वैशाख मास) में, अट्ठहिं——आठ अंगुल मिलाने से प्रतिलेखना का समय होता है ॥१६॥

भावार्थः— यदि पौन पोरिसी का परिमाण जानना हो तो पहले बताई हुई पोरिसी की छाया में नीचे लिखे अनुसार अंगुल मिला देने चाहिए— जेठ, आषाढ़ और श्रावण मास में छह

अंगुल, मार्गशीर्ष, पौष और माघ में दस अंगुल, फाल्गुन, चैत्र और वैशाख में आठ अंगुल। इस प्रकार छाया बढ़ाने से पौन पोरिसी निकल आती है। इस समय वस्त्र-पत्रादि की प्रतिलेखना करे।

रत्तिं पि चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, राइभागेसु चउसु वि ॥१७॥

– वियक्खणो–विचक्षण, भिक्खू--साधु, रत्तिं पि–रात्रि के भी, चउरो--चार, भागे--भाग कुज्जा–करे, तओ–उसके बाद, राइभागेसु चउसु वि--रात्रि के चारों ही भागों में, उत्तरगुणे–उत्तर-गुणों की, कुज्जा--वृद्धि करे अर्थात् प्रत्येक पोरिसी में उसके योग्य स्वाध्यायादि करके अपने गुणों की वृद्धि करे।१७।

पढमं पोरिसी सज्झायं, बीयं झाणं झियायई।
तइयाए णिद्दमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ॥

— पढमं—पहले, पोरिसी--पहर में, सज्झायं--स्वाध्याय करे, बीयं—दूसरे पहर में, झाणं--ध्यान, झियायई—करे,-तु--और, तइयाए—तीसरे पहर में, णिद्दमोक्खं--निद्रा को मुक्त करे और चउत्थी—चौथे पहर में, भुज्जो वि--फिर, सज्झायं--स्वाध्याय करे ॥१८॥

जं णेइ जया रत्तिं, णक्खत्तं तम्मि णहचउब्भाए।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झायं पओसकालम्मि ॥१९॥

— जया--जब, जं--जो णक्खत्तं—नक्षत्र, रत्तिं—रात्रि को, णेइ—समाप्त करता है अर्थात् जो नक्षत्र सारी रात उदित रह कर सूर्योदय के समय अस्त होता है, तम्मि—उस नक्षत्र के, णहचउब्भाए—आकाश के चौथे भाग में, संपत्ते—प्राप्त होने पर, पओसकालम्मि--प्रदोष काल में, सज्झायं—स्वाध्याय से, विरमेज्जा —निवृत्त हो जावे ॥१९॥

भावार्थ-जिस काल में जो-जो नक्षत्र सारी रात तक उदित रहते हों, वे नक्षत्र जब आकाश के चौथे भाग पर पहुँचें तब रात्रि का एक पहर गया ऐसा समझना चाहिए। उस समय स्वाध्याय बन्द कर देने चाहिए।

तम्मेव य णक्खत्ते, गयणचउभागसावसेसम्मि।
वेरत्तियं पि कालं, पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा।२०।

— तम्मेव—उसी, णक्खत्ते—नक्षत्र के अर्थात् जो नक्षत्र रात्रि को पूर्ण करता है जब वह, गयणचउब्भाग-सावसेसम्मि--आकाश के चतुर्थ भाग के चौथे भाग पर आ जाय तब, मुणी—मुनि, वेरत्तियं पि-- वैरात्रिक कालं—काल, पडिलेहित्ता--देख कर, कुज्जा—प्रतिक्रमण करे ॥२०॥

भावार्थ—जो नक्षत्र सारी रात उदित रहता है वह चलते-चलते आकाश का केवल चौथा भाग शेष रहे वहाँ, (चौथी पोरिसी में) आ पहुँचे तब समझना चाहिए कि अब पहर रात्रि शेष है और उसी समय स्वाध्याय में लग जाना चाहिए।

उस पोरिसी के चौथे भाग में (दो घड़ी रात शेष रहने पर) मुनि को प्रतिक्रमण करना चाहिए।

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, पडिलेहित्ताण भंडयं।
गुरुं वंदित्तु सज्झायं, कुज्जा दुक्खविमोक्खणं।२१।

— साधु का दैनिक कर्त्तव्य—पुव्विल्लम्मि—पहले पहर के, चउब्भाए—चौथे भाग में, भंडयं—भण्डोपकरणों को, पडिलेहित्ताणं—प्रतिलेखना करके, गुरु—गुरु को, वंदित्तु—वन्दना करे फिर, दुक्ख-विमोक्खणं—सभी दु:खों से मुक्त कराने वाली, सज्झायं—स्वाध्याय, कुज्जा—करे ॥२१॥

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं।
अपडिक्कमित्ता कालस्स, भायणं पडिलेहए ॥२२॥

— पोरिसीए—पहले पहर के, चउब्भाए—चौथे भाग में (जब पौन पोरिसी हो जाय), तओ—तब, गुरुं—गुरु महाराज को, वंदित्ताण—वन्दना कर के, कालस्स—स्वाध्याय-काल से, अपडिक्कमित्ता—निवृत्त न हो कर, भायणं—पात्रों को, पडिलेहए—प्रतिलेखना करे ॥२२॥

भावार्थ—प्रथम पहर स्वाध्याय का समय है, उसमें जब दो घड़ी शेष रहे, तब उसे छोड़ कर स्वाध्याय के लिए जो चौदह अतिचारों का ध्यान किया जाता है, उसे न करके (क्योंकि फिर स्वाध्याय करना है) पात्रों की प्रतिलेखना करने में लग जाना चाहिए।

— जया--जब, जं--जो णक्खत्तं—नक्षत्र, रत्तिं—रात्रि को, णेइ—समाप्त करता है अर्थात् जो नक्षत्र सारी रात उदित रह कर सूर्योदय के समय अस्त होता है, तम्मि—उस नक्षत्र के, णहचउब्भाए—आकाश के चौथे भाग में, संपत्ते—प्राप्त होने पर, पओसकालम्मि--प्रदोष काल में, सज्झायं—स्वाध्याय से, विरमेज्जा—निवृत्त हो जावे ॥१९॥

भावार्थ-जिस काल में जो-जो नक्षत्र सारी रात तक उदित रहते हों, वे नक्षत्र जब आकाश के चौथे भाग पर पहुँचें तब रात्रि का एक पहर गया ऐसा समझना चाहिए। उस समय स्वाध्याय बन्द कर देने चाहिए।

तम्मेव य णक्खत्ते, गयणचउब्भागसावसेसम्मि।
वेरत्तियं पि कालं, पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा।२०।

— तम्मेव—उसी, णक्खत्ते—नक्षत्र के अर्थात् जो नक्षत्र रात्रि को पूर्ण करता है जब वह, गयणचउब्भाग-सावसेसम्मि--आकाश के चतुर्थ भाग के चौथे भाग पर आ जाय तब, मुणी—मुनि, वेरत्तियं पि-- वैरात्रिक कालं—काल, पडिलेहित्ता--देख कर, कुज्जा—प्रतिक्रमण करे ॥२०॥

भावार्थ—जो नक्षत्र सारी रात उदित रहता है वह चलते-चलते आकाश का केवल चौथा भाग शेष रहे वहाँ, (चौथी पोरिसी में) आ पहुँचे तब समझना चाहिए कि अब पहर रात्रि शेष है और उसी समय स्वाध्याय में लग जाना चाहिए।

उस पोरिसी के चौथे भाग में (दो घड़ी रात शेष रहने पर) मुनि को प्रतिक्रमण करना चाहिए।

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, पडिलेहित्ताण भंडयं।
गुरुं वंदित्तु सज्झायं, कुज्जा दुक्खविमोक्खणं।२१।

— साधु का दैनिक कर्त्तव्य—पुव्विल्लम्मि—पहले पहर के, चउब्भाए—चौथे भाग में, भंडयं—भण्डोपकरणों को, पडिलेहित्ताणं—प्रतिलेखना करके, गुरु—गुरु को, वंदित्तु—वन्दना करे फिर, दुक्ख-विमोक्खणं—सभी दुःखों से मुक्त कराने वाले, सज्झायं—स्वाध्याय, कुज्जा—करे ॥२१॥

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं।
अपडिक्कमित्ता कालस्स, भायणं पडिलेहए ॥२२॥

— पोरिसीए—पहले पहर के, चउब्भाए—चौथे भाग में (जब पौन पोरिसी हो जाय), तओ—तब, गुरुं—गुरु महाराज को, वंदित्ताण—वन्दना कर के, कालस्स—स्वाध्याय-काल से, अपडिक्कमित्ता—निवृत्त न हो कर, भायणं—पात्रों की, पडिलेहए—प्रतिलेखना करे ॥२२॥

भावार्थ—प्रथम पहर स्वाध्याय का समय है, उसमें जब दो घड़ी शेष रहे, तब उसे छोड़ कर स्वाध्याय के लिए जो चौदह अतिचारों का ध्यान किया जाता है, उसे न करके (क्योंकि फिर स्वाध्याय करना है) पात्रों की प्रतिलेखना करने में लग जाना चाहिए।

मुहपत्तिं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं।
गोच्छगलइयंगुलिओ, वत्थाइं पडिलेहए ॥२३॥

— साधु, मुहपत्तिं—मुखवस्त्रिका की, पडिलेहित्ता—प्रतिलेखना करे फिर, गोच्छगलइयंगुलिओ—रजोहरण को हाथ की अंगुलियों में ले कर, गोच्छगं—रजोहरण की, पडिलेहिज्ज— प्रतिलेखना करे। तत्पश्चात्, वत्थाइं—वस्त्रों की, पडिलेहए—प्रतिलेखना करे ॥२३॥

उड्ढं थिरं अतुरियं पुव्विं ता वत्थमेव पडिलेहे।
तो बिइयं पप्फोडे, तइयं च पुणो पमज्जिज्जा ॥२४॥

— प्रतिलेखना करने की विधि, उड्ढं—उत्कटुक आसन से बैठ कर वस्त्र को भूमि से ऊँचा रखते हुए थिरं—स्थिरता एवं दृढ़तापूर्वक वस्त्र को पकड़ कर, अतुरियं—शीघ्रता न करते हुए, पुव्विं—पहले, ता—तो, वत्थमेव—वस्त्र की, पडिलेहे—प्रतिलेखना करे, तो—उसके बाद, बीयं—दूसरी बार, पप्फोडे—यतना से वस्त्र को खंखेरे (धीरे-धीरे झड़कावे) च—और, पुणो—फिर, तइयं—तीसरी बार, पमज्जिज्जा—यतनापूर्वक पूंजे ॥२४॥

अणच्चावियं अवलियं, अणाणुबंधि अमोसलिं चेव।
छप्पुरिमा णवखोडा, पाणीपाणि-विसोहणं ॥२५॥

— अप्रमाद प्रतिलेखना के छः भेद कहते हैं:—

१ अणच्चावियं—प्रतिलेखना करते समय शरीर और वस्त्र को नचावे नही। २- अवलियं--वस्त्र कहीं से भी मुड़ा हुआ न रहे और प्रतिलेखन करने वाला भी शरीर बिना मोड़े सीधा बैठे। ३- अणाणुबंधि--वस्त्र को जोर से नहीं झड़के। ४- अमोसलि – वस्त्र को ऊपर, नीचे या तिर्छे दीवाल आदि से न लगावे। ५- छप्पुरिमा णवखोडा--प्रतिलेखना में छः पुरिम और नवखोड करने चाहिए। वस्त्र के दोनों हिस्सों को तीन-तीन बार खंखेरना 'छपुरिम' कहलाता है और वस्त्र को तीन-तीन बार पूंज कर तीन बार शोधना 'नवखोड' कहलाता है। चेव--और, ६- पाणीपाणि विसोहणा--वस्त्रादि पर चलता हुआ यदि को जीव दिखाई दे, तो उसको अपनी हथेली पर उतार कर रक्षण करना चाहिए ॥२५॥

आरभडा सम्मद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली तइया।
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठी ॥२६॥

— प्रमादपूर्वक की जाने वाली प्रतिलेखना 'प्रमाद प्रतिलेखना' कहलाती है। वह छः प्रकार की है:-- १- आरभडा--विपरीत रीति से या उतावल के साथ प्रतिलेखना करना अथवा एक वस्त्र की प्रतिलेखना अधरी छोड़ कर दूसरे वस्त्र की प्रतिलेखना करने लग जाना 'आरभटा' प्रतिलेखना है। २ सम्मद्दा—वस्त्र के कोने मुड़े ही रहें (सल न निकाले जायँ) वह 'सम्मर्दा' प्रतिलेखना है अथवा उपकरणों के ऊपर बैठ कर प्रतिलेखना करना सम्मर्दा प्रतिलेखना है, य—और,

३ तइया--तीसरी, मोसली --वस्त्र को ऊपर नीचे और तिरछे दीवाल आदि पर लगाना 'मोसली' प्रतिलेखना है। ४ चउत्थी-चौथी, पप्फोडणा--जिस प्रकार धूल से भरे हुए वस्त्र को जोर से झड़काया जाता है उसी प्रकार वस्त्र को जोर से झड़काना 'प्रस्फोटना' प्रतिलेखना है। ५ विक्खित्ता—प्रतिलेखना किये हुए वस्त्रों को बिना प्रतिलेखना किये हुए वस्त्रों में मिला देना अथवा प्रतिलेखना करते समय वस्त्र के पल्ले आदि को ऊपर की ओर फेंकना 'विक्षिप्ता' प्रतिलेखना है और ६ छट्ठी—छठी, वेइया--प्रतिलेखना करते समय घुटनों के ऊपर नीचे और पसवाड़े हाथ रखना अथवा दोनों घुटनों को या एक घुटने को भुजाओं के बीच रखना 'वेदिका' प्रतिलेखना है। ये अप्रशस्त प्रतिलेखनाएँ हैं, इसलिए, वज्जेयव्वा--इनका त्याग कर देना चाहिए ॥२६॥

पसिढिलपलंबलोला, एगामोसा अणेगरूवधुणा ।
कुणइ पमाणि पमायं, संकिय गणणोवगं कुज्जा ।२७।

— प्रमाद प्रतिलेखना के छः भेद आगे बताये हैं। इस गाथा में सात भेद और बताये जाते हैं—१ पसिढिल--वस्त्र को दृढ़ता से न पकड़ना, २ पलंब--वस्त्र को दूर रख कर प्रतिलेखना करना, ३ लोला—वस्त्र को भूमि के साथ रगड़ना, ४ एगामोसा--एक ही दृष्टि में तमाम वस्त्र को देख जाना, ५ अणेगरूवधुणा—प्रतिलेखना करते समय शरीर और वस्त्र को इधर-उधर हिलाना, ६ पमाणि पमायं कुणइ--प्रतिलेखना

में नवखोड़ा आदि का जो परिमाण बतलाया गया है, उसमें उपयोग न रखते हुए प्रतिलेखना करना। ७- संकिय गणणोवगं कुज्जा—प्रतिलेखना करते समय यदि शंका उत्पन्न हो जाय तो अंगुलियों पर गिनने लगना और उससे उपयोग का चूक जाना तथा ध्यान अन्यत्र चला जाना। ये सब अप्रस्त प्रति-लेखनाएँ हैं। मुनि को इनका त्याग करके शास्त्रोक्त विधि के अनुसार प्रतिलेखना करना चाहिए ॥२७॥

अणुणाइरित्त-पडिलेहा, अविवच्चासा तहेव य ।
पढमं पयं पसत्थं, सेसाणि उ अप्पसत्थाइं ॥२८॥

— पडिलेहा—प्रतिलेखना के विषय में, अणुणाइरित्त—शास्त्रोक्त विधि से कम न करना, अधिक न करना, तहेव य—और, अविवच्चासा—विपरीत न करना, पढमं—यह पहला, पयं—भंग, पसत्थं—प्रशस्त (शुद्ध) है, उ—और, सेसाणि—शेष भांगे, अप्पसत्थाइं—अप्रशस्त हैं ॥२८॥

भावार्थ— प्रतिलेखना के त्रिसंयोगी आठ भंग होते हैं। शास्त्रोक्त विधि से न कम, न अधिक और न विपरीत, यह पहला भंग शुद्ध है। इसी के अनुसार साधु को प्रतिलेखना करनी चाहिए। शेष सात भंग अशुद्ध हैं। उन्हें त्याग देना चाहिए।

पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवय-कहं वा।
देइ व पच्चक्खाणं, वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥२९॥

पुढवी-आउक्काए,-तेऊ-वाउ वणस्सइ-तसाणं ।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हं पि विराहओ होइ ॥३०॥

— पडिलेहणं--प्रतिलेखना, कुणंतो—करता हुआ जो साधु, मिहो— आपस में, कहं-- कथा-वार्तालाप, कुणइ—करता है, वा--अथवा, जणवयकहं—देशकथा आदि करता है, पच्चक्खणं--दूसरे को पच्चक्खाण, देइ--कराता है, व—अथवा, वाएइ—दूसरे को वाचना देता है (पढ़ाता है) वा--अथवा, सयं—स्वयं, पडिच्छइ—वाचना लेता (पढ़ता) है वह, पडिलेहणापमत्तो— प्रतिलेखना में प्रमाद करने के दोष का भागी होता है । इस प्रकार प्रमत्तभावपूर्वक प्रतिलेखना करने वाला साधु पुढवी--पृथ्वीकाय, आउक्काए-अप्काय तेऊ-तेउकाय, वाऊ—वायुकाय, वणस्सइ---वनस्पति-काय और, तसाणं—त्रसकाय, छण्हं--इन छहों कायों का, विराहओ—विराधक, होइ--होता है ॥२९-३०॥

पुढवी-आउक्काए, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं ।
पडिलेहणा आउत्तो, छण्हं संरक्खओ होइ ॥३१॥

— पडिलेहणा आउत्तो--प्रतिलेखना में उपयोग रखने वाला साधु, पुढवी---पृथ्वीकाय, आउक्काए—अप्काय, तेऊ--तेउकाय, वाऊ--वायुकाय, वणस्सइ---वनस्पतिकाय और, तसाणं—त्रसकाय, इन, छण्हं संरक्खओ--छहों काय का संरक्षक, एवं आराधक, होइ—होता है ॥३१॥

तइयाए पोरिसीए, भत्तं पाणं गवेसए ।
छण्हं अण्णयराए, कारणम्मि समुट्ठिए ॥३२॥

— दूसरी पोरिसी में ध्यान करना चाहिए, तइयाए—तीसरी, पोरिसीए—पोरिसी में, छण्हं—आगे कहे जाने वाले, छह कारणों में से, अण्णयराए--किसी एक, कारणम्मि--कारण के, समुट्ठिए--उपस्थित होने पर, भत्तं पाणं--आहार-पानी की, गवेसए--गवेषणा करे ॥३२॥

वेयण-वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्म-चिंताए ॥३३॥

— १ वेयण–क्षुधावेदनीय की शांति के लिए २–वेयावच्चे-सेवा करने के लिए ३– इरियट्ठाए–ईर्यासमिति के पालन के लिए, य—और, ४–संजमट्ठाए--संयम पालने के लिए, तह--तथा-५ पाणवत्तियाए—जीवन-निर्वाह के लिए, छट्ठं—छठे, धम्मचिंताए--शास्त्र के पठन-आदि धर्म के लिए साधु आहार-पानी की गवेषणा करे ॥३३॥

णिग्गंथो धिइमंतो, णिग्गंथी वि ण करिज्ज छहिं चेव ।
ठाणेहिं उ इमेहिं, अणइक्कमणाइ से होइ ।३४।

— धिइमंतो--धैर्यवान्, णिग्गंथो--साधु, वि—अथवा, णिग्गंथी—साध्वी, इमेहिं--इन आगे कहे जाने वाले, छहिं--छह, ठाणेहिं—कारणों से, ण करिज्ज—आहार-पानी न करे,

भावार्थ— गोचरी के लिए साधु उत्कृष्ट दो कोस तक जा कर आहार-पानी ला सकता है और यदि आहार-पानी साथ में ले कर विहार करे, तो उस आहार-पानी को दो कोस तक ले जा सकता है, आगे नहीं। आगे ले जाने से 'क्षेत्रातिक्रान्त' दोष लगता है।

चउत्थीए पोरिसीए, णिक्खिवित्ताण भायणं।
सज्झायं च तओ कुज्जा, सव्वभावविभावणं ॥३७॥

— चउत्थीए--चौथी, पोरिसीए--पोरिसी में, भायणं-पात्रों को, णिक्खिवित्ताण--रख दे, च--और, तओ--उसके, बाद, सव्वभावविभाणं--सभी भावों को प्रकाशित करने वाली एवं समस्त दुःखों से छुड़ाने वाली, सज्झायं--स्वाध्याय, कुज्जा--करे ॥३७॥

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं।
पडिक्कमित्ता कालस्स, सेज्जं तु पडिलेहए ॥३८॥

— पोरिसीए--चौथी पोरिसी के, चउब्भाए-चौथे भाग में, गुरुं--महाराज को, वंदित्ताण--वन्दना करके, तु--तथा, कालस्स--उस काल से, पडिक्कमित्ता--निवृत्त होकर, तओ--फिर, सेज्जं--शय्या आदि की, पडिलेहए--प्रतिलेखना करे ॥३८॥

पासवणुच्चार भूमिं च, पडिलेहिज्ज जयं जई।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥३९॥

— जई--साधु, पासवणुच्चारभूमिं च--लघुनीत और बड़ीनीत के स्थान को, जयं—यतनापूर्वक, पडिलेहिज्ज—देखे, तओ—इसके बाद, सव्वदुक्खविमोक्खणं— सभी दुःखों से छुड़ाने वाला, काउस्सग्गं—कायोत्सर्ग करे अर्थात् आवश्यक सूत्र के अनुसार प्रथम आवश्यक की आज्ञा लेकर उसमें कायोत्सर्ग करे ॥३९॥

देवसियं च अइयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ।
णाणम्मि दंसणे चेव, चरित्तम्मि तहेव य ॥४०॥

— णाणम्मि--ज्ञान, दंसणे—दर्शन, च, चेव, तहेव, य,-और, चरित्तम्मि—चारित्र में लगे हुए, देवसियं—दिवस सम्बन्धी, अइयारं—अतिचार का, अणुपुव्वसो—अनुक्रम से, चिंतिज्ज--चिन्तन करे ॥४०॥

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
देवसियं तु अइयारं, आलोएज्ज जहक्कम्मं ॥४१॥

— पारियकाउस्सग्गो—कायोत्सर्ग को पार कर, तओ—फिर, गुरुं--गुरु महाराज को, वंदित्ताण—वन्दना करके, देवसियं—दिवस सम्बन्धी, अइयारं—अतिचारों की, जहक्कम्मं-यथाक्रम से, आलोएज्ज--आलोचना करे ॥४१॥

पडिक्कमित्तु णिस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्व-दुक्खविमोक्खणं ।४२।

— पडिक्कमित्तु-- प्रतिक्रमण करके, णिस्सलो--शल्यरहित हो कर, तओ--फिर, गुरुं--गुरु महाराज को, वंदिताग--वन्दना करे, तओ—तत्पश्चात्, सव्वदुक्ख-विमोक्खणं—सभी दुःखों से छुड़ाने वाला, काउस्सग्गं--कायोत्सर्ग कुज्जा—करे ॥४२॥

परियक्काउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
थुइमंगलं च काऊणं, कालं संपडिलेहए ॥४३॥

— पारियक्काउस्सग्गो—कायोत्सर्ग पार कर, तओ-फिर, गुरुं—महाराज को, वंदित्ताण-- वन्दना करे, च—ओर, थुइमंगलं—सिद्ध भगवान् की स्तुति, काऊणं--करके, कालं--स्वाध्याय के काल की, संपडिलेहए--प्रतीक्षा करे अर्थात् स्वाध्याय का समय आने पर स्वाध्याय करे ॥४३॥

पढमं पोरिसी सज्झायं. बीयं झाणं झियायई ।
तइयाए णिद्दमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ॥

— रात्रिचर्या पढमं--पहली, पोरिसी--पोरिसी में, सज्झायं—स्वाध्याय करे । बीयं—दूसरी पोरिसी में, झाणं—ध्यान, झियायई--करे, तु—ओर, तइयाए—तीसरी पोरिसी में, णिद्दमोक्खं--निद्रा को मुक्त करे तथा, चउत्थी—चौथी पोरिसी में भुज्जो वि—पुन; सज्झायं--स्वाध्याय करे ।४४।

पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहिया ।
सज्झायं तु तओ कुज्जा, अबोहंतो असंजए ॥४५॥

— चउत्थीए- चौथी, पोरिसीए--पोरिसी में, कालं -काल को, पडिलेहिया—देख कर अर्थात् अस्वाध्याय के कारणों को देख कर, तओ--फिर, असंजए--असंयत पुरुषों को, अबोहंतो-न जगाता हुआ, सज्झायं—स्वाध्याय, कुज्जा—करे, अर्थात् इतने ऊँचे स्वर से स्वाध्याय न करे जिससे गृहस्थ लोग जग जाँय ॥४५।

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्तु कालस्स, कालं तु पडिलेहए ॥४६॥

— पोरिसीए—रात्रि की चौथी पोरिसी के, चउब्भाए-चौथे भाग मे, गुरुं— महाराज को, वंदित्ताण--वन्दना करे, तओ--फिर कालं— प्रतिक्रमण का समय आया हुआ, पडिलेहए—जान कर, कालस्स—रात्रि सम्बन्धी काल का, पडिक्कमित्तु--प्रतिक्रमण करे ॥४६॥

आगए कायवोस्सग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥४७॥

— तओ— इसके बाद, सव्वदुक्खविमोक्खणे— सभी दुःखों से मुक्त कराने वाले कायवोस्सग्गे—कायोत्सर्ग का समय, आगए--आने पर, सव्वदुक्खविमोक्खणं--समस्त दुःखों से छुड़ाने वाला, काउस्सग्गं--कायोत्सर्ग, कुज्जा--करे । ४७॥

राइयं च अइयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ।
णाणम्मि दंसणम्मि य, चरित्तम्मि तवम्मि य ॥४८॥

— णाणम्मि — ज्ञान, दंसणम्मि — दर्शन, य--और, चरित्तम्मि—चारित्र, य--तथा, तवम्मि—तप में लगे हुए, राइयं —रात्रि सम्बन्धी, अइयारं--अतिचारों का अणुपुव्वसो- अनुक्रम से, चिंतिज्ज--चिन्तन करे ॥४८॥

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
राइयं तु अइयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥४९॥

— पारियकाउस्सग्गो—कायोत्सर्ग पार कर, तओ--फिर, गुरुं--गुरु महाराज को, वंदित्ताण—वन्दना करके, राइयं—रात्रि सम्बन्धी, अइयारं—अतिचारों की, जहक्कमं-यथाक्रम से, आलोएज्ज---आलोचना करे ॥४९॥

पडिक्कमित्तु णिस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥५०॥

— तओ—उसके बाद, पडिक्कमित्तु--प्रतिक्रमण (अतिचारों की आलोचना) करके, णिस्सल्लो—शल्य रहित होकर, गुरुं--गुरु महाराज को, वंदित्ताण—वन्दना करे, तओ—उसके बाद, सव्वदुक्खविमोक्खणं--सभी दुःखों से छुड़ाने वाला, काउस्सग्गं--कायोत्सर्ग, कुज्जा--करे ॥५०॥

किं तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिंतए ।
काउस्सग्गं तु पारित्ता, करिज्जा जिणसंथवं ॥५१॥

— तत्थ—कायोत्सर्ग में, एवं—इस प्रकार, विचिंतए-विचार करे कि, 'आज मैं, किं--कौन-सा, तवं--तप, पडिवज्जामि—अंगीकार करूँ, - इस प्रकार चिन्तन के पश्चात्,

— चउत्थीए- चौथी, पोरिसीए--पोरिसी में, कालं - काल को, पडिलेहिया—देख कर अर्थात् अस्वाध्याय के कारणों को देख कर, तओ--फिर, असंजए--असंयत पुरुषों को, अबोहंतो-न जगाता हुआ, सज्झायं—स्वाध्याय, कुज्जा—करे, अर्थात् इतने ऊँचे स्वर से स्वाध्याय न करे जिससे गृहस्थ लोग जग जांय ॥४५।

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्तु कालस्स, कालं तु पडिलेहए ॥४६॥

— पोरिसीए—रात्रि की चौथी पोरिसी के, चउब्भाए- चौथे भाग मे, गुरुं—महाराज को, वंदित्ताण--वन्दना करे, तओ--फिर कालं— प्रतिक्रमण का समय आया हुआ, पडिलेहए—जान कर, कालस्स—रात्रि सम्बन्धी काल का, पडिक्कमित्तु--प्रतिक्रमण करे ॥४६॥

आगए कायवोस्सग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥४७॥

— तओ— इसके बाद, सव्वदुक्खविमोक्खणे-- सभी दुःखों से मुक्त कराने वाले कायवोस्सग्गे—कायोत्सर्ग का समय, आगए--आने पर, सव्वदुक्खविमोक्खणं--समस्त दुःखों से छुड़ाने वाला, काउस्सग्गं--कायोत्सर्ग, कुज्जा--करे ।४७॥

राइयं च अइयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ।
णाणम्मि दंसणम्मि य, चरित्तम्मि तवम्मि य ॥४८॥

— णाणम्मि — ज्ञान, दंसणम्मि — दर्शन, य--और, चरित्तम्मि—चारित्र, य--तथा, तवम्मि—तप में लगे हुए, राइयं —रात्रि सम्बन्धी, अइयारं--अतिचारों का अणुपुव्वसो-अनुक्रम से, चिंतिज्ज--चिन्तन करे ॥४८॥

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
राइयं तु अइयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥४९॥

— पारियकाउस्सग्गो—कायोत्सर्ग पार कर, तओ--फिर, गुरुं--गुरु महाराज को, वंदित्ताण—वन्दना करके, राइयं—रात्रि सम्बन्धी, अइयारं—अतिचारों की, जहक्कमं-यथाक्रम से, आलोएज्ज--आलोचना करे ॥४९॥

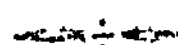
पडिक्कमित्तु णिस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥५०॥

— तओ—उसके बाद, पडिक्कमित्तु--प्रतिक्रमण (अतिचारों की आलोचना) करके, णिस्सल्लो—शल्य रहित होकर, गुरुं--गुरु महाराज को, वंदित्ताण—वन्दना करे, तओ—उसके बाद, सव्वदुक्खविमोक्खणं--सभी दुःखों से छुड़ाने वाला, काउस्सग्गं--कायोत्सर्ग, कुज्जा--करे ॥५०॥

किं तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिंतए ।
काउस्सग्गं तु पारित्ता, करिज्जा जिणसंथवं ॥५१॥

— तत्थ—कायोत्सर्ग में, एवं—इस प्रकार, विचिंतए-विचार करे कि, 'आज मैं, किं--कौन-सा, तवं--तप, पडिवज्जामि—अंगीकार करूँ, - इस प्रकार चिन्तन के पश्चात्,

'खलुंकीय' सत्ताईसवाँ अध्ययन



थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए।
आइण्णे गणिभावम्मि, समाहिं पडिसंधए ॥१॥

— थेरे—स्थविर, गणहरे—गुणों के समूह को धारण करने वाले, विसारए—सभी शास्त्रों में कुशल, आइण्णे—आचार्य के गुणों से युक्त, समाहिं—टूटी हुई समाधि को, पडिसंधए—फिर से प्राप्त करने वाले, गग्गे—गर्ग गोत्रीय अतएव गर्गाचार्य नाम के, मुणी—एक मुनि, आसि—थे।१।

भावार्थ— गर्गाचार्य बड़े विद्वान और समर्थ आचार्य थे। उनके बहुत से शिष्य थे, किन्तु वे सब अविनीत और स्वच्छन्दाचारी बन गये। उन अविनीत शिष्यों द्वारा अपने संयम में एवं भाव-समाधि में, विघ्न पड़ते देख कर वे उन्हें छोड़ कर पृथक् हो गये और भाव-समाधि में लीन रहते हुए आत्मगुणों की वृद्धि करने लगे।

वहणे वहमाणस्स, कंतारं अइवतए।
जोए वहमाणस्स, संसारो अइवत्तई ॥२॥

— गर्गाचार्य अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहते —जिस प्रकार, वहणे—गाड़ी में, वहमाणस्स—जोता हुआ

उप्पहपट्ठिओ--कुमार्ग में दौड़ जाता है। इस प्रकार गलियार बैल और गाड़ीवान दोनों दुःखी होते हैं ॥४॥

एगो पडइ पासेणं, णिवेसइ णिविज्जइ ।
उक्कुद्दइ उप्फिडइ, सढे बालगवी वए ॥५॥

— एगो—कोई गलियार बैल, पासेणं--एक पसवाड़, पडइ—गिर जाता है, णिवेसइ—कोई बैठ जाता है, णिविज्जइ--कोई लेट जाता है, उक्कुद्दइ—कोई कूदने लगता है, उप्फिडइ—कोई मेंढ़क के समान छलांगें मारता है और, सढे—कोई दुष्ट बैल, बालगवी —तरुण गाय को देख कर उसकी ओर, वए--दौड़ने लगता है ॥५॥

माई मुद्धेण पडई, कुद्धे गच्छइ पडिप्पहं ।
मयलक्खेण चिट्ठई, वेगेण य पहावई ॥६॥

— माई—कोई मायावी बैल, मुद्धेण--माथा नीचे करके, पडइ—गिर पड़ता है। कुद्धे—कोई क्रोध में आ कर, पडिप्पहं--सीधा मार्ग छोड़ कर कुमार्ग में, गच्छे—दौड़ जाता है, मयलक्खेण—कोई बैल मृत्यु होने का ढोंग करके, चिट्ठइ—पड़ जाता है, य—और कोई, वेगेण—वेग से दौड़ने लगता है ।६।

छिण्णाले छिंदई सेल्लि, दुद्दंतो भंजए जुगं ।
से वि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जहित्ता पलायए ॥७॥

— छिण्णाले--कोई दुष्ट बैल, सेल्लिं—रस्सी, छिंदई--

तोड़ देता है, दुद्दंतो--दुर्दान्त (कठिनाई से वश में किया जा सकने वाला) कोई बैल, जुगं—जुए (धूंसरे) को, भंजए—तोड़ डालता है, य--और, से वि--फिर वह दुष्ट बैल, सुस्सुयाइत्ता—फुफकार मार कर, उज्जहित्ता--गाड़ीवान् के हाथ से छुट कर, पलायए—भाग जाता है ॥७॥

खलुंका जारिसा जुज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा ।
जोइया धम्म-जाणम्मि, भज्जंति धिइदुब्बला ।८।

— जारिसा---जैसे, जुज्जा—गाड़ी में जोते हुए, खलुंका-गलियार बैल गाड़ी को तोड़ कर एवं गाड़ीवान् को दु.खी करके भाग जाते हैं, तारिसा---वैसे ही, धम्म जाणम्मि—धर्म रूपी गाड़ी में, जोइया—जुते हुए, धिइदुब्बला---अधीर एवं कायर, दुस्सीसा वि---दुष्ट स्वच्छन्दी शिष्य भी, भज्जंति—संयम-धर्म को भंग कर देते हैं ॥८॥

इड्ढी-गारविए एगे, एगेऽत्थ रस-गारवे ।
साया-गारविए एगे, एगे सुचिर-कोहणे ॥९॥

— गर्गाचार्य अपने शिष्यों के विषय में कहते हैं कि:— अत्थ--मेरे इन शिष्यों में से, एगे—कुछ शिष्य, इड्ढीगारविए-ऋद्धि से गर्वित बने हुए हैं । एगे—कोई, रसगारवे--रस-लोलुप बन गये हैं । एगे—कोई, सायागारविए— साताशील, (सुख शीलिये) बन गये हैं और, एगे—कोई, सुचिर कोहणे-चिर क्रोधी हैं । ॥९॥

भीक्खालसिए एगे, एगे ओमाण-भीरुए।
थद्धे एगे अणुसासम्मि, हेऊहिं कारणेहि य ॥१०॥

— एगे—कोई शिष्य. भिक्खालसिए—भिक्षा लाने में आलसी बन गये हैं। एगे—कोई शिष्य, ओमाण भीरुए—अपमानभीरु बन गये हैं (भिक्षा मांगने में अपना अपमान समझते हैं) और, एगे—कोई, थद्धे—अहंकारी बन गये हैं। ऐसे शिष्यों को जब, अणुसासम्मि—मैं योग्य शिक्षा देता हूँ तो वे, हेऊहिं—अनेक हेतु य—और, कारणेहिं—कारणों से कुतर्क करते हैं ॥१०॥

सो वि अंतरभासिल्लो, दोसमेव पकुव्वई।
आयरियाणं तु वयणं, पडिकूलेइऽभिक्खणं ॥११॥

— जब गुरु महाराज शिक्षा देते हैं तब सो वि—वह दुष्ट शिष्य, अंतरभासिल्लो—बीच ही में बोल उठता है और, दोसमेव—गुरु महाराज का ही दोष, पकुव्वई—निकालता है. तु—और, अभिक्खणं— बार-बार, आयरियाणं— आचार्य महाराज के, वयणं—वचनों से, पडिकूलेइ—प्रतिकूल आचरण करता है ॥११॥

ण सा ममं वियाणाइ, ण वि सा मज्झ दाहिई।
णिग्गया होहिई मण्णे, साहू अण्णोऽत्थ वच्चउ ॥१२॥

— जब गुरुमहाराज भिक्षा के लिए भेजते हैं, अथवा किसी ग्लान साधु के लिए विवक्षित औपधि या आहारादि

लाने के लिए कहते हैं, तब अविनीत शिष्य बहाना बनाता हुआ इस प्रकार उत्तर देता है कि, सा-- 'वह श्राविका तो, ममं--मुझे, ण वियाणाइ---पहचानती ही नहीं है, सा वि--वह, मज्झ-मुझे, ण दाहिई--भिक्षा देगी ही नहीं। मण्णे—मैं समझता हूँ इस समय वह, णिग्गया होहिई- घर से बाहर गई हुई होगी। अच्छा तो यह है कि, अत्थ---इस कार्य के लिए आप अण्णे--किसी दूसरे, साहू--साधु को, वच्चउ---भेज दें' अथवा कोई अविनीत शिष्य ऐसा भी कह देता है कि 'आप बार-बार मुझे ही मुझे कहते हैं। मेरे सिवाय दूसरे साधु भी तो हैं, इन्हें क्यों नहीं कहते ?' इस प्रकार अविनयपूर्वक उत्तर देकर वे गुरु महाराज को खेदित करते हैं ॥१२॥

पेसिया पलिउंचंति, ते परियंति समंतओ।
राय-वेट्ठिं च मण्णंता, करेंति भिउडिं मुहे ॥१३॥

— पेसिया—किसी काम के लिए भेजे हुए अविनीत शिष्य, काम तो नहीं करते और पूछने पर, पलिउंचंति—इन्कार कर देते हैं कि 'आपने मुझे उस काम के लिए कहा ही कब था ?' ते—वे काम से जी चुरा कर, समंतओ---इधर-उधर, परियंति—घूमते रहते हैं, च---यदि गुरु का कार्य करते है, तो उसे, रायवेट्ठि---राजा की वेगार सरीखा, मण्णंता---मानते हुए, मुहे—मुख पर, भिउडि---भृकुटि, करेंति—करते हैं अर्थात् क्रोधित होकर मुंह पर भृकुटि चढ़ाते हैं ॥१३॥

वाइया संगहिया चेव, भत्तपाणेण पोसिया।
जायपक्खा जहा हंसा, पक्कमंति दिसो दिसिं ।१४।

— गर्गाचार्य अपने मन में विचार करते हैं कि, वाइया—मैंने इन शिष्यों को पढ़ाया गुनाया, संगहिया—दीक्षित किया, चेव—और, भत्तपाणेण—आहार-पानी से, पोसिया—पालन-पोषण किया किन्तु, जहा—जिस प्रकार, जायपक्खा—पंखों के निकल आने पर, हंसा—हंस, दिसोदिसिं—अपनी इच्छानुसार दिशा विदिशा में, पक्कमंति—उड़ जाते हैं। इसी प्रकार ये मेरे शिष्य भी स्वच्छन्द बन कर अपना इच्छानुसार कार्य करते हैं ॥१४॥

अह सारही विचिंतेइ, खलुंकेहिं समागओ।
किं मज्झ दुट्ठसीसेहिं, अप्पा मे अवसीयई ॥१५॥

— अह—जिस प्रकार, सारही—आलसी बैलों को हांकने वाला गाड़ीवान् दुःखित होता है उसी प्रकार, खलुंकेहिं—गलियार बैल के समान अविनीत शिष्यों से, समागओ—खेद को प्राप्त हुए गर्गाचार्य, विचिंतेइ—विचार करते हैं कि, दुट्ठसीसेहिं—इन दुष्ट शिष्यों से, मज्झ—मुझे, किं—क्या लाभ है? प्रत्युत: इनके संसर्ग से मे—मेरी, अप्पा—आत्मा, अवसीयई—क्लेशित होती है। अतः इनके संग का त्याग कर के अपनी आत्मा का कल्याण करना ही श्रेष्ठ है ॥१५॥

जारिसा मम सीसाओ, तारिसा गलिगद्दहा ।
गलिगद्दहे जहित्ताणं, दढं पगिण्हई तवं ॥१६॥

— जारिसा—जिस प्रकार, गलिगद्दहा—गलियार गधे होते हैं, तारिसा —वैसे ही, मम—मेरे, सीसाओ—ये शिष्य हैं । इस प्रकार विचार कर गर्गाचार्य, गलिगद्दहे—गलियार गधों के समान अपने अविनीत शिष्यों को, जहित्ताणं—छोड़ कर, दढं—दृढ़तापूर्वक, तवं—तप-संयम का, पगिण्हई—पालन करने लगे ॥१६॥

मिउ मद्दव-संपण्णो, गंभीरो सुसमाहिओ ।
विहरइ महिं महप्पा, सीलभूएण अप्पणा ।१७। त्तिबेमि ।

— मिउमद्दवसंपण्णे— मृदुमार्दवसंपन्न (विनय और कोमलता सहित), गंभीरो—गम्भीर, सुसमाहिओ—सुसमाधि-वन्त वे, महप्पा—महात्मा गर्गाचार्य, सीलभूएण—शीलभूत श्रेष्ठ आचार, अप्पणा—आत्मा से युक्त हो कर महिं—पृथ्वी पर, विहरइ—विचरने लगे ।१७। त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ सत्ताईसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

मोक्षमार्गगति अट्ठाईसवाँ अध्ययन



मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं ।
चउकारणसंजुत्तं, णाण-दंसण-लक्खणं ॥१॥

— जिणभासियं-- जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित, ...कारणसंजुत्तं— सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र ... सम्यक् तप इन चार कारणों से संयुक्त अर्थात् चार कारणों से प्राप्त होने वाली, णाणदंसणलक्खणं- ...-दर्शन लक्षण वाली, तच्चं—यथार्थ, मोक्खमग्गगइं— ...क्षमार्गगति को, सुणेह--सुनो अर्थात् में मोक्षमार्गगति नामक ...ययन का वर्णन करता हूँ सो तुम सुनो ॥१॥

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गोत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥२॥

-- वरदंसिहिं--संसार के समस्त पदार्थों को देखने वाले ...वंज्ञ-सर्वदर्शी, जिणेहिं--जिनेन्द्र देवों ने, णाणं--ज्ञान, दंसणं- ...र्शन, चरित्तं—चारित्र, च, चेव, च, तहा—और तवो-- ...प रूप, एस--यह, मग्गो त्ति—मोक्ष का मार्ग, पण्णत्तो-- ...फरमाया है । २ ।

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एयं मग्ग-मणुपत्ता, जीवा गच्छंति सुग्गइं ॥३॥

जारिसा मम सीसाओ, तारिसा गलिगद्दहा ।
गलिगद्दहे जहित्ताणं, दढं पगिण्हई तवं ॥१६॥

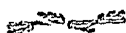
— जारिसा—जिस प्रकार, गलिगद्दहा—गलियार गधे होते हैं, तारिसा —वैसे ही, मम—मेरे, सीसाओ—ये शिष्य हैं। इस प्रकार विचार कर गर्गाचार्य, गलिगद्दहे—गलियार गधों के समान अपने अविनीत शिष्यों को, जहित्ताणं—छोड़ कर, दढं—दृढ़तापूर्वक, तवं—तप-संयम का, पगिण्हई—पालन करने लगे ॥१६॥

मिउ मद्दव-संपण्णो, गंभीरो सुसमाहिओ ।
विहरइ महिं महप्पा, सीलभूएण अप्पणा ।१७। त्तिबेमि ।

— मिउमद्दवसंपण्णे— मृदुमार्दवसंपन्न (विनय और कोमलता सहित), गंभीरो—गम्भीर, सुसमाहिओ—सुमाधिवन्त वे, महप्पा—महात्मा गर्गाचार्य, सीलभूएण—शीलभूत श्रेष्ठ आचार, अप्पणा—आत्मा से युक्त हो कर महिं—पृथ्वी पर, विहरइ—विचरने लगे ।१७। त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ सत्ताईसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

मोक्षमार्गगति अट्ठाईसवाँ अध्ययन



मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं ।
चउकारणसंजुत्तं, णाण-दंसण-लक्खणं ॥१॥

— जिणभासियं-- जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित, चउकारणसंजुत्तं— सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप इन चार कारणों से संयुक्त अर्थात् इन चार कारणों से प्राप्त होने वाली, णाणदंसणलक्खणं- ज्ञान-दर्शन लक्षण वाली, तच्चं—यथार्थ, मोक्खमग्गगइं— मोक्षमार्गगति को, सुणेह--सुनो अर्थात् मैं मोक्षमार्गगति नामक अध्ययन का वर्णन करता हूँ सो तुम सुनो ॥१॥

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गोत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥२॥

-- वरदंसिहिं--संसार के समस्त पदार्थों को देखने वाले सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, जिणेहिं--जिनेन्द्र देवों ने, णाणं--ज्ञान, दंसणं- दर्शन, चरित्तं—चारित्र, च, चेव, च, तहा—और तवो-- तप रूप, एस--यह, मग्गो त्ति—मोक्ष का मार्ग, पण्णत्तो-- फरमाया है। २।

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एयं मग्ग-मणुपत्ता, जीवा गच्छंति सुग्गइं ॥३॥

— णाणं—ज्ञान दंसणं--दर्शन, चरित्तं—चारित्र, च, चेव, च, तहा---और, तवो--तप यह मोक्ष का मार्ग है। एयं-इस, मग्गं — मार्ग का, अणुपत्ता---आचरण करके, जीवा—जीव, सुग्गइं--मोक्ष को, गच्छंति--प्राप्त करते हैं ॥३।

तत्थ पंचविहं णाणं, सुयं आभिणिबोहियं।
ओहिणाणं तु तइयं, मणणाणं च केवलं ॥४॥

— तत्थ—मोक्ष के जो चार कारण बताये गये हैं उनमें, णाणं--ज्ञान, पंचविहं--पाँच प्रकार का है, आभिणिबोहियं—आभिनिबोधिक (मतिज्ञान) सुयं—श्रुतज्ञान, तइयं--तीसरा, ओहिणाणं--अवधिज्ञान, मणणाणं—मनःपर्यय ज्ञान, च—और, केवलं---केवल ज्ञान ॥४॥

एयं पंचविहं णाणं, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाण य सव्वेसिं, णाणं णाणीहि देसियं ॥५॥

— णाणीहिं--ज्ञानी पुरुषों ने, दव्वाण--द्रव्य, गुणाण--गुण, य--और, सव्वेसिं—उनकी समस्त, पज्जवाण—पर्यायों को, णाणं—जानने के लिए, एयं—यह उपरोक्त, पंचविहं--पांच प्रकार का, णाणं--ज्ञान देसियं—फरमाया है ॥५॥

गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥६॥

— दव्वं--द्रव्य, गुणाणं—गुणों का, आसओ—आधार है, अर्थात् जिसके आश्रय में गुण रहते हैं उसे 'द्रव्य' कहते हैं

और गुणा--गुण, एगदव्वस्सिया--अपने आधारभूत एक द्रव्य में रहते हैं, तु--और, पज्जवाणं--पर्यायों का, लक्खणं--लक्षण यह है कि, उभओ--पर्यायें द्रव्य और गुण दोनों में, अस्सिया--रहने वाली, भवे--हैं, अर्थात् द्रव्य और गुण दोनों में जो रहे उसे 'पर्याय' कहते हैं ॥६॥

धम्मो अधम्मो आगासं, कालो पुग्गल-जंतवो ।
एस लोगो त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥७॥

--धम्मो--धर्मास्तिकाय, अधम्मो--अधर्मास्तिकाय, आगासं--आकाशास्तिकाय, पुग्गलजंतवो--पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और, कालो--काल, एस--यह छः द्रव्यरूप, लोगोत्ति--लोक है, ऐसा, वरदंसिहिं--केवलदर्शी, जिणेहिं--जिनेश्वर देवों ने, पण्णत्तो--फरमाया है ॥७॥

भावार्थ--धर्म अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल जितने क्षेत्र में हैं, उतने क्षेत्र को 'लोक' कहते हैं। जहाँ आकाश के सिवाय अन्य कोई द्रव्य नहीं है, उसे 'अलोक' कहते हैं।

धम्मो अधम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल-जंतवो ॥८॥

--धम्मो--धर्म, दव्वं--द्रव्य अधम्मो--अधर्म द्रव्य, आगासं--आकाश द्रव्य ये, इक्किक्कं--एक-एक, आहियं--कहे गये हैं, य--और, कालो--काल, पुग्गलजंतवो--पुद्गल और जीव, ये तीनों, दव्वाणि--द्रव्य, अणंताणि--अनन्त कहे गये हैं ॥८॥

गइ-लक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाण-लक्खणो।
भायणं सव्वदव्वाणं, णहं ओगाह-लक्खणं ॥९॥

— धम्मो— धर्मास्तिकाय, गइलक्खणो--गति-लक्षण वाला है, अर्थात् धर्मास्तिकाय जीव और पुद्गलों को गति करने में सहायता देता है, उ--और, अहम्मो--अधर्मास्तिकाय, ठाणलक्खणो— स्थिति लक्षण वाला है (अधर्मास्तिकाय जीव और पुद्गलों को ठहरने में सहायता देता है) और, सव्व-दव्वाणं-सभी द्रव्यों का, भायणं—भाजन (पात्र) आधारभूत, णहं--आकाश, ओगाहलक्खणं--अवगाहन-लक्षण वाला है (समस्त पदार्थों का आधारभूत आकाश द्रव्य है और सब को अवकाश--स्थान देना उसका लक्षण है) ।९॥

वत्तणा-लक्खणो कालो, जीवो उवओग-लक्खणो।
णाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य ॥१०॥

— कालो—काल द्रव्य, वत्तणालक्खणो--वर्त्तना लक्षण वाला है (जो जीव और पुद्गलो में नवीन नवीन पर्याय की प्राप्ति रूप परिणमन करता रहता है, एवं सभी द्रव्यों की अवस्थाओं को बदलता रहता है, वह 'काल द्रव्य' कहलाता है) जीवो--जीव, उवओगलक्खणो--उपयोग (चेतना) लक्षण वाला है, (जिसमें ज्ञान-दर्शन रूप उपयोग हो उसे 'जीव' कहते हैं) वह, णाणेणं--ज्ञान, दंसणेणं--दर्शन, सुहेण--सुख च, य, य--और, दुहेण—दुःख द्वारा पहचाना जाता है ॥१०॥

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥११॥

— णाणं--ज्ञान, दंसणं--दर्शन, चरित्तं—चारित्र, तवो--तप, वीरियं--वीर्य, च, चेव, च, तहा, य--और, उवओगो--उपयोग, एयं--ये, जीवस्स—जीव के, लक्खणं—विशिष्ट लक्षण हैं, अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव-तत्त्व को छोड़ कर अन्य किसी में नहीं रहते, इसलिए ये जीव के विशिष्ट (असाधारण) लक्षण हैं ॥११॥

सद्दंधयार-उज्जोओ, पभा छायाऽऽतवोइवा ।
वण्ण-रस-गंध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥१२॥

— सद्द--शब्द, अंधयार—अन्धकार, उज्जोओ--उद्योत, पभा--प्रभा, छाया--छाया, आतवो—आतप (उष्ण प्रकाश) तु—और, वण्णरसगंधफासा—वर्ण, रस, गंध और स्पर्श, सिया--ये सब, पुग्गलाणं—पुद्गलों के, लक्खणं--लक्षण हैं। इनके द्वारा पुद्गल द्रव्य पहचाना जाता है ॥१२॥

एगत्तं च पुहुत्तं च, संखा संठाणमेव य ।
संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं ॥१३॥

— एगत्तं—एकत्व (इकट्ठे होना), च--और, पुहत्तं—पृथक्त्व (बिखर जाना), संखा--संख्या (एक, दो, तीन आदि संख्या) च—और, संठाणमेव--संस्थान (आकार), संजोगा—संयोग और, विभागा--विभाग (वियोग) यह,

पज्जवाणं--पर्यायों का, लक्खणं--लक्षण है ॥१३॥

जीवाजीवा य बंधो य, पुणं पावासतवो तहा ।
संवरो णिज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया णव ।१४।

— जीवा--जीव, अजीवा--अजीव, बंधो--बन्ध, पुण्णं-पुण्य, पाव--पाप, आसवो--आस्रव, संवरो--संवर, णिज्जरा-णिर्जरा, य, य, तहा--और, मोक्खो--मोक्ष, एए--ये, णव--नव, तहिया--यथातथ्य (तत्त्व) सत--हैं ॥१४॥

तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं ।
भावेण सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ॥१५॥

— इन उपरोक्त, तहियाणं--सत्य, भावाणं--जीवादि तत्त्वों का, सब्भावे--सद्भाव (असली स्वरूप बतलाने वाले) उवएसणं--उपदेश का, भावेण--अन्तःकरण से, सद्दहंतस्स--श्रद्धा करने वाले जीव के, सम्मत्तं--सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) होता है. तं--ऐसा, वियाहियं--जिनेन्द्र भगवान ने फरमाया है ॥

णिसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्तबीयरुईमेव ।
अभिगमवित्थाररुई, किरिया संखेवधम्मरुई ॥१६॥

— सम्यक्त्व का स्वरूप बता कर, अब उसकी रुचियों के नाम बताये जाते हैं--णिस्सग्गुवएसरुई--१- निसर्ग रुचि, २- उपदेश रुचि, आणारुइ--३ आज्ञारुचि, सुत्तबीयरुइमेव--४- सूत्ररुचि, ५-बीजरुचि. अभिगमवित्थाररुई--६- अभिगम-

रुचि, ७- विस्ताररुचि, किरियासंखेवधम्मरुई — ८- क्रियारुचि, ९- संक्षेपरुचि, और, १०- धर्मरुचि ॥१६॥

भूयत्थेणाहिगया, जीवा जीवा य पुण्णपावं च ।
सहसम्मुइयासवसंवरो य, रोएइ उ णिसग्गो ॥१७॥

— सहसम्मुइया—गुरु आदि के उपदेश के बिना स्वयमेव जातिस्मरण या प्रतिभा आदि ज्ञान द्वारा, जीवा—जीव, य—और, अजीवा—अजीव, पुण्णं—पुण्य, च--और, पावं—पाप, आसवसंवरो--आस्रव और संवर, य--तथा बन्ध, निर्जरा और मोक्ष, भूयत्थेण—ये पदार्थ सत्य हैं, उ--इस प्रकार जिसने, अहिगया--जान लिया है, उसके जो, रोएइ—रुचि होती है उसे, णिस्सग्गो—'निसर्ग रुचि' कहते हैं ॥१७॥

जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ।
एमेव णण्णहत्ति य, णिसग्गरुइत्ति णायव्वो ॥१८॥

— जो--जो प्राणी, सयमेव—गुरु आदि के उपदेश के बिना स्वयमेव जातिस्मरण एवं प्रतिभा आदि ज्ञान द्वारा, जिणदिट्ठे—तीर्थंकर देव के बताये हुए, भावे--जीवादि पदार्थों को, चउव्विहे—चार प्रकार से अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अथवा नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव से, एमेव-- 'ये इस प्रकार ही हैं, णण्णहत्ति—अन्य प्रकार से नहीं है' इस प्रकार, सद्दहाइ--श्रद्धा करता है वह, णिसग्गरुइत्ति—'निसर्ग रुचि' वाला है ऐसा, णायव्वो—जानना चाहिए ॥१८॥

पज्जवाणं--पर्यायों का, लक्खणं—लक्षण है ॥१३॥

जीवाजीवा य बंधो य, पुण्णं पावासवो तहा ।
संवरो णिज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया णव ।१४।

— जीवा--जीव, अजीवा--अजीव, बंधो--बन्ध, पुण्णं-पुण्य, पाव--पाप, आसवो--आस्रव, संवरो--संवर, णिज्जरा-निर्जरा, य, य, तहा--और, मोक्खो--मोक्ष, एए--ये, णव--नव, तहिया--यथातथ्य (तत्त्व) सत—हैं ॥१४॥

तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं ।
भावेण सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ॥१५॥

— इन उपरोक्त, तहियाणं--सत्य, भावाणं--जीवादि तत्त्वों का, सब्भावे--सद्भाव (असली स्वरूप बतलाने वाले) उवएसणं—उपदेश का, भावेण—अन्तःकरण से, सद्दहंतस्स--श्रद्धा करने वाले जीव के, सम्मत्तं--सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) होता है. तं—ऐसा, वियाहियं--जिनेन्द्र भगवान् ने फरमाया है ॥

णिसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्तबीयरुईमेव ।
अभिगमवित्थाररुई, किरिया संखेवधम्मरुई ॥१६॥

— सम्यक्त्व का स्वरूप बता कर, अब उसकी रुचियों के नाम बताये जाते हैं—णिस्सग्गुवएसरुई--१- निसर्ग रुचि, २- उपदेश रुचि, आणारुइ--३ आज्ञारुचि, सुत्तबीयरुइमेव—४- सूत्ररुचि, ५-बीजरुचि. अभिगमवित्थाररुई--६- अभिगम-

सम्यक्त्व, ओगाहइ—प्राप्त करता है, सो—वह, सुत्तरुइत्ति—'सूत्ररुचि' है, ऐसा णायव्वो—जानना चाहिए। अंगप्रविष्ट तथा अंगबाह्य सूत्रों को पढ़ कर जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा करना 'सूत्ररुचि' है ॥२१॥

एगेण अणेगाइं पयाइं, जो पसरइ उ सम्मत्तं।
उदएव्व तेल्लबिंदू, सो बीयरुइत्ति णायव्वो ॥२२॥

— उदएव्व तेल्लबिंदू—जिस प्रकार जल में तेल की बूंद फैल जाती है उसी प्रकार, जो—जिसकी, सम्मत्तं—सम्यक्त्व, एगेण—एक जीवादि पद से, अणेगाइं—अनेक, पयाइं—पदों में, पसरइ—फैल जाती हैं, सो—वह, बीयरुइत्ति—'बीजरुचि' ऐसा, णायव्वो—जानना चाहिए ॥२२॥

सो होइ अभिगमरुई, सुयणाणं जेण अत्थओ दिट्ठं।
इक्कारस अंगाइं, पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ॥२३॥

— जेण—जिसने, इक्कारस—ग्यारह, अंगाइं—अंग, पइण्णगं—प्रकीर्णक सूत्र, य—और, दिट्ठिवाओ—दृष्टिवाद तथा उपांग सूत्रों में जो, सुयणाणं—श्रुतज्ञान है, उसको, अत्थओ—अर्थ रूप से, दिट्ठं—जान लिया है, सो—वह, अभिगमरुई—'अभिगम रुचि' होई—है ॥२३॥

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा।
सव्वाहिं णयविहीहिं य, वित्थाररुइ त्ति णायव्वो ।२४।

— जस्स—जिसने, दव्वाण—द्रव्यों की, सव्वभावा—

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहइ ।
छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरुइत्ति णायव्वो ॥१९॥

— जिणेण--केवली भगवान् के पास से, व—अथवा, परेण--दूसरे, छउमत्थेण – छद्मस्थ गुरुओं से, उवइट्ठे—उपदेश सुन कर जो, एए चेव--इन भावे— जीवादि तत्त्वों की, सद्दहइ—श्रद्धा करता है वह, उवएसरुइत्ति—'उपदेश रुचि' वाला है ऐसा, णायव्वो--जानना चाहिए ॥१९॥

रागो दोसो मोहो, अण्णाणं जस्स अवगयं होइ ।
आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई णामं ॥२०॥

— जस्स—जिसके, रागो—राग दोसो—द्वेष, मोहो—मोह और, अण्णाणं—अज्ञान, अवगयं—एक देशतः नष्ट, होइ—हो गया है और, आणाए--आचार्य की आज्ञा मात्र से ही, रोयंतो—जिसको जीवादि तत्त्वों को जानने की रुचि होती है, सो—वह, खलु--निश्चय से, आणारुई णामं--'आज्ञा रुचि' है ॥२०॥

जो सुत्तमहिज्जंतो, सुएण ओगाहइ उ सम्मत्तं ।
अंगेण बाहिरेण व, सो सुत्तरुइत्ति णायव्वो ॥२१॥

— जो--जो, सुत्तं--सूत्र, अहिज्जंतो--पढ़ता हुआ, अंगेण—आचारांगादि अंगप्रविष्ट, व—अथवा, बाहिरेण—उत्तराध्ययन आदि अंगबाह्य, सुएण—सूत्रों से, सम्मत्तं—

सम्यक्त्व, ओगाहइ—प्राप्त करता है, सो—वह, सुत्तरुइत्ति—'सूत्ररुचि' है, ऐसा णायव्वो—जानना चाहिए। अंगप्रविष्ट तथा अंगबाह्य सूत्रों को पढ़ कर जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा करना 'सूत्ररुचि' है ॥२१॥

एगेण अणेगाइं पयाइं, जो पसरइ उ सम्मत्तं।
उदएव्व तेल्लबिंदू, सो बीयरुइत्ति णायव्वो ॥२२॥

— उदएव्व तेल्लबिंदू—जिस प्रकार जल में तेल की बूंद फैल जाती है उसी प्रकार; जो—जिसकी, सम्मत्तं—सम्यक्त्व; एगेण—एक जीवादि पद से, अणेगाइं—अनेक, पयाइं—पदों में, पसरइ—फैल जाती है, सो—वह, बीयरुइत्ति—'बीजरुचि' है ऐसा, णायव्वो—जानना चाहिए ॥२२॥

सो होइ अभिगमरुई, सुयणाणं जेण अत्थओ दिट्ठं।
इक्कारस अंगाइं, पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ॥२३॥

— जेण—जिसने, इक्कारस—ग्यारह, अंगाइं—अंग, पइण्णगं—प्रकीर्णक सूत्र, य—और, दिट्ठिवाओ—दृष्टिवाद तथा उपांग सूत्रों में जो, सुयणाणं—श्रुतज्ञान है, उसको, अत्थओ—अर्थ रूप से, दिट्ठं—जान लिया है, सो—वह, अभिगमरुई—'अभिगम रुचि' होई—है ॥२३॥

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा।
सव्वाहिं नयविहीहि य, वित्थाररुइ त्ति णायव्वो ॥२४॥

— जस्स—जिसने, दव्वाण—द्रव्यों की, सव्वभावा—

समस्त पर्यायों को सव्वपमाणेहि—प्रत्यक्षादि सभी प्रमाणों से, य--और, सव्वाहि--सब, णयविहीहि--नैगमादि नयों से, उवलद्धा—जान लिया है, वित्थाररुइ त्ति—वह 'विस्ताररुचि' वाला है, ऐसा, णायव्वो—जानना चाहिए ॥२४॥

दंसण-णाण-चरित्ते, तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु ।
जो किरियाभावरुई, सो खलु किरियारुई णाम ।२५।

— जो--जो, दंसणणाणचरित्ते—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तवविणए—तप, विनय, सच्चसमिइगुत्तीसु—सत्य समिति और गुप्ति की. किरियाभावरुई--क्रियाओं का पालन करने में भावपूर्वक रुचि रखता है, सो--वह, खलु—निश्चय से, किरियारुई णाम—'क्रियारुचि' है ॥२५॥

अणभिग्गहियकुदिट्ठी, संखेवरुइ त्ति होइ णायव्वो ।
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु ॥२६॥

— अणभिग्गहियकुदिट्ठी—जिसने मिथ्यामत का ग्रहण नहीं किया है तथा, सेसेसु--जो कपिलादि के शास्त्रों का भी ज्ञाता नहीं है, य-- और, पवयणे—जो जिन-प्रवचनों में, अविसारओ—विशारद (प्रवीण) नहीं है, किन्तु शुद्ध श्रद्धा रखता है वह. संखेवरुइ त्ति--'संक्षेपरुचि' होइ—है, ऐसा, णायव्वो—जानना चाहिए ॥२६॥

जो अत्थिकायधम्मं, सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च ।
सद्दहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरुइ त्ति णायव्वो ॥२७॥

समस्त पर्यायों को सव्वपमाणेहि—प्रत्यक्षादि सभी प्रमाणों से य--और, सव्वाहि--सब, णयविहीहि--नैगमादि नयों से उवलद्धा—जान लिया है, वित्थाररुइ त्ति—वह 'विस्ताररुचि वाला है, ऐसा, णायव्वो—जानना चाहिए ॥२४॥

दंसण-णाण-चरित्ते, तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु ।
जो किरियाभावरुई, सो खलु किरियारुई णाम ।२५।

— जो--जो, दंसणणाणचरित्ते—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तवविणए – तप, विनय, सच्चसमिइगुत्तीसु---सत्य समिति और गुप्ति की. किरियाभावरुई--क्रियाओं का पालन करने में भावपूर्वक रुचि रखता है, सो---वह, खलु—निश्चय से, किरियारुई णाम—'क्रियारुचि' है ॥२५॥

अणभिग्गहियकुदिट्ठी, संखेवरुइ त्ति होइ णायव्वो।
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु ॥२६॥

— अणभिग्गहियकुदिट्ठी—जिसने मिथ्यामत का ग्रहण नहीं किया है तथा, सेसेसु---जो कपिलादि के शास्त्रों का भी ज्ञाता नहीं है, य-- और, पवयणे—जो जिन-प्रवचनों में, अविसारओ—विशारद (प्रवीण) नहीं है, किन्तु शुद्ध श्रद्धा रखता है वह. संखेवरुइ त्ति--' संक्षेपरुचि ' होइ---है, ऐसा, णायव्वो—जानना चाहिए ॥२६॥

जो अत्थिकायधम्मं, सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च ।
सद्दहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरुइत्ति णायव्वो ॥२७॥

—जो—जो, जिणाभिहियं—जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुए, अत्थिकायधम्मं—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आदि तथा उनके गति, स्थिति आदि धर्मों और, सुयधम्मं—आगम के स्वरूप एवं चरित्तधम्मं—सामायिकादि चारित्र-धर्म को. सद्दहइ—श्रद्धा-प्रतीति करता है, सो—वह, धम्मरुइ त्ति—'धर्मरुचि' है ऐसा, णायव्वो—जानना चाहिए ॥२७॥

परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि ।
वावण्ण-कुदंसण-वज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा ॥२८॥

— परमत्थसंथवो—परमार्थ तत्त्वों का गुण-कीर्तन करना अर्थात् जीवादि तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर उसका मनन करना, वा—और, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा—सम्यक् प्रकार से तत्त्वों के ज्ञाता आचार्य-उपाध्याय-साधु आदि की सेवा करना, वावि—तथा, वावण्णकुदंसणवज्जणा - सम्यक्त्व से पतित हुए व्यक्तियों की तथा कुदर्शनियों की संगति का त्याग करना, इन गुणों से, सम्मत्तसद्दहणा—सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। ये तीन सम्यक्त्व की श्रद्धना कहलाती हैं ॥२८॥

णत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं ।
सम्मत्त-चरित्ताइं, जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं ॥२९॥

— सम्मत्तविहूणं—सम्यक्त्व बिना, चारित्तं—चारित्र, णत्थि—नहीं होता, उ—और दंसणे—सम्यक्त्व के होने पर भइयव्वं चारित्र को भजना है सम्मत्तचरित्ताइं

सम्यक्त्व और चारित्र, जुगवं—युगपत (एक साथ) भी हो सकते हैं, व—अथवा, पुव्वं—पहले, सम्मत्तं—सम्यक्त्व होता है और पीछे चारित्र होता है ॥२९॥

णादंसणिस्स णाणं, णाणेण विणा ण हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स णत्थि मोक्खो, णत्थि अमोक्खस्स णिव्वाणं॥

— अदंसणिस्स--सम्यग्दर्शन-रहित पुरुष के, णाणं—सम्यग्ज्ञान, ण—नहीं होता, णाणेण—सम्यग्ज्ञान के, विणा--बिना, चरणगुणा--चारित्रगुण, ण हुंति—प्रगट नहीं होते, अगुणिस्स—चारित्रगुण-रहित मनुष्य का. मोक्खो--मोक्ष, णत्थि--नहीं होता और, अमोक्खस्स--कर्मों से छुटकारा हुए बिना, णिव्वाणं—निर्वाण (सिद्धि पद) की प्राप्ति, णत्थि-नहीं होती ॥३०॥

णिस्संकिय, णिक्कंखिय, णिव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूह-थिरीकरणे, वच्छल्ल-पभावणे अट्ठ ॥३१॥

— १—णिस्संकिय—वीतराग-सर्वज्ञ के वचनों में शंका न करना २—णिक्कंखिय—परदर्शन की आकांक्षा न करना अथवा सुख की आकांक्षा न करना और दुःख से द्वेष न करना, किन्तु सुख-दुःख को अपने किये हुए कर्मों का फल समझ कर समभाव रखना, ३—णिव्वितिगिच्छा--धर्म के फल में सन्देह न करना अथवा साधुओं का मैला शरीर देख कर घृणा न करना, ४—अमूढदिट्ठी—कुतीर्थियों की ऋद्धिशाली देख कर

भी अपनी श्रद्धा को दृढ़ रखना, ५– उव्वूहथिरीकरणे --गुणी- जनों को देख कर उनकी प्रशंसा करना एवं उनके गुणों की वृद्धि करना तथा स्वयं भी उन गुणों का प्राप्त करने का प्रयत्न करना, ६– स्थिरीकरण- धर्म से डिगते प्राणी को धर्म में स्थिर करना, य—और, वच्छल्लपभावणे—साधर्मियों के साथ वात्सल्यभाव रखना जैनधर्म की प्रशंसा और उन्नति के लिए चेष्टा करना, अट्ठ--ये आठ दर्शनाचार हैं ॥३१॥

सामाइयत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीयं ।
परिहारविशुद्धीयं, सुहुमं तह संपरायं च ॥३२॥
अकसायमहक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा ।
एयं चयरित्तकरं, चारित्तं होइ आहियं ॥३३॥

— अब चारित्र के भेदों का वर्णन किया जाता है:- अत्थ— चारित्र में, पढमं—पहला, सामाइयं--सामायिक, बीयं-- दूसरा, छेओवट्ठावणं-- छेदोपस्थापनीय, परिहारविसुद्धीयं-- तीसरा परिहारविशुद्धि, सुहुमं संपरायं--चौथा सूक्ष्मसंपराय चारित्र है। अकसायं--कषाय के क्षय या उपशम से होने वाला, अहक्खायं—पाँचवाँ यथाख्यात चारित्र, छउमत्थस्स-- ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ मुनि के, वा--अथवा जिणस्स- केवली भगवान के, भवे—होता है। एयं--यह पाँचों प्रकार का, चारित्तं--चारित्र, चयरित्तकरं—कर्मों का नाश करने वाला, होइ—है, आहियं--ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने फरमाया है ॥३२-३३॥

तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तहा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो ॥३४॥

— तवो—तप, दुविहो—दो प्रकार का, वुत्तो—कहा गया है, बाहिरब्भंतरो तहा—बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। बाहिरो—बाह्य तप, छव्विहो—छः प्रकार का, वुत्तो—कहा गया है, एवं—इसी प्रकार, अब्भंतरो—अभ्यन्तर, तवो—तप भी छः प्रकार का है ॥३४॥

णाणेण जाणइ भावे, देसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण णिगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ ॥३५॥

— आत्मा, णाणेण— ज्ञान से, भावे—पदार्थों को, जाणइ—जानता है, दंसणेण—दर्शन (सम्यक्त्व) से, सद्दहे—श्रद्धा करता है, चरित्तेण—चारित्र से, णिगिण्हाइ—कर्मों को रोकता है, य—और, तवेण—तप से, परिसुज्झइ—पूर्वकृत कर्मों का क्षय कर के शुद्ध होता है ॥३५॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ।३६। त्तिबेमि ।

— महेसिणो—महर्षि, संजमेण—संयम, य—और, तवेण—तप से, पुव्वकम्माइं—पूर्वकृत कर्मों का, खवित्ता—क्षय कर के, सव्वदुक्खपहीणट्ठा—सभी दुःखों से रहित हो कर, पक्कमंति—सिद्ध गति प्राप्त करते हैं ॥३६॥ त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ अट्ठाइसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

सम्यक्त्व पराक्रम उनतीसवाँ अध्ययन

73 4



सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं--इह खलु सम्मत्तपरक्कमे णामं अज्झयणे समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइए, जं सम्मं सद्दहित्ता पत्तइत्ता रोयइत्ता फासइत्ता पालइत्ता तीरित्ता कित्तइत्ता सोहइत्ता आराहइत्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

— श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि:— आउसं--हे आयुष्मन् जम्बू ! तेणं—उन, भगवया—भगवन्तों ने, एवं--इस प्रकार, अक्खायं--कहा था सो, मे—मैंने, सुयं--सुना है, इह--इस जिनशासन में, खलु--निश्चय ही, कासवेण--काश्यप गोत्रीय, समणेणं--श्रमण, भगवया--भगवान् महावीरेणं— महावीर स्वामी ने, सम्मत्तपरक्कमे—सम्यक्त्व पराक्रम, णामं—नामक, अज्झयणे-अध्ययन, पवेइए—प्रतिपादित किया है, जं--जिस पर, सम्मं--सम्यक् प्रकार से, सद्दहित्ता-- श्रद्धा कर के, पत्तइत्ता— प्रतीति कर के, रोयइत्ता--रुचि कर के, फासइत्ता--स्पर्श (ग्रहण) कर के, पालइत्ता -पालन कर के, तीरित्ता--पार कर के, किट्टित्ता--कीर्तन कर के, सोहइत्ता--शुद्ध कर के, आराहइत्ता--आराधन

कर के, आणाए—आज्ञानुसार, अणुपालइत्ता--पालन कर के, बहवे—वहुत-से, जीवा—जीव, सिज्झइ--सिद्ध होते हैं, बुज्झइ--बुद्ध होते हैं, मुच्चइ--मुक्त होते हैं, परिणिव्वाएइ--कर्म रूपी दावानल से छूट कर शान्त होते हैं और, सव्वदुक्खाण—सभी प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःखों का, अंतं करेइ—अन्त करते हैं।

तस्स णं अयमट्ठे एवमाहिज्जइ, तं जहा—संवेगे णिव्वेए धम्मसद्धा गुरुसाहम्मियसुस्सूसणया आलोयणया णिंदणया गरिहणया सामाइए चउवीसत्थए वंदणए पडिक्कमणे काउस्सग्गे पच्चक्खाणे थवथुइमंगले कालपडिलेहणया पायच्छित्तकरणे खमावणया सज्झाए वायणया पडिपुच्छणया परियट्टणया अणुप्पेहा धम्मकहा सुयस्स आराहणया एगग्गमणसंणिवेसणया संजमे तवे वोदाणे सुहसाए अप्पडिबद्धया विवित्तसयणासणसेवणया विणियट्टणया संभोगपच्चक्खाणे उवहिपच्चक्खाणे आहारपच्चक्खाणे कसायपच्चक्खाणे जोग पच्चक्खाणे सरीरपच्चक्खाणे सहायपच्चक्खाणे भत्तपच्चक्खाणे सब्भावपच्चक्खाणे पडिरूवणया वेयावच्चे सव्वगुणसंपुण्णया वीयरागया खंती मुत्ती मद्दवे अज्जवे भावसच्चे करणसच्चे जोगसच्चे मणगुत्तया वयगुत्तया कायगुत्तया

मणसमाधारणया वयसमाधारणया कायसमाधारणया णाणसंपण्णया दंसणसंपण्णया चरित्तसंपण्णया सोइं-दियणिग्गहे चक्खिंदियणिग्गहे घाणिंदियणिग्गहे जिब्भि-दियणिग्गहे फासिंदियणिग्गहे कोहविजए माणविजए मायाविजए लोभविजए पेज्जदोसमिच्छादंसणविजए सेलेसी अकम्मया ॥२॥

— तस्स--उस सम्यक्त्व पराक्रम नामक अध्ययन का, अयं--यह, अट्ठे--अर्थ है जो, एवं--इस प्रकार, आहिज्जइ-कहा जाता है, तंजहा—यथा- १ संवेगे--संवेग, २ णिव्वेए—निर्वेद, ३ धम्मसद्धा--धर्म श्रद्धा, ४ गुरुसाहम्मियसुस्सूसणया--गुरु और साधर्मियों की सेवा शुश्रूषा, ५ आलोयणया--आलोचना, ६ णिंदणया—निन्दा, ७ गरिहणया—गर्हा, ८ सामाइए-सामायिक, ९ चउव्वीसत्थए-- चतुर्विंशति-स्तव (चौविस तीर्थंकरों की स्तुती) १० वंदणए--वन्दना ११ पडिक्कमणे—प्रतिक्रमण, १२ काउस्सग्गे—कायोत्सर्ग १३ पच्चक्खाणे--(प्रत्याख्यान, १४ थवथुइमंगले---स्तव स्तुतिमंगल (गुणीजनों की स्तुति) १५ कालपडिलेहणया— काल प्रतिलेखनता, १६ पायच्छित्तकरणे— प्रायश्चित्करण, १७ खमावणया—क्षमापना १८ सज्झाए—स्वाध्याय, १९ वायणया--वाचना, २० पडिपुच्छणया—प्रतिपृच्छना (प्रश्नोत्तर) २१ परियट्टणया-परिवर्तना, २२ अणुप्पेहा—अनुप्रेक्षा, २३ धम्मकहा—धर्मकथा, २४ सुयस्स आराहणया--श्रुत की आराधना, २५ एगग्गमण-

संणिवेसणया--एकाग्र मन सन्निवेशनता (मन की एकाग्रता) २६ संजमे—संयम, २७ तवे—तप, २८ वोदाणे—व्यवदान (कर्मों का क्षय) २९ सुहसाए—सुखशाय (वैषयिक सुखों से निवृत्ति) ३० अप्पडिवद्धया—अप्रतिबद्धता, ३१ विवित्त-सयणासण सेवणया—विविक्त शय्या आसन का सेवन, ३२ विणियट्टणया—विनिवर्तना (पापकर्मों से निवृत्त होना) ३३ संभोगपच्चक्खाणे—संभोग प्रत्याख्यान, ३४ उवहिपच्चक्खाणे-उपधि प्रत्याख्यान. ३५ आहार पच्चक्खाणे--अहार प्रत्याख्यान, ३६ कसाय पच्चक्खाणे—कषाय प्रत्याख्यान, ३७ जोग-पच्चक्खाणे—योग प्रत्याख्यान, ३८ सरीर पच्चक्खाणे—शरीर प्रत्याख्यान ३९ सहाय पच्चक्खाणे--सहाय-प्रत्याख्यान, ४० भत्त पच्चक्खाणे— भक्त-प्रत्याख्यान, ४१ सब्भाव-पच्चक्खाणे – स्वभाव प्रत्याख्यान एवं सद्भाव प्रत्याख्यान, ४२ पडिरूवणया--प्रतिरूपता (मन वचन काया की एकता) ४३ वेयावच्चे - वैयावृत्य ४४ सव्वगुणसंपण्णया— सर्वगुण सम्पन्नता, ४५ वीयरागया-- वीतरागता, ४६ खंति—क्षमा, ४७ मुत्ती—मुक्ति (निर्लोभता) ४८ मद्दवे—मार्दव, ४९ अज्जवे—आर्जव (सरलता) ५० भावसच्चे--भाव सत्य, ५१ करणसच्चे--कारण सत्य, ५२ जोगसच्चे--योग सत्य, ५३ मणगुत्तया—मन गुप्ति, ५४ वयगुत्तया—वचन गुप्ति, ५५ कायगुत्तया—काय गुप्ति, ५६ मण समाधारणया--मन समाधारणता, ५७ वयसमाधारणया—वचन समाधारणता,

५८ कायसमाधारणया— काय-समाधारणता ५९ णाण-संपण्णया—ज्ञान-सम्पन्नता ६० दंसणसंपण्णया— दर्शन सम्पन्नता, ६१ चरित्तसंपण्णया— चारित्र-सम्पन्नता, ६२ सोइंदियणिग्गहे—श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह ६३ चक्खिदिय णिग्गहे— चक्षुइन्द्रिय निग्रह ६४ घाणिंदियणिग्गहे—घ्राणेन्द्रिय निग्रह, ६५ जिब्भिदियणिग्गहे—जिव्हा इन्द्रिय निग्रह, ६६ फासिंदिय-णिग्गहे—स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह, ६७ कोह-विजए—क्रोध विजय ६८ माण विजए—मान विजय, ६९ माया विजए—माया विजय, ७० लोभ विजए—लोभ विजय, ७१ पेज्जदोस-मिच्छादंसण विजए—राग, द्वेष तथा मिथ्यादर्शन का विजय, ७२ सेलेसी—शैलेशी अवस्था, ७३ अकम्मया—अकर्मता (कर्मरहित अवस्था) ।

१—संवेगेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न- भंते—हे भगवान् ! संवेगेणं—संवेग भाव से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ, अणंताणुबंधि कोह-माण-माया-लोभे खवेइ, णवं च कम्मं ण बंधइ, तप्प-च्चइयं च मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ, दंसणविसोहीएणं विसुद्धाए अत्थेगइया जीवा तेणेव

संणिवेसणया--एकाग्र मन सन्निवेशनता (मन की एकाग्रता) २६ संजमे--संयम, २७ तवे--तप, २८ वोदाणे--व्यवदान (कर्मों का क्षय) २९ सुहसाए--सुखशाय (वैषयिक सुखों से निवृत्ति) ३० अप्पडिवद्धया--अप्रतिवद्धता, ३१ विवित्त-सयणासण सेवणया--विविक्त शय्या आसन का सेवन, ३२ विणियट्टणया--विनिवर्तना (पापकर्मों से निवृत्त होना) ३३ संभोगपच्चक्खाणे--संभोग प्रत्याख्यान, ३४ उवहिपच्चक्खाणे-उपधि प्रत्याख्यान. ३५ आहार पच्चक्खाणे--अहार प्रत्याख्यान, ३६ कसाय पच्चक्खाणे--कषाय प्रत्याख्यान, ३७ जोग-पच्चक्खाणे--योग प्रत्याख्यान, ३८ सरीर पच्चक्खाणे--शरीर प्रत्याख्यान ३९ सहाय पच्चक्खाणे--सहाय-प्रत्याख्यान, ४० भत्त पच्चक्खाणे-- भक्त-प्रत्याख्यान, ४१ सब्भाव-पच्चक्खाणे--स्वभाव प्रत्याख्यान एवं सद्भाव प्रत्याख्यान, ४२ पडिरूवणया--प्रतिरूपता (मन वचन काया की एकता) ४३ वेयावच्चे - वैयावृत्य ४४ सव्वगुणसंपण्णया-- सर्वगुण सम्पन्नता, ४५ वीयरागया-- वीतरागता, ४६ खंति--क्षमा, ४७ मुत्ती--मुक्ति (निर्लोभता) ४८ मद्दवे--मार्दव, ४९ अज्जवे--आर्जव (सरलता) ५० भावसच्चे--भाव सत्य, ५१ करणसच्चे--कारण सत्य, ५२ जोगसच्चे--योग सत्य, ५३ मणगुत्तया--मन गुप्ति, ५४ वयगुतया--वचन गुप्ति, ५५ कायगुत्तया--काय गुप्ति, ५६ मण समाधारणया--मन समाधारणता, ५७ वयसमाधारणया--वचन समाधारणता,

५८ कायसमाघारणया— काय-समाधारणता ५९ णाण-संपण्णया-- ज्ञान-सम्पन्नता ६० दंसणसंपण्णया-- दर्शन सम्पन्नता, ६१ चरित्तसंपण्णया-- चारित्र-सम्पन्नता, ६२ सोइंदियणिग्गहे--श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह ६३ चक्खिदिय णिग्गहे— चक्षुइन्द्रिय निग्रह ६४ घाणिंदियणिग्गहे—घ्राणेन्द्रय निग्रह, ६५ जिब्भिदियणिग्गहे—जिव्हा इन्द्रिय निग्रह, ६६ फासिंदिय-णिग्गहे—स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह, ६७ कोह-विजए—क्रोध विजय ६८ माण विजए--मान विजय, ६९ माया विजए—माया विजय, ७० लोभ विजए--लोभ विजय, ७१ पेज्जदोस-मिच्छादंसण विजए—राग, द्वेष तथा मिथ्यादर्शन का विजय, ७२ सेलेसी--शैलेशी अवस्था, ७३ अकम्मया--अकर्मता (कर्मरहित अवस्था)।

१—संवेगेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न- भंते--हे भगवान् ! संवेगेणं—संवेग भाव से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ, अणंताणुबंधि कोह-माण-माया-लोभे खवेइ, णवं च कम्मं ण बंधइ, तप्प-च्चइयं च मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ, दंसणविसोहीएणं विसुद्धाए अत्थेगइया जीवा तेणेव

भवग्गहणेणं सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ, विसोहीए णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं णाइक्कमइ ॥१॥

— उत्तर- संवेगेणं—संवेग (मोक्ष की अभिलाषा) से, अणुत्तरं—उत्कट, धम्मसद्धं--धर्मश्रद्धा, जणयइ--उत्पन्न होती है, अणुत्तराए--उत्कट, धम्मसद्धाए—धर्मश्रद्धा से, हव्वं—शीघ्र ही, संवेगं—संवेग, आगच्छइ--उत्पन्न होता है और वैराग्य से, अणंताणुबंधि कोह माण माया लोभे--अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ का, खवेइ—क्षय होता है, च--और, णवं—नवीन, कम्मं--कर्मों का, ण बंधइ—बन्ध नहीं होता, च--और, तप्पच्चइयं--कर्मबन्धन के निमित्त कारण, मिच्छत्तविसोहिं—मिथ्यात्व की विशुद्धि, काऊण--कर के, दंसणाराहए—क्षायिक सम्यक्त्व का आराधक, भवइ—होता है, दंसणविसोहीएणं--सम्यक्त्व की विशुद्धि से, विसुद्धाए—विशुद्ध बने हुए, अत्थेगइया—कोई-कोई, जीवा—जीव, तेणेव—उसी, भवग्गहणेणं--भव में, सिज्झइ--सिद्ध होते हैं, बुज्झइ-बुद्ध होते हैं, मुच्चइ—कर्मों से मुक्त हो जाते हैं, परिणिव्वायइ—परम शान्त को प्राप्त हो जाते हैं, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ--सभी दुःखों का अन्त कर देते हैं, जो उसी भव में मोक्ष नहीं पाते हैं वे, विसोहीए ण विसुद्धाए—सम्यक्त्व की उच्च विशुद्धि के कारण, तच्चं—तीसरे, पुणो भवग्गहणं--भव का, णाइक्कमंति—अतिक्रमण नहीं करते अर्थात् तीसरे

भव में तो अवश्य मोक्ष पा लेते हैं, क्योंकि क्षायिक-सम्यक्त्व की प्राप्ति के बाद जीव संसार में तीन भव से अधिक भव नहीं करते ॥१॥

२—णिव्वेएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! णिव्वेएणं—निर्वेद (संसार से विरक्ति) से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ— लाभ होता है ?

णिव्वेएणं दिव्वमाणुस्सतिरिच्छिएसु कामभोगेसु णिव्वेयं हव्वमागच्छइ, सव्वविसएसु विरज्जइ, सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरंभपरिग्गहपरिच्चायं करेइ, आरंभपरिग्गह-परिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिदइ, सिद्धिमग्गं पडिवण्णे य भवइ ॥२॥

—उत्तर— णिव्वेएणं—निर्वेद से जीव, दिव्वमाणुस्सतिरिच्छएसु—देव, मनुष्य और पशु सम्बन्धी समस्त प्रकार के, कामभोगेसु—कामभोगों में, हव्वं—शीघ्र ही, णिव्वेयं आगच्छइ—आसक्ति रहित हो जाता है और, सव्वविसएसु—सभी विषयों से, विरज्जइ—विरक्त हो जाता है, सव्वविसएसु—सभी विषयों से, विरज्जमाणे—विरक्त हुआ जीव, आरंभपरिग्गहपरिच्चायं करेइ—आरम्भ-परिग्रह का त्याग कर देता है, आरंभपरिग्गहपरिच्चायं करेमाणे—आरम्भ परिग्रह का त्याग कर के, संसारमग्गं—संसार-मार्ग का अर्थात् भवपरम्परा का,

वोच्छिदइ—नाश कर डालता है, य—और, सिद्धिमग्गं-पडिवण्णे भवइ--मोक्ष मार्ग का पथिक बन जाता है ॥२॥

३—धम्मसद्धाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! धम्मसद्धाए णं—धर्म-श्रद्धा से, जीवे—जीव को, किं-- क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

धम्मसद्धाए णं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ, आगारधम्मं च णं चयइ, अणगारिए णं जीवे सारीर-माणसाणं दुक्खाणं छेयणभेयण-संजोगाईणं वोच्छेयं करेइ, अव्वाबाहं च सुहं णिव्वत्तेइ ॥३॥

— उत्तर— धम्मसद्धाए णं—धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखने से, सायासोक्खेसु—सातावेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त हुए जिन सुखों में, जीवे--जीव, रज्जमाणे--अनुराग करता था उन सुखों से, विरज्जइ—विरक्त हो जाता है, च--और आगारधम्मं--गृहस्थ-धर्म का, चयइ--त्याग कर देता है, अणगारिए—मुनि बन कर, सारीरमाणसाणं--शारीरिक और मानसिक, दुक्खाणं—दुःखों का, छेयण भेयण संजोगाईणं-वोच्छेयं करेई—छेदन-भेदन कर देता है तथा संयोग-वियोग-जन्य दुःखों का व्यवच्छेद (नाश) कर देता है, च--और, अव्वाबाहं—अव्याबाध (बाधा-पीड़ा रहित) सुहं--मोक्ष-सुख को णिव्वत्तेइ—प्राप्त करता है ॥३॥

कि जणयइ ?

— प्रश्न– भंते - हे भगवन् ! गुरुसाहम्मिय सुस्सूसणयाए णं—गुरुजनों तथा साधर्मियों की सेवा करने से, जीवे—जीव को, कि— क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

गुरुसाहम्मिय-सुस्सूसणयाए णं विणयपडिवत्तिं जणयइ, विणयपडिवण्णे य णं जीवे अणच्चासायणसीले णेरइय-तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देव-दुग्गईओ णिरुंभई, वण्णसंजलण-भत्ति-बहुमाणयाए मणुस्सदेवसुग्गईओ णिबंधइ, सिद्धिसोग्गइं च विसोहेइ, पसत्थाइं च णं विणयमूलाइं सव्वकज्जाइं साहेइ, अण्णे य बहवे जीवा विणइत्ता भवइ ॥४॥

— उत्तर— गुरुसाहम्मिय-सुस्सूसणयाए--गुरुजनों की तथा साधर्मियों की सेवा करने से, विणयपडिवत्ति जणयइ—विनय की प्राप्ति होती है य- और, विणयपडिवण्णे--विनय को प्राप्त हु', जीवे-जीव, अणच्चासायणसीले-सम्यक्त्वादि का नाश करने वाली आशातना का त्याग कर देता है, फिर वह जीव, णेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्स-देवदुग्गईओ--नारकी, तीर्यञ्च, मनुष्य और देव सम्बन्धी दुर्गतियों का, णिरुंभइ--निरोध कर देता है, तथा वण्णसजलण भत्ति-बहुमाणयाए—गुरुजनों का गुणकीर्तन, भक्ति, बहुमान करने से, मणुस्स देवसुग्गईओ--मनुष्य और देवों में उत्तम ऐश्वर्य आदि सम्पन्न शुभ-गति का,

णिबंधइ--बन्ध करता है, च—और, सिद्धिसोग्गइं--मोक्ष के कारणभूत ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप मोक्ष-मार्ग की, विसोहेइ--विशुद्धि करता है, च--और, विणयमूलाइं--विनय-मूलक, पसत्थाइं सव्वकज्जाइं—सभी उत्तम कार्यों को, साहेइ--सिद्ध कर लेता है, य—और, उसे देख कर, अण्णे—दूसरे, बहवे--बहुत-से, जीवा--जीव, विणइत्ता भवइ—विनय-धर्म में प्रवृत्त होते हैं ॥४॥

५--आलोयणाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न-- भंते--हे भगवन् ! आलोयणाए णं—आलोचना से, जीवे--जीव को, किं--क्या जणयइ--लाभ होता है ?

आलोयणाए णं माया-णियाण-मिच्छा-दंसण-सल्लाणं मोक्खमग्ग-विग्घाणं अणंत-संसार-वद्धणाणं उद्धरणं करेइ, उज्जुभावं च जणयइ, उज्जुभाव पडिवण्णे य णं जीवे अमाई इत्थिवेयं णपुंसगवेयं च ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णं णिज्जरइ ॥५॥

— उत्तर-- आलोयणाए णं--गुरु के समक्ष अपने दोषों को प्रकाशित कर आलोचना करने से, मोक्खमग्ग विग्घाणं--मोक्ष-मार्ग में विघात करने वाले और, अणंतसंसारवद्धणाणं--अनन्त संसार बढ़ाने वाले,, मायाणियाणमिच्छादंसणसल्लाणं—माया निदान और मिथ्यात्व रूप तीनों शल्यों को, उद्धरण-

करेइ—हृदय से निकाल फैंकता है, च--और, उज्जुभावं—सरल भाव को, जणयइ--प्राप्त करता है, य--और, उज्जुभावपडिवण्णे--सरलभाव को प्राप्त हुआ, जीवे--जीव, अमाई—माया-कपटई रहित हो जाता है, ऐसा माया-रहित जीव, इत्थिवेयं--स्त्रीवेद, च—और, णपुंसगवेयं—नपुंसक वेद का, ण बंधइ--बंध नहीं करता, च—और यदि कदाचित् उनका, पुव्व बद्धं—पहले बन्ध हो चुका हो तो, णिज्जरइ—उनकी निर्जरा कर देता है ॥५॥

६—— णिंदणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न—-भंते—हे भगवन् ! णिंदणयाए—आत्मनिन्दा अर्थात् अपने दोषों की स्वयं निन्दा करने से जीवे—जीव को, किं— क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

णिंदणयाए णं पच्छाणुतावं जणयइ, पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे करणगुणसेढिं पडिवज्जइ, करणगुणसेढिपडिवण्णे य अणगारे मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ ॥६॥

उत्तर- णिंदणयाए-अपने दोषों की निन्दा करने से, पच्छाणुतावं जणयइ--पश्चात्ताप होता है। पच्छाणुतावेणं--पश्चात्ताप करने से, विरज्जमाणे—वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्य के कारण जीव, करणगुणसेढिं—क्षपक श्रेणी पर, पडिवज्जइ-चढ़ता है, य--और, करणगुणसेढिपडिवण्णे--क्षपक श्रेणी पर

पड़ा हुआ, अणगारे--अनगार, मोहणिज्जं—मोहनीय, कम्मं-कर्म का, उग्घाएइ--क्षय कर देता है। मोहनीय कर्म का क्ष होने से मोक्ष होता है ॥६॥

७—गरहणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न – भंते--हे भगवन् ! गरहणयाए णं--आत्म गर्हा से, जीवे—जीव को, कि--क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

गरहणयाए णं अपुरक्कारं जणयइ, अपुरक्कारगएणं जीवे अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो णियत्तेइ, पसत्थे य पडिवज्जइ पसत्थ जोगपडिवण्णे य णं अणगारे अणंतघाई पज्जवे खवेइ ॥७॥

— उत्तर – गरहणयाएणं--आत्मगर्हा करने से, अपुरक्कारं--अपुरस्कार भाव (गर्व-भंग) की, जणयइ— उत्पत्ति होती है और आत्म-नम्रता प्राप्त होती है, अपुरक्कारगए णं — आत्मनम्रता को प्राप्त हुआ, जीवे—जीव, अप्पसत्थेहिंतो—अशुभ. जोगेहिंतो—योगों से, णियत्तेइ--निवृत्त हो जाता है, य—और, पसत्थे--शुभ-योगों को, पडिवज्जेइ--प्राप्त होता है, य—और, पसत्थजोगपडिवण्णे णं--शुभ योगों को प्राप्त हुआ, अणगारे—अनगार (साधु), अणंतघाई--अनन्तज्ञान-दर्शनादि की घात करने वाली, पज्जवे--कर्म-पर्यायों को, खवेइ – क्षय कर देता है ॥७॥

८—सामाइएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न— भंते—हे भगवन्! सामाइएणं—सामायिक करने से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है?

सामाइएणं सावज्ज-जोग-विरइ जणयइ ?

—उत्तर— सामाइएणं—सामायिक करने से, सावज्ज जोग विरइ—सावद्य योगों से निवृत्ति, जणयइ—होती है॥

९—चउवीसत्थए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न— भंते—हे भगवन्! चउवीसत्थएणं—चोवीस तीर्थंकरों की स्तुति करने से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—फल मिलता है?

चउवीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ ?

—उत्तर— चउवीसत्थएणं—चोवीस तीर्थंकरों की स्तुति करने से, दंसणविसोहिं—दर्शन-सम्यक्त्व की विशुद्धि, जणयइ—होती है॥९॥

१०—वंदणएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न— भंते—हे भगवन्! वंदणएणं—गुरुमहाराज को वन्दना करने से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है?

वंदणएणं णीयागोयं कम्मं खवेइ, उच्चागोयं कम्मं णिबंधइ, सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं णिव्वत्तेइ, दाहिणभावं च णं जणयइ॥१०॥

—उत्तर— वंदणएणं—वन्दना करने से, णीयागोयं—

नीच-गोत्र, कम्मं--कर्म का, खवेइ—क्षय करता है और, उच्चागोयं--उच्च-गोत्र, कम्मं—कर्म को, णिबंधइ—बांधता है, च--और, अप्पडिहयं—अप्रतिहत अर्थात् अखण्ड, सोहग्गं—सौभाग्य और, आणाफलं--सफल आज्ञा के फल को, णिव्वत्तेइ-प्राप्त करता है, च—और, दाहिणभावं--दाक्षिण्यभाव को, जणयइ—प्राप्त करता है अर्थात् वह लोगों का प्रीतिपात्र और मान्य बन जाता है॥१०॥

११--पडिक्कमणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

-- प्रश्न- भंते--हे भगवन् ! पडिक्कमणेणं—प्रतिक्रमण करने से, जीवे—जीव को, किं--क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

पडिक्कमणेणं वयच्छिदाइं पिहेइ, पिहियवयच्छिद्दे पुण जीवे णिरुद्धासवे असबल-चरित्ते अट्ठसु पवयण-मायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ ॥११॥

-- उत्तर--पडिक्कमणेणं—प्रतिक्रमण करने से, वयच्छिदाइं—व्रतों में बने हुए छिद्रों को, पिहेइ--बन्द करता है, पुण--फिर, पिहियच्छिद्दे—व्रतों के दोषों से निवृत्त बना हुआ शुद्ध व्रतधारी, जीवे—जीव, णिरुद्धासवे—आश्रवों को रोक कर तथा, असबल चरित्ते--शबलादि दोषों से रहित शुद्ध संयम वाला हो कर, अट्ठसु--आठ, पवयणमायासु—प्रवचन माताओं में, उवउत्ते--सावधान होता है और, अपुहत्ते—संयम में तल्लीन रहता हुआ, सुप्पणिहिए—समाधिपूर्वक एवं अपनी इन्द्रियों को असन्मार्ग से हटा कर, विहरइ—संयम-

मार्ग में विचरण करता है।

१२--काउस्सग्गेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न-- भंते—हे भगवन् ! काउस्सग्गेणं—कायोत्सर्ग से, जीवे--जीव को, किं—किन गुणों की, जणयइ--प्राप्ति होती है ?

काउस्सग्गेणं तीयपडुप्पण्णं पायच्छित्तं विसोहेइ, विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे णिव्वुयहियए ओहरियभरुव्व भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहं सुहेणं विहरइ ॥१२॥

-- उत्तर— काउस्सग्गेणं—कायोत्सर्ग करने से, तीयपडुप्पण्णं--भूतकाल और वर्तमान काल के दोषों का पायच्छित्तं—प्रायश्चित्त कर के, विसोहेइ--जीव शुद्ध बनता है, य—और, ओहरियभरुव्वभारवाहे--जिस प्रकार बोझ उतर जाने से मजदूर सुखी होता है उसी प्रकार, विसुद्धपायच्छित्ते—प्रायश्चित्त से विशुद्ध बना हुआ, जीवे—जीव णिव्वुयहियए—शान्त हृदय बन कर, पसत्थज्झाणोवगए—शुभ ध्यान ध्याता हुआ, सुहंसुहेणं--सुखपूर्वक विहरइ—विचरता है ॥१२॥

१३--पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! पच्चक्खाणेणं—प्रत्याख्यान से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं णिरुंभइ, पच्चक्खाणेणं

इच्छाणिरोहं जणयइ इच्छाणिरोहं गए य णं जीवे सव्व दव्वेसु विणीयतण्हे सीइभूए विहरई ॥१३॥

— उत्तर— पच्चक्खाणेणं--प्रत्याख्यान करने से आसवदाराइं---आश्रवद्वारों का, णिरुंभइ— निरोध होता है, पच्चक्खाणेणं—प्रत्याख्यान करने से, इच्छाणिरोहं—इच्छा का निरोध, जणयइ --होता है, इच्छाणिरोहं गए य णं—इच्छा का निरोध होने से, जीवे—जीव, सव्वदव्वेसु--सभी पदार्थों में विणीयतण्हे—तृष्णारहित बना हुआ, सीइभूए--परम शांति से, विहरई---विचरता है ॥१३॥

१४---थयथुइमंगलेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न:— भंते— हे भगवन् ! थयथुइमंगलेणं-- स्तवस्तुतिमंगल से ‡ जीवे—जीव को, किं— क्या, जणयइ— लाभ होता है ?

थयथुइमंगलेणं णाण-दंसण-चरित्त-बोहिलाभं जणयइ, णाणदसण-चरित्त-बोहिलाभ-संपण्णे य णं जीवे अंतकिरियं कप्पविमाणोववत्तियं आराहणं आराहेइ ॥

--- उत्तर:— थयथुइमंगलेणं--- स्तव-स्तुति मंगल से, णाणदंसण-चरित्त-बोहिलाभं---ज्ञान दर्शन-चारित्र रूप बोधि-

‡ एक श्लोक से ले कर सात श्लोकों में जो प्रार्थना का जाती है उसे 'स्तुति' कहते हैं और देवेन्द्रस्तव आदि को 'स्तव' कहते हैं।

लाभ को, जणयइ--प्राप्त करता है, य--और, णाणदंसण-चरित्तबोहिलाभसंपण्णे – ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप बोधिलाभ को प्राप्त करने वाला जीव कप्पविमाणोववत्तियं—कल्प विमानों में (बारह देवलोक, नवग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमानों में) उच्च जाति का देव होता है और, आराहणं आराहेइ—ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करता हुआ जीव क्रमशः, अंतकिरियं—अन्तक्रिया कर मोक्ष को प्राप्त करता है ।।१४।।

१५--कालपडिलेहणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

-- प्रश्न— भंते--हे भगवन् ! कालपडिलेहणयाए णं--काल प्रतिलेखना (स्वाध्याय काल के ज्ञान) से, जीवे--जीव को, किं--क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

कालपडिलेहणयाए णं णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ।

— उत्तर— कालपडिलेहणयाए णं—काल प्रतिलेखना से, णाणावरणिज्जं—ज्ञानावरणीय, कम्मं— कर्म का, खवेइ--क्षय होता है अर्थात् स्वाध्यायादि काल का ज्ञान रहने से साधु उस समय में स्वाध्यायादि करता है। स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है ।।१५।।

१६--पायच्छित्तकरणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! पायच्छित्तकरणेणं—

प्रायश्चित्त करने से, जीवे--जीव को, किं—किन गुणों की जणयइ--प्राप्ति होती है ?

पायच्छित्त-करणेणं पावकम्मविसोहिं जणयइ, णिरइयारे यावि भवइ, सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ, आयारं च आयारफलं च आराहेइ ॥१६॥

-- उत्तर— पायच्छित्त करणेणं—प्रायश्चित्त करने से जीव, पावकम्मविसोहिं--पाप-कर्मों की विशुद्धि, जणयइ--करता है, यावि—और वह, णिरइयारे--निरतिचार (दोषों से रहित) भवइ--हो जाता है, च—और, सम्मं--सम्यक् प्रकार से, पायच्छित्तं—प्रायश्चित्त, पडिवज्जमाणे—ग्रहण करता हुआ जीव, मग्गं— मार्ग (सम्यक्त्व) च— और, मग्गफलं--मार्ग के फल (मोक्ष) को विसोहेइ—विशुद्ध करता है, च--और क्रमशः वह जीव, आयारं--चारित्र को, च—और, आयारफलं--चारित्र के फल (मोक्ष) को आराहेइ—प्राप्त कर लेता है ॥१६॥

१७—खमावणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

-- प्रश्न-- भंते—हे भगवन् ! खमावणयाए—क्षमापना से, जीवे—जीव को, किं--किन गुणों की, जणयइ—प्राप्ति होती है ?

खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ, पल्हायण भावमुवगए य सव्वपाण-भूय-जीव-सत्तेसु मित्तीभाव-मुप्पाएइ, मित्तीभावमुवगए यावि जीवे भावविसोहिं काऊण णिब्भए भवइ ॥१७॥

— उत्तर— खमावणयाए—अपराध की क्षमा मांगने से, पल्हायणभावं जणयइ— चित्त आल्हादित्त होता है, य— और, पल्हायणभावमुवगए—प्रसन्न-चित्त जीव सव्वपाणभूय-जीवसत्तेसु—समस्त प्राणी-भूत-जीव सत्वों (संसार के समस्त प्राणियों) के साथ मित्तीभावं—मैत्रीभाव, उप्पाएइ — उत्पन्न करता है, यावि—और, मित्तीभावमुवगए—मैत्रीभाव को प्राप्त हुआ, जीवे—जीव, भावविसोहिं—अपने भावों को विशुद्ध, काऊण—बना कर, णिब्भए—निर्भय, भवइ—हो जाता है ।१७।

१८—सज्झाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्नः— भंते—हे भगवन् ! सज्झाएणं—स्वाध्याय करने से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

सज्झाएणं णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥१८॥

उत्तर:— सज्झाएणं—स्वाध्याय करने से, णाणावरणिज्जं—ज्ञानावरणीय, कम्मं—कर्म का, खवेइ—क्षय होता है ॥१८॥

१९—वायणाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्नः— भंते—हे भगवन् ! वायणाए णं—वाचना

से, जीवे—जीव को, किं--किन गुणों की, जणयइ--प्राप्ति होती है ?

वायणाए णं णिज्जरं जणयइ, सुयस्स अणुसज्जणाए अणासायणाए वट्टइ, सुयस्स अणुसज्जणाए अणासायणाए वट्टमाणे तित्थधम्मं अवलंबइ, तित्थधम्मं अवलंबमाणे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ ॥१९॥

उत्तर– वायणाए णं–आगम की वाचना से, णिज्जरं-कर्मों की निर्जरा, जणयइ-होती है और, सुयस्स-श्रुत का वाचन (पठन पाठन) होते रहने से अणुसज्जणाए-अनुवर्त्तन से, अणासायणाए वट्टइ-श्रुत की आशातना नहीं होती, सुयस्स-श्रुत की, अणुसज्जणाए-अनुवर्त्तन से, अणासायणाए वट्टमाणे-आशातना न करता हुआ जीव, तित्थधम्मं- तीर्थधर्म का, अवलंबइ- प्राप्त करता है तित्थधम्मं-तीर्थधर्म को अवलंबमाणे--प्राप्त कर के जीव महाणिज्जरे--कर्मों की महानिर्जरा करता है और, महापज्जवसाणे भवइ—कर्मों का अन्त कर के मोक्ष सुख को प्राप्त करता है ॥१९॥

२०--पडिपुच्छणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न-- भंते— हे भगवन् ! पडिपुच्छणयाए--‡ प्रतिपृच्छना से, जीवे--जीव को, किं--क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

---

‡ सूत्रार्थ में सन्देह उत्पन्न होने पर उसकी निवृत्ति के लिए विनयपूर्वक शंका-समाधान करना 'प्रतिपृच्छना' कहलाती है।

पडिपुच्छणयाए णं सुत्तत्थतदुभयाइं विसोहेइ, कंखामोहणिज्जं कम्मं वोच्छिदइ ॥२०॥

— उत्तर:— पडिपुच्छणयाए णं—प्रतिपृच्छना से जीव, सुत्तत्थतदुभयाइं—सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ दोनों को, विसोहेइ—विशुद्ध करता है और, कंखामोहणिज्जं— कांक्षा-मोहनीय, कम्मं—कर्म का, वोच्छिंदइ—नाश कर देता है ॥२०॥

२१—परियट्टणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न:— भंते—हे भगवन् ! परियट्टणयाएणं—परिवर्तना (पढ़े हुए सूत्रपाठ का पुनः-पुनः आवर्तन करने) से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

परियट्टणयाए णं वंजणाइं जणयइ, वंजणलद्धिं च उप्पाएइ ॥२१॥

— उत्तर:— परियट्टणयाए णं—परिवर्तन से, वंजणाइं—भूले हुए व्यञ्जन, जणयइ—याद हो जाते हैं, च—और, वंजणलद्धिं— व्यञ्जन-लब्धि (अक्षर-लब्धि और पदलब्धि) उत्पन्न हो जाती है ॥२१॥

२२—अणुप्पेहाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न:— भंते—हे भगवन् ! अणुप्पेहाएणं—अनुप्रेक्षा (चिन्तन) से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

अणुप्पेहाए णं आउय-वज्जाओ सत्त-कम्म-पयडीओ धणियबंधण-बद्धाओ सिढिलबंधण-बद्धाओ पकरेइ, दीहकालट्ठिइयाओ हृस्सकालठिइयाओ पकरेइ, तिव्वाणुभावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ, बहुप्पएसगाओ अप्पपएसगाओ पकरेइ, आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ सिय णो बंधइ, असायावेयणिज्जं च णं कम्मं णो भुज्जो भुज्जो उवचिणइ, अणाइयं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत-संसार-कंतारं खिप्पामेव वीइवयइ ॥२२॥

— उत्तर:—अणुप्पेहाए णं--अनुप्रेक्षा से, आउयवज्जाओ—आयु-कर्म के सिवाय, सत्त--सात, कम्मपयडीओ—कर्मों की प्रकृतियों को, धणिय-बंधण बद्धाओ--यदि वे गाढ़ बन्धन से बन्धी हुई हों तो उन्हें, सिढिल बंधण बद्धाओ-शिथिल बन्ध वाली, पकरेइ—कर देता है, दीहकाल ट्ठिइयाओ—लम्बी स्थिति वाली हों तो उन्हें, हस्सकाल ठिइयाओ--अल्प स्थिति वाली, पकरेइ--करता है, तिव्वाणुभावाओ –तीव्र रस वाली हों तो उन्हें, मंदाणुभावाओ—मंद रस वाली, पकरेइ--कर देता है, बहुप्पएसगाओ---बहुप्रदेशी हों तो उन्हें, अप्पपएसगाओ- अल्प, प्रदेश वाली, पकरेइ--कर देता है, च--और, आउयं कम्मं—उसके आयु कर्म का, सिय— कदाचित्, बधइ—बन्ध होता और, सिय—कदाचित, णो बंधइ--नहीं भी होता, च--और ऐसे जीव को, असायावेयणिज्जं--असाता-वेदनीय, कम्मं-

आराहणयाएणं-- आराधना से, जीवे-- जीव को, किं--क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

सुयस्स आराहणयाए णं अण्णाणं खवेई, ण य संकिलिस्सइ ॥२४॥

—उत्तरः—सुयस्स- श्रुत की, आराहणयाएणं—आराधना करने से जीव, अण्णाणं--अज्ञान का, खवेइ--नाश करता है, य--और, ण संकिलिस्सइ—संक्लेश को प्राप्त नहीं होता।२४।

२५-- एगग्गमण-सण्णिवेसणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्नः— भंते— हे भगवन् ! एगग्गमणसंणिवेसणयाएणं—मन की एकाग्रता से, जीवे—जीव को, किं- क्या जणयइ--लाभ होता है ?

एगग्ग-मण-सण्णिवेसणयाएणं चित्तणिरोहं करेइ ।२५।

— उत्तर—एगग्गमणसण्णिवेसणयाएणं—मन की एकाग्रता से जीव, चित्तणिरोहं—चित्तवृत्ति का निरोध, करेइ--करता है ॥२५॥

२६— संजमेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्नः— भंते—हे भगवन्! संजमेणं—संयम धारण करने से, जीवे— जीव को, किं--क्या, जणयइ— लाभ होता है ?

संजमेणं अणण्हत्तं जणयइ ॥२६॥

—उत्तरः— संजमेणं -संयम धारण करने से, अणण्हत्तं-आश्रवों का निरोध, जणयइ —होता है ॥२६॥

२७—तवेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्नः—भंते— हे भगवन् ! तवेणं—तपस्या करने से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

तवेणं वोदाणं जणयइ ॥२७॥

उत्तरः— तवेणं—तपस्या करने से, वोदाणं—व्यवदान, (पूर्वकृत कर्मों का क्षय) जणयइ—होता है ॥२७॥

२८—वोदाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्नः— भंते—हे भगवन् ! वोदाणेणं—व्यवदान, (पूर्वकृत कर्मों के क्षय) से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

वोदाणेणं अकिरियं जणयइ, अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥२८॥

—उत्तरः—वोदाणेणं—पूर्वकृत कर्मों के क्षय हो जाने से जीव, अकिरियं जणयइ—अक्रिय हो जाता है, अकिरियाए भवित्ता—अक्रिय होने के, तओ पच्छा—बाद, सिज्झइ—सिद्ध हो जाता है, बुज्झइ—बुद्ध हो जाता है, मुच्चइ—मुक्त हो जाता है परिणिव्वायइ—कर्मरूप अग्नि को बुझा कर शीतल हो जाता है और, सव्वदुक्खाणं—शारीरिक और मानसिक

सभी दुःखों का, अंतं—अन्त, करेइ—कर देता है ॥२८॥

२९—सुहसाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! सुहसाएणं—सुखशाता (विषय-सुख का त्याग करने) से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

सुहसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ, अणुस्सुएणं जीवे अणुकंपए अणुब्भडे विगयसोगे चरित्तमोहणिज्जं कम्मं खवेइ ॥२९॥

— उत्तर— सुहसाएणं—विषय सुख का त्याग करने से जीव को, अणुस्सुयत्तं—विषयों के प्रति अनिच्छा, जणयइ—उत्पन्न होती है, अणुस्सुएणं—विषयों के प्रति अनिच्छा उत्पन्न होने से, जीवे—जीव, अणुकंपए—दूसरे जीवों के प्रति अनुकम्प करने वाला, अणुब्भडे—निरभिमानी, विगयसोगे—चिन्ता-शोक रहित होता है और, चरित्तमोहणिज्जं—चरित्र-मोहनीय कम्मं—कर्म का, खवेइ—क्षय कर देता है ॥२९॥

३०—अप्पडिबद्धयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! अप्पडिबद्धयाएणं—अप्रतिबद्धता (विषय-सुखों में आसक्ति का त्याग करने) से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

अप्पडिबद्धयाए णं णिस्संगत्तं जणयइ, णिस्संगत्तेणं जीवे एगे एगग्गचित्ते दिया य राओ य असज्जमाणे

अप्पडिबद्धे यावि विहरइ ॥३०॥

उत्तरः-- अप्पडिबद्धयाए--अप्रतिबद्धता (अनासक्ति) से, णिस्संगत्तं--निस्संगता (स्त्र्यादिक की संगति रहितपना) जणयइ--प्राप्त होती है । णिस्संगत्तेणं-- निस्संगता से, जीवे—जीव, एगे-- रागद्वेष रहित होकर, एगग्गचित्ते-- एकाग्र चित्त वाला होता है य—और, दिया—दिन, य—और, राओ--रात. असज्जमाणे—किसी भी पदार्थ में अनुराग न रखता हुआ, अप्पडिबद्धे – अप्रतिबद्ध भाव से, विहरइ— विचरता है ॥३०॥

३१-- विवित्तसयणासणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्नः— भंते —हे भगवन् ! विवित्तसयणासणयाएणं— स्त्री-पशु-नपुंसक रहित स्थान, शयन और आसन का सेवन करने से, जीवे— जीव को, किं— क्या, जणयइ— लाभ होता है ?

विवित्तसयणासणयाए णं चरित्तगुत्तिं जणयइ, चरित्तगुत्ते य णं जीवे विवित्ताहारे दढचरित्ते एगंतरए मोक्खभावपडिवण्णे य अट्ठविहं कम्मगंठिं णिज्जरेइ ।३१।

— उत्तरः— विवित्तसयणासणयाएणं--स्त्री-पशु-नपुंसक से रहित एकान्त स्थान, शयन, आसन का सेवन करने से, चरित्तगुत्तिजणयइ—चारित्र की रक्षा होती है य—और,

चरित्तगुत्ते—चारित्र की रक्षा करने वाला, जीवे—जीव, विवित्ताहारे—विविक्ताहारी होता है अर्थात् विगयादि में आसक्त नहीं होता। ऐसा जीव, दढचरित्ते—चारित्र में दृढ़ एगंतरए—एकान्त सेवी, य—और, मोक्खभावपडिवण्णे—मोक्ष का साधक होता है और, अट्ठविहं—आठों प्रकार के, कम्मगंठिं—कर्मों की ग्रन्थि का, णिज्जरेइ—भेदन करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥३१॥

३२– विणिवट्टणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्नः— भंते—हे भगवन् ! विणिवट्टणयाए णं—विनिवर्तना (विषयों के त्याग) से, जीवे—जीव को, किं—किन गुणों की, जणयइ—प्राप्ति होती है ?

विणिवट्टणयाए णं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भुट्ठेइ, पुव्वबद्धाण य णिज्जरणयाए पावं णियत्तेइ, तओ पच्छा चाउरंतं संसार-कंतारं वीइवयइ ॥३२॥

—उत्तर— विणिवट्टणयाए णं—विनिवर्तना करने वाला जीव, पावकम्माणं—पाप-कर्म, अकरणयाए अब्भुट्ठेइ—करने के लिए उद्यत नहीं होता प्रत्युत धर्मकार्य करने के लिए उद्यत होता है, य—और पुव्वबद्धाण—पहले बंधे हुए पापकर्मों की, णिज्जरणयाए—निर्जरा करके, पावं पाप से, णियत्तेइ निवृत्त हो जाता है, तओ—उसके, पच्छा—पश्चात्, चाउरंतसंसार कंतारं—चतुर्गति वाले संसार रूपी अटवी को, वीइवयइ—पार कर जाता है ॥३२॥

३३--संभोग-पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

-- प्रश्न-- भंते--हे भगवन् ! संभोगपच्चक्खाणेणं--संभोग का प्रत्याख्यान करने से, जीवे--जीव को, किं--क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

संभोग-पच्चक्खाणे णं आलंबणाइं खवेइ, णिरालंबणस्स य आययट्ठिया जोगा भवंति, सएणं लाभेणं संतुस्सइ, परस्स लाभं णो आसाएइ णो तक्केइ णो पीहेइ णो पत्थेइ णो अभिलसइ, परस्स लाभं अणासाएमाणे अतक्केमाणे अपीहेमाणे अपत्थेमाणे अणभिलसेमाणे दुच्चं सुहसेज्जं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥३३॥

-- उत्तर-- संभोगपच्चक्खाणेणं--संभोग का त्याग करने से जीव, आलंबणाइं--आलंबनों का, खवेइ--क्षय कर देता है (परावलंबीपन छूट कर स्वावलंबी बन जाता है), य--और, णिरालंबणस्स--स्वावलंबी जीव के, जोगा--योग, आययट्ठिया भवंति--केवल शुभ प्रयोजन के लिए ही प्रवृत्त होते हैं। वह, सएणं--अपने ही, लाभेणं--लाभ से, संतुस्सइ--संतुष्ट रहता है, परस्स--दूसरे के, लाभं--लाभ का, णो आसाएइ--उपयोग नहीं करता, णो तक्केइ--कल्पना नहीं करता, णो पीहेइ--इच्छा नहीं करता, णो पत्थेइ--प्रार्थना नहीं करता, णो अभिलसइ--अभिलाषा नहीं करता। परस्सं-

दूसरे के लाभं—लाभ का, अणासाएमाणे--उपभोग न करता हुआ, अतक्केमाणे--कल्पना न करता हुआ, अपीहेमाणे--इच्छा न करता हुआ, अपत्थेमाणे--प्रार्थना न करता हुआ अणभिलसेमाणे--अभिलाषा न करता हुआ जीव दुच्चं—दूसरी, सुहसेज्जं--सुखशय्या को, उवसंपज्जित्ताणं--अंगीकार कर के, विहरइ—विचरता है ।।३३।।

३४—उवहि-पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! उवहिपच्चक्खाणेणं—रजोहरण और मुखवस्त्रिका के अतिरिक्त वस्त्र-पात्रादि उपधि का त्याग करने से, जीवे--जीव को, किं—क्या जणयइ—लाभ होता है ?

उवहि-पच्चक्खाणे णं अपलिमंथं जणयइ, णिरुवहिए णं जीवे णिक्कंखी उवहिमंतरेण य ण संकिलिस्सइ।

-- उत्तर— उवहिपच्चक्खाणेणं—रजोहरण और मुखवस्त्रिका के अतिरिक्त वस्त्र-पात्रादि उपधि का त्याग करने से, अपलिमंथं जणयइ--स्वाध्याय आदि में बाधा उपस्थित नहीं होती, णिरुवहिए—उपधि रहित, जीवे--जीव को, णिक्कंखी--वस्त्रादि की अभिलाषा नहीं रहती, य--और, उवहिमंतरेण—उपधि न रहने से, ण संकिलिस्सइ—शारीरिक और मानसिक कोई क्लेश नहीं होता ।।३४।।

३५—आहार-पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं

जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! आहारपच्चक्खाणेणं—आहार का त्याग करने से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

आहार-पच्चक्खाणेणं जीवियासंसप्पओगं वोच्छिदइ, जीवियासंसप्पओगं वोच्छिदित्ता जीवे आहारमंतरेण ण संकिलिस्सइ ॥३५॥

— उत्तर — आहारपच्चक्खाणेणं—आहार का त्याग कर देने से जीवियासंसप्पओगं जीने की लाल-सा, वोच्छिदइ—छूट जाती है, जीवियासंसप्पओगं—जीने की लालसा, वोच्छिदित्ता—छूट जाने से, जीवे —जीव आहारमंतरेण—आहार के बिना, ण संकिलिस्सइ—संक्लेश को प्राप्त नहीं होता ॥३५॥

३६—कसाय-पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! कसायपच्चक्खाणेणं—कषाय का त्याग करने से जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

कसाय-पच्चक्खाणेणं वीयरागभावं जणयइ, वीयरागभावपडिवण्णेवि य णं जीवे समसुहदुक्खे भवइ ॥

— उत्तर— कसायपच्चक्खाणेणं—क्रोधादि कषाय का त्याग करने से, वीयरागभावं—वीतराग भाव, जणयइ—प्राप्त

होता है, य—और, वीयरागभावपडिवण्णेविय णं--वीतराग भाव को प्राप्त हुआ, जीवे--जीव, समसुहदुक्खे—सुख-दुःख में समभाव रखने वाला, भवइ—होता है ॥३६॥

३७—जोग-पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न -- भंते—हे भगवन् ! जोगपच्चक्खाणेणं--मन-वचन-काया रूप योगों की प्रवृत्ति का निरोध करने से, जीवे--जीव को, किं--क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

जोग पच्चक्खाणेणं अजोगत्तं जणयइ, अजोगी णं जीवे णवं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥३७॥

-- उत्तर -- जोगपच्चक्खाणेणं--मन-वचन-काया रूप तीनों योगों की प्रवृत्ति का निरोध करने से, अजोगत्तं--अयोगी अवस्था, जणयइ—उत्पन्न होती है, अजोगी--अयोगी, जीवे--जीव के, णवं--नवीन, कम्मं--कर्मों का, ण बंधइ--बन्ध नहीं होता, च— और पुव्वबद्धं—पहले बंधे हुए अघाती कर्मों की, णिज्जरेइ—निर्जरा होती है ॥३७॥

३८—सरीर-पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! सरीरपच्चक्खाणेणं--औदारिकादि शरीरों का त्याग करने से, जीवे—जीव को, किं--क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

सरीर-पच्चक्खाणेणं सिद्धाइसयगुणत्तणं णिव्वत्तेइ, सिद्धाइसयगुणसंपण्णे य णं जीवे लोगग्गभाव-मुवगए परम-

सुही भवइ ॥३८॥

— उत्तर—सरीरपच्चक्खाणेणं—औदारिकादि शरीरों का त्याग करने से, सिद्धाइसयगुणत्तणं—सिद्धों के अतिशय गुण, णिव्वत्तेइ—प्रकट होते हैं, य—और सिद्धाइसयगुण संपण्णे—सिद्धों के अतिशय गुण सम्पन्न, जीवे—जीव, लोगग्गमुवगए—लोकाग्र में जाकर, परमसुही—परमसुखी, भवइ—हो जाता है अर्थात् मोक्ष में चला जाता है ॥३८॥

३९—सहायपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न—भंते—हे भगवन् ! सहायपच्चक्खाणेणं—सहायता का त्याग करने से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

सहायपच्चक्खाणेणं एगीभावं जणयइ, एगीभावभूए य णं जीवे एगग्गं भावेमाणे अप्पसद्दे अप्पझंझे अप्पकलहे अप्पकसाए अप्पतुमंतुमे संजमबहुले संवरबहुले समाहिए यावि भवइ ॥३९॥

— उत्तर—सहायपच्चक्खाणेणं—दूसरे मुनियों से सहायता लेने का त्याग करने से जीव, एगीभावं—एकत्व भाव को, जणयइ—प्राप्त होता है, य—और, एगीभावभूए—एकत्व भाव को प्राप्त हुआ, जीवे—जीव, एगग्गं—एकाग्रता की, भावेमाणे—भावना भाता हुआ अप्पसद्दे—शब्द रहित, अप्पझंझे-

वचन के कलह से रहित, अप्पकलहे--कलह-रहित, अप्पकसाए-कषाय-रहित, अप्प तुमंतुमे—तूं तूं मैं मैं रहित हो कर, संजम-बहुले—प्रधान संयम वाला, संवरबहुले--विशिष्ट संयम वाला, यावि—और, समाहिए--समाधिवंत, भवइ--होता है ॥३९॥

४०—भत्तपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे भगवन् ! भत्तपच्चक्खाणेणं—आहार का त्याग करने से, जीवे--जीव को, किं—क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

भत्तपच्चक्खाणेणं अणेगाइं भवसयाइं णिरुंभइ ॥

— उत्तर— भत्तपच्चक्खाणेणं--आहार का त्याग करने से, अणेगाइं भवसयाइं--अनेक भवों का, णिरुंभइ—निरोध कर देता है (अल्पसंसारी हो जाता है) ॥४०॥

४१—सब्भावपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न-- भंते--हे भगवन् ! सब्भावपच्चक्खाणेणं—सद्भावप्रत्याख्यान (प्रवृत्तिमात्र का त्याग करने) से, जीवे--जीव को, किं—क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

सब्भावपच्चक्खाणेणं अणियट्टिं जणयइ, अणियट्टि-पडिवण्णे य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ, तंजहा—वेयणिज्जं आउयं णामं गोयं, तओ पच्छा

सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥४१॥

— उत्तर— सब्भावपच्चक्खाणेणं-- सद्भावप्रत्याख्यान (प्रवृत्तिमात्र का त्याग करने से) जीव, अणियट्टि---अनिवृत्तिकरण को, जणयइ--प्राप्त होता है, य—और, अणियट्टिपडिवण्णे—अनिवृत्तिकरण को प्राप्त हुआ, अणगारे---अनगार, चत्तारि - चार, केवलिकम्मंसे---अघाती कर्मों की ग्रन्थियों को, खवेइ--क्षय करता है, तंजहा--यथा, वेयणिज्जं—वेदनीय, आउयं—आयुष्य, णामं--नाम और, गोयं--गोत्र। तओ--इसके, पच्छा--बाद, सिज्झइ—सिद्ध होता है, बुज्झइ—बुद्ध होता है, मुच्चइ---कर्मों से मुक्त होता है, परिणिव्वायइ—कर्म रूपी अग्नि को बुझा कर शीतल होता है और, सव्वदुक्खाणं-सभी दुःखों का, अंतं करेइ--अन्त कर देता है।४१।

४२—पडिरूवयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

प्रश्नः—भंते—हे भगवन् ! पडिरूवयाएणं--प्रतिरूपता (द्रव्य और भाव से शुद्ध स्थविरकल्पी मुनि का वेश धारण करने) से, जीवे--जीव को, किं-- क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

पडिरूवयाएणं लाघवियं जणयइ, लहुभूएणं जीवे अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थलिंगे विसुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइत्ते-समत्ते सव्वपाणभूयजीवसत्तेसु वीससणिज्ज-

रूवे अप्पडिलेहे जिइंदिए विपुलतवसमिइसमण्णाग याबि भवइ ॥४२॥

— उत्तर— पडिरूवयाएणं--प्रतिरूपता से, लाघवियं-लघुता (हलकापन) को, जणयइ--प्राप्त होता है, लहुभूएणं-लघुभूत बना हुआ, जीवे—जीव, अप्पमत्ते--प्रमाद रहित होता है तथा, पागडलिंगे—प्रकट लिंग (मुनिवेशादि) और, पसत्थ लिंगे--प्रशस्त लिंग (जीव रक्षा के निमित्त रजोहरणादि वाला) हो कर, विसुद्धसम्मत्ते—विशुद्ध सम्यक्त्वी होता है तथा, सत्त समिइसमत्ते –सत्यसमिति वाला हो कर, सव्वपाणभूयजीव सत्तेसु—सभी प्राणी-भूत-जीव-सत्त्वों का, वीससणिज्जरूवे--विश्वासनीय होता है और, अप्पडिलेहे--अल्प उपधि होने के कारण अल्प प्रतिलेखना वाला, जिइंदिए—जितेन्द्रिय, विपुल-तवसमिइ समण्णागए याबि—विपुल तप और समिति युक्त, भवइ—होता है अर्थात् महातपस्वी होता है ॥४२॥

४३—वेयावच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न-- भंते--हे पूज्य ! वेयावच्चेणं--वैयावृत्य करने से, जीवे—जीव को किं--क्या जणयइ--लाभ होता है ?

वेयावच्चेणं तित्थयर-णमगोयं कम्मं णिबंधइ ॥

— उत्तर-- वेयावच्चेणं—वैयावृत्य करने से, तित्थयर णामगोयं कम्मं—तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म का, णिबंधए—बन्ध करता है ॥४३॥

४४—सव्वगुणसंपण्णयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न – भंते—हे पूज्य ! सव्वगुणसंपण्णयाए णं—ज्ञानादि समस्त गुणों से युक्त होने से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

सव्वगुणसंपण्णयाए णं अपुणरावत्तिं जणयइ, अपुणरावत्तिं पत्तए णं जीवे सारीरमाणसाणं दुक्खाणं णो भागी भवइ ॥४४॥

— उत्तर— सव्वगुणसंपण्णयाए णं—ज्ञानादि सभी गुणों से सम्पन्न होने से जीव,—अपुणरावत्तिं जणयइ—अपुनरागमन, (जन्म-मरण रूप संसार में फिर नहीं आता) अपुणरावत्तिं—अपुनरागमन को, पत्तए णं—प्राप्त हुआ, जीवे—जीव, सारीरमाणसाणं—शारीरिक और मानसिक, दुक्खाणं—दुःखों का, भागी—भागी, णो भवइ—नहीं होता ॥४४॥

४५—वीयरागयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे पूज्य ! वीयरागयाए णं—वीतरागता से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

वीयरागयाए णं णेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि य वोच्छिंदइ मणुण्णामणुण्णेसु सद्दफरिसरसरूवगंधेसु चेव विरज्जइ ॥४५॥

— उत्तर— वीयरागयाए णं—वीतरागता से, णेहाणु-वंधणाणि—स्त्री-पुत्र सगे-सम्वन्धी आदि का स्नेह, य—और, तण्हाणुबंधणाणि—धन-धान्य आदि की तृष्णा का, वोच्छिदइ—विनाश हो जाता है और, मणुण्णामणुण्णेसु—मनोज्ञ और अमनोज्ञ (प्रिय और अप्रिय) सद्दफरिसरसरूवगंधेसु चेव—शब्द-स्पर्श-रस-रूप और गन्ध इन विषयों से, विरज्जइ—विरक्त हो जाता है ॥४५॥

४६—खंतीए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते--हे पूज्य !, खंतीएणं--क्षमा करने से, जीवे--जीव को, कि--क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

खंतीए णं परीसहे जिणेइ ॥४६॥

— उत्तर—खंतीए णं—क्षमा करने से जीव, परीसहे--परीषहों को, जिणेइ--जीत लेता है ॥४६॥

४७—मुत्तीए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न—भंते--हे पूज्य ! मुत्तीए णं—मुक्ति (निर्लोभता) से, जीवे—जीव को, कि—क्या, जयणइ—लाभ होता है ?

मुत्तीए णं अकिंचणं जणयइ, अकिंचणे य जीवे अत्थ-लोलाणं पुरिसाणं अपत्थणिज्जे भवइ ॥४७॥

— उत्तर— मुत्तिएणं— निर्लोभता से, अकिंचणं—अकिञ्चनभाव (परिग्रह रहित) की, जणयइ--प्राप्ति होती है, य--और, अकिंचणे—अकिञ्चन, जीवे—जीव, अत्थलोलाणं—धन के लोभी, पुरिसाणं--पुरुषों का, अपत्थणिज्जे—अप्रार्थनीय,

भवइ--होता है अर्थात् वह धनलोभी चोरादि द्वारा नहीं सताया जाता और परिग्रह-रहित होने के कारण उसको किसी प्रकार का भय और चिन्ता भी नहीं होती ॥४७॥

४८—अज्जवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

-- प्रश्न— भंते—हे पूज्य ! अज्जवयाए णं--आर्जवता (सरलता) से, जीवे—जीव को, किं--क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

अज्जवयाए णं काउज्जुययं भावुज्जुययं भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ, अविसंवायण-संपण्णयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ॥४८॥

— उत्तर— अज्जवयाए णं--सरलता (निष्कपटता) से जीव को, काउज्जुययं--काया की ऋजुता, भावुज्जुययं—भाव की ऋजुता भासुज्जुययं—भाषा की ऋजुता और, अविसंवायणं--अविसंवादन भाव की, जणयइ—प्राप्ति होती है अर्थात् ऐसा सरल जीव किसी के साथ ठगाई नहीं करता, अविसंवायण संपण्णयाए णं--अविसंवादन भाव को प्राप्त हुआ (किसी को न ठगने वाला), जीवे--जीव, धम्मस्स--धर्म का आराहए--आराधक, भवइ--होता है ॥४८॥

४९---मद्दवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे पूज्य ! मद्दवयाए णं—मृदुता (स्वभाव की कोमलता) से, जीवे--जीव को, किं--क्या,

जणयइ—लाभ होता है ?

मद्दवयाए णं अणुस्सियत्तं जणयइ, अणुस्सियत्ते णं जीवे मिउमद्दवसंपण्णे अट्ठ मयट्ठाणाइं णिट्ठवेइ ॥४९॥

—उत्तर—मद्दवयाएणं—मृदुता से जीव, अणुस्सियत्तं जणयइ—अहंकार-रहित हो जाता है, अणुस्सियत्ते णं—अहंकार-रहित बना हुआ, जीवे—जीव, मिउमद्दवसंपण्णे—मृदुमार्दव-सम्पन्न (कोमल स्वभाव वाला) हो कर, अट्ठ—आठ, मयट्ठाणाइं—मद स्थानों का, णिट्ठवेइ—क्षय कर देता है अर्थात् ऐसा विनीत और सरल जीव जाति, कुल, बल, रूप, तप, ज्ञान, लाभ और ऐश्वर्य, इन आठ का मद नहीं करता ॥४९॥

५०— भावसच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न:—भंते—हे पूज्य ! भावसच्चेणं— भाव-सत्य से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

भावसच्चेणं भावविसोहिं जणयइ, भावविसोहीए वट्टमाणे जीवे अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ, अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोगधम्मस्स आराहए भवइ ॥५०॥

—उत्तर:— भावसच्चेणं—भाव-सत्य से, भावविसोहिं—भाव-विशुद्धि, जणयइ—होती है, भावविसोहीए—भाव-विशुद्धि में, वट्टमाणे—वर्तमान, जीवे—जीव, अरहंतपण्णत्तस्स—अरिहंत देव द्वारा प्ररूपित, धम्मस्स—धर्म की, आराहणयाए—आराधना

करने के लिए, अब्भुट्ठेइ—उद्यत होता है, अरहंतपण्णत्तस्स—अरिहंत देव द्वारा प्ररूपित, धम्मस्स—धर्म की, आराहणयाए—आराधना के लिए, अब्भुट्ठित्ता—उद्यत होकर, परलोगधम्मस्स—परलोक धर्म का, आराहए—आराधक, भवइ—होता है ।५०।

५१— करण-सच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न— भंते—हे पूज्य ! करणसच्चेणं—करण-सत्य (सत्यप्रवृत्ति) से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

करण-सच्चेणं करणसत्तिं जणयइ, करणसच्चे वट्टमाणे जीवे जहावाई तहाकारी यावि भवइ ।।५१।।

—उत्तर— करणसच्चेणं—करण-सत्य से, करणसत्तिं—सत्य क्रिया करने की शक्ति, जणयइ—उत्पन्न होती है, करणसच्चे—करण-सत्य में, वट्टमाणे—प्रवृत्ति करने वाला, जीवे—जीव, जहावाई—जैसा बोलता है, तहाकारी यावि भवइ—वैसा ही करता है ।।५१।।

५२—जोग-सच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न— भंते—हे पूज्य ! जोगसच्चेणं—योग-सत्य से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

जोग-सच्चेणं जोगे विसोहेइ ।।५२।।

—उत्तर— जोगसच्चेणं—योग-सत्य से, जोगे—योगों की, विसोहेइ—विशुद्धि होती है ।।५२।।

— प्रश्न—भंते—हे पूज्य ! कायगुत्तयाए णं—काय-गुप्ति का पालन करने से, जीवे-जीव को, किं—क्या जणयइ-लाभ होता है ?

काय-गुत्तयाए णं संवरं जणयइ, संवरेणं कायगुत्ते पुणो पावासवणिरोहं करेइ ॥५५॥

— उत्तर—कायगुत्तयाए णं—कायगुप्ति से, संवरं—संवर की, जणयइ—प्राप्ति होती है, पुणो—फिर, संवरेणं—संवर से, कायगुत्ते—कायगुप्त बना हुआ जीव, पावासव-णिरोहं—पापाश्रवों का निरोध, करेइ—कर देता है ॥५५॥

५६—मण-समाहारणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न—भंते—हे पूज्य ! मणसमाहारणयाए णं—मनसमाधारणा (आगम के अनुसार मन की प्रवृत्ति करने) से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

मण-समाहारणयाए णं एगग्गं जणयइ, एगग्गं जण-इत्ता णाणपज्जवे जणयइ णाणपज्जवे जणइत्ता सम्मत्तं विसोहेइ मिच्छत्तं च णिज्जरेइ ॥५६॥

— उत्तर—मणसमाहारणयाए णं—मनसमाधारणा से अर्थात् संकल्प-विकल्पों से हटा कर स्वाध्यायादि उत्तम कार्यों में मन को लगाने से, एगग्गं—मन एकाग्र, जणयइ—होता है, एगग्गं—मन एकाग्र, जणइत्ता—होने पर, णाणपज्जवे—ज्ञान

की पर्यायों की, जणयइ—प्राप्ति होती है, णाणपज्जवे--ज्ञान पर्यायों की, जणइत्ता—प्राप्ति होने पर जीव सम्मत्तं—सम्यक्त्व की, विसोहेइ--विशुद्धि करता है, च--और, मिच्छत्तं--मिथ्यात्व की णिज्जरेइ—निर्जरा करता है ॥५६॥

५७--वय-समाहारणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

-- प्रश्न--भंते--हे पूज्य ! वयसमाहारणयाए णं—वचन-समाधारणा (वचन को पठन पाठन स्वाध्यायादि में लगाये रहने) से, जीवे--जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

वय-समाहारणयाए णं वयसाहारण-दंसणपज्जवे विसोहेइ, वयसाहारण-दंसणप्पज्जवे विसोहित्ता सुलह-बोहियत्तं णिव्वत्तेइ दुल्लहबोहियत्तं णिज्जरेइ ॥५७॥

-- उत्तर-- वयसमाहारणयाए णं--वचन-समाधारणा से, वयसाहारण दंसणपज्जवे—वचन सम्बन्धी दर्शन-पर्यायें, विसोहेइ--विशुद्ध होती है, वयसाहारण दंसणपज्जवे--वचन-सम्बन्धी दर्शन (सम्यक्त्व) पर्यायों को, विसोहित्ता--विशुद्ध कर के जीव, सुलह बोहियत्तं—सुलभबोधिपन को, णिव्वत्तेइ-प्राप्त करता है और, दुल्लहबोहियत्तं--दुर्लभबोधिपन का, णिज्जरेइ--नाश करता है ॥५७॥

५८--काय-समाहारणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न—भंते--हे पूज्य ! कायसमाहारणयाए णं-- कायसमाधारणा (काया को संयमित करने) से, जीवे-जीव को, किं--क्या, जणयइ--लाभ होता है ?

काय-समाहारणयाए णं चरित्तपज्जवे विसोहेइ, चरित्तपज्जवे विसोहित्ता अहक्खाय-चरित्तं विसोहेइ, अहक्खाय-चरित्तं विसोहित्ता चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ, तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥५८॥

— उत्तर— कायसमाहारणयाएणं-- कायसमाधारणा से जीव, चरित्तपज्जवे--चारित्र की पर्यायों को, विसोहेइ-- विशुद्ध करता है, चरित्तपज्जवे— चारित्र की पर्यायों को, विसोहित्ता— विशुद्ध करके, अहक्खाय चरित्तं-- यथाख्यात चारित्र को, विसोहेइ—विशुद्ध करता है, अहक्खाय चरित्तं— यथाख्यात-चारित्र को, विसोहित्ता--विशुद्ध करके, चत्तारि— चार, केवलिकम्मंसे--अघाती कर्मों का, खवेइ--क्षय कर देता है, तओ-- इसके, पच्छा--बाद, सिज्झइ—सिद्ध होता है, बुज्झइ—बुद्ध होता है, मुच्चइ-- मुक्त होता है, परिणिव्वायइ— कर्माग्नि को बुझा कर शीतल होता है और, सव्वदुक्खाणं— समस्त दुःखों का, अंतं करेइ--अन्त कर देता है ॥५८॥

५९---णाण-संपण्णयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न:—भंते--हे पूज्य ! णाणसंपण्णयाए णं—ज्ञान-

सम्पन्नता (श्रुतज्ञान की प्राप्ति) से, जीवे—जीव को, कि—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

णाण-संपण्णयाए णं सव्वभावाहिगमं जणयइ, णाणसंपण्णे णं जीवे चाउरंते संसार-कंतारे ण विणस्सइ

जहा सूई ससुत्ता, पडिया ण विणस्सइ ।
तहा जीवे ससुत्ते, संसारे ण विणस्सइ ॥१॥

णाण-विणय-तव-चरित्त-जोगे संपाउणइ, ससमय-परसमय-विसारए य असंघायणिज्जे भवइ ॥५९॥

-- उत्तर:— णाणसंपण्णयाए णं--ज्ञान सम्पन्नता से, सव्वभावाहिगमं--सभी पदार्थों का ज्ञान, जणयइ--होता है, णाणसंपण्णे--ज्ञानसम्पन्न, जीवे--जीव, चाउरंते--चतुर्गति रूप, संसार कंतारे—संसार वन में, ण विणस्सइ—नहीं भटकता, जहा— जिस प्रकार, ससुत्ता— डोरे सहित, सूई— सुई, पडिया—कूड़े कचरे में गिर जाने पर भी, ण विणस्सइ--गुम नहीं होती, तहा--वैसे ही, ससुत्ते--श्रुतज्ञानी, जीवे---जीव, संसारे—संसार में, ण विणस्सइ--नहीं भटकता किन्तु, णाणविणयतवचरित्तजोगे— ज्ञान, विनय, तप, और चारित्र के योगों को, संपाउणइ---प्राप्त करता है, ससमयपरसमयविसारए—स्वसमय और परसमय का (अपने सिद्धान्त और पर सिद्धान्त) का ज्ञाता होता है, य—और, असंघायणिज्जे—माननीय (प्रामाणिक पुरुष) भवइ—होता है ॥५९॥

६०—दंसणसंपण्णयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे पूज्य ! दंसणसंपण्णयाए णं—दर्शन-सम्पन्नता (क्षायोपशमिक सम्यक्त्व) से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

दंसणसंपण्णयाए णं भवमिच्छत्तछेयणं करेइ, परं ण विज्झायइ परं अविज्झाएमाणे अणुत्तरेणं णाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥६०॥

—— उत्तर—— दंसणसंपण्णयाएणं—दर्शन-सम्पन्नता से जीव, भवमिच्छत्तछेयणं—भवभ्रमण के कारण मिथ्यात्व का नाश, करेइ—कर देता (क्षायिक सम्यक्त्व+ को प्राप्त कर लेता) है, परं—फिर आगामी काल में, ण विज्झायइ—उसका सम्यक्त्व रूपी दीपक बुझता नहीं है, परं—किन्तु, अविज्झाए-माणे—उस सम्यक्त्व के प्रकाश से युक्त होता हुआ जीव, अणुत्तरेणं—प्रधान, णाणदंसणेणं—ज्ञान-दर्शन (केवलज्ञान केवल-दर्शन) से, अप्पाणं—अपनी आत्मा को, संजोएमाणे—संयुक्त करता हुआ और, सम्मं—सम्यक्, भावेमाणे—भावना भाता हुआ, विहरइ—विचरता है ॥६०॥

६१—चरित्त-संपण्णयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

+ क्षायिक सम्यक्त्व होने के बाद जीव उत्कृष्ट तो उसी भव में तथा मध्यम और जघन्य तीसरे या चौथे भव में अवश्य मोक्ष पाता है ।

— प्रश्न--भंते--हे पूज्य ! चरित्तसंपण्णयाए णं—चारित्र-सम्पन्नता से, जीवे—जीव को, किं--क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

चरित्त-संपण्णयाए णं सेलेसीभावं जणयइ, सेलेसिं पडिवण्णे य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ, तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वायइ सव्व-दुक्खाणमंतं करेइ ॥६१॥

— उत्तर--चरित्तसंपण्णयाए णं--चारित्र सम्पन्नता से, सेलेसीभावं--शैलेशी ‡ अवस्था, जणयइ--प्राप्त होती है, य—और, सेलेसिं—शैलेशी अवस्था को, पडिवण्णे--प्राप्त हुआ, अणगारे—अनगार, चत्तारि—चार, केवलिकम्मंसे--अघाती कर्मों का, खवेइ--क्षय कर देता है, तओ--इसके, पच्छा—बाद, सिज्झइ--सिद्ध होता है, बुज्झइ--बुद्ध होता है, मुच्चइ-मुक्त होता है, परिणिव्वायइ—कर्माग्नि को बुझा कर शीतल होता है और, सव्वदुक्खाणं--सभी दुःखों का, अंतं करेइ—अन्त कर देता है ॥६१॥

६२—सोइंदियणिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न-- भंते—हे पूज्य ! सोइंदियणिग्गहेणं--श्रोत्रेन्द्रि-निग्रह (श्रोत्रेन्द्रिय को वश करने) से, जीवे--जीव

‡ मोक्ष जाने के समय योगों का सर्वथा निरोध कर के मेरु पर्वत के समान निश्चल हो जाना "शैलेशी" अवस्था कहलाती है ।

को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

सोइंदिय-णिग्गहेणं मणुण्णामणुण्णेसु सद्देसु रागदोस-णिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं च णं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥६२॥

—उत्तरः—सोइंदियणिग्गहेणं श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से, मणुण्णामणुण्णेसु—मनोज्ञ और अमनोज्ञ (प्रिय और अप्रिय) सद्देसु—शब्दों में, रागदोसणिग्गहं-रागद्वेष का निग्रह, जणयइ—होता है, च—और, तप्पच्चइयं—तन्निमित्तक (श्रोतेन्द्रिय सम्बन्धी) कम्मं—कर्म का, ण बंधइ—बंध नहीं होता, च—और, पुव्वबद्धं—पहले बाँधे हुए कर्मों की, णिज्जरेइ—निर्जरा कर देता है ॥६२॥

६३— चक्खिदिय-णिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न— भंते—हे पूज्य ! चक्खिदिय णिग्गहेणं—चक्षु इन्द्रिय के निग्रह से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

चक्खिदिय-णिग्गहेणं मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु राग-दोस-णिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं च णं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥६३॥

— उत्तर— चक्खिदियणिग्गहेणं—चक्षु इन्द्रिय के निग्रह

से, मणुण्णामणुण्णेसु—मनोज्ञ और अमनोज्ञ, रूवेसु—रूपों में, रागदोसणिग्गहं—रागद्वेष का निग्रह, जणयइ—होता है, च—और, तप्पच्चइयं—श्रोत्रेन्द्रिय निमित्तक, कम्मं—कर्मों का, ण बंधइ—बन्ध नहीं होता, च—और, पुव्वबद्धं—पहले बंधे हुए कर्मों की, णिज्जरेइ—निर्जरा होती है ॥६३।

६४—घाणिंदिय-णिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न— भंते—हे पूज्य ! घाणिंदिय णिग्गहेणं—घ्राणेन्द्रिय के निग्रह से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

घाणिंदिय-णिग्गहेणं मणुण्णामणुण्णेसु गंधेसु राग-दोस-णिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं च णं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥६४॥

—उत्तर— घाणिंदिय णिग्गहेणं—घ्राणेन्द्रिय के निग्रह से, मणुण्णामणुण्णेसु—मनोज्ञ और अमनोज्ञ, गंधेसु—गन्धों में, रागदोस णिग्गहं—रागद्वेष का निग्रह, जणयइ—होता है, च—और, तप्पच्चइयं—तन्निमित्तक, कम्मं—कर्मों का, ण बंधइ—बन्ध नहीं होता, च—और, पुव्वबद्धं—पहले बांधे हुए कर्मों की, णिज्जरेइ—निर्जरा होती है ॥६४॥

६५—जिब्भिंदिय-णिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न— भंते—हे पूज्य ! जिब्भिंदिय णिग्गहेणं—

जिव्हा इन्द्रिय के निग्रह से, जीवे—जीव को, किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है?

जिब्भिदिय-णिग्गहेणं मणुण्णामणुण्णेसु रसेसु राग-दोसणिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं च णं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥६५॥

-- उत्तर-- जिब्भिदिय णिग्गहेणं--जिव्हा इन्द्रिय के निग्रह से, मणुण्णामणुण्णेसु--मनोज्ञ और अमनोज्ञ, रसेसु—रसों में रागदोसणिग्गहं—राग-द्वेष का निग्रह होता है, च—और, तप्पच्चइयं—तन्निमित्तक, कम्मं—कर्मों का, ण बंधइ—बन्ध नहीं होता है, च- और, पुव्वबद्धं—पहले बान्धे हुए कर्मों की णिज्जरेइ—निर्जरा होती है ॥६५॥

६६—फासिंदिय-णिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

— प्रश्न— भंते—हे पूज्य ! फासिंदियणिग्गहेणं—स्पर्श इन्द्रिय के निग्रह से, जीवे—जीव को किं—क्या, जणयइ—लाभ होता है ?

फासिंदिय-णिग्गहेणं मणुण्णामणुण्णेसु फासेसु रागदोसणिग्गहं जणयइ तप्पच्चइयं च णं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ।

-- उत्तर— फासिंदियणिग्गहेणं – स्पर्श इन्द्रिय के निग्रह से, मणुण्णामणुण्णेसु—मनोज्ञ और अमनोज्ञ, फासेसु—स्पर्शों में, रागदोसणिग्गहं—राग-द्वेष का निग्रह, जणयइ—होता है, च—

और, तप्पच्चइयं--तन्निमित्तक, कम्मं--कर्मों का, ण बंधइ--बन्ध नहीं होता, च--और, पुव्वबद्धं--पहले बान्धे हुए कर्मों की, णिज्जरेइ--निर्जरा हो जाती है। ६६।

६७--कोह-विजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

-- प्रश्न-- भंते--हे पूज्य ! कोहविजएणं--क्रोध को जीतने से, जीवे--जीव को, किं--किस गुण की, जणयइ--प्राप्ति होती है ?

कोह-विजएणं खंतिं जणयइ, कोहवेयणिज्जं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥६७॥

-- उत्तर-- कोहविजएणं--क्रोध को जीतने से जीव को, खंतिं--क्षमा गुण की, जणयइ--प्राप्ति होती है और क्षमागुण युक्त जीव, कोह वेयणिज्जं--क्रोधवेदनीय (क्रोधजन्य) कम्मं--कर्मों का, ण बंधइ--बन्ध नहीं करता है, च--और, पुव्वबद्धं--पहले बन्धे हुए कर्मों की, णिज्जरेइ--निर्जरा करता है ॥६७॥

६८--माण-विजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

-- प्रश्न-- भंते--हे पूज्य ! माणविजएणं--मान को जीतने से, जीवे--जीव को, किं--किस गुण की, जणयइ--प्राप्ति होती है ?

माण-विजएणं मद्दवं जणयइ, माणवेयणिज्जं कम्मं

ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥६८॥

— उत्तर— माणविजएणं--मान को जीतने से, मद्दवं-मृदुता (स्वभाव की कोमलता) गुण की, जणयइ--प्राप्ति होती है और मृदुता गुण युक्त जीव के, माणवेयणिज्जं—मानवेदनीय, कम्मं--कर्मों का, ण बंधइ--बंध नहीं होता है, च--और, पुव्वबद्धं--पहले बांधे हुए मानजनित कर्मों की, णिज्जरेइ-निर्जरा कर देता है ॥६८॥

६९—माया-विजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

--प्रश्नः—भंते--हे पूज्य ! मायाविजएणं—माया को जीतने से, जीवे--जीव को, किं—किस गुण की, जणयइ—प्राप्ति होती है ?

माया-विजएणं अज्जवं जणयइ, माया-वेयणिज्जं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥६९॥

—उत्तरः—मायाविजएणं--माया को जीतने से, अज्जवं-आर्जव (सरलता) गुण की, जणयइ—प्राप्ति होती है और सरलता को प्राप्त हुआ जीव, मायावेयणिज्जं--मायावेदनीय, कम्मं--कर्मों का, ण बंधइ--बन्ध नहीं करता, च—और, पुव्वबद्धं--पहले बंधे हुए कर्मों की, णिज्जरेइ—निर्जरा कर देता है ॥६९॥

७०— लोभ-विजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्नः—भंते—हे पूज्य ! लोभविजएणं--लोभ को

जीतने से, जीवे--जीव को, किं--किस गुण की, जणयइ--प्राप्ति होती ?

लोभ-विजए णं संतोसं जणयइ, लोभ-वेयणिज्जं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥७०॥

--उत्तर:—लोभविजएणं—लोभ को जीतने से, संतोसं-सन्तोष गुण की, जणयइ--प्राप्ति होती है और सन्तोषी जीव, लोभवेयणिज्जं—लोभ-वेदनीय, कम्मं—कर्मों का, ण बंधइ—बन्ध नहीं करता, च--और, पुव्वबद्धे--पहले बन्धे हुए लोभ-जन्य कर्मों की, णिज्जरेइ—निर्जरा कर देता है ॥७०॥

७१—पिज्ज-दोस-मिच्छादंसण-विजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

—प्रश्न:-भंते-हे पूज्य ! पिज्जदोसमिच्छा-दंसणविजएणं-राग-द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय से, जीवे--जीव को, किं-किस गुण की, जणयइ—प्राप्ति होती है ?

पिज्ज-दोस-मिच्छा-दंसण-विजएणं णाण-दंसण-चरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेइ, अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्म-गंठिविमोयणयाए तप्पढमयाए जहाणुपुव्विं अट्ठवीसइविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पंचविहं णाणावरणिज्जं, णवविहं दंसणावरणिज्जं, पंचविहं अंतरायं एए तिण्णि वि कम्मंसे जुगवं खवेइ तओ पच्छा अणुत्तरं अणंतं

कसिणं पडिपुण्णं णिरावरणं वितिमिरं विसुद्धं लोगालोगप्पभावं केवलवरणाणदंसणं समुप्पाडेइ, जाव सजोगी हवइ ताव इरियावहियं कम्मं णिबंधइ सुहफरिसं दुसमयट्ठिइयं, तं जहा—पढमसमए बद्धं बिइयसमए वेइयं तइयसमए णिज्जिण्णं, तं बद्धं पुट्ठं उदीरियं वेइयं णिज्जिण्णं, सेयाले अकम्मं यावि भवइ ॥७१॥

—उत्तरः— पिज्जदोसमिच्छा दंसणविजएणं-- राग-द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय से जीव सब से पहले, णाणदंसणचरिताराहणयाए ज्ञान-दर्शन और चारित्र की आराधना के लिए, अब्भुट्ठेइ--उद्यत होता है और बाद में, अट्ठविहस्स—आठ प्रकार के, कम्मस्स--कर्मों की कम्मगंठिविमोयणयाए—कर्मग्रन्थि से छुटकारा पाने के लिए, तप्पढमयाए--सब से पहले, अट्ठवीसइविहं— अट्ठाईस प्रकार के, मोहणिज्जं—मोहनीय, कम्मं—कर्म का, जहाणुपुव्वि—यथाक्रम से, उग्घाएइ—क्षय करता है। इसके बाद, पंचविहं--पांच प्रकार के, णाणावरणिज्जं--ज्ञानावरणीय, णवविहं--नौ प्रकार के, दंसणावरणिज्जं— दर्शनावरणीय, पंचविहं—पाँच प्रकार के, अंतरायं—अन्तराय, एए--इन, तिण्णि वि—तीनों, कम्मंसे—कर्मों को, जुगवं—एक साथ, खवेइ—क्षय करता है, तओ—इसके, पच्छा—बाद, अणुत्तरं—अनुत्तर, अणंतं—अनन्त, कसिणं—सम्पूर्ण, पडिपुण्णं—प्रतिपूर्ण, णिरावरणं—आवरण रहित, विति

अन्धकार रहित, विसुद्धं-विशुद्ध, लोगालोगप्पभावं-लोकालोक को प्रकाशित करने वाले, केवलवरणाणदंसणं-केवलज्ञान और केवल दर्शन को, समुप्पाडेइ-प्राप्त करता है। जाव--जब तक, सजोगी--सयोगी, भवइ--रहता है, ताव--तब तक, इरियावहियं--ईर्यापथिक, कम्मं--क्रिया का, णिबंधइ-बन्ध होता है, किन्तु, सुहफरिसं--इसका विपाक अति सुखकर होता है और, दुसमयट्ठिइयं-स्थिति केवल दो समय की होती है, तं--उसका, पढमसमए--प्रथम समय में, बद्धं--बन्ध होता है, बिइयसमए-दूसरे समय में, वेइयं--उदय होकर वेदा जाता है और, तइयसमए-- तीसरे समय में, णिज्जिण्णं-- निर्जीण अर्थात् क्षय हो जाता है, तं--इस प्रकार, बद्धं--प्रथम समय में बन्ध और, पुट्ठं--स्पर्श, दूसरे समय में, उदीरियं--उदय और, वेइयं--वेदन, यावि--और तीसरे समय में, णिज्जिण्णं-निर्जरा हो कर, सेयाले--चौथे समय में जीव, अकम्मं--सर्वथा कर्म-रहित, भवइ--हो जाता है ॥७१॥

अहाउयं पालइत्ता अंतोमुहुत्तद्धावसेसाए जोगणिरोहं करेमाणे सुहुमकिरियं अप्पडिवाइं सुक्कज्झाणं झायमाणे तप्पढमयाए मणजोगं णिरुंभइ मणजोगं णिरुंभित्ता वयजोगं णिरुंभइ वयजोगं णिरुंभित्ता कायजोगं णिरुंभइ कायजोगं णिरुंभित्ता आणापाणणिरोहं करेइ, आणापाणणिरोहं करित्ता, ईसिपंचहस्सक्खरुच्चारणद्धाए

य णं अणगारे समुच्छिण्णकिरियं अणियट्टिसुक्कज्झाणं झियायमाणे वेयणिज्जं आउयं णामं गोयं च एए चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेइ ॥७२॥

— केवलज्ञान के बाद, अहाउयं—अपनी अवशिष्ट आयु को, पालइत्ता—भोग कर, अंतोमुहुत्तद्धावसेसाए—जब आयु का अन्तर्मुहूर्त काल शेष रह जाता है तब जीव, जोगणिरोहं—योगों का निरोध, करेमाणे—करने के लिए, सुहुमकिरियं-अप्पडिवाइं—सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाती नामक, सुक्कज्झाणं—शुक्लध्यान के तीसरे पाद का, झायमाणे—ध्यान करता हुआ, तप्पढमयाए—सब से पहले, मणजोगं—मन-योग का, णिरुंभइ—निरोध करता है, मणजोगं—मन-योग का णिरुंभित्ता—निरोध करके, वयजोगं—वचन-योग का, णिरुंभइ—निरोध करता है, वयजोगं—वचनयोग का, णिरुंभित्ता—निरोध कर के, कायजोगं—काययोग का, णिरुंभइ—निरोध करता है, कायजोगं—काय-योग का, णिरुंभित्ता—निरोध कर के, आणापाण-णिरोहं—श्वासोच्छ्वास का निरोध, करेइ—करता है, आणापाणणिरोहं—श्वासोच्छ्वास का निरोध, करित्ता—करके, ईसिपंचह्रस्सक्खरुच्चारणद्धाए— 'अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण में जितना समय लगता है उतने समय तक, अणगारे—वह अनगार (अयोगी केवली) समुच्छिण्णकिरियं—समुच्छिन्न क्रिया, अणियट्टि-सुक्कज्झाणं—अनिवर्ती नामक शुक्लध्यान के चतुर्थपाद का, झियायमाणे—ध्यान करता हुआ, वेयणिज्जं—

वेदनीय, आउयं—आयुष्य, णामं--नाम, च—और, गोयं--गोत्र, एए—इन, चत्तारि—चार, कम्मंसे—कर्मों का, जुगवं—एक साथ खवेइ—क्षय कर देता है ॥७२।

तओ ओरालियतेयकम्माइं च सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता उज्जुसेढिपत्ते अफुसमाणगई उड्ढं एगसमएणं अविग्गहेणं तत्थ गंता सागरोवउत्ते सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥७३॥

—तओ—वेदनीयादि चार अघाती कर्मों का क्षय कर देने के बाद, ओरालियतेयकम्माइं च—औदारिक तैजस् और कार्मण, इन, सव्वाहिं--सभी शरीरों को, विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता–छोड़ कर, उज्जुसेढीपत्ते--ऋजुश्रेणी को प्राप्त हुआ, अफुसमाणगई--अस्पर्शमान गति (जितने आकाश प्रदेशों में जीव रहा हुआ है उनके अतिरिक्त अन्य आकाशप्रदेशों को स्पर्श न करता हुआ) जीव, एगसमएणं—एक समय वाली उड्ढं—ऊंचे, अविग्गहेणं--अविग्रह गति से तत्थ--मोक्ष में, गंता—चला जाता है और वहाँ जा कर, सिज्झइ—सिद्ध हो जाता है, बुज्झइ—बुद्ध हो जाता है, मुच्चइ--समस्त कर्मों से मुक्त हो जाता है, परिणिव्वायइ--कर्माग्नि को बुझा कर शान्त हो जाता है, सव्वदुक्खाणं--सभी दुःखों का, अंतं करेइ—अन्त कर देता है ॥७३॥

एस खलु सम्मत्तपरक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया महावीरेणं आघविए पण्णविए परूविए

दंसिए णिदंसिए उवदंसिए ॥७४॥ त्ति बेमि ॥

— श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू ! खलु—निश्चय ही, सम्मत्तपरक्कमस्स—इस सम्यक्त्व-पराक्रम नाम के, अज्झयणस्स—अध्ययन का, एस—यह, अट्ठे—अर्थ, समणेणं—श्रमण, भगवया—भगवान्, महावीरेणं—महावीर स्वामी ने, आघविए—सामान्य विशेष रूप से कहा है, पण्णविए—इसका हेतु-फल आदि बताया है, परूविए—स्वरूप का वर्णन किया है, दंसिए—अनेक भेदों का दिग्दर्शन कराया है, णिदंसिए—दृष्टान्त द्वारा समझाया है, उवदंसिए—उपसंहार द्वारा बताया है ॥७४॥ त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ सम्यक्त्वपराक्रम नामक अध्ययन समाप्त ॥

तपोमार्ग-गति तीसवाँ अध्ययन

जहा उ पावगं कम्मं, राग-दोस-समज्जियं ।
खवेइ तवसा भिक्खू, तमेगग्गमणो सुण ॥१॥

— रागदोससमज्जियं—राग-द्वेष से उत्पन्न हुए, पावगं—पापमय, कम्मं—कर्म को, भिक्खू—साधु, जहा—जिस प्रकार,

तवसा—तप के द्वारा, खवेइ— क्षय कर देता है, तं—उसे एगग्गमणो—एकाग्र चित्त से, सुण—सुनो ॥१॥

पाणिवह-मुसावाया, अदत्तमेहुण-परिग्गहा विरओ ।
राइभोयण-विरओ, जीवो हवइ अणासवो ॥२॥

— पाणिवह-मुसावाया-अदत्तमेहुण-परिग्गहा— हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह से, विरओ—निवृत्त हुआ एवं, राइभोयण-विरओ—रात्रिभोजन से निवृत्त हुआ, जीवो-जीव, अणासवो- आश्रव रहित, हवइ—होता है ॥२॥

पंचसमिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइंदिओ ।
अगारवो य णिस्सलो, जीवो होइ अणासवो ॥३॥

— पंचसमिओ- पांच समिति वाला, तिगुत्तो- तीन गुप्ति वाला, अकसाओ—कषाय-रहित, जिइंदिओ—जितेन्द्रिय, अगारवो- तीन गारव-रहित, य—और, णिस्सल्लो— तीन शल्य-रहित, जीवो—जीव, अणासवो- आश्रव-रहित, होइ—होता है ॥३॥

एएसिं तु विवच्चासे, रागदोस-समज्जियं ।
खवेइ उ जहा भिक्खू, तमेगग्गमणो सुण ॥४॥

— एएसिं— ये गुण जो ऊपर बतलाये हैं उनसे, विवच्चासे—विपरीत होने पर (गुणों के अभाव में) रागदोस समज्जियं—राग-द्वेष से सञ्चित किये हुए कर्मों को, जहा—

जिस प्रकार, भिक्खू—साधु, खवेइ--क्षय कर देता है, तं--उस विधि को, एगग्गमणो-एकाग्र चित्त होकर, सुण—सुनो।४।

जहामहातलायस्स, सण्णिरुद्धे जलागमे।
उस्सिंचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ॥५॥

एवं तु संजयस्सावि, पावकम्म-णिरासवे।
भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा णिज्जरिज्जई ॥६॥

— जहा— जिस प्रकार, महातलायस्स— किसी बड़े तालाब के, जलागमे--जल आने के मार्गों को, सण्णिरुद्धे--रोक देने पर उस तालाब का पानी, उस्सिंचणाए—बाहर निकलने से तथा, तवणाए—सूर्य के ताप द्वारा, कमेणं—धीरे-धीरे, सोसणा भवे--सूख जाता है, एवं तु--इसी प्रकार, संजयस्सावि-संयमी साधुओं के भी, पावकम्मणिरासवे--नवीन पाप-कर्मों को रोक देने पर, भवकोडीसंचियं—करोड़ों भवों के सञ्चित कर्म, तवसा—तप द्वारा णिज्जरिज्जई--क्षय हो जाते हैं।५-६।

सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो ॥७॥

— सो—वह, तवो—तप, बाहिरो—बाह्य, तहा--और, अब्भंतरो—आभ्यन्तर के भेद से, दुविहो—दो प्रकार का, वुत्तो—कहा गया है, बाहिरो--बाह्य तप, छव्विहो—छः प्रकार का, वुत्तो—कहा गया है, एवं—इसी प्रकार,

अब्भंतरो-- आभ्यन्तर, तवो--तप भी छः प्रकार का कहा गया है ॥७॥

अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
कायकिलेसो संलीणया, य बज्झो तवो होइ ॥८॥

— अणसणं—अनशन, ऊणोयरिया--ऊनोदरी, भिक्खायरिया--भिक्षाचर्या, रसपरिच्चाओ--रसपरित्याग य--और, कायकिलेसो--कायक्लेश, य--तथा, संलीणया--प्रतिसंलीनता ये, बज्झो--बाह्य तवो--तप के छः भेद, होइ—होते हैं ॥८॥

इत्तरिय मरणकाला य, अणसणा दुविहा भवे।
इत्तरिय सावकंखा, णिरवकंखा उ बिइज्जिया ॥९॥

— अणसणा--अनशन तप, दुविहा--दो प्रकार का, भवे—है, इनमें पहला इत्तरिय—इत्वरिक (थोड़े काल का) य—और दूसरा, मरणकाला—जीवन पर्यन्त । इत्तरिय—इत्वरिक तप, सावकंखा--आहार की आकांक्षा-सहित होता है, उ- और, बिइज्जिया- दूसरा मरणकालिक अनशन णिरवकंखा- आहार की आकांक्षा-रहित होता है ॥९॥

जो सो इत्तरिय तवो, सो समासेण छव्विहो।
सेढितवो पयर तवो, घणो य तह होइ वग्गो य ॥१०॥

तत्तो य वग्गवग्गो उ, पंचमो छट्ठओ पइण्णतवो।
मणइच्छियचित्तत्थो, णायव्वो होइ इत्तरिओ ॥११॥

— जो—जो, सो —यह, इत्तरिय--इत्वरिक, तवो—तप है, सो--वह, समासेण--संक्षेप से, छव्विहो—छः प्रकार का, होइ—है--१- सेढितवो--श्रेणी तप, २- पयरतवो--प्रतर तप, तहा-तथा ३- घणो--घन तप, य, य--और, वग्गो—वर्ग तप। तत्तो—तत्पश्चात्, पंचमो—पांचवां, वग्गवग्गो—वर्गवर्ग तप, य—और, छट्ठओ—छठा, पइण्णतवो—प्रकीर्ण तप। मण-इच्छियचित्तत्थो- यह तप मनवांछित फल को(स्वर्गापवर्गादि) फल देने वाला है ऐसा, णायव्वो—जानना चाहिए॥१०-११॥

जा सा अणसणा मरणे, दुविहा सा वियाहिया।
सवियारमवियारा, कायचिट्ठं पई भवे ॥१२॥

— सा—वह, जा—जो, मरणे—मरणकालिक, अणसणा-अनशन है, सा—वह, दुविहा—दो प्रकार का, वियाहिया—कहा गया है, सवियार—सविचार (कायचेष्टा सहित) और, अवियारा—अविचार (कायचेष्टा-रहित) ये भेद, कायचिट्ठं पई--कायचेष्टा की अपेक्षा, भवे—होते हैं ॥१२॥

अहवा सपरिकम्मा, अपरिकम्मा य आहिया।
णीहारिमणीहारी, आहारच्छेओ दोसु वि।१३।

— अहवा--अथवा इसके प्रकारान्तर से दो भेद, आहिया-कहे गये हैं। यथा:— सपरिकम्मा--सपरिकर्म (दूसरों से सेवा कराना) य--और, अपरिकम्मा--अपरिकर्म (दूसरों

से सेवा न कराना) अथवा, णीहारिं--‡ नीहारी और, अणीहारी--अनीहारी, दोसु वि--दोनों प्रकार के अनशनों में, आहारच्छेओ—आहार का त्याग होता है ॥१३॥

ओमोयरणं पंचहा, समासेण वियाहियं ।
दव्वओ खेत्तकालेणं, भावेणं पज्जवेहि य ॥१४॥

-- दव्वओ—द्रव्य से, खेत्तकालेणं—क्षेत्र से, काल से, भावेणं—भाव से, य--और, पज्जवेहिं--पर्यायों से, ओमोयरणं-ऊनोदरी तप, समासेण—संक्षेप से, पंचहा--पाँच प्रकार का, वियाहियं--कहा गया है ॥१४॥

जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे ।
जहण्णेणेगसित्थाई, एवं दव्वेण उ भवे ॥१५॥

-- जस्स—जिसका, जो--जितना, आहारो— आहार है, तत्तो—उसमें से, जो--जो, ओमं--कम, करे--करता है, जहण्णेण—जघन्य से, एगसित्थाई—एक कण भी कम करता है, तु उ--तो, एवं—इस प्रकार वह, दव्वेण--द्रव्य से ऊनोदरी तप, भवे—होता है ॥१५॥

गामे णगरे तह रायहाणि, णिगमे य आगरे पल्ली ।
खेडे कव्बड-दोणमुह-पट्टण-मडंव संवाहे ॥१६॥

---

‡ ग्रामादि से बाहर किसी पर्वत की गुफा आदि में किया हुआ अनशन-मरण 'नीहारी' कहलाता है और ग्राम-नगरादि में किया हुआ अनशन मरण 'अनीहारी' कहलाता है ।

आसमपए विहारे, सण्णिवेसे समाय घोसे य।
थलिसेणाखंधारे, सत्थे संवट्ट-कोट्टे य ॥१७॥
वाडेसु व रत्थासु व, घरेसु वा एवमित्तियं खेत्तं।
कप्पइ उ एवमाई, एवं खेत्तेण उ भवे ॥१८॥

— क्षेत्र की अपेक्षा ऊनोदरी तप के भेद बतलाये जाते हैं। अतः पहले क्षेत्रों के नाम बतलाये जाते हैं:—गामे—ग्राम (जहाँ राज्य की ओर से अठारह प्रकार का कर लिया जाता हो उसे 'ग्राम' कहते हैं)। णगरे—नगर (जहाँ गाय-बैल आदि का कर न लिया जाता हो ऐसी बड़ी आबादी को 'नगर' 'न कर' कहते हैं) तह—तथा, रायहाणि—राजधानी (जहाँ राजा स्वयं रहता हो) णिगमे—निगम (जहाँ अधिकतर व्यापार करने वाले महाजनों की बस्ती हो) य—और, आगरे—आकर (सोना चाँदी आदि धातुओं की खान) पल्ली—पल्ली (चारों ओर वृक्षों से घिरा हुआ स्थान जहाँ चोरादि रहते हों) खेडे—खेड (जिस आबादी के चारों ओर मिट्टी का परकोटा हो) कब्बड—कर्बट (छोटी आबादी वाला छोटा गांव) दोणमुह—द्रोणमुख (समुद्र के किनारे की आबादी, जहाँ जाने के लिए जल व स्थल दोनों प्रकार के मार्ग हों) पट्टण—पत्तन (व्यापार वाणिज्य का बड़ा स्थान, जहाँ चारों दिशाओं से व्यापारी आते हों) मडंब—मण्डप—जिसके चारों दिशाओं में अढ़ाई कोस तक कोई ग्रामादि न हो, संबाहे—संबाध (जो ग्राम पर्वतों के बीच बसा हो, जहाँ चारों वर्ण वाले लोग रहते हों) आसमपए—

से सेवा न कराना) अथवा, णीहारि-- ‡ नीहारी और, अणीहारी--अनीहारी, दोसु वि--दोनों प्रकार के अनशनों में, आहारच्छेओ—आहार का त्याग होता है ॥१३॥

ओमोयरणं पंचहा, समासेण वियाहियं।
दव्वओ खेत्तकालेणं, भावेणं पज्जवेहि य ॥१४॥

-- दव्वओ—द्रव्य से, खेत्तकालेणं—क्षेत्र से, काल से, भावेणं—भाव से, य--और, पज्जवेहि--पर्यायों से, ओमोयरणं-ऊनोदरी तप, समासेण—संक्षेप से, पंचहा--पाँच प्रकार का, वियाहियं--कहा गया है ॥१४॥

जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे।
जहण्णेणेगसित्थाई, एवं दव्वेण उ भवे ॥१५॥

-- जस्स—जिसका, जो--जितना, आहारो— आहार है, तत्तो—उसमें से, जो--जो, ओमं--कम, करे--करता है, जहण्णेण—जघन्य से, एगसित्थाई—एक कण भी कम करता है, तु उ--तो, एवं—इस प्रकार वह, दव्वेण--द्रव्य से ऊनोदरी तप, भवे—होता है ॥१५॥

गामे णगरे तह रायहाणि, णिगमे य आगरे पल्ली।
खेडे कब्बड-दोणमुह-पट्टण-मडंब संवाहे ॥१६॥

‡ ग्रामादि से बाहर किसी पर्वत की गुफा आदि में किया हुआ अनशन-मरण 'नीहारी' कहलाता है और ग्राम-नगरादि में किया हुआ अनशन मरण 'अनीहारी' कहलाता है।

आसमपए विहारे, सण्णिवेसे समाय घोसे य।
थलिसेणाखंधारे, सत्थे संवट्ट-कोट्टे य ॥१७॥
वाडेसु व रत्थासु व, घरेसु वा एवमित्तियं खेत्तं।
कप्पइ उ एवमाई, एवं खेत्तेण उ भवे ॥१८॥

— क्षेत्र की अपेक्षा ऊनोदरी तप के भेद बतलाये जाते हैं। अतः पहले क्षेत्रों के नाम बतलाये जाते हैं:—गामे—ग्राम (जहाँ राज्य की ओर से अठारह प्रकार का कर लिया जाता हो उसे 'ग्राम' कहते हैं)। णगरे—नगर (जहाँ गाय-बैल आदि का कर न लिया जाता हो ऐसी बड़ी आबादी को 'नगर' 'न कर' कहते हैं) तह—तथा, रायहाणि—राजधानी (जहाँ राजा स्वयं रहता हो) णिगमे—निगम (जहाँ अधिकतर व्यापार करने वाले महाजनों की वस्ती हो) य—और, आगरे- आकर (सोना चाँदी आदि धातुओं की खान) पल्ली—पल्ली (चारों ओर वृक्षों से घिरा हुआ स्थान जहाँ चोरादि रहते हों) खेडे—खेड (जिस आबादी के चारों ओर मिट्टी का परकोटा हो) कब्बड—कर्बट (छोटी आबादी वाला छोटा गांव) दोणमुह—द्रोणमुख (समुद्र के किनारे की आबादी, जहाँ जाने के लिए जल व स्थल दोनों प्रकार के मार्ग हों) पट्टण—पत्तन (व्यापार वाणिज्य का बड़ा स्थान, जहाँ चारों दिशाओं से व्यापारी आते हों) मडंब—मण्डप-जिसके चारों दिशाओं में अढ़ाई कोस तक कोई ग्रामादि न हो, संबाहे—संबाध (जो ग्राम पर्वतों के बीच बसा हो, जहाँ चारों वर्ण वाले लोग रहते हों) आसमपए—

आश्रमपद (तपस्वियों के रहने का आश्रम) विहारे—विहार (भिक्षुओं के रहने का स्थान) सण्णिवेसे—सन्निवेश (जहां यात्रा के लिए लोग इकट्ठे होते हों) समाय— समाज (जहाँ यात्री ठहरते हों) घोसे—घोष (जहाँ ग्वालिए रहते हों--गोकुल) थलिसेणाखंधारे—स्थलसेनास्कन्धावार, (ऊंचे स्थान पर सेना के पढ़ाव करने का स्थान) सत्थे—सार्थ (किरियाणा लेकर जाते-आते लोगों के एकत्रित होने का स्थान) संवट्ट—संवर्त्त (भय से डरे हुए लोग जहाँ आकर शरण लेते हों) कोट्टे—कोट वाला नगर, वाडेसु--वाट (जिसके चारो ओर बाड़ लगी हुई हो ऐसा ग्राम) रत्थासु – रथ्या (गली·मोहल्ला) य—और, घरेसु--घर, इन उपरोक्त क्षेत्रों में से आज मुझे, एवमित्तियं—इतने ही, खेत्तं—क्षेत्रो मे, कप्पइ—गोचरी लेना कल्पता है अर्थात् आज मैं इतने ही क्षेत्रों में गोचरी लूंगा, एवमाई—इस प्रकार अभिग्रह करके जो साधु गोचरी करता है, एवं उ--इस प्रकार उसके, खेत्तेण—क्षेत्र से ऊनोदरी तप, भवे—होता है क्योंकि अभिग्रह किये हुए क्षेत्रों में यदि आहारादि कम मिले, तो उसी पर जो संतोष करता है, उसके 'क्षेत्र ऊनोदरी' तप होता है ॥१६-१७-१८॥

पेडा य अद्धपेडा, गोमुत्ति-पयंगविहीया चेव ।
संबुक्कावट्टायय गंतुं, पच्चागया छट्ठा ॥१९॥

— अब प्रकारान्तर से ऊनोदरी तप के भेद बतलाते हुए गोचरी के भेद बतलाते हैं:-- १-पेडा—पेटा- (जिस गोचरी

में साधु ग्रामादि को सन्दूक के समान चार कोणों में विभाजित कर बीच के घरों को छोड़ता हुआ चारों दिशाओं में समश्रेणी से गोचरी करता है, य--और, २-अद्धपेडा--अर्द्धपेटा (उपरोक्त प्रकार से क्षेत्र को बांट कर केवल दो दिशाओं के घरोंसे भिक्षा लेना) ३- गोमुत्ति--गोमूत्रिका भूमि पर पड़े हुए गोमूत्र के आकार सरीखो भिक्षा के क्षेत्र की कल्पना करके भिक्षा लेना। इसमें साधु आमने-सामने के घरों में पहले बांई पंक्ति में फिर दाहिनी पंक्ति में गोचरी करता है। इस क्रम से दोनों पक्तियों के घरों से भिक्षा लेना 'गोमूत्रिका' गोचरी है ४- पयंगविहीया--पतंगवीथिका (पतंगिये की गति के समान अनियमित रूप से गोचरी करना) चेव--और ५- संबुक्कावट्टा--शम्बूकावर्त्ता (शंख के आवर्त्त की तरह वृत्त--गोल गति वाली गोचरी) इसके बाह्य और आभ्यन्तर दो भेद हैं, छट्ठा--छठी- आययगंतुं पच्चागया -आयतगतप्रत्यागता (जिस गोचरी में साधु एक पंक्ति के घरों से गोचरी करता हुआ अन्त तक जाता है और लौटते समय दूसरी पक्ति के घरों से गोचरी लेता है, वह आयतगतप्रत्यागता गोचरी कहलाती है। यों छः प्रकार की गोचरी करना क्षेत्र की अपेक्षा ऊनोदरी तप है ॥१९॥

दिवसस्स पोरिसीणं, चउण्हं पि उ जत्तिओ भवे कालो।
एवं चरमाणो खलु, कालोमाणं मुणेयव्वं ॥२०॥

-- दिवसस्स--दिन के, चउण्हं पि--चार, पोरिसीणं--पहरों में, जत्तिओ कालो--जितने समय का अभिग्रह, भवे--

हो अर्थात् 'आज में अमुक पहर में ही गोचरी जाऊंगा,' एवं—इस प्रकार अभिग्रह करके, चरमाणो—विचरते हुए साधु के, खलु--निश्चय ही, कालोमाणं —काल की अपेक्षा ऊनोदरी तप होता है, मुणेयव्वं--ऐसा जानना चाहिए ।।२०।।

अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाइ घासमेसंतो ।
चउभागूणाए वा, एवं कालेण उ भवे ।।२१।।

-- अहवा—अथवा, तइयाए—तीसरे, पोरिसीए—पहर में, उणाइ--कुछ कम काल तक, वा—अथवा, चउभागुणाए-चतुर्थ भाग कम में अर्थात् तीसरे पहर के अंतिम चौथे भाग में ही साधु, घासं--आहार की, एसंतो—गवेषणा करने का अभिग्रह करे तो, एवं--इस प्रकार उसके, कालेण—काल की अपेक्षा ऊनोदरी तप, भवे--होता है ।।२१।।

इत्थी वा पुरिसो वा, अलंकिओ वा णलंकिओ वा वि ।
अण्णयरवयत्थो वा, अण्णयरेणं व वत्थेणं ।।२२।।
अण्णेण विसेसेणं, वण्णेणं भावमणुमुयंते उ ।
एवं चरमाणो खलु, भावोमाणं मुणेयव्वं ।।२३।।

— इत्थी—स्त्री, वा—अथवा, पुरिसो- पुरुष, अलंकिओ-अलंकृत, वा--अथवा, णालंकिओ—अलंकार-रहित, अण्णयर-वयत्थो--अमुक अवस्था वाला (बालक, युवा अथवा वृद्ध) वावि--अथवा, अण्णयरेणं वत्थेणं--अमुक प्रकार के वस्त्र से युक्त, वा--अथवा अण्णेण—अन्य किसी, विसेसेणं--विशेषता

से युक्त (रोता हुआ या हंसता हुआ, कोपयुक्त या हर्ष युक्त) य--अथवा, वण्णेण—किसी विशेष वर्ण युक्त, वा--अथवा, भावमणुमुयंते— विशिष्ट भावों से युक्त दाता के हाथ से भिक्षा मिलेगी तो ही मैं भिक्षा लूंगा. एवं--इस प्रकार अभिग्रह करके, चरमाणो—विचरने वाले साधु के, खलु-- निश्चय ही, भावोमाणं—भाव ऊनोदरी तप होता है, मुणेयव्वं- ऐसा जानना चाहिए ॥२२-२३॥

दव्वे खेत्ते काले, भावम्मि य आहिया उ जे भावा ।
एएहिं ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥२४॥

— दव्वे—द्रव्य, खेत्ते--क्षेत्र, काले—काल य--और, भावम्मि—भाव में, जे--जो, भावा—भाव, आहिया--कहे गये हैं, एएहिं--इन से, ओमचरओ--ऊनोदरी करने वाला, भिक्खू--साधु, पज्जव चरओ--पर्याय से ऊनोदरी करने वाला, भवे—होता है ॥२४॥

अट्ठविह-गोयरग्गं तु, तहा सत्तेव एसणा ।
अभिग्गहा य जे अण्णे, भिक्खायरियमाहिया ॥२५॥

-- अट्ठविह—आठ प्रकार की, गोयरग्गं--गोचरी, तु, तहा—और, सत्तेव—सात प्रकार की, एसणा—एषणा, य—और इसी प्रकार के, जे--जो, अण्णे--दूसरे, अभिग्गहा- अभिग्रह हैं, वे सब, भिक्खायरियं--भिक्षाचरी में, आहिया— कहे गये हैं, अर्थात् इन्हें भिक्षाचरी तप कहते हैं, भिक्षाचरी का

दूसरा नाम वृत्तिसंक्षेप है ॥२५॥

खीर-दहि-सप्पिमाई, पणीयं पाणभोयणं ।
परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रसविवज्जणं ॥२६॥

— खीर दहिसप्पिमाई—दूध, दही, घी, आदि, तु—और, पणीयं—गरिष्ठ, पाणभोयणं— आहार-पानी रूप, रसाणं—रसों का, परिवज्जणं—त्याग करना, रसविवज्जणं—'रस-परित्याग' नाम का तप, भणियं—कहा गया है ॥२६॥

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा ।
उग्गा जहा धरिज्जंति, कायकिलेसं तमाहियं ।२७।

— जीवस्स—जीव के लिए, सुहावहा—भविष्य में, सुखकारी, उग्गा—उग्र कठोर, वीरासणाईया—वीरासनादि, ठाणा—स्थान, जहा—जिस प्रकार, धरिज्जंति—सेवन किये जाते हैं, तं—वह, कायकिलेसं—कायाक्लेश नाम का तप, आहियं—कहा गया है ॥२७॥

एगंतमणावाए, इत्थीपसुविवज्जिए ।
सयणासणसेवणया, विवित्तसयणासणं ॥२८॥

— एगंत—एकान्त, अणावाए—अनापात, (जहाँ स्त्री आदि का आना-जाना न हो) तथा जो, इत्थीपसुविवज्जिए—स्त्री-पशु और नपुंसक से रहित हो ऐसे स्थान में, सयणासण-सेवणया—शयन आसन, करना, विवित्तसयणासणं—विविक्त-शयनासन प्रतिसंलीनता तप है ॥२८॥

एसो वाहिरगं तवो, समासेण वियाहिओ ।
अब्भितरं तवं एत्तो, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥२९॥

-- एसो—यह, वाहिरगं--वाह्य, तवो—तप, समासेण--संक्षेप से, वियाहिओ---कहा गया है, एत्तो--अब इसके आगे, अणुपुव्वसो---अनुक्रम से, अब्भितरं--आभ्यन्तर, तवं--तप का, वुच्छामि--वर्णन करूंगा ॥२९॥

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भितरो तवो ॥३०॥

— पायच्छित्तं--प्रायश्चित्त, विणओ--विनय, वेयावच्चं--वैयावृत्य, तहेव--तथा, सज्झाओ---स्वाध्याय, झाणं--ध्यान, च—और विउस्सग्गो--व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग) एसो - यह छः प्रकार का, अब्भितरो--आभ्यन्तर, तवो--तप है ॥३०॥

आलोयणारिहाईयं, पायच्छित्तं तु दसविहं ।
जे भिक्खू वहई सम्मं, पायच्छित्तं तमाहियं ॥३१॥

— आलोयणारिहाईयं-- आलोचना करने के योग्य, पायच्छित्तं--प्रायश्चित्त, दसविहं—दस प्रकार का है, जं—जिसका, भिक्खू--साधु सम्मं—सम्यक् प्रकार से, वहई—सेवन करता है, तं--उसे, पायच्छित्तं—प्रायश्चित्त, आहियं—कहा है ॥३१॥

अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं, तहेवासणदायणं ।
गुरुभत्ति-भावसुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ ।३२।

— अब्भुट्ठाणं—गुरु आदि को आते देख कर खड़ा होना, अंजलिकरणं—हाथ जोड़ना, आसणदायणं—उन्हें आसन देना, गुरुभत्ति—गुरुजनों की भक्ति करना, तहेव—और, भावसुस्सूसा—भावपूर्वक (श्रद्धापूर्वक) उनकी शुश्रूषा करना, एस—यह, विणओ—विनय, वियाहिओ—कहा गया है ॥३२॥

आयरियमाईए, वेयावच्चम्मि दसविहे ।
आसेवणं जहाथामं, वेयावच्चं तमाहियं ॥३३॥

— वेयावच्चम्मि—वेयावच्च करने के योग्य आयरियमाईए—आचार्यादिक अर्थात् आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, शिष्य, साधर्मिक, कुल, गण और संघ, इन, दसविहे—दस स्थानों की, जहाथामं—यथाशक्ति, आसेवणं—सेवा-भक्ति करना, तं—उसे, वेयावच्चं—वैयावृत्य, आहियं—कहा है ॥३३॥

वायणा पुच्छणा चेव, तहेव परियट्टणा ।
अणुप्पेहा धम्मकहा, सज्झाओ पंचहा भवे ॥३४॥

— वायणा—वाचना (गुरु से सूत्र-अर्थ की वाचणी लेना) चेव—और, पुच्छणा—पृच्छना (संशय की निवृत्ति के लिए पूछना या पहले सीखे हुए सूत्रादि ज्ञान में शंका होने पर प्रश्न करना) तहेव—इसी प्रकार, परियट्टणा—परिवर्तना (पढ़े हुए ज्ञान की पुनरावृत्ति करना) अणुप्पेहा—अनुप्रेक्षा—(बारबार

मनन करना) धम्मकहा—धर्मकथा (धर्मोपदेश देना) पंचहा—ये पाँच भेद, सज्झाओ—स्वाध्याय तप के, भवे—होते हैं ।३४।

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, झाएज्जा सुसमाहिए ।
धम्म-सुक्काइं झाणाइं, झाणं तं तु बुहा वए ।।३५।।

— सुसमाहिए— सुसमाधिवंत साधु, अट्टरुद्दाणि—आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को, वज्जित्ता— छोड़ कर, धम्मसुक्काइं झाणाइं—धर्मध्यान और शुक्लध्यान, झाएज्जा—ध्यावे, तं—उसे, बुहा—तत्त्वज्ञ पुरुष, झाणं—ध्यान वए—कहते हैं ।।३५।।

सयणासणठाणे वा, जे उ भिक्खू ण वावरे ।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ ।३६।

— सयणासणठाणे वा—शय्या पर, आसन पर अथवा खड़े खड़े, जे—जो, भिक्खू—साधु, ण वावरे—अन्य सब प्रवृत्तियों को छोड़ देता है अर्थात् हिलता-डुलता नहीं, सो—वह, कायस्स विउसग्गो—कायव्युत्सर्ग नाम का, छट्ठो—छठा तप, परिकित्तिओ—कहा गया है ।।३६।

एयं तवं तु दुविहं, जे सम्मं आयरे मुणी ।
जो खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए ।। ३७ ।।

— एयं—इन बाह्य और आभ्यन्तर, दुविहं—दोनों प्रकार के, तवं—तप का, जे—जो, मुणी—मुनि, सम्मं—

सम्यक् प्रकार से, आयरे--आचरण करता है, से--वह, पंडिए—पंडित साधु, खिप्पं—शीघ्र ही, सव्वसंसारा—समस्त संसार से, विप्पमुच्चइ--छूट जाता है ॥३७॥ त्तिबेमि--ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ तीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥



'चरणविधि' इकत्तीसवां अध्ययन

चरणविहिं पवक्खामि, जीवस्स उ सुहावहं ।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसार-सागरं ॥१॥

—अब मैं, चरणविहिं--चारित्र की विधि का, पवक्खामि-वर्णन करूँगा, उ—जो कि, जीवस्स—जीव के लिए, सुहावहं--सुखकारी एवं शुभकारी है और, जं--जिसका, चरित्ता--आचरण कर के, बहू—बहुत से, जीवा--जीव, संसारसागरं—संसार-सागर से, तिण्णा--तिर गये हैं ॥१॥

एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे णियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं ॥२॥

— एगओ--एक से, विरइं--निवृत्ति, कुज्जा--करे,

य--और, एगओ—एक ओर, पवत्तणं--प्रवृत्ति करे, अर्थात् असंजमे—असंयम से, णियत्ति—निवृत्ति करे, च--और, संजमे--संयम में, पवत्तणं--प्रवृत्ति करे ॥२॥

रागद्दोसे य दो पावे, पावकम्म-पवत्तणे ।
जे भिक्खू रुंभइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ॥३॥

— पावकम्म पवत्तणे--पाप कर्म में प्रवृत्ति कराने वाले, रागदोसे य—राग और द्वेष ये, दो--दो, पावे--पाप हैं, जे—जो, भिक्खू--साधु, णिच्चं—सदा इन्हें, रुंभइ--रोकता है, से--वह, मंडले--संसार-सागर में, ण अच्छइ--परिभ्रमण नहीं करता ॥३॥

दंडाणं गारवाणं च, सल्लाणं च तियं तियं ।
जे भिक्खू चयई णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ॥४॥

— जे- जो, भिक्खू--साधु, दंडाणं तियं—तीन दण्ड, च—तथा, गारवाणं तियं- तीन गारव च- तथा, सल्लाणं- तीन शल्य इनको, णिच्चं—सदैव, चयई-छोड़ देता है, से- वह, मंडले--संसार में, ण अच्छइ--परिभ्रमण नहीं करता ॥

दिव्वे य जे उवसग्गे, तहा तेरिच्छ-माणुसे ।
जे भिक्खू सहइ सम्मं, से, ण अच्छइ मंडले ॥५॥

— जे- जो भिक्खू--साधु, दिव्वे-- देव सम्बन्धी, तहा--तथा, तेरिच्छ-माणुसे य— तिर्यञ्च और मनुष्य

सम्बन्धी, उवसग्गे--उपसर्गों को, सम्मं—सम्यक् प्रकार से (समभावपूर्वक) सहइ—सहन करता है, से – वह, मंडले—संसार में, ण अच्छइ--परिभ्रमण नहीं करता ॥५॥

विगहा-कसाय-सण्णाणं, झाणाणं च दुयं तहा ।
जे भिक्खू वज्जइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ॥६॥

--विगहा कसाय सण्णाणं च—चार विकथा चार कषाय और चार संज्ञा, तहा – तथा, झाणाणं दुयं -- दो ध्यान (आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान) इन सब को, जे--जो, भिक्खू—साधु, णिच्चं--सदैव, वज्जइ— छोड़ देता है, से—वह, मंडले –संसार में, ण अच्छइ—परिभ्रमण नहीं करता ॥६॥

वएसु इंदियत्थेसु, समिइसु किरियासु य ।
जे भिक्खू जयई णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ॥७॥

-- वएसु--पाँच व्रत, य – और, समिइसु – पाँच समितियों के पालन में तथा, इंदियत्थेसु—पाँच इन्द्रियों के विषय और, किरियासु—पाँच क्रियाओं के परित्याग में जे—जो, भिक्खू--साधु, णिच्चं—सदा, जयइ--यत्न करता है, से—वह, मंडले--संसार में, ण अच्छइ--परिभ्रमण नहीं करता ॥७॥

लेसासु छसु काएसु, छक्के आहार-कारणे ।
जे भिक्खू जयई णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ॥८॥

-- छसु--छह, लेसासु— लेश्या, काएसु--छह काया

— और, छक्के--छह, आहारकारणे--आहार करने के कारण और आहार त्यागने के छह कारण इन में, जे--जो, भिक्खू—साधु णिच्चं--नित्य, जयइ—उपयोग रखता है, से--वह, मंडले--संसार में, ण अच्छइ--परिभ्रमण नहीं करता है ॥८॥

पिंडोग्गहपडिमासु, भयट्ठाणेसु सत्तसु।
जे भिक्खू जयई णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ॥९॥

— पिंडोग्गहपडिमासु— आहार ग्रहण विषयक सात पडिमाओं + में और, सत्तसु--सात, भयट्ठाणेसु—भयस्थानों में, जे--जो, भिक्खू— साधु, णिच्चं—नित्य, जयइ--उपयोग रखता है, से—वह, मंडले--संसार में, ण अच्छइ--परिभ्रमण नहीं करता ॥९॥

मएसु बंभगुत्तीसु, भिक्खुधम्मम्मि दसविहे।
जे भिक्खू जयई णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ।१०।

— मएसु—आठ मदस्थानों * के त्याग में, बंभगुत्तीसु--

+ सात पिण्डावग्रह प्रतिमाओं के नाम– संसृष्ट, असंसृष्ट, उद्धृत, अल्प स्पर्श, विकाररहित, उपगृहीत और उज्झित। सात भय के नाम– इहलोक भय, परलोक भय, धननाश भय, अकस्मात् भय, आजीविका भय या वेदना भय, अपयश भय और मृत्यु भय।

* मद आठ--जातिमद, कुलमद, रूपमद, बलमद, लाभमद, श्रुतमद, ऐश्वर्यमद और तपमद। ब्रह्मचर्य गुप्तियां नो--१ स्त्री-पशु-नपुंसक

नौ ब्रह्मचर्य-गुप्तियों का पालन करने में तथा, दसविहे--दस प्रकार के, भिक्खुधम्मम्मि --यतिधर्म का पालन करने में, जे--जो, भिक्खू--साधु, णिच्चं--सदा, जयइ--उपयोग रखता है, से-वह, मंडले--संसार में, ण अच्छइ--परिभ्रमण नहीं करता।

उवासगा पडिमासु, भिक्खूणं पडिमासु य।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ।११।

--उवासग पडिमासु--श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं ‡ में, य--और, भिक्खूणं--साधुओं की, पडिमासु--बारह प्रतिमाओं

रहित स्थान में निवास करना २ स्त्रियों की कथा न करना ३ स्त्री के साथ एक आसन पर न बैठना अथवा जिस आसन एवं स्थान पर स्त्री बैठी हुई थी, उसके उठ जाने पर भी एक मुहूर्त्त तक उस आसन एवं स्थान पर न बैठना ४ स्त्रियों के मनोहर अंगों को विकारपूर्वक न देखना ५ भित्ति आदि के अन्तर से स्त्रियों के शब्दो को न सुनना ६ पहले भोगे हुए भोगों को याद न करना ७ गरिष्ट आहार न करना ८ परिमाण से अधिक आहार न करना ९ अपने शरार को विभूषित न करना। यतिधर्म दस-- १ क्षमा २ मुक्ति (निर्लोभता) ३ आर्जव (सरलता) ४ मार्दव ५ लाघव ६ सत्य ७ संयम ८ तप ९ त्याग १० ब्रह्मचर्यवास।

‡ श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं के नाम-- १ सम्यक्त्व का पालन करना २ व्रत धारण करना ३ काल में प्रतिक्रमणादि क्रियाएँ करना ४ तिथियो में पौषध करना ५ रात्रि में कायोत्सर्ग करना स्नानादि का त्याग करना और धोती की लांग न बांधना ६ ब्रह्मचर्य धारण करना ७ सचित्ताहार का त्याग करना ८ स्वयं आरम्भ न करना ९ दूसरों से आरम्भ न कराना १० उद्दिष्ट आहार का त्याग करना

में, जे--जो, भिक्खू—साधु, णिच्चं--सदा, जयइ---उपयोग, रखता है, से—वह, मंडले--संसार में, ण अच्छइ—परिभ्रमण नहीं करता।

किरियासु भूयगामेसु, परमाहम्मिएसु य।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले।१२।

— किरियासु—तेरह क्रियाओं में, भूयगामेसु—चौदह भूतग्रामों में, य—और, परमाहम्मिएसु—पन्द्रह परमाधार्मिकों में, जे—जो, भिक्खू--साधु, णिच्चं—सदा, जयइ--उपयोग रखता है, से--वह मंडले--संसार में, ण अच्छइ--परिभ्रमण नहीं करता ॥१२॥

गाहासोलसएहिं, तहा असंजमम्मि य।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले।१३।

— जे—जो, भिक्खू--साधु, गाहासोलसएहिं--सूयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययनों में, णिच्चं--सदा, जयइ---उपयोग रखता (ज्ञान रखता) है, तहा, य—और, असंजमम्मि--सतरह प्रकार के असंयम को छोड़ कर पृथ्वी-कायादि की रक्षा रूप सतरह प्रकार के संयम का पालन करता

---

११ साधु के समान आचरण करना।

बारह भिक्खु प्रतिमाओं के नाम--- एक मास से लेकर सात मास तक एक-एक मास की सात प्रतिमाएं होती हैं। आठवीं, नौवीं और दसवीं ये तीन प्रतिमाएं सात-सात अहोरात्रि की हैं। ग्यारहवीं प्रतिमा एक अहोरात्रि की है और बारहवीं प्रतिमा केवल एक रात्रि की होती है।

है, से—वह, मंडले--संसार में, ण अच्छइ—परिभ्रमण नहीं करता ॥१३॥

बंभम्मि णायज्झयणेसु, ठाणेसु असमाहिए।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ।१४।

— जे--जो, भिक्खू—साधु बंभम्मि—अठारह प्रकार कि ब्रह्मचर्य का, णिच्चं—सदा, जयइ--पालन करता है तथा णायज्झयणेसु—ज्ञातासूत्र के उन्नीस अध्ययनों का अध्ययन करता है और, असमाहिए—बीस असमाधि के, ठाणेसु—स्थानों का त्याग कर समाधि स्थानों में प्रवृत्ति करता है, से—वह, मंडले—संसार में, ण अच्छइ—परिभ्रमण नहीं करता ॥१४॥

एगवीसाए सबले, बावीसाए परीसहे।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ।१५।

— एगवीसाए—इक्कीस, सबले—शबल दोष और, बावीसाए--बाईस, परीसहे—परीषहों में, जे--जो, भिक्खू—साधु, णिच्चं—सदैव, जयइ—उपयोग रखता (दोषों का त्याग करता) है और परीषहों को समभावपूर्वक सहन करता है, से-वह, मंडले--संसार में, ण अच्छइ—परिभ्रमण नहीं करता।

तेवीसाए सूयगडे, रूवाहिएसु सुरेसु य।
जे भिक्खू जयई णिच्चं, से ण अच्छइ मडले ।१६।

— सूयगडे--सूयगडांग सूत्र के, तेवीसाए--तेईस अध्ययनों में, य--और चौबीस रूवाहिएसु—रूपाधिक,

सुरेसू--देवों में, जे—जो, भिक्खू--साधु, णिच्चं—सदा, जयइ--उपयोग रखता है, से—वह, मंडले—संसार में, ण अच्छइ--परिभ्रमण नहीं करता है ॥१६॥

पणवीस-भावणासु, उद्देसेसु दसाइणं।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ।१७।

— जे—जो, भिक्खू--साधु, णिच्चं--सदा, पणवीस-भावणासु—पाँच महाव्रत की पच्चीस भावनाओं में, जयइ--उपयोग रखता है और, दसाइणं--दशाश्रुतस्कन्ध आदि के, उद्देसेसु-- छब्बीस उद्देशों का (दशाश्रुतस्कन्ध के दस, बृहत्कल्प के छह और व्यवहार सूत्र के दस कुल मिला कर छब्बीस अध्ययनों का) सम्यक् अध्ययन कर के प्ररूपणा करता है, से—वह, मंडले--संसार में, ण अच्छइ--परिभ्रमण नहीं करता ॥१७॥

अणगार-गुणेहिं, च, पगप्पम्मि तहेव य।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ॥१८॥

-- जे— जो, भिक्खू—साधु, णिच्चं--सदा अणगार-गुणेहिं--साधु के सत्ताईस गुणों को, जयइ--धारण करता है, च, तहेव, य--और, पगप्पम्मि--अट्ठाईस प्रकार के आचार-प्रकल्पों में (आचारांग सूत्र के श्रुतस्कन्धों के 'सत्थ-परिण्णा' आदि पच्चीस अध्ययन और निशीथ सूत्र के तीन, इन २८ अध्ययनों में) सदा उपयोग रखता है, से—वह, मंडले-

संसार में, ण अच्छइ—परिभ्रमण नहीं करता है ॥१८॥

पावसुयप्पसंगेसु मोहठाणेसु चेव य।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ॥१९॥

— जे—जो, भिक्खू—साधु, पावसुयप्पसंगेसु—उनतीस प्रकार के पापसूत्रों में, णिच्चं—सदा, जयइ—उपयोग रखता है (पापसूत्रों का कथन नहीं करता) चेव, य—और, मोह॰ ठाणेसु—मोहनीय-कर्म बाँधने के तीस स्थानों का त्याग करता है, से—वह, मंडले—संसार में, ण अच्छइ—परिभ्रमण नहीं करता ॥१९॥

सिद्धाइगुणजोगेसु, तेतीसासायणासु य।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले ॥२०॥

— जे—जो, भिक्खू—साधु, सिद्धाइगुणजोगेसु—सिद्ध भगवान् के इकत्तीस गुण और बत्तीस प्रकार के योगसंग्रहों में, णिच्चं—सदा, जयइ—उपयोग रखता है, य—और, तेतीसा॰ सायणासु—तेतीस आशातनाओं का त्याग करता है, से—वह, मंडले—संसार में, ण अच्छइ—परिभ्रमण नहीं करता ।२०।

इय एएसु ठाणेसु, जे भिक्खू जयइ सया।
खिप्पं सो सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिओ ।२१। त्तिबेमि।

— इय—इस प्रकार, एएसु—ऊपर कहे गये, ठाणेसु—स्थानों में, जे—जो, भिक्खू—साधु, सया—सदा, जयइ—

उपयोग रखता है (छोड़ने योग्य स्थानों का त्याग करता है और जानने योग्य स्थानों के स्वरूप को जानता है और ग्रहण करने योग्य स्थानों को ग्रहण करता है) सो--वह, पंडिओ--पंडित पुरुष, खिप्पं--शीघ्र ही, सव्वसंसारा--समस्त सांसारिक बन्धनों से, विप्पमुच्चइ--छूट जाता है ॥२१॥ त्तिबेमि--ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ इकत्तीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

'प्रमादस्थान' बत्तीसवाँ अध्ययन

अच्चंतकालस्स, समूलगस्स,
सव्वस दुक्खस्स उ जो पमोक्खो।
तं भासउ मे पडिपुण्णचित्ता,
सुणेह एगंतहियं हियत्थं ॥१॥

--गुरु महाराज फरमाते हैं कि हे शिष्यों! अच्चंतकालस्स--अनादि काल से, समूलगस्स--मिथ्यात्वादि मूल सहित रहे हुए, सव्वस्स--सभी, दुक्खस्स--दुःखों से, पमोक्खो--छुड़ा कर मोक्ष देने वाला, जो--जो, एगंतहियं--एकान्त

हितकारी और, हियत्थं--कल्याणकारी उपाय है, तं—उसका, मे—मैं, भासउ—कथन करता हूँ। अत: पडिपुण्णचित्ता—एकाग्रचित्त हो कर, सुणेह—सुनो। १।

णाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अण्णाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं,
एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं॥२॥

-- सव्वस्स—सम्पूर्ण, णाणस्स—ज्ञान के, पगासणाए—प्रकाश से और, अण्णाणमोहस्स—अज्ञान और मोह के, विवज्जणाए—त्याग से, य--तथा, रागस्स--राग, दोसस्स—द्वेष के, संखएणं—क्षय से, एगंतसोक्खं--एकान्त सुखकारी, मोक्खं—मोक्ष की, समुवेइ—प्राप्ति होती है॥२॥

तस्सेसमग्गो गुरु-विद्ध-सेवा,
विवज्जणा बाल-जणस्स दूरा।
सज्झाय-एगंतणिवेसणा य,
सुत्तत्थ-संचितणया धिइ य॥३॥

— गुरुविद्धसेवा--गुरु और वृद्ध जनों की सेवा करना, बालजणस्स--बाल-जनों के संग को, दूरा—दूर से ही, विवज्जणा—त्याग देना, सज्झाय एगंतणिसेवणा—एकान्त में रह कर स्वाध्याय करना, य—और, सुत्तत्थसंचितणया—सूत्र और अर्थ का चिन्तन करना, य—तथा, धिइ—धैर्यपूर्वक संयम

का पालन करना, एस—यह, तस्स—मोक्ष का, मग्गो—मार्ग (उपाय) है ॥३॥

आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं,
सहायमिच्छ णिउणत्थ-बुद्धि ।
णिकेयमिच्छेज्ज विवेगजोगं,
समाहिकामे समणे तवस्सी ॥४॥

— समाहिकामे—समाधि को चाहने वाला, समणे—श्रमण, तवस्सी—तपस्वी, मियं—परिमित और, एसणिज्जं—निर्दोष, आहारं—आहार की, इच्छे—इच्छा करे, णिउणत्थ-बुद्धि—जीवादि पदार्थों में निपुण बुद्धि वाले को, सहायं—सहायक (शिष्यादि) इच्छे—बनावे और, विवेगजोगं—स्त्री-पशु-नपुंसक रहित योग्य, णिकेयं—स्थान की, इच्छेज्ज—इच्छा करे ॥४॥

ण वा लभेज्जा णिउणं सहायं,
गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।
एक्को वि पावाइं विवज्जयंतो,
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥५॥

— वा—यदि, गुणाहियं—अपने से अधिक गुण वाला, वा, वा—अथवा, समं—अपने समान, गुणओ—गुण वाला, णिउणं—निपुण, सहायं—सहायक, ण लभेज्जा—नहीं मिले

सो, एक्को वि--अकेला ● ही, पावाइ--पाप-कर्मों को, विवज्जयंतो--वर्जता हुआ और, कामेसु--काम-भोगों में, असज्जमाणो--आसक्त न होता हुआ, विहरेज्ज--विचरे किन्तु दुर्गुणी का संग नहीं करे ॥५॥

जहा य अंडप्पभवा बलागा,
अंडं बलागप्पभवं जहा य ।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा,
मोहं च तण्हाययणं वयंति ॥६॥

— जहा--जिस प्रकार, बलागा--बगुला पक्षी, अंडप्पभवा--अण्डे से उत्पन्न होता है, य--और, जहा--जिस प्रकार अंडं--अण्डा, बलागप्पभवं--बलाका से उत्पन्न होता है, एमेव--इसी प्रकार, खु--निश्चय ही, तण्हा--तृष्णा, मोहाययणं--मोह का स्थान है, च--और, मोहं--मोह, तण्हाययणं--तृष्णा का स्थान है (तृष्णा से मोह उत्पन्न होता है) मोह और तृष्णा का पारस्परिक हेतुहेतुमद्भाव सम्बन्ध है ऐसा, वयंति--ज्ञानी पुरुष फरमाते हैं ॥६॥

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं,
कम्मं च मोहप्पभवं वयंति ।

● उपरोक्त कथन गीतार्थ विषयक है। वर्तमान समय में एकल-विहार का शास्त्रों में निषेध है। इसलिए यह 'अपवाद सूत्र' समझना चाहिए।

कम्मं च जाइमरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाइमरणं वयंति ॥७॥

— रागो—राग, य—और, दोसो—द्वेष ये दोनों ही, कम्मबीयं—कर्मों के बीज रूप हैं, च—और, कम्मं—कर्म, मोहप्पभवं—मोह से उत्पन्न होते हैं ऐसा, वयंति—ज्ञानी पुरुष कहते हैं, च—और, कम्मं—कर्म ही, जाइमरणस्स—जन्म-मरण का, मूलं—मूल कारण है, च—और, जाइमरणं—जन्म-मरण, दुक्खं—यही दुःख है ऐसा, वयंति—ज्ञानी पुरुष कहते हैं ॥७॥

दुक्खं हयं जस्स ण होइ मोहो,
मोहो हओ जस्स ण होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स ण होइ लोहो,
लोहो हओ जस्स ण किंचणाइं ॥८॥

— जस्स—जिसके, मोहो—मोह, ण होइ—नहीं है उसका, दुक्खं—दुःख, हयं—नष्ट हो गया। जस्स—जिसका मोहो—मोह, हओ—नष्ट हो गया उसके, तण्हा—तृष्णा, ण—नहीं, होइ—होती, जस्स—जिसकी, तण्हा—तृष्णा, हया—नष्ट हो गई उसे, लोहो—लोभ, ण—नहीं, होइ—होता और, जस्स—जिसका, लोहो—लोभ, हओ—नष्ट हो गया, उसके लिए, ण किंचणाइं—आसक्ति आदि कुछ नहीं होती (उसके लिए सब पाप नष्ट हो गया) ॥८॥

रागं च दोसं च तहेव मोहं,
उद्धत्तुकामेण समूलजालं।
जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा,
ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्विं ॥९॥

— गुरु कहते हैं कि हे शिष्यों! रागं—राग, दोसं—द्वेष, च—और, मोहं समूलजालं—मोह के जाल को मूल सहित, उद्धत्तुकामेण—उखाड़ फेंकने की इच्छा वाले पुरुष को, जे जे—जो-जो, उवाया—उपाय, पडिवज्जियव्वा—अंगीकार करने चाहिये, ते—उनका, जहाणुपुव्वि—क्रमपूर्वक, कित्तइस्सामि—मैं वर्णन करूँगा। उसे ध्यानपूर्वक सुनो ॥९॥

रसा पगामं ण णिसेवियव्वा,
पायं रसा दित्तिकरा णराणं।
दित्तं च कामा समभिद्दवंति,
दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥१०॥

— रसा—दूध-घृत आदि रसों का, पगामं—अधिक मात्रा में, ण णिसेवियव्वा—सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि, पायं—प्राय: रसा—रस, णराणं—मनुष्यों में, दित्तिकरा—कामाग्नि को दीप्त करते हैं, च—और, दित्तं—उद्दीप्त मनुष्य की ओर, कामा—कामवासनाएँ समभिद्दवंति—ठीक वैसे ही दौड़ी जाती है, जहा—जिस प्रकार, साउफलं—स्वादिष्ट फल वाले, दुमं व—वृक्ष की ओर, पक्खी—पक्षी दौड़े आते हैं।१०।

जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे,
समारुओ णोवसमं उवेइ।
एविंदियग्गी वि पगामभोइणो,
ण बंभयारिस्स हियाय कस्सइ ॥११॥

— जहा—जिस प्रकार, पउरिंधणे—बहुत इन्धन वाले, वणे--वन मे लगी हुई, समारुओ--वायु-सहित, दवग्गी--दावाग्नि, उवसमं--शान्त, ण उवेइ--नहीं होती, एवं--उसी प्रकार, पगामभोइणो--प्रकामभोजी (विविध प्रकार के रसयुक्त पदार्थों को भोगने वाले) कस्सइ वि--किसी भी, बंभयारिस्स-ब्रह्मचारी की, इंदियग्गी--इन्द्रिय रूपी अग्नि शान्त नही होती और वह, ण हियाय--उसके लिए हितकारी भी नहीं होती ॥

विवित्तसेज्जासणजंतियाणं, ओमासणाणं दमिइंदियाणं।
ण रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ वाहिरिवोसहेहिं ॥

-- ओसहेहिं--औषधियों से, पराइओ--दबाई हुई, वाहिरिव--व्याधि के समान (जिस प्रकार उत्तम औषधियों से पराजित की हुई व्याधि फिर आक्रमण नहीं करती उसी प्रकार) विवित्तसेज्जासण जंतियाणं-- स्त्री-पशु-नपुंसक रहित एकान्त शय्या-आसनादि का सेवन करने वाले ओमासणाणं--कम आहार करने वाले दमिइंदियाणं--इन्द्रियों का दमन करने वाले पुरुषों के, चित्तं - चित्त को, रागसत्तू—राग रूपी शत्रु, ण धरिसेइ—दबा नहीं सकता ॥१२॥

जहा विरालावसहस्स मूले, ण मूसगाणं वसही पसत्था।
एमेव इत्थीणिलयस्स मज्झे, ण बंभयारिस्स खमो णिवासो।

— जहा--जिस प्रकार, विरालावसहस्स--बिल्ली के रहने के स्थान के, मूले--निकट, मूसगाणं--चूहों का, वसही-रहना, ण पसत्था--प्रशस्त नहीं है, एमेव--इसी प्रकार, इत्थीणिलयस्स--स्त्रियों के स्थान के, मज्झे--मध्य में, बंभयारिस्स--ब्रह्मचारी पुरुष का, णिवासो--रहना, ण खमो-ठीक नहीं है, क्योंकि वहाँ रहने से उसके ब्रह्मचर्य में हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है ॥१३॥

ण रूव-लावण्ण-विलास-हासं, ण जंपियं इंगियपेहियं वा।
इत्थीण चित्तंसि णिवेसइत्ता, दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी॥

— समणे--श्रमण, तवस्सी--तपस्वी, इत्थीण--स्त्रियों के, रूव लावण्ण विलास हासं— रूप लावण्य विलास हास्य को, वा--तथा, जंपियं--जल्पित (मधुर वचनों को) और, इंगियपेहियं--इंगित (संकेत) एवं विविध प्रकार की शारीरिक चेष्टा तथा प्रेक्षित (कटाक्षविक्षेपादि) को चित्तंसि--अपने चित्त में, णिवेसइत्ता--स्थापित करके उन्हें, दट्ठुं--राग-पूर्वक देखने का, ण ववस्से--प्रयत्न न करे ॥१४॥

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचिंतणं चेव अकित्तणं च।
इत्थीजणस्सारियझाण-जुग्गं, हियं सया बंभवए रयाणं॥

— सया--सदा, बंभवएरयाणं--ब्रह्मचर्य व्रत में अनुरक्त

रहने वाले, च--और, आरियझाण जुग्गं--आर्यध्यान (धर्म-ध्यान) में तल्लीन साधुओं को, इत्थीजणस्स--स्त्रियों के अंगोपांगादि अदंसणं--रागपूर्वक नहीं देखना, अपत्थणं--उनकी इच्छा नहीं करना, अचिंतणं--उनका चिन्तन नहीं करना, चेव--और, अकित्तणं--आसक्ति पूर्वक उनके रूपादि का गुणकीर्तन नहीं करना, हियं--यही उनके लिए हितकारी है ॥

कामं तु देवीहि विभूसियाहि, ण चाइया खोभइउं तिगुत्ता।
तहा वि एगंत हियं ति णच्चा, विवित्तवासो मुणीणं पसत्थो।

— कामं तु--भले ही, तिगुत्ता--मन-वचन-काया रूप तीन गुप्तियों से गुप्त ऐसे समर्थ मुनि जो, विभूसियाहि--वस्त्राभूषणों से सुशोभित एवं मनोहर, देवीहि--देवांगनाओं द्वारा भी, खोभइउं ण चाइया--ब्रह्मचर्य व्रत से डिगाये न जा सकते हों, तहा वि--तो भी, एगंत हियं ति--एकान्त हितकारी, णच्चा--जान कर, मुणीणं--मुनियों के लिए, विवित्तवासो--विविक्त वास (स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित स्थान) का सेवन करना ही, पसत्थो--प्रशस्त बतलाया गया है ॥१६॥

मोक्खाभिकंखिस्स उ माणवस्स,
संसार-भीरुस्स ठियस्स धम्मे।
णेयारिसं दुत्तरमत्थि लोए,
जहित्थिओ बालमणोहराओ ॥१७॥

— मोक्खाभिकंखिस्स--मोक्ष की इच्छा रखने वाले,

संसारभीरुस्स--संसार से डरने वाले, उ--और, धम्मे--धर्म में, ठियस्स--स्थित, माणवस्स--पुरुष के लिए, लोए--इस लोक में, एयारिसं--इतना, दुत्तरं--कठिन कार्य, ण अत्थि--कोई नहीं, जह--जितना, बालमणोहराओ--अज्ञानी जीवों के मन को हरण करने वाली, इत्थिओ--स्त्रियों को त्यागना है ॥१७॥

एए य संगे समइक्कमित्ता, सुदुत्तरा चेव भवंति सेसा।
जहा महासागरमुत्तरित्ता, णई भवे अवि गंगा समाणा॥

— जहा--जैसे, महासागरं--महासागर को, उत्तरित्ता--तिर कर पार हो जाने के बाद, गंगासमाणा--गंगा सरीखी, णई अवि--नदी को पार करना सरल, भवे--है वैसे ही, एए--इन, संगे--संगों (स्त्रियों की आसक्ति) को, समइक्कमित्ता--छोड़ देने के बाद, सेसा--दूसरे--प्रकार की सभी आसक्तियाँ, सुदुत्तरा भवंति--सरलता से छूड़ी जा सकती हैं ॥१८॥

कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
जं काइयं माणसियं च किंचि, तस्संतगं गच्छइ वीयरागो।

--सदेवगस्स--देवलोक सहित, सव्वस्स-समग्र लोगस्स--लोक में, जं किंचि-जो कुछ भी, काइयं--शारीरिक च--और, माणसियं--मानसिक, दुक्खं--दुःख हैं वे सब, खु--वास्तव में, कामाणुगिद्धिप्पभवं--कामभोगों की आसक्ति से ही उत्पन्न हुए हैं। वीयरागो--वीतराग पुरुष ही, तस्स--उन दुःखों का, अंतगं

गच्छइ—पार पा सकता है ॥१९॥

जहा य किंपागफला मणोरमा,
रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा ।
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा,
एओवमा कामगुणा विवागे ॥२०॥

—जहा— जैसे, किंपागफला—किंपाक वृक्ष के फल, रसेण— रस से, य—और भुज्जमाणा—खाने में भी स्वादिष्ट लगते हैं किन्तु, पच्चमाणा—परिपाक के समय (खाने के थोड़े समय बाद ही) ते, खुड्डए जीविय—सोपक्रम आयु वाले, प्राणियों के जीवन को नष्ट कर देते हैं, एओवमा—यही उपमा, कामगुणा—कामभोगों के विवागे—विपाक (परिणामों) की होती है अर्थात् ये भोगते समय तो अच्छे लगते हैं किन्तु इनका परिणाम महा दुःखदायी होता है ॥२०॥

जे इंदियाणं विसया मणुण्णा,
ण तेसु भावं णिसिरे कयाइ ।
ण यामणुण्णेसु मणं पि कुज्जा,
समाहिकामे समणे तवस्सी ॥२१॥

— समाहिकामे—समाधि को चाहने वाला, समणे—श्रमण, तवस्सी—तपस्वी, इंदियाणं—इन्द्रियों के, जे—जो, मणुण्णा—मनोज्ञ, विसया—विषय हैं, तेसु—उनमें, कयाइ—कभी भी, भावं—रागभाव, ण णिसिरे—न करे, य—और

अमणुण्णेसु--अमनोज्ञ विषयों में, मणं पि—मन से भी, ण कुज्जा-द्वेष भाव न करे ॥२१॥

चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु।
तं दोसहेउं अमणुण्णमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो॥

— रूवं—रूप, चक्खुस्स--चक्षु इन्द्रिय का, गहणं—ग्रहण (विषय) वयंति—कहते हैं च—और, मणुण्णं--जो रूप मनोज्ञ है, तं--उसे, रागहेउं--राग का कारण, आहु—कहते हैं, य--और, अमणुण्णं--जो रूप अमनोज्ञ है, तं--उसे, दोसहेउं--द्वेष का कारण, आहु—कहते हैं किन्तु, जो—जो, तेसु--मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूपों में, समो—समभाव रखता है, स—वह, वीयरागो—वीतराग है ॥२२॥

रूवस्स चक्खुं गहणं वयंति, चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु, दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु॥

— चक्खुं—चक्षु को रूवस्स--रूप का, गहणं--ग्राहक वयंति--कहते हैं और, रूवं—रूप को, चक्खुस्स—चक्षु का, गहणं--ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य) वयंति--कहते हैं। ज्ञानी पुरुष, समणुण्ण—मनोज्ञ रूप को, रागस्स--राग का, हेउं—कारण, आहु—कहते हैं और, अमणुण्णं-अमनोज्ञ रूप को, दोसस्स--द्वेष का, हेउं--कारण, आहु--कहते हैं ॥२३॥

रूवेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे से जह वा पयंगे, आलोयलोले समुवेइ मच्चुं॥

— जह वा—जैसे, आलोय लोले—दीपक के प्रकाश का लोलुपी, रागाउरे—रागातुर, पयंगे—पतंगिया दीपक की लौ पर गिर कर, मच्चुं—मृत्यु को समुवेइ—प्राप्त होता है वैसे ही, जो—जो पुरुष, रूवेसु—रूप में, तिव्वं—तीव्र, गिद्धि—गृद्धि (आसक्ति), उवेइ—रखता है, से—वह, अकालियं—अकाल में ही, विणासं—विनाश को, पावइ—प्राप्त होता है ॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू,
ण किंचि रूवं अवरज्झइ से ॥२५॥

— जे यावि—जो जीव अमनोज्ञ रूप में, तिव्वं—तीव्र, दोसं—द्वेष को, समुवेइ—प्राप्त होता है, से—वह, जंतू—प्राणी, सएण—अपने ही, दुद्दंतदोसेण—तीव्र दोष से, तंसि क्खणे—उसी क्षण में, दुक्खं—दुःख को, उवेइ—प्राप्त होता है, से—इसमें, रूवं—रूप का, किंचि—कुछ भी, ण अवरज्झइ—अपराध (दोष) नहीं है, किन्तु वह जीव अपने ही दोष से स्वयं दुखी होता है ॥२५॥

एगंतरत्ते रुइरंसि रूवे, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, ण लिप्पई तेण मुणी विरागो ।

— जो जीव, रुइरंसि—सुन्दर, रूवे—रूप में, एगंतरत्ते—अत्यन्त अनुरक्त होता है और, अतालिसे—असुन्दर रूप में,

पओसं--द्वेष, कुणइ— करता है, से--वह, बालो--बाल (अज्ञानी) जीव, दुक्खस्स संपीलं—अत्यन्त दुःख एवं पीड़ा को, उवेइ—प्राप्त होता है किन्तु, विरागो--वीतराग, मुणी-मुनि, तेण--उस दुःख से, ण लिप्पई--लिप्त नहीं होता अर्थात् वीतराग मुनि को वह दुःख प्राप्त नहीं होता ॥२६॥

रूवाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अतट्ठगुरू किलिट्ठे ॥

— रूवाणुगासाणुगए—रूप की आसक्ति में फँसा हुआ, जीवे---जीव, णेगरूवे—अनेक प्रकार के, चराचरे—चराचर (त्रस और स्थावर) प्राणियों की, हिंसइ—हिंसा करता है, य--और, बाले—वह बाल (अज्ञानी जीव, ते - उन जीवों को, चित्तेहि - अनेक शस्त्रों से, परितावेइ - परिताप उपजाता है और, अतट्ठगुरू--अपने ही स्वार्थ में तल्लीन बना हुआ वह, किलिट्ठे- कुटिल जीव, पीलेइ- अनेक जीवों को पीड़ित करता है ॥२७॥

रूवाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सण्णियोगे।
वए वियोगे य कहं सुहं से, संभोग-काले य अतित्त-लाभे ॥

— रूवाणुवाएण—रूप में आसक्त, परिग्गहेण—परीग्रह में मूर्च्छित बने हुए को, उप्पायणे- उस रूपवान् पदार्थ को उत्पन्न करने में, रक्खण सण्णियोगे- उसकी रक्षा करने में तथा सम्यक् प्रकार से उपयोग करने में, य—और, वए-

उसका विनाश हो जाने पर तथा, वियोगे- वियोग हो जाने पर, कहं- कैसे, सुहं-- सुख प्राप्त हो सकता है अर्थात् सुख प्राप्त नहीं हो सकता, प्रत्युत दुःख होता है, य- और, संभोगकाले- उसका उपभोग करने के समय में भी, से-उसे, अतित्त लाभे- तृप्ति न होने के कारण दुःख ही होता है ॥२८॥

रूवे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठि-दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥

-- रूवे--रूप में, अतित्ते--अतृप्त बना हुआ, य-- और, परिग्गहम्मि--रूप विषयक परिग्रह में, सत्तोवसत्तो- आसक्त एवं विशेष आसक्त बना हुआ जीव तुट्ठि--संतोष को, ण उवेइ--प्राप्त नही होता। अतुट्ठिदोसेण--असंतोष रूपी से, दुही--दुःखी बना हुआ तथा, लोभाविले--लोभ से मलीन दोष चित्त वाला जीव, परस्स-- दूसरो की, अदत्तं--बिना दी हुई वस्तुओं को, आययई--ग्रहण करता है (अपनी इष्ट वस्तु को प्राप्त करने के लिए चोरी भी करता है) ॥२९॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
रूवे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा,
तत्था वि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥३०॥

-- तण्हाभिभूयस्स--तृष्णा के वशीभूत बने हुए अदत्त- हारिणो--बिना दी हुई रूपवान् वस्तु को चुरा कर लेने वाले,

य—और, रूवे- रूप विषयक, परिग्गहे—परिग्रह में, अतित्तस्स—अतृप्त प्राणी के, लोभदोसा--लोभ रूपी दोष से, मायामुसं--माया मृषावाद (कपट पूर्वक असत्य भाषण) की, वड्ढइ—वृद्धि होती है, तत्था वि--तो भी (कपट पूर्वक झूठ बोलने पर भी, से—वह, दुक्खा—दुःख से, ण विमुच्चई--नहीं छुटता है ॥३०॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओग-काले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥३१॥

— मोसस्स—झूठ बोलने के, पुरत्थओ—पहले, य—और, पच्छा—पीछे, य—तथा, पओग काले—झूठ बोलते समय भी, दुरंते—दुरन्त (दुष्ट हृदय वाला वह) जीव, दुही—दुखी ही रहता है, एवं—इसी प्रकार, रूवे—रूप में, अतित्तो-अतृप्त जीव, अदत्ताणि—बिना दी हुई रूपवान् वस्तुओं को, समाययंतो--ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो—सहाय रहित, य—और, दुहिओ—दुखी होता है ॥३१॥

रूवाणुरत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥३२॥

— एवं--इस प्रकार, रूवाणुरत्तस्स—रूप में आसक्त बने हुए, णरस्स--मनुष्यों को, सुहं--सुख, कत्तो—कहाँ, होज्ज—हो सकता है अर्थात् उसे, कयाइ--कभी भी, किंचि-- किञ्चिन्मात्र सुख प्राप्त नहीं हो सकता, जस्स कएण--जिस रूपवान् वस्तु को प्राप्त करने के लिए जीव ने, दुक्खं-- अपार कष्ट उठाया था, तत्थोवभोगे वि--उस रूपवान् पदार्थ के उपभोग में भी वह, किलेस दुक्खं-- अत्यन्त क्लेश और दुःख, णिव्वत्तई–पाता है अर्थात् तृप्ति न होने के कारण उसे दुःख होता है ॥३२॥

एमेव रूवम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह-परंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

- एमेव--इसी प्रकार, रूवम्मि–अमनोज्ञ रूप पओसंगओ– द्वेष करने वाला जीव, दुक्खोहपरंपराओ–उत्तरोत्तर दुःख-समूह की, परंपरा को, उवेइ—प्राप्त होता है, य—और, पदुट्ठचित्तो– अतिशय द्वेष से दूषित चित्त वाला वह जीव, कम्मं—अशुभ कर्म को, चिणाइ—बांधता है, जं--जिससे, से--उसे, पुणो—फिर, विवागे —विपाक के समय, दुहं--दुःख, होइ—होता है ॥३३॥

रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण।
ण लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणी-पलासं।

— वा—जिस प्रकार, पोक्खरिणीपलासं – जल में उत्पन्न हुआ कमल का पत्ता जल में रहता हुआ भी, जलेण—जल से,

ण लिप्पई—लिप्त नहीं होता उसी प्रकार, रूवे—रूप में विरत्तो—विरक्त (रागद्वेष रहित) मणुओ—मनुष्य, विसोगो शोक-रहित होता है और, भवमज्झे—संसार में. संतो वि—रहता हुआ भी, एएण—इस रूपविषयक, दुक्खोहपरंपरेण—दुःख समूह की परम्परा से लिप्त नही होता ।।३४।।

सोयस्स सद्दं गहणं वयंति,
तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुण्णमाहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो ।।३५।।

— सद्दं—शब्द को, सोयस्स—श्रोत्रेन्द्रिय का, गहणं—ग्राह्य विषय वयंति—कहते है, तु—और, मणुण्णं—जो मनोज्ञ शब्द है, तं—उसे, रागहेउं—राग का कारण, आहु—कहते हैं और, अमणुण्णं—जो अमनोज्ञ शब्द है, तं—उसे, दोसहेउं—द्वेष का कारण, आहु—कहते हैं, य—और, जो—जो, तेसु—मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों में, समो—समभाव रखता है, स—वह वीयरागो—वीतरागी है ।।३५।।

सद्दस्स सोयं गहणं वयंति, सोयस्स सद्दं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु, दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु ।।

— सोयं—श्रोत्रेन्द्रिय को, सद्दस्स—शब्द का, गहणं—ग्राहक, वयंति—कहते हैं और, सद्द—शब्द को, सोयस्स—

श्रोत्रेन्द्रिय का, गहणं—ग्राह्य, वयंति—कहते हैं। ज्ञानी पुरुष, समणुण्णं—मनोज्ञ शब्द को, रागस्स—राग का, हेउं—कारण, आहु—कहते हैं और, अमणुण्णं—अमनोज्ञ शब्द को, दोसस्स—द्वेष का हेउं—कारण, आहु—कहते हैं॥३६॥

सद्देसु जो गिद्धि-मुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे हरिणमिगे व मुद्धे, सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चुं॥

—व—जिस प्रकार, रागाउरे—संगीत के राग में आसक्त एवं, मुद्धे—मुग्ध बना हुआ अज्ञानी, हरिणमिगे—हरिण-मृग, सद्दे—शब्द में, अतित्ते—अतृप्त रहता हुआ, मच्चुं—मृत्यु को, समुवेइ—प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार, जो—जो जीव सद्देसु—शब्दों में, तिव्वं—तीव्र, गिद्धि—आसक्ति, उवेइ—रखता है, से—वह, अकालियं—अकाल में ही, विणासं—मृत्यु को, पावइ—प्राप्त होता है॥३७॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं।
दुद्दंत-दोसेण सएण जंतू,
ण किंचि सद्दं अवरुज्झइ से॥३८॥

—जे यावि—जो जीव अमनोज्ञ शब्द में, तिव्वं—तीव्र, दोसं—द्वेष, समुवेइ—करता है, से—वह, जंतू—प्राणी, सएण—अपने ही दुद्दंतदोसेण—तीव्र दोष से, तंसि क्खणे—उसी क्षण में, दुक्खं—दुःख को, उवेइ—प्राप्त होता है, से—

इसमें, सद्दं—शब्द का, किं चि—कुछ भी, ण अवरुज्झइ—अप-राध नहीं है, वह जीव अपने ही दोष से स्वयं दुखी होता है ॥

एगंतरत्ते रुइरंसि सद्दे, अतालिसे से कुणइ पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, ण लिप्पइ तेण मुणी विरागो॥

— जो जीव, रुइरंसि—प्रिय सद्दे—शब्द में, एगंतरत्ते-अत्यन्त अनुरक्त होता है तथा, अतालिसे—अप्रिय शब्द में, पओसं—द्वेष, कुणइ—करता है, से—वह, बाले—अज्ञानी जीव, दुक्खस्स संपीलं—अत्यन्त दुःख एवं पीड़ा को, उवेइ—प्राप्त होता है, किन्तु, विरागो—वीतराग, मुणी—मुनि, तेण-उस दुःख से, ण लिप्पइ- लिप्त नहीं होता (दुःखी नहीं होता) ॥

सद्दाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे॥

— सद्दाणुगासाणुगए—शब्द की आसक्ति में फँसा हुआ, जीवे—जीव, णेगरूवे—अनेक प्रकार के चराचरे—त्रस और स्थावर प्राणियों की, हिंसइ—हिंसा करता है, य—और, बाले-वह बाल (अज्ञानी) जीव, ते-उन प्राणियों को, चित्तेहि-अनेक शस्त्रों से, परितावेइ— परिताप उपजाता है और, अत्तट्ठगुरू—अपने ही स्वार्थ में तल्लीन बना हुआ वह, किलिट्ठे—कुटिल जीव, पीलेइ—अनेक जीवों को पीड़ित करता है ॥४०॥

सद्दाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सण्णियोगे ।
वए वियोगे य कहं सुहं से, संभोग-काले य अतित्तलाभे ।।

— सद्दाणुवाएण— शब्द के विषय में आसक्त एवं, परिग्गहेण— मूर्छित बने हुए जीव को, उप्पायणे— प्रिय शब्दादि द्रव्यों को उत्पन्न करने में, रक्खण सण्णिओगे— उनकी रक्षा करने में, तथा सम्यक् प्रकार से उपभोग करने में और, वए— उसका विनाश हो जाने पर, य—और, वियोगे—उसका वियोग हो जाने पर, कहं—कैसे, सुहं—सुख प्राप्त हो सकता है, प्रत्युत दुःख होता है, य—और, संभोग काले—उसका उपयोग करने के समय में भी, से—उसे, अतित्तलाभे—तृप्ति न होने के कारण दुःख ही होता है ।।४१।।

सद्दे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठि-दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ।।

— सद्दे—शब्द में, अतित्ते—अतृप्त बना हुआ, य—और, परिग्गहम्मि—शब्द विषयक परिग्रह में, सत्तोवसत्तो—आसक्त एवं विशेष आसक्त बना हुआ जीव, तुट्ठि—संतोष को, ण उवेइ—प्राप्त नहीं होता, अतुट्ठि दोसेण—असंतोष रूपी दोष से, दुही—दुखी बना हुआ तथा, लोभाविले—लोभ से मलिन चित्त वाला जीव, परस्स—दूसरों की, अदत्तं—बिना दी हुई वस्तुओं को, आययई—ग्रहण (चोरी करता है) ।।४२।।



तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
सद्दे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥४३॥

— तण्हाभिभूयस्स— तृष्णा के वशीभूत बने हुए, अद-त्तहारिणो—बिना दिये ही प्रिय शब्द वाले द्रव्यों को चुरा कर लेने वाले, य- और, सद्दे —शब्द विषयक, परिग्गहे—परिग्रह में, अतित्तस्स-अतृप्त प्राणी के, लोभदोसा—लोभ रूपी दोष से, मायामुसं-मायामृषावाद, वड्ढइ—वृद्धि होती है, तत्थावि—तथापि, से—वह, दुक्खा— दुःख से, ण विमुच्चई— नहीं छूटता है ॥४३॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओग-काले य दुही दुरंत्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
सद्दे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥४४॥

— मोसस्स—झूठ बोलने से, पुरत्थओ—पहले, य—और, पच्छा—पीछे, य—तथा, पओगकाले— झूठ बोलते समय भी, दुरंते—दुरन्त (दुष्ट हृदय वाला) जीव, दुही—दुःखी ही रहता है, एवं—इसी प्रकार, सद्दे—शब्द में, अतित्तो—अतृप्त जीव, अदत्ताणि—बिना दिये, हुए प्रिय शब्दादि द्रव्यों को, समाययंतो —ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो—सहाय रहित,

य--और, दुहिओ—दुःखी होता है। ४४॥

सद्दाणुरत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तई जस्स कए ण दुक्खं ॥४५॥

— एवं--इस प्रकार, सद्दाणुरत्तस्स--शब्द में आसक्त बने हुए, णरस्स—मनुष्य को, सुहं--सुख कत्तो—कहाँ से, होज्ज--हो सकता है ? अर्थात् उसे, कयाइ--कभी भी, किंचि—किञ्चिन्मात्र सुख प्राप्त नहीं हो सकता। जस्स कएण-जिन प्रिय शब्दादि द्रव्यों को प्राप्त करने के लिए जीव ने, दुक्खं--अपार कष्ट उठाया था, तत्थोवभोगे वि--उसके उपभोग में भी वह, किलेस दुक्खं--अत्यन्त क्लेश और दुःख, णिव्वत्तई— पाता है (तृप्ति न होने के कारण उसे दुःख होता है) ।।४५।।

एमेव सद्दम्मि गओ पओसं,
उवेइ दुक्खोह-परंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं,
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥४६॥

— एमेव--इसी प्रकार, सद्दम्मि— अप्रिय शब्द में, पओसं गओ--द्वेष करने वाला जीव, दुक्खोहपरंपराओ—उत्तरोत्तर दुःख समूह की परम्परा को, उवेइ—प्राप्त होता है,

य—और, पदुट्ठचित्तो—अतिशय द्वेष से दूषित चित्त वाला यह जीव, कम्मं--अशुभ कर्म को, चिणाइ—बांधता है, जं—जिससे, से--उसे, पुणो- फिर, विवागे— विपाक (कर्म-भोग) के समय, दुहं--दुःख, होइ—होता है ॥४६॥

सद्दे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह-परंपरेण ।
ण लिप्पई भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणी-पलासं ॥४७॥

-- वा--जिस प्रकार, पोक्खरिणी पलासं— जल में, उत्पन्न हुए कमल का पत्ता जल में रहता हुआ भी, जलेण--जल से, ण लिप्पइ— लिप्त नहीं होता उसी प्रकार, सद्दे--शब्द में, विरत्तो--विरक्त मणुओ--मनुष्य, विसोगो—शोक रहित होता है और, भवमज्झे—संसार में, संतो वि--रहता हुआ भी, एएण--इस शब्द विषयक, दुक्खोह परंपरेण—उत्तरोत्तर दुःख-समूह की परम्परा से, ण लिप्पइ—लिप्त नहीं होता ॥४७॥

घाणस्स गंधं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु ।
तं दोस-हेउं अमणुण्णमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो॥

-- गंधं--गन्ध को, घाणस्स--घाणेन्द्रिय का, गहणं—ग्रहण (विषय) वयंति—कहते हैं, तु—और, मणुण्णं--जो गन्ध मनोज्ञ है, तं--उस सुगन्ध को, रागहेउं--राग का कारण,

आहु--कहते हैं, य--और, अमणुण्णं--जो गन्ध अमनोज्ञ है, तं—उस दुर्गन्ध को, दोसहेउं--द्वेष का कारण, आहु—कहते हैं किन्तु जो—जो, तेसु--उन सुगन्ध और दुर्गन्ध में, समो--समभाव रखता है, स--वह, वीयरागो—वीतराग है ॥४८॥

गंधस्स घाणं गहणं वयंति, घाणस्स गंधं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु, दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु ॥

— घाणं—घ्राणेन्द्रिय को, गंधस्स--गन्ध का, गहणं—ग्राहक, वयंति--कहते हैं और, गंधं—गन्ध को, घाणस्स--घ्राणेन्द्रिय का, गहणं—ग्राह्य, वयंति--कहते हैं । ज्ञानी पुरुष, समणुण्णं—सुमनोज्ञ गन्ध को रागस्स—राग का, हेउं—कारण, आहु—कहते हैं और, अमणुण्णं—अमनोज्ञ गन्ध को, दोसस्स—द्वेष का, हेउं—कारण, आहु—कहते है ॥४९॥

गंधेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे ओसहिगंधगिद्धे, सप्पे बिलाओ विव णिक्खमंते ॥

— जो—जो जीव गंधेसु-- गन्ध में, तिव्वं—तीव्र, गिद्धि—आसक्ति, उवेइ--रखता है, से--वह, ओसहिगंधगिद्धे-चन्दनादि औषधियों की सुगन्ध में आसक्त एवं, रागाउरे—रागातुर होकर बिलाओ—अपने बिल से, णिक्खमंते-बाहर निकले हुए, सप्पे विव—सर्प के समान, अकालियं—अकाल, विणासं—मृत्यु को, पावइ—प्राप्त होता है ॥५०॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू,
ण किंचि गंधं अवरुज्झइ से ॥५१॥

— जे यावि—जो जीव, दुर्गन्ध में, तिव्वं तीव्र, दोसं—द्वेष को, समुवेइ—प्राप्त होता है, से—वह, जंतू—प्राणी, सएण—अपने ही, दुद्दंतदोसेण—दुर्दान्त (तीव्र दोष से) तंसिक्खणे—उसी क्षण में, दुक्खं—दुःख को. उवेइ—प्राप्त होता है, से—इसमें गंधं—गन्ध का, किंचि—कुछ भी, ण अवरुज्झइ—अपराध नहीं है किन्तु वह जीव अपने ही दोष से स्वयं दुखी होता है ॥५१॥

एगंतरत्ते रुइरंसि गंधे, अतालिसे से कुणइ पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, ण लिप्पइ तेण मुणी विरागो ॥

— जो जीव रुइरंसि—श्रेष्ठ, गंधे—गन्ध में, एगंतरत्ते—अत्यन्त अनुरक्त होता है और, अतालिसे—दुर्गन्ध से, पओसं—द्वेष, कुणइ—करता है, से—वह. बाले—अज्ञानी जीव, दुक्खस्स संपीलं—अत्यन्त दुःख एवं पीड़ा को, उवेइ—प्राप्त होता है किन्तु. विरागो—वीतराग, मुणी—मुनि, तेण—उस दुःख से, ण लिप्पइ—लिप्त नहीं होता ॥५२॥

गंधाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अतट्ठगुरू किलिट्ठे ॥

— गंधाणुगासाणुगए--गन्ध की आसक्ति में फँसा हुआ, जीवे--जीव, णेगरूवे--अनेक प्रकार के, चराचरे-त्रस और स्थावर प्राणियों की, हिंसइ—हिंसा करता है, य--और, बाले--वह अज्ञानी जीव, ते--उन जीवों को, चित्तेहि—अनेक उपायों से, परितावेइ—परिताप उपजाता है और, अत्तट्ठ गुरू--अपने ही स्वार्थ में तल्लीन बना हुआ वह, किलिट्ठे--कुटिल जीव, पीलेइ--अनेक जीवों को पीड़ित करता है।.५३॥

गंधाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खण-सण्णियोगे ।
वए वियोगे य कहं सुहं से,
संभोग-काले य अतित्तलाभे ॥५४॥

— गंधाणुवाएण--गन्ध में आसक्त एवं, परिग्गहेण—मूर्छित बने हुए जीव को, उप्पायणे—उसे उत्पन्न करने में, रक्खण सण्णियोगे—उसकी रक्षा करने में तथा सम्यक् प्रकार से उपयोग करने में, य—और, वए--उसका विनाश तथा, वियोगे—वियोग हो जाने पर, कहं—कैसे, सुहं—सुख प्राप्त हो सकता है अर्थात् कभी सुख प्राप्त नहीं हो सकता, प्रत्युत दुःख होता है, य—और, संभोग काले- उसका उपभोग करने के समय में भी, से--उसे, अतित्त लाभे—तृप्ति न होने के कारण दुःख ही होता है ॥५४॥

गंधे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठि-दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥

— गंधे—गन्ध में, अतित्ते—अतृप्त बना हुआ, य—और, परिग्गहम्मि—गन्ध विषयक परिग्रह में, सत्तोवसत्तो—आसक्त एवं विशेष आसक्त बना हुआ जीव, तुट्ठिं—संतोष को, ण उवेइ—प्राप्त नहीं होता, अतुट्ठि दोसेण—असंतोष रूपी दोष से, दुही—दुःखी बना हुआ तथा, लोभाविले—लोभ से मलीन चित्त वाला जीव, परस्स—दूसरों की, अदत्तं—बिना दी हुई चीजों को, आययई—ग्रहण करता है अर्थात् अपनी इष्ट वस्तु को प्राप्त करने के लिए चोरी करता है ॥५५॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्त-हारिणो,
गंधे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा,
तत्था वि दुक्खा ण विमुच्चई से॥५६॥

— तण्हाभिभूयस्स—तृष्णा के वशीभूत बने हुए, अदत्त-हारिणो—बिना दी हुई सुगन्धित वस्तु को चुरा कर लेने वाले, य- और, गंधे—गंध विषयक, परिग्गहे—परिग्रह में अतित्तस्स—अतृप्त प्राणी के, लोभदोसा—लोभ रूपी दोष से, मायामुसं—माया मृषावाद (छल पूर्वक असत्य भाषण) की, वड्ढइ—वृद्धि होती है, तत्था वि—तथापि, से—वह, दुक्खा—दुःख से, ण विमुच्चई—नहीं छूटता है ॥५६॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओग-काले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
गंधे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥५७॥

— मोसस्स—झूठ बोलने के, पुरत्थओ—पहले, य—और, पच्छा—पीछे, य—तथा, पओगकाले—झूठ बोलते समय भी, दुरंते—दुरंत—दुष्ट हृदय वाला वह जीव, दुही—दुखी ही रहता है, एवं—इसी प्रकार, गंधे—गंध में, अतित्तो-अतृप्त जीव, अदत्ताणि - बिना दी हुई सुगन्धित वस्तुओं को, समाययंतो—ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो—सहाय रहित, य—और, दुहिओ—दुखी होता है ॥५७॥

गंधाणुरत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥५८॥

— एवं—इस प्रकार, गंधाणुरत्तस्स—गन्ध में आसक्त बने हुए, णरस्स—मनुष्य को, सुहं—सुख, कत्तो—कहाँ, होज्ज—हो सकता है अर्थात् उसे, कयाइ—कभी भी किंचि—किञ्चिन्मात्र सुख प्राप्त नहीं हो सकता, जस्स कएण—जिस सुगन्धित वस्तु को प्राप्त करने के लिए जीव ने, दुक्खं - अपार कष्ट उठाया था, तत्थोवभोगे वि—उस सुगन्धित पदार्थ के

उपभोग में भी वह, किलेस दुक्खं—अत्यन्त क्लेश और दुः
णिव्वत्तई--पाता है अर्थात् तृप्ति न होने के कारण उसे दुः
होता है ॥५८॥

एमेव गंधम्मि गओ पओसं,
उवेइ दुक्खोह-परंपराओ।
पदुट्ठ चित्तो य चिणाइ कम्मं,
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥५९॥

— एमेव--इसी प्रकार, गंधम्मि--दुर्गन्धित द्रव्यों से पओस गओ—द्वेष करने वाला जीव, दुक्खोह परंपराओ—उत्तरोत्तर दुःख-समूह की परम्परा को, उवेइ—प्राप्त होता है य--और, पदुट्ठचित्तो—अतिशय द्वेष से दूषित चित्त वाला वह जीव, कम्मं--अशुभ कर्म को, चिणाइ--बाँधता है, जं--जिससे, से—उसे, पुणो--फिर, विवागे--विपाक के समय, दुहं—दुःख, होइ--होता है ॥५९॥

गंधे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह-परंपरेण ।
ण लिप्पइ भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणी-पलासं ॥६०॥

— वा--जिस प्रकार, पोक्खरिणी पलासं--जल में उत्पन्न हुए कमल का पत्ता जल में रहता हुआ भी, जलेण—जल से, ण लिप्पइ—लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार, गंधे—

गन्ध में, विरत्तो—विरक्त, मणुओ—मनुष्य, विसोगो--शोक रहित होता है और, भवमज्झे--संसार में, संतो वि—रहता हुआ भी, एएण--इस गन्ध विषयक, दुक्खोह परंपरेण—उत्तरोत्तर दुःख-समूह की परम्परा से लिप्त नहीं होता ॥६०॥

जिब्भाए रसं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुण्णमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

— रसं—रस को, जिब्भाए--जिन्हा इन्द्रिय का, गहणं—ग्राह्य (विषय), वयंति--कहते हैं, तु—और, मणुण्णं—जो रस मनोज्ञ है, तं—उसे, रागहेउं--राग का कारण, आहु--कहते हैं, य—और, अमणुण्णं—जो रस अमनोज्ञ है, तं--उसे, दोसहेउं—द्वेष का कारण, आहु—कहते हैं किन्तु, जो--जो, तेसु—उन रसों में, समो--समभाव रखता है, स—वह, वीयरागो—वीतराग है ॥६१॥

रसस्स जिब्भं गहणं वयंति, जिब्भाए रसं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु, दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु ॥

— जिब्भं—जिव्हा को, रसस्स—रस का, गहणं—ग्रहण करने वाली, वयंति--कहते हैं और रसं--रस को, जिब्भाए—जिव्हा इन्द्रिय का, गहणं—ग्राह्य, वयंति—कहते हैं। ज्ञानी पुरुष समणुण्णं--मनोज्ञ रस को, रागस्स—राग का, हेउं—कारण आहु—कहते हैं और, अमणुण्णं—अमनोज्ञ रस को, दोसस्स—द्वेष का, हेउं--कारण, आहु--कहते हैं ॥६२॥

रसेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं,
अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे बडिस-विभिण्णकाए,
मच्छे जहा आमिसभोग-गिद्धे ॥६३॥

-- जहा--जैसे रागाउरे--रागातुर, आमिसभोगगिद्धे--मांस खाने में गृद्ध बना हुआ, मच्छे-मच्छ, बडिस विभिण्णकाए-मांस लगे हुए लोह के कांटे से विभिन्न शरीर वाला होकर मृत्यु को प्राप्त करता है वैसे ही, जो—मनुष्य, रसेसु—रसों में, तिव्वं—तीव्र, गिद्धि—गृद्धि, उवेइ--रखता है, से--वह, अकालियं--अकाल में ही, विणासं--विनाश को, पावइ—प्राप्त होता है ॥६३॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं।
दुद्दंत-दोसेण सएण जंतू, ण किंचि रसं अवरुज्झई से ॥

— जे यावि--जो जीव अमनोज्ञ रस में, तिव्वं—तीव्र, दोसं--द्वेष को, समुवेइ—प्राप्त होता है, से—वह, जंतू--प्राणी, सएण—अपने ही, दुद्दंत दोसेण— दुर्दान्त दोष से, तंसिक्खणे—उसी क्षण में, दुक्खं—दुःख को, उवेइ —प्राप्त होता है, से-- इसमें, रसं— रस का, किंचि—कुछ भी, ण अवरुज्झई—अपराध नहीं है किन्तु वह जीव अपने ही दोष से स्वयं दुःखी होता है ॥६४॥

एगंतरत्ते रुइरे रसम्मि,
अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपील-मुवेइ बाले,
ण लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥६५॥

— जो जीव, रुइरे—मनोज्ञ रसम्मि—रस में, एगंतरत्ते — अत्यन्त अनुरक्त होता है और, अतालिसे—अमनोज्ञ रस में, पओसं —द्वेष कुणइ—करता है, से—वह, बाले—अज्ञानी जीव, दुक्खस्स संपीलं—अत्यन्त दुःख और पीड़ा को, उवेइ—प्राप्त होता है किन्तु, विरागो--वीतराग, मुणी—मुनि, तेण-उस दुःख से, ण लिप्पई--लिप्त नहीं होता ॥६५॥

रसाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥

— रसाणुगासाणुगए—रस की आसक्ति में फँसा हुआ, जीवे--जीव णेगरूवे—अनेक प्रकार के, चराचरे—त्रस और स्थावर प्राणियों की, हिंसइ--हिंसा करता है, य--और, बाले—वह बाल अज्ञानी जीव, ते—उन जीवों को, चित्तेहि— अनेक उपायों से, परितावेइ—परिताप उपजाता है और, अतट्ठगुरू—अपने ही स्वार्थ में तल्लीन बना हुआ वह, किलिट्ठे—कुटिल जीव, पीलेइ—अनेक जीवों को पीड़ित करता है ॥६६॥

रसाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सण्णिओगे।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे॥

— रसाणुवाएण--रस में आसक्त एवं, परिग्गहेण—मूच्छित बने हुए जीव को उप्पायणे—उस पदार्थ को उत्पन्न करने में; रक्खण सण्णिओगे--उसकी रक्षा करने में तथा सम्यक् प्रकार से उपयोग करने में, य--और, वए— उसका विनाश हो जाने पर तथा, वियोगे—वियोग हो जाने पर, कहं—कैसे, सुहं—सुख प्राप्त हो सकता है ? य--और, संभोग काले—उसका उपभोग करने के समय में भी, से--उसे; अतित्त-लाभे--तृप्ति न होने के कारण दुःख ही होता है ॥६७॥

रसे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं॥

— रसे--रस में, अतित्ते--अतृप्त बना हुआ, य—और परिग्गहम्मि—रस के परिग्रह में, सत्तोवसत्तो—आसक्त एवं विशेष आसक्त बने हुए जीव को, तुट्ठि—संतोष, ण उवेइ—नहीं होता, अतुट्ठि दोसेण--असंतोष रूपी दोष से, दुही—दुखी बना हुआ तथा, लोभाविले—लोभ से मलीन चित्त वाला जीव परस्स—दूसरों की, अदत्तं—बिना दी हुई चीजों को, आययई—ग्रहण करता है (चोरी करता है) ॥६८॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
रसे अतित्तस्स परिग्गहे य।

मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥६९॥

— तण्हाभिभूयस्स--तृष्णा के वशीभूत बने हुए, अदत्तहारिणो--बिना दी हुई रसादि युक्त वस्तु को चुरा कर लेने वाले, य--और, रसे--रस विषयक, परिग्गहे--परिग्रह में, अतित्तस्स--अतृप्त प्राणी के, लोभदोसा—लोभ रूपी दोष से, मायामुसं—कपटपूर्वक असत्य भाषण की, वड्ढइ--वृद्धि होती है, तत्थावि–तथापि (कपटपूर्वक झूठ बोलने पर भी), से—वह, दुक्खा--दुःख से, ण विमुच्चई--नहीं छूटता ॥६९॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥

— मोसस्स--झूठ बोलने के, पुरत्थओ—पहले, य--और, पच्छा—पीछे, य--तथा, पओग काले--झूठ बोलते समय भी, दुरंते--दुष्ट हृदय वाला वह जीव, दुही--दुःखी ही रहता है, एवं--इसी प्रकार, रसे--रस से, अतित्तो--अतृप्त जीव, अदत्ताणि--बिना दी हुई रसादि युक्त वस्तुओं को, समाययंतो—ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो--सहाय रहित, य—और, दुहिओ--दुखी होता है ॥७०॥

रसाणुरत्तस्स णरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, णिव्वत्तए जस्स कएण दुक्खं॥

— एवं—इस प्रकार, रसाणुरत्तस्स--रस में आसक्त

वने हुए, णरस्स--मनुष्य को, सुहं--सुख, कत्तो—कहां, होज्ज-हो सकता है उसे, कयाइ--कभी भी, किंचि--किञ्चिन्मात्र सुख प्राप्त नहीं हो सकता। जस्स कएण--जिस रसादि युक्त पदार्थ को प्राप्त करने के लिए जीव ने, दुक्खं--अपार कष्ट उठाया था, तत्थोवभोगे वि--उस रसादि युक्त पदार्थ के उप-भोग में भी वह, किलेस दुक्खं—अत्यन्त क्लेश और दुःख, णिव्वत्तई—पाता है (तृप्ति न होने के कारण उसे दुःख होता है) ॥७१॥

एमेव रसम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे॥

— एमेव--इसी प्रकार, रसम्मि--अमनोज्ञ रस में, पओसं गओ—द्वेष करने वाला जीव, दुक्खोह परंपराओ--उत्तरोत्तर दुःख-समूह की परम्परा को, उवेइ—प्राप्त होता है, य--और, पदुट्ठचित्तो--अतिशय द्वेष से दूषित चित्त वाला वह जीव, कम्मं—अशुभ कर्मों को, चिणाइ—बांधता है, जं—जिससे, से—उसे, पुणो--फिर, विवागे--भोगने के समय, दुहं--दुःख, होइ—होता है ॥७२॥

रसे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह-परंपरेण।
ण लिप्पइ भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणी-पलासं ॥७३॥

— वा—जिस प्रकार, पोक्खरिणी पलासं—जल में उत्पन्न हुए कमल का पत्ता जल में रहता हुआ भी, जलेण--जल से, ण लिप्पइ--लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार, रसे—रस में, विरत्तो--रागद्वेष रहित, मणुओ--मनुष्य, विसोगो--शोक रहित होता है और, भवमज्झे--संसार में, संतो वि---रहता हुआ भी, एएण--इस रस विषयक, दुक्खोह परंपरेण--उत्तरोत्तर दुःख-समूह की परम्परा से लिप्त नहीं होता अर्थात् उसे दुःख नहीं होता ।।७३।।

कायस्स फासं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुण्णमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ।।

— फासं—स्पर्श को, कायस्स—काया (स्पर्शनेन्द्रिय) का गहणं--ग्राह्य (विषय) वयंति—कहते हैं, तु—और, मणुण्णं—जो स्पर्श मनोज्ञ है, तं—उसे, रागहेउं--राग का कारण, आहु - कहते हैं, य—और, अमणुण्णं—जो स्पर्श अमनोज्ञ है, तं—उसे, दोसहेउं--द्वेष का कारण, आहु—कहते हैं किन्तु, जो--जो, तेसु-उन प्रिय और अप्रिय स्पर्शों में, समो—समभाव रखता है, स—वह, वीयरागो—वीतराग है ।।७४।।

फासस्स कायं गहणं वयंति, कायस्स फासं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु, दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु ।।

— कायं—काया को, फासस्स-- स्पर्श का गहणं--

ग्राहक, वयंति--कहते हैं और, फासं--स्पर्श को, कायस्स--काया का, गहणं--ग्राह्य, वयंति--कहते हैं। ज्ञानी पुरुष, समणुण्णं -- मनोज्ञ स्पर्श को, रागस्स -- राग का, हेउं -- कारण, आहु--कहते हैं और, अमणुण्णं--अमनोज्ञ स्पर्श को, दोसस्स-द्वेष का, हेउं--कारण, आहु--कहते हैं ॥७५॥

फासेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे सीय-जलावसण्णे, गाहग्गहीए महिसे व रण्णे ॥

— व--जैसे, रण्णे-वन में स्थित, सीय जलावसण्णे--तालाब के ठण्डे जल के स्पर्श में, रागाउरे--रागातुर बना हुआ, महिसे --भैंसा, गाहग्गहीए--ग्राह के द्वारा पकड़ा जाने पर विनाश को प्राप्त होता है वैसे ही, जो--जो मनुष्य, फासेसु--स्पर्श में, तिव्वं--तीव्र, गिद्धि--आसक्ति, उवेइ--रखता है, से--वह, अकालियं--अकाल में ही, विणासं--विनाश को, पावइ--प्राप्त होता है ॥७६॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू,
ण किंचि फासं अवरुज्झइ से ॥७७॥

— जे यावि--जो जीव अमनोज्ञ स्पर्श में, तिव्वं--तीव्र, दोसं--द्वेष को, समुवेइ--प्राप्त होता है, से--वह, जंतू--प्राणी, सएण--अपने ही, दुद्दंतदोसे-दुर्दान्त दोष से, तंसिक्खणे-

उसी क्षण में, दुक्खं--दुःख को, उवेइ--प्राप्त होता है, से—इसमें, फासं--स्पर्श का, किंचि--कुछ भी, ण अवरुज्झइ—अपराध नहीं है, किन्तु वह जीव अपने ही दोष से स्वयं दुखी होता है ॥७७॥

एगंतरत्ते रुइरंसि फासे,
अतालिसे से कुणइ पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले,
ण लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥७८॥

— जो जीव, रुइरंसि—मनोज्ञ, फासे—स्पर्श में, एगंतरत्ते—अत्यन्त अनुरक्त होता है और, अतालिसे—अमनोज्ञ स्पर्श में, पओसं—द्वेष, कुणइ—करता है, से--वह, बाले—अज्ञानी जीव, दुक्खस्स संपीलं—अत्यन्त दुःख एवं पीड़ा को, उवेइ—प्राप्त होता है किन्तु, विरागो—वीतराग मुणी—मुनि तेण--वह दुःख, ण लिप्पई—प्राप्त नहीं होता ॥७८॥

फासाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अतट्ठगुरू किलिट्ठे॥

— फासाणुगासाणुगए--स्पर्श की आसक्ति में फँसा हुआ, जीवे--जीव, णेगरूवे—अनेक प्रकार के, चराचर--त्रस और स्थावर प्राणियों की, हिंसइ—हिंसा करता है, य—और, बाले—वह अज्ञानी जीव ते--उन जीवों को, चित्तेहि--अनेक प्रकार से, परितावेइ--परिताप उपजाता है और, अतट्ठगुरू--

अपने ही स्वार्थ में तल्लीन बना हुआ वह, किलिट्ठे--कुटिल जीव, पीलेइ—अनेक जीवों को पीड़ित करता है ॥७९॥

फासाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सण्णियोगे।
वए वियोगे य कहं सुहं से, संभोग-काले य अतित्तलाभे॥

— **फासाणुवाएण**--स्पर्श के विषय में आसक्त एवं, **परिग्गहेण**—मूर्च्छित बने हुए जीव को, **उप्पायणे**---उस स्पर्शादि युक्त पदार्थ को उत्पन्न करने में, **रक्खण सण्णियोगे**--उसकी रक्षा करने में तथा सम्यक् प्रकार से उपयोग करने में, **य**—और, **वए**—उसका विनाश हो जाने पर तथा, **वियोगे**—वियोग हो जाने पर, **कहं**--कैसे, **सुहं**—सुख प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् सुख प्राप्त नहीं हो सकता, प्रत्युत् दुःख होता है, **य**—और, **संभोगकाले**—उसका उपभोग करने के समय भी, **से**--उसे, **अतित्तलाभे**--तृप्ति न होने के कारण दुःख ही होता है ॥८०॥

फासे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं॥

— **फासे**--स्पर्श में, **अतित्ते**—अतृप्त बना हुआ, **य**—और, **परिग्गहम्मि**--स्पर्श विषयक परिग्रह में, **सत्तोवसत्तो**--आसक्त एवं विशेष आसक्त बना हुआ जीव, **तुट्ठि**--संतोष को, **ण उवेइ**—प्राप्त नहीं होता है, **अतुट्ठि दोसेण**—असंतोष रूपी दोष से, **दुही**--दुःखी बना हुआ तथा, **लोभाविले**--लोभ से

मलीन चित्त वाला जीव, परस्स—दूसरों की, अदत्तं–विना दी हुई वस्तु को, आययई-ग्रहण करता है (चोरी करता) है ।८१।

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
फासे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा,
तत्था वि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥८२॥

— तण्हाभिभूयस्स--तृष्णा के वशीभूत बने हुए, अदत्त-हारिणो--विना दी हुई स्पर्शादि युक्त वस्तु को चुरा कर लेने वाले, य—और, फासे--स्पर्श विषयक परिग्गहे--परिग्रह में, अतित्तस्स--अतृप्त प्राणी के, लोभदोसा--लोभ रूपी दोष से, मायामुसं—कपट पूर्वक असत्य भाषण की, वड्ढइ—वृद्धि होती है, तत्था वि-- तथापि, से— वह, दुक्खा—दुःख से, ण विमुच्चई— नहीं छूटता है ॥८२॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओग-काले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥८३॥

— मोसस्स— झूठ बोलने के पुरत्थओ--पहले, य—और, पच्छा—पीछे, य—तथा, पओग काले—झूठ बोलते समय भी, दुरंते—दुष्ट हृदय वाला वह जीव, दुही—दुःखी ही रहता है, एवं—इसी प्रकार, फासे– स्पर्श में, अतित्तो—

अपने ही स्वार्थ में तल्लीन बना हुआ वह, किलिट्ठे--कुटिल जीव, पीलेइ—अनेक जीवों को पीड़ित करता है ॥७९॥

फासाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सण्णियोगे।
वए वियोगे य कहं सुहं से, संभोग-काले य अतित्तलाभे॥

— फासाणुवाएण--स्पर्श के विषय में आसक्त एवं, **परिग्गहेण**—मूर्च्छित बने हुए जीव को, **उप्पायणे**---उस स्पर्शादि युक्त पदार्थ को उत्पन्न करने में, **रक्खण सण्णियोगे**--उसकी रक्षा करने में तथा सम्यक् प्रकार से उपयोग करने में, **य**—और, **वए**—उसका विनाश हो जाने पर तथा, **वियोगे**—वियोग हो जाने पर, **कहं**—कैसे, **सुहं**—सुख प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् सुख प्राप्त नहीं हो सकता, प्रत्युत् दुःख होता है, **य**—और, **संभोगकाले**—उसका उपभोग करने के समय भी, **से**--उसे, **अतित्तलाभे**--तृप्ति न होने के कारण दुःख ही होता है ॥८०॥

फासे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं॥

— फासे--स्पर्श में, **अतित्ते**—अतृप्त बना हुआ, **य**—और, **परिग्गहम्मि**--स्पर्श विषयक परिग्रह में, **सत्तोवसत्तो**--आसक्त एवं विशेष आसक्त बना हुआ जीव, **तुट्ठिं**--संतोष को, **ण उवेइ**—प्राप्त नहीं होता है, **अतुट्ठि दोसेण**—असंतोष रूपी दोष से, **दुही**--दुःखी बना हुआ तथा, **लोभाविले**--लोभ से

मलीन चित्त वाला जीव, परस्स—दूसरों की, अदत्तं-विना दी हुई वस्तु को, आययई-ग्रहण करता है (चोरी करता) है ।८१।

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
फासे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा,
तत्था वि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥८२॥

— तण्हाभिभूयस्स--तृष्णा के वशीभूत बने हुए, अदत्त-हारिणो--विना दी हुई स्पर्शादि युक्त वस्तु को चुरा कर लेने वाले, य—और, फासे--स्पर्श विषयक परिग्गहे--परिग्रह में, अतित्तस्स--अतृप्त प्राणी के, लोभदोसा--लोभ रूपी दोष से, मायामुसं—कपट पूर्वक असत्य भाषण की, वड्ढइ—वृद्धि होती है, तत्था वि-- तथापि, से—वह दुक्खा—दुःख से, ण विमुच्चई—नहीं छूटता है ॥८२॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओग-काले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥८३॥

— मोसस्स— झूठ बोलने के पुरत्थओ--पहले, य—और, पच्छा—पीछे, य—तथा, पओग काले—झूठ बोलते समय भी, दुरंते—दुष्ट हृदय वाला वह जीव, दुही—दुःखी ही रहता है, एवं—इसी प्रकार, फासे—स्पर्श में, अतित्तो—

अतृप्त जीव, अदत्ताणि--बिना दी हुई स्पर्शादि युक्त वस्तुओं को, समाययंतो--ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो—सहाय रहित, य--और, दुहिओ—दुःखी होता है ॥८३॥

फासाणुरत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥८४॥

-- एवं—इस प्रकार, फासाणुरत्तस्स—स्पर्श में आसक्त बने हुए, णरस्स--मनुष्य को, सुहं--सुख, कत्तो—कहाँ, होज्ज--हो सकता है उसे, कयाइ--कभी भी, किंचि--किञ्चन्मात्र भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। जस्स कएण—जिस स्पर्शादि युक्त वस्तु को प्राप्त करने के लिए जीव ने, दुक्खं—अपार कष्ट उठाया था, तत्थोवभोगे वि--उस स्पर्शादि युक्त पदार्थ के उपभोग में भी वह, किलेस दुक्खं—अत्यन्त क्लेश और दुःख, णिव्वत्तई—पाता है अर्थात् तृप्ति न होने के कारण उसे दुःख होता है ॥८४॥

एमेव फासम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह-परंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे॥

-- एमेव--इसी प्रकार, फासम्मि—अप्रिय स्पर्श के विषय में, पओसं गओ—द्वेष करने वाला जीव, दुक्खोह परंपराओ--उत्तरोत्तर दुःख-समूह की, परम्परा को, उवेइ--

प्राप्त होता है, य--ओर, पदुट्ठचित्तो--अतिशय द्वेष से दूषित चित्त वाला वह जीव, कम्मं-- अशुभ कर्म, चिणाइ— बांधता है, जं--जिससे, से--उसे, पुणो--फिर, विवागे-- कर्म-भोगने के समय, दुहं—दुःख, होइ—होता है ॥८५॥

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह-परंपरेण ।
ण लिप्पई भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥८६॥

-- वा-- जिस प्रकार, पोक्खपिणीपलासं-- जल में उत्पन्न हुआ कमल का पत्ता जल मे रहता हुआ भी, जलेण— जल से, ण लिप्पई--लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार, फासे— स्पर्श में, विरत्तो-- विरक्त, मणुओ—मनुष्य, विसोगो-- शोक-रहित होता है और, भवमज्झे—संसार में, संतो वि-- रहता हुआ भी, एएण—इस स्पर्श विषयक, दुक्खोह परंपरेण- उत्तरोत्तर दुःख-समूह की परम्परा से लिप्त नहीं होता ॥८६॥

मणस्स भावं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुण्णमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

— भावं—भाव को, मणस्स--मन का, गहणं--ग्राह्य, वयंति--कहते हैं, तु--और, मणुण्णं—जो भाव मनोज्ञ है, तं—उसे, रागहेउं--राग का कारण, आहु—कहते हैं, य— और, अमणुण्णं--जो भाव अमनोज्ञ

अतृप्त जीव, अदत्ताणि--बिना दी हुई स्पर्शादि युक्त वस्तुओं को, समाययंतो--ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो—सहाय रहित; य--और, दुहिओ—दुःखी होता है ॥८३॥

फासाणुरत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥८४॥

-- एवं—इस प्रकार, फासाणुरत्तस्स—स्पर्श में आसक्त बने हुए, णरस्स--मनुष्य को, सुहं--सुख, कत्तो—कहाँ, होज्ज--हो सकता है उसे, कयाइ--कभी भी, किंचि--किञ्चन्मात्र भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। जस्स कएण—जिस स्पर्शादि युक्त वस्तु को प्राप्त करने के लिए जीव ने, दुक्खं—अपार कष्ट उठाया था, तत्थोवभोगे वि--उस स्पर्शादि युक्त पदार्थ के उपभोग में भी वह, किलेस दुक्खं—अत्यन्त क्लेश और दुःख, णिव्वत्तई—पाता है अर्थात् तृप्ति न होने के कारण उसे दुःख होता है ॥८४॥

एमेव फासम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह-परंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे॥

-- एमेव--इसी प्रकार, फासम्मि—अप्रिय स्पर्श के विषय में, पओसं गओ—द्वेष करने वाला जीव, दुक्खोह परंपराओ--उत्तरोत्तर दुःख-समूह की, परम्परा को, उवेइ--

प्राप्त होता है, य--और, पदुट्ठचित्तो--अतिशय द्वेष से दूषित चित्त वाला वह जीव, कम्मं--अशुभ कर्म, चिणाइ--बांधता है, जं--जिससे, से--उसे, पुणो--फिर, विवागे--कर्म-भोगने के समय, दुहं--दुःख, होइ--होता है ॥८५॥

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह-परंपरेण ।
ण लिप्पई भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥८६॥

--वा--जिस प्रकार, पोक्खरिणीपलासं--जल में उत्पन्न हुआ कमल का पत्ता जल मे रहता हुआ भी, जलेण--जल से, ण लिप्पई--लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार, फासे--स्पर्श में, विरत्तो--विरक्त, मणुओ--मनुष्य, विसोगो--शोक-रहित होता है और, भवमज्झे--संसार में, संतो वि--रहता हुआ भी, एएण--इस स्पर्श विषयक, दुक्खोह परंपरेण--उत्तरोत्तर दुःख-समूह की परम्परा से लिप्त नहीं होता ॥८६॥

मणस्स भावं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुण्णमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

--भावं--भाव को, मणस्स--मन का, गहणं--ग्राह्य, वयंति--कहते हैं, तु--और, मणुण्णं--जो भाव मनोज्ञ है, तं--उसे, रागहेउं--राग का कारण, आहु--कहते हैं, य--और, अमणुण्णं--जो भाव अमनोज्ञ है, तं--उसे, दोसहेउं--

द्वेष का कारण, आहु--कहते हैं किन्तु, जो—जो, तेसु—उनमें अर्थात् मनोज्ञ दोनों प्रकार के भावों में, समो--समभाव रखता है, स--वह, वीयरागो--वीतराग है । ८७॥

भावस्स मणं गहणं वयंति, मणस्स भावं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु, दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु ॥

-- मणं--मन को, भावस्स—भाव का, गहणं—ग्राहक, वयंति--कहते हैं और, भावं—भाव को, मणस्स--मन का, गहणं—ग्राह्य, वयंति--कहते हैं । ज्ञानी पुरुष, समणुण्णं—मनोज्ञभाव को, रागस्स—राग का हेउं—कारण, आहु—कहते हैं और, अमणुण्णं--अमनोज्ञ भाव को, दोसस्स—द्वेष का, हेउं—कारण, आहु--कहते हैं ॥८८॥

भावेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे, करेणु-मग्गावहिए व णागे ॥

-- व--जिस प्रकार, कामगुणेसु—कामगुणों में, गिद्धे--मूच्छित बना हुआ, रागाउरे--रागातुर, णागे—हाथी, करेणु-मग्गावहिए—हथिनि के पीछे दौड़ता हुआ पथभ्रष्ट हो कर शिकारियों द्वारा पकड़ा जाने पर दुःख पाता है, उसी प्रकार जो—जो पुरुष, भावेसु—भावों में, तिव्वं—तीव्र, गिद्धि--आसक्ति, उवेइ—रखता है, से--वह अकालियं--अकाल में ही, विणासं--विनाश को, पावइ—प्राप्त होता है ॥८९॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।

दुद्दंतदोसेण सएण जंतू,
ण किंचि भावं अवरुज्झइ से ॥९०॥

— जे यावि—जो जीव अमनोज्ञ भाव में, तिव्वं—तीव्र, दोसं--द्वेष को, समुवेइ--प्राप्त होता है, से--वह, जंतू—प्राणी सएण--अपने ही, दुद्दंत दोसेण--दुर्दान्त (तीव्र) दोष से, तंसिक्खणे—उसी क्षण में, दुक्खं—दुःख को, उवेइ—प्राप्त होता है, से--इसमें, भावं—भाव का, किंचि--कुछ भी, ण अवरुज्झइ--दोष नहीं है किन्तु वह जीव अपने ही दोष से स्वयं दुखी होता है ॥९०॥

एगंतरत्ते रुइरंसि भावे, अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले, ण लिप्पई तेण मुणी विरागो॥

— जो जीव, रुइरंसि--मनोज्ञ, भावे—भाव में, एगंतरत्ते--अत्यन्त अनुरक्त होता है और, अतालिसे—अमनोज्ञ भाव में, पओसं—द्वेष, कुणइ--करता है, से--वह, बाले—अज्ञानी जीव, दुक्खस्स संपीलं—अत्यन्त दुःख एवं पीड़ा को, उवेइ--प्राप्त होता है किन्तु, विरागो—वीतराग, मुणी—मुनि, तेण--उस दुःख से, ण लिप्पई—लिप्त नहीं होता ॥९१॥

भावाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे॥

— भावाणुगासाणुगए—भावों की आसक्ति में फँसा हुआ, जीवे--जीव, णेगरूवे--अनेक प्रकार के, चराचरे--त्रस

और स्थावर प्राणियों की, हिंसइ--हिंसा करता है, य - और बाले--वह अज्ञानी जीव, ते - उन जीवो को, चित्तेहि—अनेक प्रकार से, परितावेइ--परिताप उत्पन्न करता है, अतट्ठगुरू—अपने ही स्वार्थ में तल्लीन बना हुआ वह, किलिट्ठे—कुटिल जीव, पीलेइ—अनेक जीवों को पीड़ित करता है ॥९२॥

भावाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण सण्णियोगे।
वए वियोगे य कहं सुहं से, संभोग काले य अतित्तलाभे॥

— भावाणुवाएण—भावों के विषय में आसक्त एवं, परिग्गहेण--मूर्च्छित बने हुए जीव को, उप्पायणे—अपने भावानुकूल पदार्थ को उत्पन्न करने में, रक्खण सण्णियोगे—उसकी रक्षा करने में तथा सम्यक् प्रकार से उपयोग करने में, य—और, वए—उसका विनाश हो जाने पर तथा, वियोगे—वियोग हो जाने पर, कहं—कैसे, सुहं--सुख प्राप्त हो सकता है ? य—और, संभोग काले--उसका उपभोग करने के समय भी, से—उसे, अतित्तलाभे--तृप्ति न होने के कारण दुःख ही होता है ॥९३॥

भावे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठि।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥

— भावे—भाव में, अतित्ते--अतृप्त बना हुआ, य--और, परिग्गहम्मि—भाव विषयक परिग्रह में, सत्तोवसत्तो—आसक्त एवं विशेष आसक्त बना हुआ जीव, तुट्ठि--संतोष

को, ण उवेइ--प्राप्त नहीं होता, अतुट्ठिदोसेण--असंतोष रूपी दोष से, दुही--दुखी बना हुआ तथा, लोभाविले--लोभ से मलीन चित्त वाला जीव, परस्स--दूसरों की, अदत्तं--बिना दी हुई वस्तुओं को, आययई--ग्रहण करता है ॥९४॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
भावे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चइ से ॥९५॥

—तण्हाभिभूयस्स--तृष्णा के वशीभूत बने हुए, अदत्त-हारिणो--बिना दी हुई अपने भावानुकूल वस्तु को चुरा कर लेने वाले, य-और, भावे-भाव विषयक, परिग्गहे-परिग्रह में, अतित्तस्स--अतृप्त प्राणी के, लोभदोसा--लोभ रूपी दोष से, मायामुसं--माया मृषावाद की, वड्ढइ--वृद्धि होती है, तत्थावि--तथापि, से-- वह, दुक्खा-- दुःख से, ण विमुच्चई--नहीं छूटता है ॥९५।

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओग काले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
भावे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥९६॥

— मोसस्स--झूठ बोलने के, पुरत्थओ--पहले, य—

और, पच्छा- पीछे, य-तथा, पओग काले—झूठ बोलते समय भी, दुरंते—दुष्ट हृदय वाला वह जीव, दुही—दुखी ही रहता है, एवं--इसी प्रकार, भावे--भाव में, अतित्तो--अतृप्त जीव, अदत्ताणि-- बिना दी हुई अपने भावानुकूल वस्तुओं को, समाययंतो—ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो—सहाय रहित, य—और, दुहिओ—दुःखी होता है ॥९६॥

भावाणुरत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥९७॥

— एवं—इस प्रकार भावाणुरत्तस्स—भाव में आसक्त बने हुए, णरस्स—मनुष्य को, सुहं—सुख, कत्तो-कहाँ होज्ज-प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् उसे, कयाइ--कभी भी, किंचि-किञ्चित्मात्र सुख प्राप्त नहीं हो सकता । जस्स कएण--अपने भावानुकूल जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए जीव ने, दुक्खं-अपार कष्ट उठाया था, तत्थोवभोगे वि--उस वस्तु के उपभोग में भी वह, किलेस दुक्खं--अत्यन्त क्लेश और दुःख, णिव्वत्तई-पाता है ॥९७॥

एमेव भावम्मि गओ पओसं,
उवेइ दुक्खोह-परंपराओ ।

पदुट्ठ चित्तो य चिणाइ कम्मं,
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥९८॥

— एमेव—इसी प्रकार, भावम्मि--अमनोज्ञ भाव में, पओसं गओ--द्वेष करने वाला जीव, दुक्खोह परंपराओ—उत्तरोत्तर दुःख-समूह की परम्परा को, उवेइ--प्राप्त होता है, य—और पदुट्ठचित्तो--अतिशय द्वेष युक्त चित्त वाला जीव, कम्मं-अशुभ कर्म, चिणाइ—बांधता है जं—जिससे, से- उसे, पुणो—फिर, विवागे-कर्म भोगने के समय, दुहं—दुःख होइ-होता है ॥९८॥

भावे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह-परंपरेण ।
ण लिप्पई भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणी-पलासं ॥९९॥

— वा—जिस प्रकार, पोक्खरिणी पलासं--जल में उत्पन्न हुए कमल का पत्ता जल में रहता हुआ भी, जलेण—जल से, ण लिप्पई—लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार, भावे—भाव में, विरत्तो—विरक्त, मणुओ--मनुष्य, विसोगो--शोक-रहित होता है और, भवमज्झे—संसार में, संतो वि--रहता हुआ भी, एएण--इस भाव विषयक, दुक्खोहपरंपरेण—उत्तरोत्तर दुःख-समूह की परम्परा से लिप्त नहीं होता ॥९९॥

एविंदियत्था य मणस्स अत्था,
दुक्खस्स हेउं मणुयस्स रागिणो ।

ते चेव थोवं वि कयाइ दुक्खं,
ण वीयरागस्स करेंति किंचि ॥१००॥

— एवं--इस प्रकार, इंदियत्था—इन्द्रियों के विषय, य--और, मणस्स--मन के, अत्था—विषय (मानसिक संकल्प-विकल्प), रागिणो--रागी, मणुयस्स--पुरुष के लिए, दुक्खस्स--दुःख के, हेउं—कारण होते हैं किन्तु, ते चेव--वे ही इन्द्रिय और मन के विषय, वीयरागस्स—वीतराग पुरुष के लिए, थोवं—थोड़ा-सा, किंचि--किञ्चिन्मात्र भी, कयाइ—कभी, दुक्खं--दुःख, ण करेंति—नहीं कर सकते ॥१००॥

ण कामभोगा समयं उवेंति, ण यावि भोगा विगइं उवेंति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ॥

— कामभोगा--कामभोग स्वतः, ण—न तो, समयं--समता को, उवेंति—प्राप्त कराते हैं, ण यावि--और न, भोगा—कामभोग, विगइं—विकार-भाव को, उवेंति—प्राप्त कराते हैं, य--किन्तु, जे--जो, परिग्गही—मनोज्ञ विषयों को ग्रहण करता है (उन पर राग करता है) य--और, तप्पओसी--अमनोज्ञ विषयों पर द्वेष करता है, सो—वह, तेसु--उनमें, मोहा—मोह से, विगइं—विकार भाव को, उवेइ—प्राप्त होता है ॥१०१॥

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोहं दुगुच्छं अरइं रइं च।
हासं भयं सोग-पुमित्थिवेयं, णपुंसवेयं विविहे य भावे॥

आवज्जई एवमणेगरूवे, एवंविहे कामगुणेसु सत्तो।
अण्णे य एयप्पभवे विसेसे, कारुण्ण-दीणे हिरिमे वइस्से॥

— कामगुणेसु—काम-गुणों में, सत्तो—आसक्त जीव, कोहं—क्रोध, माणं—मान, मायं—मान, लोहं—लोभ, दुगुच्छं-जुगुप्सा (घृणा) अरइं—अरति, रइं—रति, हासं—हास्य, भयं—भय, सोग—शोक, पुमित्थिवेयं— पुरुष-वेद, स्त्रीवेद, णपुंसवेयं—नपुंसकवेद, च, च, तहेव, च—और विविहे भावे—नाना प्रकार के हर्ष-विषादादि भावों को य—और, एवं—वैसे ही, एवंविहे—इस प्रकार के, अणेगरूवे—अनेक रूपों को, य—तथा, एयप्पभवे—क्रोधादि से उत्पन्न होने वाले, अण्णे—अन्य अनेक दुर्गतिदायक, विसेसे-संताप विशेषों को, आवज्जई-प्राप्त होता है। इसी कारण वह कामासक्त जीव, कारुण्णदीणे-करुणापात्र, अत्यन्त दीन, हिरिमे—लज्जित और, वइस्से—अप्रीतिपात्र बन जाता है॥१०२-१०३॥

कप्पं ण इच्छिज्ज सहायलिच्छू,
पच्छाणुतावे ण तवप्पभावं।
एवं वियारे अमियप्पयारे,
आवज्जई इंदिय-चोर-वस्से॥१०४॥

— सहायलिच्छू—अपनी सेवादि कराने के लिए सहायक को चाहने वाला होकर, कप्पं—शिष्य को भी, ण इच्छिज्ज—इच्छा न करे, पच्छा—व्रत तथा तप अंगीकार करने के बाद,

ण अणुतावे--अनुताप (पश्चात्ताप) नहीं करे और न, तवप्पभावे--तप के प्रभाव की इच्छा करे क्योंकि, एवं--इस प्रकार इंदिय चोरवस्से—इन्द्रियां रूपी चोरों के वशीभूत बना हुआ जीव, अमियप्पयारे—अनेक प्रकार के, वियारे—विकारों को, आवज्जई—प्राप्त होता है ॥१०४॥

तओ से जायंति पओयणाइं, णिमज्जिउं मोहमहण्णवम्मि।
सुहेसिणो दुक्ख-विणोयणट्ठा, तप्पच्चयं उज्जमए य रागी॥

-- तओ--विकारोत्पत्ति के बाद, से—उसे, मोहमहण्णवम्मि--मोह रूपी सागर में, णिमज्जिउं--डुबा देने के लिए, पओयणाइं—विषय-सेवनादि प्रयोजन, जायंति—उत्पन्न होते हैं, य--तथा, सुहेसिणो—सुख को चाहने वाला, रागी—राग द्वेष वाला वह जीव, दुक्खविणोयणट्ठा—दुःखों को दूर करने के लिये, तप्पच्चयं—विषय-संयोगों में ही, उज्जमए—उद्योग करता है ॥१०५॥

विरज्जमाणस्स य इंदियत्था,
सद्दाइया तावइयप्पगारा।
ण तस्स सव्वे वि मणुण्णयं वा,
णिव्वत्तयंति अमणुण्णयं वा ॥१०६॥

— इंदियत्था सद्दाइया—पांच इन्द्रियों के शब्दादि विषय, तावइयप्पगारा--जितने भी इस लोक में हैं वे, सव्वे वि—सभी, तस्स—उस, विरज्जमाणस्स —विरक्त जीव के लिए,

मणुण्णयं--मनोज्ञता, वा—अथवा, अमणुण्णयं—अमनोज्ञता, ण णिव्वत्तयंति—उत्पन्न नहीं कर सकते ॥१०६॥

एवं ससंकप्प-विकप्पणासुं, संजायई समयमुवयट्ठिस्स ।
अत्थे य संकप्पयओ तओ से, पहीयए कामगुणेसु तण्हा ॥

— एवं—इस प्रकार, ससंकप्प विकप्पणासुं—संकल्प-विकल्पों में अर्थात् ये संकल्प-विकल्प अनर्थ के कारण हैं इस प्रकार, उवट्ठियस्स—विचार करने वाले को, समयं—समभाव की, संजायई—प्राप्ति होती है, तओ—इसके पश्चात्, अत्थे—पदार्थों में, संकप्पयओ—सम्यक् विचार करते हुए, से--उस जीव की, कामगुणेसु—कामगुणों (कामभोगों) की, तण्हा—तृष्णा, पहीयए—नष्ट हो जाती है ॥१०७॥

स वीयरागो कय-सव्वकिच्चो, खवेइ णाणावरणं खणेणं ।
तहेव जं दंसणमावरेइ, जं चंतरायं पकरेइ कम्मं ।१०८।

— कयसव्वकिच्चो—जिसने सभी कार्य कर लिये हैं अर्थात् जिसे अब संसार में कोई कार्य करना शेष नहीं रहा है ऐसा कृतकृत्य, स--वह, वीयरागो--वीतराग बना हुआ जीव, णाणावरणं--ज्ञानावरणीय कर्म को, तहेव--और, जं--जो, दंसणं—दर्शन को, आवरेइ—ढकता है उस कर्म (दर्शनावरणीय) को, च--और, जं--जो, अंतरायं--दानादि में अन्तराय, पकरेइ—करता है उस, कम्मं—अन्तराय कर्म को,

खणेणं--एक क्षण में, खवेइ--क्षय कर देता है अर्थात् मोह-नीय कर्म का क्षय हो जाने के बाद जीव ज्ञानावरणीय, दर्शना-वरणीय और अन्तराय को एक ही समय में एक साथ क्षय कर डालता है ॥१०८॥

सव्वं तओ जाणइ पासई य,
अमोहणे होइ णिरंतराए।
अणासवे झाणसमाहि-जुत्ते,
आउक्खए मोक्ख मुवेइ सुद्धे ॥१०९॥

— तओ--चार घाती-कर्मों के क्षय हो जाने के बाद वह जीव, सव्वं--सभी को, जाणइ—जानता है, य—और, पासई-देखता है तथा, अमोहणे--मोह-रहित और, णिरंतराए—अन्तराय-रहित, होइ-- हो जाता है, अणासवे-- आश्रव-रहित और, झाणसमाहि जुत्ते--शुक्ल-ध्यान की समाधि से युक्त होकर, आउक्खए--आयु के क्षय होने पर, सुद्धे—कर्ममल से शुद्ध होकर, मोक्खं—मोक्ष को, उवेइ--प्राप्त हो जाता है ॥१०९॥

सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को,
जं बाहई सययं जंतुमेयं।
दीहामयं विप्पमुक्को पसत्थो,
तो होइ अच्चंतसुही कयत्थो ॥११०॥

— जं—जो दुःख, एयं—इस, जंतु--जीव को, सययं--

निरन्तर, बाहई—पीड़ित कर रहा है, तस्स—उस, सव्वस्स—सभी, दुहस्स--दुःख से, सो—वह जीव, मुक्को –मुक्त हो जाता है और, पसत्थो—ऐसा प्रशस्त जीव, दीहामयं—दीर्घकालीन स्थिति वाले कर्म रूपी रोग से, विप्पमुक्को—मुक्त हो जाता है, तो--इसके बाद, कयत्थो--कृतार्थ हुआ वह जीव, अच्चंतसुही--अत्यन्त सुखी, होइ –हो जाता है ॥११०॥

अणाइकालप्पभवस्स एसो, सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्खमग्गो।
वियाहिओ जं समुविच्च सत्ता, कमेण अच्चंतसुही भवंति ॥
॥१११॥ त्ति बेमि ॥

— एसो—यह, अणाइकालप्पभवस्स--अनादि काल से उत्पन्न हुए, सव्वस्स—समस्त, दुक्खस्स--दुःखों से, पमोक्खमग्गो--छुटकारा पाने का मार्ग, वियाहिओ—कहा गया है, जं—जिस मार्ग को समुविच्च---सम्यक् रूप से अंगीकार करके, सत्ता—जीव, कमेण—क्रम से, अच्चंतसुही—अत्यन्त सुखी, भवंति--हो जाते हैं (अनन्त आत्मिक सुख सम्पन्न मोक्षपद को प्राप्त हो जाते हैं)। त्ति बेमि--ऐसा मैं कहता हूँ ॥

॥ बत्तीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

कर्म-प्रकृति तेतीसवाँ अध्ययन

अट्ठ कम्माइं वोच्छामि, आणुपुव्वि जहक्कमं ।
जेहिं बद्धो अयं जीवो, संसारे परिवट्टई ॥१॥

— श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू ! मैं, अट्ठ—आठ, कम्माइं—कर्मों का, आणुपुव्वि-अनुक्रम एवं, जहक्कमं-यथाक्रम से, वोच्छामि-वर्णन करूँगा, जेहिं—जिनसे, बद्धो—बंधा हुआ, अयं—यह, जीवो— जीव, संसारे— संसार में, परिवट्टई— परिभ्रमण करता है ॥१॥

णाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा ।
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य ॥२॥

णामकम्मं च गोयं च, अंतरायं तहेव य ।
एवमेयाइं कम्माइं, अट्ठेव उ समासओ ॥३॥

— णाणस्सावरणिज्जं— ज्ञानावरणीय, दंसणावरणं—दर्शनावरणीय, वेयणिज्जं—वेदनीय, मोहं—मोहनीय, आयु-कम्मं—आयु कर्म, णामकम्मं—नाम, गोयं—गोत्र, तहा, तहा, तहेव, य, च, च, तहेव, य, उ — और, अंतरायं— अन्तराय, एयं—इस प्रकार, एयाइं—ये, समासओ—संक्षेप से, अट्ठेव—आठ, कम्माइं—कर्म कहे गये हैं ॥२-३॥

णाणावरणं पंचविहं, सुयं आभिणिवोहियं ।
ओहिणाणं च तइयं, मणणाणं च केवलं ॥४॥

— णाणावरणं—ज्ञानावरणीय कर्म, पंचविहं--पाँच प्रकार का है, आभिणिवोहियं---आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानावरणीय, सुयं---श्रुत-ज्ञानावरणीय, तइयं---तीसरा, ओहिणाणं-अवधिज्ञानावरणीय, मणणाणं-- मनःपर्यय-ज्ञानावरणीय, च, च—और, केवल-- केवल ज्ञानावरणीय ॥४॥

णिद्दा तहेव पयला, णिद्दाणिद्दा पयलपयला य ।
तत्तो य थिणगिद्धी उ, पंचमा होइ णायव्वा ॥५॥
चक्खुमचक्खु-ओहिस्स, दंसणे केवले य आवरणे ।
एवं तु णव-विगप्पं, णायव्वं दंसणावरणं ॥६॥

— णिद्दा—निद्रा, णिद्दाणिद्दा—निद्रानिद्रा, पयला--प्रचला, पयलपयला--प्रचलाप्रचला, तहेव, य, य, उ,—और, तत्तो---इसके बाद, पंचमा---पाँचवीं, थिणगिद्धी--स्त्यानगृद्धि, होइ--हैं। ये पाँच निद्राएँ, णायव्वा—जाननी चाहिए, चक्खु—चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्खु--अचक्षुदर्शनावरणीय, ओहिस्स—अवधिदर्शनावरणीय, य--और, केवले दंसणे आवरणे --केवलदर्शनावरणीय ये चार और उपरोक्त पाँच निद्राएँ एवं तु—इस प्रकार, दंसणावरणं—दर्शनावरणीय, णवगिप्पं--नौ प्रकार का, णायव्वं —जानना चाहिए ॥५-६॥

वेयणीयं पि य दुविहं, सायमसायं च आहियं ।
सायस्स उ बहू भेया, एमेव असायस्स वि ॥७॥

— वेयणीयं—वेदनीय कर्म, सायमसायं—साता और असाता रूप से, दुविहं—दो प्रकार का, आहियं—कहा गया है, सायस्स—साता-वेदनीय के, बहूभेया—बहुत भेद हैं, य, च, उ—और, एमेव--इसी प्रकार, असायस्स वि--असाता-वेदनीय के भी बहुत भेद हैं ॥७॥

मोहणिज्जं पि दुविहं, दंसणे चरणे तहा।
दंसणे तिविहं वुत्तं, चरणे दुविहं भवे ॥८॥

— मोहणिज्जं पि—मोहनीयकर्म भी, दुविहं—दो प्रकार का है, दंसणे—दर्शन-मोहनीय, तहा—तथा, चरणे--चारित्र-मोहनीय। दंसणे—दर्शनमोहनीय, तिविहं—तीन प्रकार का वुत्तं--कहा गया है और, चरणे--चारित्र-मोहनीय, दुविहं--दो प्रकार का, भवे—होता है ॥८॥

सम्मत्तं चेव मिच्छत्तं, सम्मामिच्छत्तमेव य।
एयाओ तिण्णि पयडीओ, मोहणिज्जस्स दंसणे ।९।

— सम्मत्तं—सम्यक्त्वमोहनीय, मिच्छत्तं--मिथ्यात्व-मोहनीय, चेव, एव, य--और, सम्मामिच्छत्तं—सम्यक्त्व-मिथ्यात्व (मिश्र-मोहनीय), एयाओ--ये, तिण्णि--तीन, पयडीओ--प्रकृतियां, दंसणमोहणिज्जस्स--दर्शन-मोहनीय कर्म की हैं ॥९॥

चरित्तमोहणं कम्मं, दुविहं तु वियाहियं।
कसाय-मोहणिज्जं तु, णोकसायं तहेव य ॥१०॥

— चरित्तमोहणं—चारित्र-मोहनीय, कम्मं—कर्म, दुविहं—दो प्रकार का, वियाहियं—कहा गया है। यथा—कसायमोहणिज्जं—कषाय-मोहनीय, य—और, णोकसायं—नोकषाय-मोहनीय ॥१०॥

सोलसविहभेएणं, कम्मं तु कसायजं।
सत्तविहं णवविहं वा, कम्मं च णोकसायजं ।११।

— कसायजं--कषाय-मोहनीय, कम्मं--कर्म, सोलसविह-भेएणं--सोलह प्रकार का है, च—और, णोकसायजं—नोकषाय-मोहनीय, कम्मं—कर्म, सत्तविहं -- सात प्रकार का वा—अथवा, णवविहं--नो प्रकार का है ॥११॥

भावार्थ—क्रोध, मान, माया, और लोभ, ये चार कषाय हैं। इनमें से प्रत्येक के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्याना-वरण और संज्वलन ये चार-चार भेद हैं। ये सब मिल कर १६ भेद हुए। हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा और वेद, इस प्रकार सात अथवा हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद, इस प्रकार नो भेद नोकषाय-मोहनीय के हैं।

णेरइय-तिरिक्खाउं, मणुस्साउं तहेव य।
देवाउयं चउत्थं तु, आउं कम्मं च चउव्विहं ।१२।

— आउं कम्मं--आयु-कर्म, चउव्विहं--चार प्रकार का। यथा, णेरइयतिरिक्खाउं-- नरक-आयु, तिर्यंच-आयु, मणु-

स्साउं—मनुष्य-आयु, तहेव य—और, चाउत्थं—चौथी, देवा-उयं—देव-आयु ॥१२॥

णामकम्मं तु दुविहं, सुहमसुहं च आहियं ।
सुहस्स उ बहूभेया, एमेव असुहस्स वि ॥१३॥

— णामकम्मं—नाम-कर्म, सुहं—शुभ, च—और, असुहं—अशुभ के भेद से, दुविहं—दो प्रकार का, आहियं—कहा गया है। सुहस्स—शुभ नाम-कर्म के, बहूभेया—बहुत-से भेद हैं, उ—और, एमेव—इसी प्रकार, असुहस्स वि—अशुभ नाम-कर्म के भी बहुत-से भेद हैं ॥१३॥

गोयं कम्मं दुविहं, उच्चं णीयं च आहियं ।
उच्चं अट्ठविहं होइ, एवं णीयं पि आहियं ॥१४॥

— गोयं कम्मं—गोत्र-कर्म, उच्चं—उच्च, च—और, णीयं—नीच के भेद से, दुविहं—दो प्रकार का, आहियं—कहा गया है, उच्चं—उच्च-गोत्र के, अट्ठविहं—आठ भेद, होइ—हैं, एवं—इसी प्रकार, णीयं पि—नीच-गोत्र भी आठ प्रकार का, आहियं—कहा गया है अर्थात् जाति, कुल, बल, ऐश्वर्य, श्रुत, लाभ और रूप, ये आठ भेद उच्च-गोत्र के हैं और ये ही आठ भेद नीच-गोत्र के हैं। इन आठ बातों का मद नहीं करने से उच्च गोत्र का बन्ध होता है और मद करने से नीच-गोत्र का बन्ध होता है ॥१४॥

दाणे लाभे य भोगे य, उवभोगे वीरिए तहा ।
पंचविहमंतरायं, समासेण वियाहियं ॥१५॥

— अंतरायं—अन्तराय कर्म, समासेण—संक्षेप से, पंच-विहं--पाँच प्रकार का वियाहियं—कहा गया है। यथा, दाणे-दानान्तराय, लाभे--लाभान्तराय, भोगे—भोगान्तराय, उव-भोगे—उपभोगान्तराय य, य, तहा--और, वीरिए--वीर्यान्तराय ॥१५॥

एयाओ मूलपयडीओ, उत्तराओ य आहिया ।
पएसग्गं खित्त-काले य, भावं च उत्तरं सुण ।१६।

-- एयाओ--ये, मूलपयडीओ—मूल प्रकृतियाँ, य--और, उत्तराओ--उत्तर प्रकृतियाँ अर्थात आठ कर्म और उनके भेद, आहिया--कहे गये हैं, उत्तरं--अत्र आगे इनके, पएसग्गं-प्रदेशाग्र, खित्त--क्षेत्र, काले--काल, य, च--और, भावं--भाव के स्वरूप का वर्णन किया जायगा जिसको, सुण--ध्यान-पूर्वक सुनो ॥१६॥

सव्वेसिं चेव कम्माणं, पएसग्गमणंतगं ।
गंठिय-सत्ताईयं, अंतो सिद्धाण आहियं ॥१७॥

— सव्वेसिं--एक समय बन्धने वाले सभी, कम्माणं--कर्मों को, पएसग्गं—प्रदेशाग्र (परमाणु) अणंतगं—अनन्त हैं, गंठियसत्ताईयं—वे अभव्य जीवों की अपेक्षा अनन्तगुणा अधिक हैं, चेव—और, सिद्धाण—सिद्ध भगवान् का, अंतो—अनन्तवाँ

भाग, आहियं--कहे गये हैं अर्थात् वे सिद्ध भगवान् से अनन्त-गुण कम हैं ॥१७॥

सव्व-जीवाण कम्मं तु, संगहे छद्दिसागयं।
सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं ॥१८॥

— सव्व जीवाण—सभी जीवों के, सव्वं--सभी, कम्मं-ज्ञानावरणीयादि कर्म, संगहे--संग्रह की अपेक्षा, छद्दिसागयं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे, इन छहों दिशाओं में स्थित हैं वे, सव्वेसु वि पएसेसु—सभी आत्मप्रदेशों के साथ, सव्वेण--प्रकृति, स्थिति आदि सभी प्रकार से, बद्धगं—बन्धे हुए हैं ॥१८॥

उदहीसरिसणामाण, तीसई कोडिकोडीओ।
उक्कोसिया ठिइ, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ॥१९॥
आवरणिज्जाण दुण्हं पि, वेयणिज्जे तहेव य।
अंतराए य कम्मम्मि, ठिइ एसा वियाहिया ।२०।

—दुण्हं पि—दोनों, आवरणिज्जाण—आवरणीय (ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय) कर्मों की, तहेव य—तथा, वेयणिज्जे—वेदनीय की, य--और, अंतराए कम्मम्मि—अन्तराय कर्म की, जहण्णिया—जघन्य, ठिइ—स्थिति, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त, होइ— होती है और, एसा— इनकी, उक्कोसिया--उत्कृष्ट, ठिइ--स्थिति, तीसई—तीस, कोडिकोडीओ--कोडाकोडी, उदहीसरिसणामाण—सगरोपम की, वियाहिया—कही गई है ॥१९-२०॥

उदही-सरिस-णामाण, सत्तरिं कोडिकोडीओ ।
मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ॥२१॥

—मोहणिज्जस्स—मोहनीय कर्म की, जहण्णिया—जघन्य स्थिति, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त है और, उक्कोसिया—उत्कृष्ट स्थिति, सत्तरी—सत्तर, कोडिकोडीओ—कोडाकोडी, उदही सरिसणामाण—सागरोपम की होती है ॥२१॥

तेतीस-सागरोवमा, उक्कोसेण वियाहिया ।
ठिइ उ आउकम्मस्स, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ॥२२॥

—आउ कम्मस्स—आयु कर्म की जहण्णिया—जघन्य, ठिई—स्थिति, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहुर्त उ—और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट स्थिति तेतीस—तेतीस, सागरोवमा—सागरोपम, वियाहिया—कही गई है ॥२२॥

उदही-सरिस-णामाण, वीसई कोडिकोडीओ ।
णामगोत्ताण उक्कोसा, अट्ठ मुहुत्तं जहण्णिया ॥२३॥

—णामगोत्ताणं—नाम-कर्म और गोत्र कर्म की, जहण्णिया—जघन्य स्थिति, अट्ठ—आठ, मुहुत्तं—मुहूर्त्त की और, उक्कोसा—उत्कृष्ट स्थिति, वीसई—वीस, कोडिकोडीओ—कोडाकोडी, उदहीसरिसणामाण—सागरोपम की होती है ॥२३॥

सिद्धाणणंतभागो य अणुभागा हवंति उ ।
सव्वेसु वि पएसग्गं, सव्व जीवेसु अइच्छियं ॥२४॥

— अणुभागा--सभी, कर्मस्कन्धों के अनुभाग, सिद्धाण-सिद्धों का, अणंतभागो—अनन्तवाँ भाग, हवंति--है, य--और, सव्वेसु वि—सब कर्मों के, पएसग्गं--प्रदेशाग्र (परमाणु) सव्व जीवे--सब जीवों से, अइच्छियं—अनन्तगुणा अधिक हैं॥

तम्हा एएसिं कम्माणं, अणुभागा वियाणिया ।
एएसिं संवरे चेव, खवणे य जए बुहो ॥२५॥

— तम्हा—इसलिए, एएसिं—इन, कम्माण--कर्मों के, अणुभागा—अनुभाग बन्ध आदि को, वियाणिया--जान कर, बुहो--पण्डित पुरुष, एएसिं—इनका, संवरे—संवर करने (आते हुए कर्मों को रोकने) में, य--और, खवणे—पूर्व संचित कर्मों का क्षय करने में, जए—यत्न करे, त्तिबेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ॥२५॥

॥ तेतीसवां अध्ययन समाप्त ॥

लेश्या नाम चौतीसवाँ अध्ययन

लेसज्झयणं पवक्खामि, आणुपुव्वि जहक्कमं ।
छण्हं पि कम्म-लेसाणं, अणुभावे सुणेह मे ॥१॥

— श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू ! मैं, आणुपुव्वि--अनुक्रम एवं, जहक्कमं--यथाक्रम से, लेसज्झयणं--लेश्या अध्ययन का, पवक्खामि--वर्णन करूंगा । इसलिए, छण्हं पि--छहों, कम्म-

लेसाणं—कर्म लेश्याओं के, अणुभावे—अनुभाव, (तीव्र-मंदादि रस) को, मे—मुझ से, सुणेह—सुनो ॥१॥

णामाइं वण्ण-रस-गंध-फास-परिणामलक्खणं ।
ठाणं ठिइं गइं चाउं, लेसाणं तु सुणेह मे ॥२॥

— लेसाणं—लेश्याओं के, णामाइं—नाम, वण्ण—वर्ण, रस—रस, गंधं—गन्ध, फास—स्पर्श, परिणाम—परिणाम, लक्खणं—लक्षण, ठाणं—स्थान, ठिइं—स्थिति, गइं—गति, च—और, आउं—आयु, इन ग्यारह द्वारों से लेश्याओं का वर्णन किया जायगा। अतः, मे—मुझ से, सुणेह—सुनो ॥२॥

किण्हा णीला य काऊ य, तेऊ पम्हा तहेव य ।
सुक्कलेसा य छट्ठा य, णामाइं तु जहक्कमं ॥३॥

— छहों लेश्याओं के, णामाइं—नाम, जहक्कमं—यथाक्रम इस प्रकार हैं यथा, किण्हा—कृष्ण-लेश्या, णीला—नील-लेश्या, काऊ—कापोत-लेश्या, तेऊ—तेजोलेश्या, पम्हा—पद्म-लेश्या, य—और, छट्ठा—छठी, सुक्कलेस्सा—शुक्ल लेश्या है ॥३॥

जीमूय-णिद्धसंकासा, गवलरिट्ठग-सण्णिभा ।
खंजांजणणयणणिभा, किण्ह-लेसा उ वण्णओ ॥४॥

— वण्णओ—वर्ण (रूप) की अपेक्षा, किण्ह लेस्सा—कृष्ण-लेश्या, जीमूयणिद्धसंकासा—जल से भरे मेघ के समान, गवलरिट्ठगसण्णिभा—भैंसे के सींग के रंग के समान, उ—और,

खंजांजण णयणणिभा--गाड़ी के औंघण, काजल और आंख की पुतली के समान काली होती है ।।४।।

णीलासोग-संकासा, चासपिच्छ-समप्पभा ।
वेरुलियणिद्धसंकासा, णीललेसा उ वण्णओ ।।५।।

--णीलासोग संकासा-नीले अशोक वृक्ष के समान, चास-पिच्छसमप्पभा-चाष पक्षो (तोते) की पंख की कान्ति के समान, उ—और, वेरुलियणिद्ध संकासा--दीप्त वैडूर्य मणि के समान, णीललेसा—नील-लेश्या का, वण्णओ—वर्ण (रंग) होता है ।।

अयसीपुप्फ-संकासा, कोइलच्छद-सण्णिभा ।
पारेवयगीवणिभा, काऊलेसा उ वण्णओ ।।६।।

-- अयसीपुप्फ संकासा— अलसी के फूल के समान, कोइलच्छदसण्णिभा--कोयल के पांख के समान, उ—और, पारेवयगीवणिभा—कबूतर की गर्दन के समान, काऊलेसा-कापोत-लेश्या का, वण्णओ--वर्ण होता है ।।६।।

हिंगुलधाउ-संकासा, तरुणाइच्चसण्णिभा ।
सुयतुंडपईवणिभा, तेऊलेसा उ वण्णओ ।।७।।

हिंगुलधाउ संकासा--हिंगलु के समान, तरुणाइच्च-सण्णिभा—तरुण सूर्य के समान, उ-और, सुयतुंड पईवणिभा-तोते की चोंच के समान तथा दीपक की शिखा के समान, तेऊ लेसा—तेजो-लेश्या का, वण्णओ- वर्ण होता है ।।७।।

हरियालभेयसंकासा, हलिद्दाभेयसमप्पभा ।
सणासण-कुसुमणिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥८॥

— हरियालभेय संकासा--हरताल के टुकड़े के समान, हलिद्दाभेयसमप्पभा--हल्दी के टुकड़े के समान, उ--और, सणासणकुसुमणिभा—सण और असण नामक वनस्पति के फूल के समान, पम्हलेसा--पद्म-लेश्या का, वण्णओ--वर्ण होता है॥

संखंककुंद-संकासा, खीरपूरसमप्पभा ।
रययहारसंकासा, सुक्कलेसा उ वण्णओ ॥९॥

— संखंककुंद संकासा—शंख और अंक नामक रत्न विशेष तथा कुन्द-फूल के समान, खीरपूरसमप्पभा—दूध की धारा की प्रभा के समान, उ--और, रययहार संकासा--चांदी के हार के समान, सुक्क लेसा--शुक्ल-लेश्या का, वण्णओ-वर्ण होता है ॥९॥

जह कडुय-तुंबगरसो, णिंबरसो कडुयरोहिणिरसो वा ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो य किण्हाए णायव्वो ॥१०॥

— जह—जैसा, कडुय तुंबगरसो--कड़ुवे तुम्बे का रस, णिंबरसो—नीम का रस, वा—अथवा, कडुयरोहिणी रसो—कटु-रोहिणी का रस होता है, एत्तो वि--उससे भी, अणंतगुणो-अनन्त गुण कड़ुआ, किण्हाए-- कृष्ण-लेश्या का, रसो—रस, णायव्वो--जानना चाहिए ॥१०॥

जह तिगडुयस्स य रसो, तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ णीलाए णायव्वो ॥११॥

— जह— जैसा, तिगडुयस्स--त्रिकटुक (सोंठ, मिर्च और पीपर) का, य—और, जह—जिस प्रकार, हत्थिपिप्पलीए-हस्तिपीपल (गज-पीपल) का, रसो—रस, तिक्खो--तीक्ष्ण होता है, एत्तो वि--इससे भी, अणंतगुणो— अनन्त गुण तीक्ष्ण, णीलाए-नील लेश्या का, रसो— रस, णायव्वो—जानना चाहिए ॥११॥

जह तरुण-अंबगरसो, तुवर-कविट्ठस्स वावि जारिसओ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ काउए णायव्वो ॥१२॥

— जह--जैसा, तरुण अंबग रसो—कच्चे आम का रस, वावि--अथवा, जारिसओ—जैसा, तुवर कविट्ठस्स—कच्चे तूवर का और कच्चे कविठ का रस होता है, एत्तो वि--उससे भी, अणंगुणो—अनन्त गुण खट्टा, काऊए—कापोत-लेश्या का, रसो--रस, णायव्वो—जानना चाहिए ॥१२॥

जह परिणयंवग रसो, पक्ककविट्ठस्स वावि जारिसओ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ तेऊए णायव्वो ॥१३॥

— जह--जैसा, परिणयंवग रसो--पके हुए आम का रस होता है, वावि- अथवा, जारिसओ—जैसा, पक्क कविट्ठस्स—पके हुए कविठ का रस (खटमीठा) होता है, एत्तो वि—इससे भी, अणंतगुणो--अनन्त गुण खटमीठा, तेऊए—तेजो

लेश्या का, रसो—रस, णायव्वो--जानना चाहिए ॥१३॥

वरवारुणीए व रसो, विविहाण व आसवाण जारिसओ।
महुमेरयस्स व रसो, एत्तो पम्हाए परएणं ॥१४॥

— वरवारुणीए—उच्च कोटि की मदिरा, व—अथवा, विविहाण—अनेक प्रकार के, आसवाण–आसवों का व--अथवा, महुमेरयस्स—मधु और मेरक का जैसा, रसो - रस होता है, एत्तो— उससे भी, परएणं--बढ़ कर, पम्हाए- पद्म-लेश्या का, रसो —रस होता है ॥१४॥

खज्जूर-मुद्दियरसो, खीररसो खंडसक्कररसो वा ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ सुक्काए णायव्वो ।१५।

— जैसा, खज्जूर मुद्दियरसो--पिंडखजूर और दाख का रस, खीररसो--दूध, वा—अथवा, खंडसक्कर रसो—खांड और मिश्री का रस मधुर होता है, एत्तो वि—उससे भी, अणंतगुणो--अनन्त गुण मधुर, रसो—रस, सुक्काए—शुक्ल-लेश्या का, णायव्वो--जानना चाहिए ॥१५॥

जह गोमडस्स गंधो, सुणगमडस्स व जहा अहिमडस्स ।
एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ।१६।

-- जह--जिस प्रकार, गोमडस्स—गाय के मृतक-कलेवर की, व-- अथवा, जहा-- जैसी, सुणगमडस्स— कुत्ते के मृतक-शरीर की और, अहिमडस्स--सांप के मृतक-शरीर

की, गंधो—दुर्गन्ध होती है, एत्तो वि—उससे भी, अणंतगुणो—अनन्तगुण दुर्गन्ध, अप्पसत्थाणं—अप्रशस्त, लेसाणं—लेश्याओं (क्रमशः कृष्ण, नील और कापोत लेश्या) की होती है ॥१६॥

जह सुरहिकुसुमगंधो, गंधवासाण पिस्समाणाणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थ-लेसाण तिण्हं पि ।१७।

— जह—जैसी, सुरहि कुसुमगंधो—सुगन्धित फूलों की सुगन्ध होती है अथवा, पिस्समाणाणं—पीसे जाते हुए, गंधवासाण—चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों की जैसी सुगन्ध होती है, एत्तो वि—उससे भी, अणंतगुणो—अनन्त गुण सुगन्ध, तिण्हं पि—तीनों, पसत्थ लेसाण—प्रशस्त लेश्याओं (तेजो पद्म और शुक्ल लेश्या) की होती है ॥१७॥

जह करगयस्स फासो, गोजिब्भाए व सागपत्ताणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ।१८।

जह—जिस प्रकार, करगयस्स—करवत का, व—अथवा, गोजिब्भाए—गाय की जिव्हा का और, सागपत्ताणं—शाक नाम की वनस्पति के पत्तों का, फासो—कर्कश होता है, एत्तो वि—उससे भी, अणंतगुणो—अनन्त गुण कर्कश स्पर्श अप्पसत्थाणं—अप्रशस्त, लेसाणं—लेश्याओं (कृष्ण नील कापोत लेश्याओं) का होता है ॥१८॥

जह बूरस्स व फासो, णवणीयस्स व सिरीसकुसुमाणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थ-लेसाण तिण्हं पि ।१९।

— जह—जैसा, बूरस्स—बूर नामक वनस्पति का, व—अथवा, णवणीयस्स—नवनीत (मक्खन) का, व—अथवा, सिरीसकुसुमाणं—शिरीष के फूलों का, फासो—कोमल स्पर्श होता है, एत्तो वि—उससे भी, अणंतगुणो—अनन्तगुण कोमल स्पर्श, तिण्हं पि—तीनों, पसत्थ लेसाणं—प्रशस्त लेश्याओं का होता है ॥१९॥

तिविहो व णवविहो वा, सत्तावीसइविहेक्कसिओ वा ।
दुसओ तेयालो वा, लेसाणं होइ परिणाओ ।२०।

— लेसाणं—इन छहों लेश्या के, तिविहो—तीन, व—अथवा, णवविहो- नव, वा- अथवा, सत्तावीसइविह—सत्ताईस, वा—अथवा, इक्कसीओ— इक्यासी, वा—अथवा, दुसओ तेयालो—दो सौ तयालीस प्रकार के, परिणामो—परिणाम, होइ—होते हैं ॥२०॥

पंचासवप्पवत्तो, तीहिं अगुत्तो छसुं अविरओ य ।
तिव्वारंभपरिणओ, खुड्डो साहस्सिओ णरो ।२१।

णिद्धंसपरिणामो, णिस्संसो अजिइंदिओ ।
एयजोगसमाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणमे ।२२।

— पंचासवप्पवत्तो—पाँच आश्रवों में प्रवृत्ति करने वाला, —तीन गुप्तियों से, अगुत्तो—अगुप्त (आत्मा का गोपन ने वाला) छसु—छह काया में, अविरओ—अविरत

की, गंधो—दुर्गन्ध होती है, एत्तो वि—उससे भी, अणंतगुणो—अनन्तगुण दुर्गन्ध, अप्पसत्थाणं--अप्रशस्त, लेसाणं—लेश्याओं (क्रमशः कृष्ण, नील और कापोत लेश्या) की होती है ॥१६॥

जह सुरहिकुसुमगंधो, गंधवासाण पिस्समाणाणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थ-लेसाण तिण्हं पि ।१७।

— जह--जैसी, सुरहि कुसुमगंधो--सुगन्धित फूलों की सुगन्ध होती है अथवा, पिस्समाणाणं—पीसे जाते हुए, गंधवासाण—चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों की जैसी सुगन्ध होती है, एत्तो वि—उससे भी, अणंतगुणो—अनन्त गुण सुगन्ध, तिण्हं पि—तीनों, पसत्थ लेसाण—प्रशस्त लेश्याओं (तेजो पद्म और शुक्ल लेश्या) की होती है ॥१७॥

जह करगयस्स फासो, गोजिब्भाए व सागपत्ताणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ।१८।

जह—जिस प्रकार, करगयस्स—करवत का, व—अथवा, गोजिब्भाए--गाय की जिव्हा का और, सागपत्ताणं—शाक नाम की वनस्पति के पत्तों का, फासो—कर्कश होता है, एत्तो वि--उससे भी, अणंतगुणो—अनन्त गुण कर्कश स्पर्श अप्पसत्थाणं—अप्रशस्त, लेसाणं—लेश्याओं (कृष्ण नील कापोत लेश्याओं) का होता है ॥१८॥

जह बूरस्स व फासो, णवणीयस्स व सिरीसकुसुमाणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थ-लेसाण तिण्हं पि ।१९।

— जह—जैसा, बूरस्स—बूर नामक वनस्पति का, व—अथवा, णवणीयस्स—नवनीत (मक्खन) का, व—अथवा, सिरीसकुसुमाणं—शिरीष के फूलों का, फासो—कोमल स्पर्श होता है, एत्तो वि—उससे भी, अणंतगुणो—अनन्तगुण कोमल स्पर्श, तिण्हं पि—तीनों, पसत्थ लेसाणं—प्रशस्त लेश्याओं का होता है ॥१९॥

तिविहो व णवविहो वा, सत्तावीसइविहेक्कसिओ वा ।
दुसओ तेयालो वा, लेसाणं होइ परिणाओ ।२०।

— लेसाणं—इन छहों लेश्या के, तिविहो—तीन, व—अथवा, णवविहो—नव, वा—अथवा, सत्तावीसइविह—सत्ताईस, वा—अथवा, इक्कसीओ—इक्यासी, वा—अथवा, दुसओ तेयालो—दो सौ तयालीस प्रकार के, परिणामो—परिणाम, होइ—होते हैं ॥२०॥

पंचासवप्पवत्तो, तीहिं अगुत्तो छसुं अविरओ य ।
तिव्वारंभपरिणओ, खुड्डो साहस्सिओ णरो ।२१।

णिद्धंसपरिणामो, णिस्संसो अजिइंदिओ ।
एयजोगसमाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणमे ।२२।

— पंचासवप्पवत्तो—पाँच आश्रवों में प्रवृत्ति करने वाला, तीहिं—तीन गुप्तियों से, अगुत्तो—अगुप्त (आत्मा का गोपन न करने वाला) छसु—छह काया में, अविरओ—अविरत

(छह काया की विराधना करने वाला) तिव्वारंभ परिणओ—तीव्र भावों से आरम्भादि करने वाला, खुद्दो--क्षुद्र (तुच्छ), साहसिओ—साहसिक (बिना विचारे काम करने वाला), णिद्धंसपरिणामो--निर्दयता के परिणाम वाला, णिस्संसो--नृशंस (क्रूर), अजिइंदिओ—अजितेन्द्रिय (इन्द्रियों को वश में न करने वाला) एयजोगसमाउत्तो—इन उपरोक्त परिणामों से युक्त, णरो--मनुष्य, किण्हलेसं—कृष्णलेश्या के, परिणमे--परिणाम वाला होता है ॥२१-२२।

इस्सा अमरिस अतवो, अविज्जमाया अहीरिया।
गेद्धी पओसे य सढे, पमत्ते रस-लोलुए सायगवेसए य ।२३।
आरंभाओ अविरओ, खुद्दो साहस्सिओ णरो।
एयजोग-समाउत्तो, णील-लेसं तु परिणमे ।२४।

— इस्सा—ईर्षालु, अमरिस--कदाग्रही, अतवो--तपस्या न करने वाला, अविज्ज—अविद्या वाला (अज्ञानी), माया—मायावी, अहीरिया— निर्लज्ज, गिद्धी—विषय-कषाय में गृद्धि रखने वाला, पओसे—द्वेष करने वाला, सढे--मूर्ख, पमत्ते--प्रमादी, रसलोलुए—रसलोलुपी, सायगवेसए--सुख की गवेषणा करने वाला, आरंभाओ अविरओ—आरम्भ से निवृत्त न होने वाला, य--और, खुद्दो— क्षुद्र (तुच्छ) य--तथा, साहस्सिओ—साहसिक (बिना विचारे काम करने वाला), एयजोग समाउत्तो—इन उपरोक्त परिणामों से युक्त, णरो—मनुष्य, णीललेसं--नीललेश्या के, परिणमे-- परिणाम वाला

होता है ॥२३-२४॥

वंके वंकसमायरे, णियडिल्ले अणुज्जुए ।
पलिउंचगओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारिए ।२५।

उप्फालग दुट्ठवाई य, तेणे यावि य मच्छरी ।
एयजोगसमाउत्तो, काऊलेसं तु परिणमे ।२६।

— वंके—वक्र वचन बोलने वाला, वंकसमायरे—वक्र आचरण करने वाला, णियडिल्ले—मायावी (मन की अपेक्षा वक्र) अणुज्जुए—सरलता से रहित, पलिउंचग—अपने दोषों को छिपाने वाला, ओवहिए—छल पूर्वक वर्ताव करने वाला, मिच्छदिट्ठी—मिथ्यादृष्टि, अणारिए—अनार्य उप्फालगदुट्ठवाई—मर्म-भेदी वचन बोलने वाला, तेणे—चोर य—और, मच्छरी—मत्सरी (दूसरों की उन्नति को सहन न करने वाला) एयजोगसमाउत्तो—उपरोक्त परिणामों से युक्त प्राणी, काऊलेसं—कापोत-लेश्या के, परिणमे—परिणाम वाला होता है।२५-२६।

णीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ।
विणीयविणए दंते, जोगवं उवहाणवं ।२७।

पियधम्मे दढधम्मे, अवज्ज-भीरू हिएसए ।
एयजोग-समाउत्तो, तेऊलेसं तु परिणमे ।२८।

— णीयावित्ती—नम्र वृत्ति वाला (अहंकार रहित) अचवले—चपलता-रहित, अमाई—माया-रहित, अकुऊहले—

कुतूहल आदि न करने वाला, विणीयविणए—परम विनय अनित करने वाला, दंते—इन्द्रियों का दमन करने वाला, जोगवं—स्वाध्यायादि में रत रहने वाला, उवहाणवं--उपधानादि तप करने वाला, पियधम्मे—धर्म में प्रेम रखने वाला, दढधम्मे—धर्म में दृढ़ रहने वाला, अवज्ज भीरू—पाप से डरने वाला, हिएसए—सभी प्राणियों का हित चाहने वाला, एयजोग समाउत्तो—इन उपरोक्त परिणामों से युक्त प्राणी, तेऊलेसं—तेजो-लेश्या के, परिणमे--परिणाम वाला होता है ॥

पयणुकोहमाणे य, मायालोभो य पयणुए ।
पसंतचित्ते दंतप्पा, जोगवं उवहाणवं ।२९।
तहा पयणुवाई य, उवसंते जिइंदिए ।
एयजोग समाउत्तो, पम्हलेसं तु परिणमे ।३०।

-- पयणुकोहमाणे—अल्प क्रोध वाला, अल्प मान वाल य—और, पयणुए माया लोभे--अल्प माया वाला, अल्प लो वाला, पसंतचित्ते—शान्त चित्त वाला, दंतप्पा—अपनी आत का दमन करने वाला, जोगवं--स्वाध्यायादि करने वाल उवहाणवं--उपधानादि तप करने वाला, पयणुवाई-परिमि बोलने वाला, उवसंते—उपशांत य--और, जिइंदिए--जिते द्रिय, एयजोग समाउत्तो--इन उपरोक्त गुणों से युक्त प्राणी पम्हलेसं--पद्मलेश्या के, परिणमे--परिणाम वाला होता है।

अट्ट-रुद्दाणि वज्जित्ता, धम्म-सुक्काणि झायए।
पसंतचित्ते दंतप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिसु।३१।

सरागे वीयरागे वा, उवसंते जिइंदिए।
एयजोग समाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे।३२।

—जो पुरुष, अट्टरुद्दाणि—आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान, वज्जित्ता—छोड़ कर, धम्मसुक्काणि—धर्मध्यान और शुक्लध्यान, झायए—ध्याता है, पसंतचित्ते—प्रशान्त चित्त वाला, दंतप्पा—अपनी आत्मा को दमन करने वाला, समिए—पाँच समितियों से युक्त, गुत्तिसु—तीन गुप्तियों से, गुत्ते—गुप्त, सरागे—अल्प राग वाला, वा—अथवा, वीयरागे—वीतरागी उवसंते—उपशांत, य—और, जिइंदिए—जितेन्द्रिय, एयजोगसमाउत्तो—इन परिणामों से युक्त जीव, सुक्कलेसं—विशिष्ट शुक्ललेश्या के, परिणमे—परिणाम वाला होता है (ये सब लक्षण विशिष्ट शुक्ललेश्या वाले मनुष्य में पाये जाते हैं)॥

असंखिज्जाणोसप्पिणीण, उसप्पिणीण जे समया।
संखाईया लोगा, लेसाण हवंति ठाणाइं।३३।

—असंखिज्जाण—असंख्यात, ओसप्पिणीण—अवसर्पिणी और, उसप्पिणीण—उत्सर्पिणी के, जे—जितने, समया—समय हैं और, संखाईया लोगा—संख्यातीत (असंख्य) लोक के जितने प्रदेश हैं उतने, लेसाण—लेश्याओं के, ठाणाइं—

स्थान, हवंति--होते हैं ॥३३।

मुहुत्तद्धं तु जहण्णा, तेत्तीसा सागरा मुहुत्तऽहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा किण्हलेसाए ।३४।

— किण्हलेसाए—कृष्ण-लेश्या की, जहण्णा— जघन्य, ठिई--स्थिति, मुहुत्तद्धं---अन्तर्मुहूर्त्त, तु—और, उक्कोसा—उत्कृष्ट, मुहुत्तहिया—अन्तर्मुहूर्त अधिक, तेत्तीसा—तेतीस, सागरा—सागरोपम को, होई--होती है ऐसा, णायव्वा—जानना चाहिए ॥३४॥

महुत्तद्धं तु जहण्णा,
दस उदहि पलियमसंखभाग मब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई,
णायव्वा णीललेसाए ।३५।

-- णील लेसाए--नील-लेश्या की, जहण्णा—जघन्य, ठिई—स्थिति, मुहुत्तद्धं--अन्तर्मुहूर्त्त, तु—और, उक्कोसा—उत्कृष्ट, पलियमसंख भागमब्भहिया—पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक, दस—दस, उदहि—सागरोपम की, होई—होती है ऐसा, णायव्वा--जानना चाहिए ।।३५।।

मुहुत्तद्धं तु जहण्णा, तिण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा काउलेसाए ।३६।

— काउलेसाए—कापोत-लेश्या की, जहण्णा—जघन्य,

ठिई--स्थिति, मुहुत्तद्धं--अन्तर्मुहूर्त, तु--और उक्कोसा--उत्कृष्ट, पलियमसंखभागमब्भहिया--पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक, तिण्णुदही--तीन सागरोपम की, होइ--होती है ऐसा, णायव्वा--जानना चाहिए ॥३६॥

मुहुत्तद्धं तु जहण्णा, दोण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा तेउलेसाए ।३७।

-- तेउलेसाए--तेजो-लेश्या की जहण्णा--जघन्य, ठिई-स्थिति, मुहुत्तद्धं--अन्तर्मुहूर्त, तु--और, उक्कोसा--उत्कृष्ट, पलियमसंखभागमब्भहिया-- पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक, दोण्णुदही--दो सागरोपम की, होई--होती है ऐसा, णायव्वा--जानना चाहिए ॥३७॥

मुहुत्तद्धं तु जहण्णा, दस उदही होइ मुहुत्तमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा पम्ह लेसाए ।३८।

-- पम्हलेसाए--पद्म-लेश्या की जहण्णा--जघन्य ठिई-स्थिति, मुहुत्तद्धं--अन्तर्मुहूर्त, होई--होती है, तु--और, उक्कोसा-- उत्कृष्ट, मुहुत्तमब्भहिया-- अन्तर्मुहूर्त अधिक, दस--दस, उदही--सागरोपम की, होई--होती है ऐसा, णायव्वा--जानना चाहिए ॥३८॥

मुहुत्तद्धं तु जहण्णा, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा सुक्कलेसाए ।३९।

-- सुक्कलेसाए--शुक्ल-लेश्या की, जहण्णा--जघन्य,

ठिई--स्थिति, मुहुत्तद्धं—अन्तर्मुहूर्त्त, तु--और, उक्कोसा—उत्कृष्ट, मुहुत्तहिया— अन्तर्मुहूर्त अधिक, तेत्तीसं--तेतीस, सागरा—सागरोपम की, होइ—होती है ऐसा, नायव्वा—जानना चाहिए ॥३९॥

एसा खलु लेसाणं, ओहेण ठिई वण्णिया होइ ।
चउसु वि गइसु एत्तो, लेसाण ठिइं तु वोच्छामि ।४०।

— ओहेण— सामान्य रूप से, लेसाण—लेश्याओं की, एसा—यह, ठिई—स्थिति, वण्णिया होइ—कही गई है, एत्तो-यहाँ से आगे, चउसु वि--चारों, गइसु—गतियों में, लेसाण—लेश्याओं की, ठिइं—स्थिति, वोच्छामि—कहूँगा ॥४०॥

दसवास सहस्साइं, काऊए ठिई जहण्णिया होइ ।
तिण्णुदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा ।४१।

— काऊए—कापोत-लेश्या की, जहण्णिया—जघन्य, ठिई—स्थिति, दसवास सहस्साइं--दस हजार वर्ष की, च--और, उक्कोसा--उत्कृष्ट, तिण्णुदही—तीन सागरोपम और, पलिओवम असंखभागं—पल्योपम का असंख्यातवां भाग अधिक होइ—होती है ॥४१॥

तिण्णुदही पलिओवम, असंखभागो जहण्णेण नीलठिई ।
दस उदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा ।४२।

— नील ठिई—नील-लेश्या की जघन्य स्थिति, तिण्णुदही—तीन सागरोपम और, पलिओवम असंखभागो—पल्योपम

का असंख्यातवाँ भाग अधिक, य—और, उक्कोसा—उत्कृष्ट, दस उदही—दस सागरोपम और, पलिओवम असंखभागं—पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग अधिक होती है ॥४२॥

दस-उदही-पलिओवम, असंखभागं जहण्णिया होई।
तेत्तीस-सागराइं, उक्कोसा होइ किण्हाए ।४३।

— किण्हाए—कृष्ण-लेश्या की, जहण्णिया—जघन्य स्थिति, दस उदही—दस सागरोपम और, पलिओवम असंख-भागं—पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग अधिक, होइ—होती है और, उक्कोसा—उत्कृष्ट, तेतीस सागराइं—तेतीस साग-रोपम की होइ—होती है ॥४३॥

एसा णेरइयाणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ।
तेण परं वुच्छामि, तिरिय-मणुस्साण देवाणं ।४४।

— एसा—यह णेरइयाण - नैरयिक जीवों की, लेसाण — लेश्याओं की, ठिई —स्थिति, वण्णिया होई—वर्णन की गई है, तेण परं —इसके आगे, तिरियमणुस्साण देवाणं—तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों की लेश्याओं की स्थिति का, वुच्छामि—वर्णन करूँगा ॥४४॥

अंतोमुहुत्तमद्धं, लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ।
तिरियाण णराणं वा, वज्जित्ता केवलं लेसं ।४५।

— केवलं लेसं—केवली की शुक्ल-लेश्या को, वज्जित्ता—छोड़ कर, तिरियाण—तिर्यञ्च, वा—और, णराणं—मनुष्यों

में, जहिं जहिं—जहाँ जहाँ, जा उ—जो-जो लेश्या हैं लेसाण-उन लेश्याओं की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति, अंतोमुहुत्तमद्धं-अन्तर्मुहूर्त है ॥४५॥

मुहुत्तद्धं तु जहण्णा, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ ।
णवहिं वरिसेहिं ऊणा, णायव्वा सुक्कलेसाए ।४६।

— सुक्कलेसाए—केवली की शुक्ल-लेश्या की, जहण्णा-जघन्य स्थिति, मुहुत्तद्धं--अन्तर्मुहूर्त, तु—और उक्कोसा—उत्कृष्ट स्थिति, णवहिं वरिसेहिं ऊणा---नौ वर्ष कम, पुव्व कोडी—एक करोड़ पूर्व की, होइ--होती है ऐसा, णायव्वा--जानना चाहिए ॥४६॥

एसा तिरिय-णराणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि, लेसाण ठिई उ देवाणं ।४७।

— एसा--यह तिरिय णराणं--तिर्यंच और मनुष्यों की लेसाण--लेश्याओं की, ठिई--स्थिति का, वण्णिया होइ--वर्णन हुआ, तेण परं--इसके आगे, देवाणं—देवताओं की, लेसाण—लेश्याओं की, ठिई--स्थिति का, वोच्छामि—वर्णन करूँगा । ४७॥

दसवास-सहस्साइं, किण्हाए ठिई जहण्णिया होइ ।
पलियमसंखिज्जइमो, उक्कोसा होइ किण्हाए ।४८।

— किण्हाए, किण्हाए—कृष्णलेश्या की, जहण्णिया—जघन्य, ठिई—स्थिति, दसवास सहस्साइं—दस हजार वर्ष की,

होई--होती है और, उक्कोसा--उत्कृष्ट स्थिति, पलियम-संखिज्जइमो--पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग, होइ—होती है।

जा किण्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहण्णे णं णीलाए, पलियमसंखं च उक्कोसा।४९।

— किण्हाए—कृष्ण-लेश्या की, जा--जो, उक्कोसा--उत्कृष्ट, ठिई—स्थिति है, सा--उससे, समयमब्भहिया--एक समय अधिक, णीलाए--नील-लेश्या की, जहण्णेणं--जघन्य स्थिति है, च—और, पलियमसंखं--पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग अधिक, उक्कोसा—उत्कृष्ट स्थिति है ॥४९॥

जा णीलाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहण्णेणं काऊए, पलियमसंखं च उक्कोसा।५०।

— णीलाए--नील लेश्या की, जा—जो उक्कोसा—उत्कृष्ट, ठिई—स्थिति है, सा--उससे, समयमब्भहिया—एक समय अधिक, काऊए—कापोत-लेश्या की जहण्णेणं--जघन्य स्थिति है च--और, पलियमसंखं--पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग अधिक, उक्कोसा—उत्कृष्ट स्थिति है ॥५०॥

तेण परं वोच्छामि, तेऊ लेसा जहा सुरगणाणं।
भवणवइ-वाणमंतर, जोइस-वेमाणियाणं च।५१।

— तेण परं—इसके आगे, भवणवइ वाणमंतर जोइस वेमाणियाणं च--भवनपति वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक, सुरगणाणं--देवताओं में, तेऊ लेसा--तेजो-लेश्या की

स्थिति, जहा--जिस प्रकार होती है उसे, वोच्छामि--कहूँगा।

पलिओवमं जहण्णा, उक्कोसा सागरा उ दुण्णहिया।
पलियमसंखेज्जेणं, होइ भागेण तेऊए।५२।

— तेऊए--तेजो-लेश्या की, जहण्णा--जघन्य स्थिति, पलिओवमं—एक पल्योपम, उ—और, उक्कोसा—उत्कृष्ट स्थिति, पलियमसंखेज्जेणं--पल्योपम के असंख्यातवें, भागेण--भाग सहित, दुण्णहिया--दो, सागरा—सागरोपम, होइ—है। यह स्थिति वैमानिक देवों में समझना चाहिए ।।५२।।

दसवास-सहस्साइं, तेऊए ठिई जहण्णिया होइ।
दुण्णुदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोस्सा।५३।

— भवनपति और वाणव्यन्तर देवो की अपेक्षा से, तेऊए-तेजोलेश्या की, जहण्णया—जघन्य, ठिई—स्थिति, दसवास सहस्साई--दस हजार वर्ष की है, च--और ईशान देवलोक की अपेक्षा से, उक्कोसा—उत्कृष्ट स्थिति, पलिओवम असंखभागं-पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित, दुण्णुदही—दो सागरोपम की है ।।५३।

जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहण्णेणं पम्हाए, दस उ मुहुत्ताहियाइ उक्कोसा।५४।

— तेऊए—तेजोलेश्या की, जा—जो, उक्कोसा—उत्कृष्ट, ठिई--स्थिति है, सा— उससे, समयमब्भहिया—एक समय अधिक, पम्हाए-- पद्मलेश्या की, जहण्णेणं--जघन्य स्थिति

जाननी चाहिए, उ--और, उक्कोसा--उत्कृष्ट स्थिति, मुहुत्ता-हियाइ—एक मुहूर्त्त अधिक, दस—दस सागरोपम है ॥५४॥

जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहण्णेणं सुक्काए, तेत्तीस-मुहुत्तमब्भहिया ।५५।

— जा--जो, पम्हाए—पद्मलेश्या की, उक्कोसा—उत्कृष्ट, ठिई—स्थिति है, सा--उससे, समयमब्भहिया—एक समय अधिक, सुक्काए—शुक्ललेश्या की, जहण्णेणं—जघन्य स्थिति होती है, उ--और उत्कृष्ट स्थिति, मुहुत्तमब्भहिया—एक मुहूर्त्त अधिक, तेत्तीस—तेतीस सागरोपम की है ॥५५॥

किण्हा णीला काऊ, तिण्णि वि एयाओ अहम्मलेस्साओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जइ ।५६।

— किण्हा—कृष्ण, णीला--नील और, काऊ—कापोत, एयाओ--ये, तिण्णि वि—तीन, अहम्मलेस्साओ—अधर्म (अप्रशस्त) लेश्याएँ हैं, एयाहि—इन, तिहि वि—तीन लेश्याओं से, जीवे--जीव, दुग्गइं—दुर्गति में, उववज्जइ—उत्पन्न होता है।

तेऊ पम्हा सुक्का, तिण्णि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयावि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जइ ।५७।

— तेऊ--तेजोलेश्या, पम्हा—पद्मलेश्या और, सुक्का--शुक्ललेश्या, एयाओ--ये, तिण्णि वि--तीनों, धम्मलेसाओ—धर्म (प्रशस्त) लेश्याएँ हैं, एयाहि--इन, तिहि वि--तीनों लेश्याओं से, जीवो—जीव, सुग्गइं--सुगति में, उववज्जइ—

उत्पन्न होता है ॥५७॥

लेस्साहिं सव्वाहिं, पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
ण हु कस्सइ उववत्ति, परे भवे णत्थिजीवस्स ।५८।

— मरण समय के, पढमे—पहले, समयम्मि--समय में, परिणयाहिं--परिणत हुई, सव्वाहिं--सभी, लेस्साहिं-लेश्याओं से, हु—निश्चय ही, कस्सइ--किसी भी, जीवस्स--जीव की परे भवे—पर-भव में, उववत्ति--उत्पत्ति, ण अत्थि--नहीं होती (छहों लेश्याओं में से किसी भी लेश्या को आये हुए केवल एक समय हुआ हो तो उस समय कोई भी जीव मृत्यु को प्राप्त नहीं होता) ॥५८॥

लेस्साहिं सव्वाहिं, चरिमे समयम्मि परिणया तु ।
ण हु कस्सइ उववत्ति, परे भवे अत्थि जीवस्स ।५९।

-- मरण काल के, चरिमे--अन्तिम, समयम्मि—समय में, परिणयाहिं--परिणत हुई, सव्वाहिं--सभी, लेस्साहिं--लेश्याओं से, हु— निश्चय ही, कस्सइ—किसी भी, जीवस्स—जीव की, परे भवे--पर-भव में, उववत्ति--उत्पत्ति, ण अत्थि-नहीं होती (मृत्यु के समय पर आगामी जन्म के लिए जब इस आत्मा का लेश्याओं मे परिवर्तन होता है उस समय किसी भी लेश्या के प्रथम और अन्तिम समय में किसी भी जीव की उत्पत्ति नहीं होती ॥५९॥

अंतमुहुत्तम्मि गए, अंतमुहुत्तम्मि सेसए चेव ।
लेस्साहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छंति परलोयं ।६०।

— अंतमुहुत्तम्मि—अन्तर्मुहूर्त, गए—बीत जाने पर, चेव—और, अंतमुहुत्तम्मि—अन्तर्मुहूर्त सेसए—शेष रहने पर, परिणयाहिं—परिणत हुई, लेस्साहिं—लेश्याओं से सहित हो कर, जीवा—जीव, परलोयं—परलोक में, गच्छंति—जाते हैं (जब जीव की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु शेष रह जाती है तब आगामी जन्म में प्राप्त होने वाली लेश्या का परिणाम उस जीव में अवश्य आ जाता है, फिर उसी लेश्या के साथ जीव परभव में उत्पन्न होता है और उत्पन्न होने के अन्र्मुहूर्त तक उसी लेश्या के परिणाम रहता है ॥६०॥

तम्हा एयासि लेसाणं, आणुभावे वियाणिया।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थाओऽहिट्ठिए मुणी ।६१।
॥ त्ति बेमि ॥

— तम्हा—इसलिए, एयासि—इन, लेस्साणं—लेश्याओं के, आणुभावे—अनुभावों (रस विशेष) को, वियाणिया—जान कर, मुणी—साधु, अप्पसत्थाओ—अप्रशस्त लेश्याओं को, वज्जित्ता—छोड़ कर, पसत्थाओ—प्रशस्त लेश्याओं को अहिट्ठिए—धारण करे ॥६१॥ त्ति बेमि—ऐसा मैं कहता हूं।

॥ चोत्तीसवां अध्ययन समाप्त ॥

अनगार नामक पैंतीसवाँ अध्ययन



सुणेह मे एगग्गमणा, मग्गं बुद्धेहि देसियं।
जमायरंतो भिक्खू, दुक्खाणंतकरे भवे ॥१॥

— बुद्धेहि—सर्वज्ञ भगवान् द्वारा, देसियं--कहे हुए. मग्गं--मार्ग को, मे--मुझ से, एगग्गमणा--एकाग्र चित्त हो कर, सुणेह—सुनो, ज—जिसका. आयरंतो--आचरण करता हुआ, भिक्खू--साधु, दुक्खाणं—दुःखों का, अंतकरे भवे--अन्त कर देता है ॥१॥

गिहवासं परिच्चज्ज, पव्वज्जामस्सिए मुणी।
इमे संगे वियाणिज्जा, जेहिं सज्जंति माणवा ।२।

— गिहवासं--गृहस्थवास का, परिच्चज्ज--त्याग कर के पव्वज्जा--प्रव्रज्या का, अस्सिए--आश्रय लेने वाला, मुणी—मुनि. इमे--इन, संगे—माता-पिता पुत्र-कलत्रादि के संगों को जेहिं--जिनसे, माणवा—मनुष्य, सज्जंति—आसक्तियों में, फँस कर कर्म-बन्धन को प्राप्त होते है उन्हें, वियणिज्जा—जान कर छोड़ देवे ॥२॥

तहेव हिंसं अलियं, चोज्जं अबंभ-सेवणं।
इच्छाकामं च लोभं च, संजओ परिवज्जए ।३।

— हिंसं—हिंसा, अलियं--झूठ, चोज्जं--चोरी, अबंभसेवणं—अब्रह्मचर्य (मैथुन) सेवन, इच्छाकामं—अप्राप्त वस्तु की इच्छा, तहेव, च—और, लोभं—लोभ इन सभी का, संजओ--संयती पुरुष, परिवज्जए—त्याग कर देवे ॥३॥

मणोहरं चित्तघरं, मल्लधूवेण वासियं।
सकवाडं पंडुरुल्लोयं, मणसा वि ण पत्थए ।४।
इंदियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए ।
दुक्कराइं णिवारेउं, कामराग-विवड्ढणे ।५।

— मणोहरं--मनोहर, मल्लधूवेण वासियं--माल्य और अगर-चन्दनादि धूप से वासित (सुगन्धित), सकवाडं—कपाट युक्त, पंडुरुल्लोयं--श्वेत वस्त्रों से विभूषित या चन्दवा आदि लगा कर सुसज्जित किये हुए, चित्तघरं--चित्रों से युक्त मकान की साधु*, मणसा वि—मन से भी, ण पत्थए--इच्छा न करे क्योंकि, कामरागविवड्ढणे—काम-राग को बढ़ाने वाले तारि-

---

* मनोहर चित्रों से सुशोभित, पुष्प और अगर-चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों से सुवासित, सुन्दर श्वेत वस्त्रों तथा चन्दवों द्वारा सुसज्जित स्थान में साधु न रहे, क्योंकि उपरोक्त प्रकार से सुसज्जित मकान में साधु को अपना इन्द्रिय-संयम रखना कठिन होता है, क्योंकि उपरोक्त प्रकार का स्थान काम-राग को बढ़ाने वाला होता है। इसलिए साधु को ऐसे घर में न रहना चाहिए। कामराग की वृद्धि का कारण होने से ऐसे स्थान में रहने का साधु के लिए निषेध किया गया है, किन्तु किवाड़ खोलने और बन्द करने का निषेध नहीं किया गया है।

सम्मि--उपरोक्त प्रकार के, उवस्सए--उपाश्रय में, भिक्खुस्स--साधु के लिए, इंदियाणि--इन्द्रियों को, णिवारेउं--रोकना, दुक्कराइं--बड़ा कठिन है ॥४-५॥

सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले व इक्कओ।
पइरिक्के परकडे वा, वासं तत्थाभिरोयए ।६।

— सुसाणे--श्मशान में, वा--अथवा, सुण्णगारे--सूने घर में, व--अथवा रुक्खमूले--वृक्ष के नीचे, वा--अथवा परकडे--परकृत (गृहस्थ ने जो अपने निज के लिए बनाया है), तत्थ--ऐसे, पइरिक्के--स्त्री, पशु और नपुंसक से रहित एकान्त स्थान में इक्कओ--राग-द्वेष रहित हो कर साधु, वासं अभिरोयए--रहने की इच्छा करे ॥६॥

फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए।
तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परमसंजए ।७।

— फासुयम्मि--प्रासुक, अणाबाहे--बाधा-रहित (जहाँ अपने संयम में और दूसरे लोगों को किसी प्रकार की बाधा न हो) और जो, इत्थीहिं--स्त्री आदि के, अणभिद्दुए--उपद्रव से रहित हो, तत्थ--ऐसे स्थान में, परमसंजए--श्रेष्ठ संयम वाला, भिक्खू--साधु, वासं संकप्पए--रहने का संकल्प करे (ऐसे स्थान में साधु रहे) ॥७॥

ण सयं गिहाइं कुव्विज्जा, णेव अण्णेहिं कारए।
गिहकम्मसमारंभे, भूयाणं दिस्सए वहो ।८।

— साधु, सयं--स्वयं, गिहाइं—घर, ण कुव्विज्जा—न बनावे और, णेव—न,अण्णेहिं—दूसरों से, कारए--बनवावें और बनाने वालों की अनुमोदना भी न करे क्योंकि, गिहकम्म-समारंभे--घर बनाने के समारम्भ में, भूयाणं—प्राणियों की, वहो—हिंसा, दिस्सए—दिखाई देती है ॥८॥

तसाणं थावराणं च, सुहुमाणं बादराण य ।
तम्हा गिहसमारंभं, संजओ परिवज्जए ।९।

-- घर बनाने में, तसाणं—त्रस, च--और, थावराणं--स्थावर, सुहुमाणं--सूक्ष्म, य--और, बादराण--बादर जीवों की हिंसा होती है, तम्हा---इसलिए, संजओ--संयमी साधु, गिहसमारंभं—घर बनाने के समारम्भ का, परिवज्जए--त्याग दे ॥९॥

तहेव भत्तपाणेसु, पयणे पयावणेसु य ।
पाणभूयदयट्ठाए, ण पये ण पयावए ।१०।

— तहेव--इसी प्रकार, भत्तपाणेसु--आहार-पानी को, पयणे--स्वयं पकाने में, य--और, पयावणेसु--दूसरों से पकवाने में प्राणियों की हिंसा होती है इसलिए, पाणभूयदयट्ठाए प्राणी (द्वीन्द्रियादि) भूत (पृथिव्यादि जीवों की रक्षा के लिए) साधु, ण पए--न स्वयं पकावे और, ण पयावए—न दूसरों से पकवावे ॥१०॥

जलधण्णणिस्सिया जीवा, पुढवी-कट्ठणिस्सिया ।
हम्मंति भत्तपाणेसु, तम्हा भिक्खू ण पयावए ।११।

— भत्तपाणेसु—आहार पानी को स्वयं पकाने और पकवाने में, जलधण्णणिस्सिया--जल और धान्य के आश्रित और पुढवीकट्ठणिस्सिया—पृथ्वी और ईन्धन के आश्रित, जीवा—अनेक जीव, हम्मंति—मारे जाते हैं तम्हा—इसलिए, भिक्खू-साधु स्वयं न पकावे, ण पयावए—न दूसरों से पकवावे और पकाने वालों की अनुमोदना भी न करे ॥११॥

विसप्पे सव्वओ धारे, बहुपाणि-विणासणे।
णत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइं ण दीवए ।१२।

— सव्वओ—सब दिशाओं में, धारे--शस्त्र की धारा के समान, विसप्पे--फैलने वाली और, बहुपाणि विणासणे—बहुत प्राणियों का नाश करने वाली, जोइसमे--अग्नि के समान, सत्थे—शस्त्र णत्थि--दूसरा कोई नहीं है, तम्हा--इसलिए साधु कभी भी, जोइं—अग्नि, ण दीवए—न जलावे, न दूसरों से जलवावे और जलाने वालों की अनुमोदना भी न करे ।१२।

हिरण्णं जायरूवं च, मणसा वि ण पत्थए।
समलेट्ठु कंचणे भिक्खू, विरए कय-विक्कए ।१३।

— समलेट्ठुकंचणे--मिट्टी के ढेले को और सोने को समान समझने वाला, कयविक्कए--क्रयविक्रय (खरीदने और बेचने) की क्रियाओं से, विरए—विरक्त (निवृत्त) हुआ, भिक्खू--साधु, हिरण्णं—सोना, जायरूवं—चांदी, च—और धनधान्यादि परिग्रह को, मणसा वि—मन से भी, ण पत्थए—न चाहे ॥१३॥

किणंतो कइओ होइ, विक्किणंतो य वाणिओ ।
कयविक्कयम्मि वट्टंतो, भिक्खू ण भवइ तारिसो ।१४।

— किणंतो—खरीदता हुआ, कइओ—खरीदने वाला (ग्राहक) होइ—होता है, य—और, विक्किणंतो—बेचता हुआ, वाणिओ—वणिक होता है, कयविक्कयम्मि—खरीदने और बेचने के कार्य में, वट्टंतो—प्रवृत्ति करता हुआ, भिक्खू—साधु, तारिसो—जैसा सूत्र में कहा है वैसा साधु, ण भवइ—नहीं होता अर्थात् क्रयविक्रय करने वाला साधु, भाव-साधु नहीं हो सकता, वह गृहस्थ के समान हो जाता है ॥१४॥

भिक्खियव्वं ण केयव्वं, भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा ।
कयविक्कओ महादोसो, भिक्खवत्ती सुहावहा ।१५।

— भिक्खवत्तिणा—भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाले, भिक्खुणा—भिक्षु को, भिक्खियव्वं—भिक्षा माँग कर ही अपना निर्वाह करना चाहिए किन्तु, ण केयव्वं—खरीद कर कोई वस्तु न लेनी चाहिए क्योंकि, कयविक्कओ—क्रयविक्रय करना, महादोसो—महादोष है और, भिक्खवत्ती—भिक्षावृत्ति, सुहावहा—इस लोक और परलोक में सुखकारी (कल्याणकारी) है ॥१५॥

समुयाणं उंछमेसिज्जा, जहासुत्तमणिंदियं ।
लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिंडवायं चरे मुणी ।१६।

— जहासुत्तं—सूत्र के अनुसार, अणिंदियं—अनिन्दित

— भत्तपाणेसु—आहार पानी को स्वयं पकाने और पकवाने में, जलधण्णणिस्सिया--जल और धान्य के आश्रित और पुढवीकट्ठणिस्सिया—पृथ्वी और ईन्धन के आश्रित, जीवा—अनेक जीव, हम्मंति—मारे जाते हैं तम्हा—इसलिए, भिक्खू-साधु स्वयं न पकावे, ण पयावए—न दूसरों से पकवावे और पकाने वालों की अनुमोदना भी न करे ॥११॥

विसप्पे सव्वओ धारे, बहुपाणि-विणासणे।
णत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइं ण दीवए ।१२।

— सव्वओ—सब दिशाओं में, धारे--शस्त्र की धारा के समान, विसप्पे--फैलने वाली और, बहुपाणि विणासणे—बहुत प्राणियों का नाश करने वाली, जोइसमे--अग्नि के समान, सत्थे—शस्त्र णत्थि--दूसरा कोई नहीं है, तम्हा--इसलिए साधु कभी भी, जोइं—अग्नि, ण दीवए—न जलावे, न दूसरों से जलवावे और जलाने वालों की अनुमोदना भी न करे ।१२।

हिरण्णं जायरूवं च, मणसा वि ण पत्थए।
समलेट्ठु कंचणे भिक्खू, विरए कय-विक्कए ।१३।

— समलेट्ठुकंचणे--मिट्टी के ढेले को और सोने को समान समझने वाला, कयविक्कए--क्रयविक्रय (खरीदने और बेचने) की क्रियाओं से, विरए—विरक्त (निवृत्त) हुआ, भिक्खू---साधु, हिरण्णं—सोना, जायरूवं—चांदी, च—और धनधान्यादि परिग्रह को, मणसा वि--मन से भी, ण पत्थए—न चाहे ॥१३॥

किणंतो कइओ होइ, विक्किणंतो य वाणिओ ।
कयविक्कयम्मि वट्टंतो, भिक्खू ण भवइ तारिसो ।१४।

— **किणंतो**—खरीदता हुआ, **कइओ**—खरीदने वाला (ग्राहक) **होइ**—होता है, **य**—और, **विक्किणंतो**—बेचता हुआ, **वाणिओ**—वणिक होता है, **कयविक्कयम्मि**—खरीदने और बेचने के कार्य में, **वट्टंतो**—प्रवृत्ति करता हुआ, **भिक्खू**—साधु, **तारिसो**—जैसा सूत्र में कहा है वैसा साधु, **ण भवइ**—नहीं होता अर्थात् क्रयविक्रय करने वाला साधु, भाव-साधु नहीं हो सकता, वह गृहस्थ के समान हो जाता है ॥१४॥

भिक्खियव्वं ण केयव्वं, भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा ।
कयविक्कओ महादोसो, भिक्खवत्ती सुहावहा ।१५।

— **भिक्खवत्तिणा**—भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाले, **भिक्खुणा**—भिक्षु को, **भिक्खियव्वं**—भिक्षा मांग कर ही अपना निर्वाह करना चाहिए किन्तु, **ण केयव्वं**—खरीद कर कोई वस्तु न लेनी चाहिए क्योंकि, **कयविक्कओ**—क्रयविक्रय करना, **महादोसो**—महादोष है और, **भिक्खवत्ती**—भिक्षावृत्ति, **सुहावहा**—इस लोक और परलोक में सुखकारी (कल्याणकारी) है ॥१५॥

समुयाणं उंछमेसिज्जा, जहासुत्तमणिंदियं ।
लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिंडवायं चरे मुणी ।१६।

— **जहासुत्तं**—सूत्र के अनुसार, **अणिंदियं**—अनिन्दित

घरों से, उंछं—थोड़ा-थोड़ा आहार लेते हुए, समुयाणं—समुदानी भिक्षा की, एसिज्जा—एषणा करे और, लाभालामम्मि—लाभ और अलाभ में, संतुट्ठे—संतुष्ट रहता हुआ, मुणी—मुनि, पिंडवायं—आहार के लिए, चरे—विचरे। १६॥

अलोले ण रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए।
ण रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ।१७।

— अलोले—सरस भोजन में लालुपता-रहित, रसे—रसों में, ण गिद्धे—गृद्धि रहित, जिब्भादंते—जिह्वाइन्द्रिय को वश में रखने वाला और, अमुच्छिए—मूर्च्छा (आसक्ति) रहित, महामुणी—महामुनि, रसट्ठाए—स्वाद के लिए अथवा शारीरिक धातुओं की वृद्धि के लिए, ण भुंजिज्ज—आहार न करे किन्तु, जवणट्ठाए—संयम रूप यात्रा के निर्वाह के लिए ही आहार करे। १७॥

अच्चणं रयणं चेव, वंदणं पूयणं तहा।
इड्ढीसक्कार-सम्माणं, मणसा वि ण पत्थए ।१८।

— अच्चणं—अर्चा (चन्दनादि से पूजा), चेव—और, रयणं—रचना (स्वस्तिकादि की रचना) वंदणं—वन्दना, तहा—तथा, पूयणं—विशिष्ट वस्त्रादि देने रूप पूजा, इड्ढीसक्कार सम्माणं—लब्ध्यादि की ऋद्धि, सत्कार और सम्मान को साधु, मणसावि—मन से भी, ण पत्थए—न चाहे ।१८॥

सुक्कज्झाणं झियाएज्जा, अणियाणे अकिंचणे।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ ।१९।

— जाव--जब तक, कालस्स--मृत्यु का समय, पज्जओ--प्राप्त हो तब तक (यावज्जीवन), अणियाणे--नियाणा-रहित, अकिंचणे--परिग्रह-रहित तथा, वोसट्ठकाए—शरीर के ममत्व भाव से भी रहित हो कर, सुक्कज्झाणं--शुक्ल-ध्यान, झियाएज्जा--ध्यावे और, विहरेज्जा--अप्रतिबद्ध विहार करे ।१९।

णिज्जूहिऊण आहारं, कालधम्मे उवट्ठिए ।
चइऊण माणुसं बोंदि, पहू दुक्खा विमुच्चइ ।२०।

— कालधम्मे--मृत्यु का समय, उवट्ठिए--उपस्थित होने पर, आहारं—चारों प्रकार के आहार का णिज्जूहिऊण--त्याग कर के, माणुसं--इस मनुष्य सम्बन्धी, बोंदि—शरीर को जहिऊण—छोड़ कर, पहू—समर्थ मुनि, दुक्खे—सब दुःखों से, विमुच्चइ—छूट जाता है ॥२०॥

णिम्ममे णिरहंकारे, वीयरागो अणासवो ।
संपत्तो केवलं णाणं, सासयं परिणिव्वुए ।२१।

— णिम्ममे--ममत्व-रहित णिरहंकारे—अहंकार-रहित, वीयरागो--वीतराग, अणासवो—आश्रव-रहित बना हुआ मुनि, केवलं णाणं—केवलज्ञान को, संपत्तो--प्राप्त कर के, सासयं--सदा के लिए, परिणिव्वुए--सुखी हो जाता (मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेता) है ॥२१॥ त्ति बेमि—ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ पैंतीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

जीवाजीव-विभक्ति छत्तीसवाँ अध्ययन



जीवाजीवविभत्तिं, सुणेह मे एगमणा इओ।
जं जाणिऊण भिक्खू, सम्मं जयइ संजमे ।१।

— श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू !, इओ--अब इसके आगे, जीवाजीवविभत्ति—जीव और अजीव के भेदों को, मे--मुझ से, एगमणा--एकाग्र चित्त हो कर, सुणेह—सुनो, जं—जिसे, जाणिऊण--जान कर, भिक्खू—साधु, सम्मं--सम्यक् प्रकार से, संजमे--संयम में, जयइ--यतना करता है ॥१॥

जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए।
अजीव देसमागासे, अलोए से वियाहिए ।२।

— जीवा--जीव, चेव—और, अजीवा—अजीव रूप, एस--यह, लोए--लोक, वियाहिए--कहा गया है, य—और अजीवदेसमागासे--अजीव का एक देश आकाश (जहाँ केवल आकाश ही हो) से--वह, अलोए—अलोक, वियाहिए—कहा गया है ॥२॥

दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा।
परूवणा तेसिं भवे, जीवाणमजीवाण य ।३।

— तेसिं—उन, जीवाणं--जीव, य—और, अजीवाण—अजीवों की, परूवणा—प्ररूपणा, दव्वओ—द्रव्य, खेत्तओ—

क्षेत्र, कालओ--काल, चेव, तहा--और, भावओ--भाव से, भवे--होती है ॥३॥

रूविणो चेव रूवी य, अजीवा दुविहा भवे ।
अरूवी दसहा वुत्ता, रूविणो य चउव्विहा ।४।

— अजीवा--अजीव के, दुविहा—दो भेद, भवे—हैं, रूविणो--रूपी, चेव—और, अरूवी--अरूपी । अरूवी--अरूपी, दसहा—दस प्रकार का कहा गया है, य, य--और, रूविणो--रूपी, चउव्विहा--चार प्रकार का कहा गया है ।४।

धम्मत्थिकाए तद्देसे, तप्पएसे य आहिए ।
अहम्मे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए ।५।
आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए ।
अद्धासमए चेव, अरूवी दसहा भवे ।६।

—धम्मत्थिकाए—धर्मास्तिकाय का स्कन्ध, तद्देसे--उसका देश, य—और, तप्पएसे—उसका प्रदेश (ये तीन भेद धर्मास्तिकाय के) आहिए—कहे गये हैं । अहम्मे—अधर्मास्तिकाय का स्कन्ध, तस्स--उसका, देसे—देश, य, य—और, तप्पएसे--उसका प्रदेश (ये तीन भेद अधर्मास्तिकाय के) आहिए—कहे गये हैं । आगासे--आकाशास्तिकाय का स्कन्ध, तस्स—उसका, देसे--देश, य, य--और, तप्पएसे--उसका प्रदेश (ये तीन भेद आकाशास्तिकाय के) आहिए—कहे गये गये हैं, चेव—और, अद्धासमए—काल, इन प्रकार, अरूवी—अरूपी के, दसहा-- दस भेद, भवे--हैं ॥५-६॥

धम्माधम्मे य दो चेव, लोगमित्ता वियाहिया।
लोगालोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए ।७।

-- धम्माधम्मे—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, दो चेव--ये दोनों लोगमित्ता--लोक-परिमाण, वियाहिया--कहे गये हैं, य—और आगासे--आकाशास्तिकाय, लोगालोगे—लोकालोक परिमाण है और, समए--कालद्रव्य, समयखेत्तिए—समयक्षेत्र (ढ़ाई द्वीप) परिमाण है ।७।

धम्माधम्मागासा, तिण्णि वि एए अणाईया।
अपज्जवस्सिया चेव, सव्वद्धं तु वियाहिया ।८।

— धम्माधम्मागासा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, एए--ये, तिण्णि वि—तीनों, अणाईया—अनादि, चेव—और, अपज्जवसिया--अनन्त हैं, तु--और, सव्वद्ध--सब काल में रहने वाले, (शाश्वत) वियाहिया--कहे गये हैं (काल की अपेक्षा ये तीनों अनादि अनन्त हैं) ।८।

समए वि संतइं पप्प, एवमेव वियाहिए।
आएसं पप्प साईए, सपज्जवसिए वि य ।९।

— समए वि—काल-द्रव्य भी, संतइं--सन्तति (प्रवाह) की, पप्प-- अपेक्षा, एवमेव— इसी प्रकार (अनादि अनन्त) वियाहिए—कहा गया है य-- और आएसं--आदेश (किसी अमुक कार्य) की, पप्प— अपेक्षा, साईए-- सादि और, सपज्जवसिए वि--सपर्यवसित (शान्त) है ।।९।।

खंधा य खंधदेसा य, तप्पएसा तहेव य।
परमाणुणो य बोद्धव्वा, रूविणो य चउव्विहा ।१०।

-- खंधा--स्कन्ध, खंधदेसा--स्कन्ध के देश, तप्पएसा--स्कन्ध का प्रदेश, य, य, तहेव य, य, य,--और, परमाणुणो--परमाणु, चउव्विहा--ये चार भेद, रूविणो--रूपी द्रव्य के, बोद्धव्वा--जानने चाहिए ॥१०॥

एगत्तेण पुहुत्तेण, खंधा य परमाणु य।
लोएगदेसे लोए य, भइयव्वा ते उ खेत्तओ ।११।

-- एगत्तेण--परमाणुओं के परस्पर मिलने से, खंधा--स्कन्ध बनता है, य, य--और, पुहुत्तेण--पृथक् पृथक् रहने पर परमाणु--परमाणु कहलाता है, खेत्तओ--क्षेत्र की अपेक्षा, ते--वे, लोएगदेसे--लोक के एक देश में हैं, य--और, लोए--समस्त लोकव्यापी हैं, भइयव्वा--यहाँ भजना समझनी चाहिए।

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ।१२।

-- सुहुमा--सूक्ष्म, सव्वलोगम्मि--समस्त लोक में हैं, य--और, बायरा--बादर, लोगदेसे--लोक के एक देश में हैं, इत्तो--इसके आगे, तेसिं--उनका चउव्विहं--चार प्रकार का, कालविभाग--कालविभाग, वुच्छं--कहूँगा ॥१२॥

संतइं पप्प तेऽणाई, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ।१३।

— ते--वे स्कन्ध और परमाणु संतइं—सन्तति (प्रवाह)
की, पप्प--अपेक्षा, अणाई—अनादि, य--और, अपज्ज-
सिया--सपर्यवसित (अनन्त) हैं य—और, ठिइं—स्थिति
की, पडुच्च--अपेक्षा, साईया--सादि और, सपज्जवसिया—
पर्यवसित (सान्त) हैं ॥१३॥

असंखकालमुक्कोसं, इक्कं समयं जहण्णयं।
अजीवाण य रूवीणं, ठिई एसा वियाहिया ।१४।

-- रूवीणं--रूपी, अजीवाण—अजीव की, जहण्णयं—
घन्य, ठिई—स्थिति, एक्कं--एक समयं—समय, य--और,
उक्कोसं—उत्कृष्ट, असंखकालं--असंख्यात काल है, एसा—
ह स्थिति, वियाहिया—कही गई है ॥१४॥

अणंतकालमुक्कोसं, इक्कं समयं जहण्णयं।
अजीवाण य रूवीण, अंतरयं वियाहियं ।१५।

— रूवीणं--रूपी, अजीवाण--अजीवों का, जहण्णयं—
घन्य, अंतरेयं--अन्तर, इक्कं--एक, समयं--समय है, य--
और, उक्कोसं—उत्कृष्ट, अणंतकालं--अनन्त काल, वियाहियं·
कहा गया है ॥१५॥

वण्णओ गंधओ चेव, रसओ फासओ तहा।
संठाणओ य विण्णेओ, परिणामो तेसिं पंचहा ।१६।

— वण्णओ—वर्ण, गंधओ--गन्ध, रसओ--रस, फासओ--
पर्श, चेव, तह, य—और, संठाणओ —संस्थान की अपेक्षा,

तेसिं--उन रूपी अजीव द्रव्यों के, पंचहा--पांच प्रकार का, परिणामो—परिणाम, विण्णेओ—जानना चाहिए ॥१६॥

वण्णओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
किण्हा णीला य लोहिया, हालिद्दा सुक्किला तहा ॥१७॥

— वण्णओ—वर्ण से, परिणया—परिणत हुए, जे—जो रूपी अजीव हैं, ते—वे, पंचहा--पांच प्रकार के पकित्तिया—कहे गये हैं, किण्हा--काला, णीला—नीला, लोहिया--लाल, हालिद्दा—पीला, उ, य. तहा—और, सुक्किला—श्वेत ॥१७॥

गंधओ परिणया जे उ, दुविहा ते वियाहिया।
सुब्भिगंध परिणामा, दुब्भिगंधा तहेव य ॥१८॥

-- गंधओ--गन्ध रूप से परिणया—परिणत हुए, जे—जो रूपी अजीव हैं, ते--वे, दुविहा--दो प्रकार के, वियाहिया--कहे गये हैं, सुब्भिगंधपरिणामा--सुरभिगन्ध परिणाम वाले (सुगन्ध रूप) उ, तहेव, य--और, दुब्भिगंधा--दुरभिगन्ध परिणाम वाले (दुर्गन्ध रूप) ॥१८॥

रसओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
तित्त-कडुय-कसाया, अंबिला महुरा तहा ॥१९॥

— रसओ--रस रूप से, परिणणया--परिणत हुए, जे—जो रूपी अजीव हैं, ते--वे, पंचहा—पांच प्रकार के, पकित्तिया—कहे गये हैं, तित्तकडुयकसाया—तीखा, कड़ुआ, कषैला अंबिला—आम्ल (खट्टा) उ, तहा--और, महुरा—मधुर (मीठा) ॥१९॥

फासओ परिणया जे उ, अट्ठहा ते पकित्तिया।
कक्खडा मउआ चेव, गरुआ लहुआ तहा।२०।
सीया उण्हा य णिद्धा य, तहा लुक्खा य आहिया।
इय फास-परिणया एए, पुग्गला समुदाहिया।२१।

— फासओ--स्पर्श रूप से, परिणया--परिणत हुए, जे—जो रूपी अजीव हैं, ते--वे, अट्ठहा—आठ प्रकार के, पकित्तिया—कहे गये हैं, कक्खडा--कर्कश (खुरदरा) मउआ-कोमल (सुंआला) गरुआ--भारी, लहुआ—हलका, सीया—ठंडा, उण्हा—गरम, णिद्धा—स्निग्ध (चिकना) उ, चेव, तहा, य, य, तहा, य—और, लुक्खा--रूक्ष, (रूखा) इय--इस प्रकार, फासपरिणया—स्पर्श रूप से परिणत हुए, एए--ये, पुग्गला—पुद्गल, समुदाहिया--कहे गये हैं ॥२०-२१॥

संठाणओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
परिमंडला य वट्टा य, तंस चउरंसमायया।२२।

— संठाणओ—संस्थान रूप से, परिणया—परिणत हुए, जे—जो रूपी अजीव हैं, ते—वे, पंचहा--पाँच प्रकार के, पकित्तिया—कहे गये हैं। यथा, परिमंडला – परिमण्डल, वट्टा-वृत्त, तंसा—त्र्यस्र, चउरंस--चतुरस्र, उ, य, य—और, आयया--आयत (लम्बा) संस्थान वाले ॥२२॥

वण्णओ जे भवे किण्हे, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य।२३।

— वण्णओ—वर्ण की अपेक्षा, जे—जो, किण्हे—काला, भवे—है, से—उसकी, गंधओ—गन्ध की अपेक्षा, भइए—भजना समझनी चाहिए, चेव—और इसी प्रकार, रसओ—रस की अपेक्षा, फासओ—स्पर्श की अपेक्षा, उ, य—और, संठाणओ वि—संस्थान की अपेक्षा भी, भइए—भजना समझनी चाहिए ॥२३॥

भावार्थ—जहाँ वर्ण है वहाँ गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की भजना है अर्थात् समुच्चय रूप से कृष्ण वर्ण के पुद्गल-स्कन्ध में—२ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान, इस प्रकार २० बोलों की भजना (अपेक्षित स्थिति) समझनी चाहिए।

वण्णओ जे भवे णीले, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ।२४।

— वण्णओ—वर्ण की अपेक्षा, जे—जो पुद्गल, णीले—नीला, भवे—है, से—उसकी, गंधओ—गन्ध, रसओ—रस, फासओ—स्पर्श, उ, चेव, य—और, संठाणओ वि—संस्थान से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए (उसमें २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान इस प्रकार २० बोलों की भजना समझनी चाहिए ॥२४॥

वण्णओ लोहिए जे उ, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ।२५।

— वण्णओ--वर्ण की अपेक्षा, जे—जो पुद्गल, लोहिए लाल है, से—उसकी, गंधओ--गन्ध, रसओ--रस, फासओ स्पर्श, उ, उ, चेव, य—और, संठाणओ वि—संस्थान से, भइ भइए—भजना समझनी चाहिए ॥२५॥

वण्णओ पीयए जे उ, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ।२६।

— वण्णओ— वर्ण की अपेक्षा, जे--जो पुद्गल, पीयए पीला है, से--उसकी, गंधओ-गन्ध, रसओ—रस फासओ-स्पर्श, उ, उ, चेव, य—और, संठाणओ वि--संस्थान से भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए ॥२६॥

वण्णओ सुक्किले जे उ, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ।२७।

— वण्णओ--वर्ण की अपेक्षा, जे—जो पुद्गल, सुक्किले-शुक्ल (श्वेत) हैं, से---उसकी, गंधओ--गन्ध, रसओ—रस, फासओ—स्पर्श, उ, उ, चेव, य—और, संठाणओ वि—संस्थान से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए ॥२७॥

गंधओ जे भवे सुब्भी, भइए से उ वण्णओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ।२८।

— गंधओ—गन्ध की अपेक्षा, जे--जो पुद्गल, सुब्भी—सुगन्ध वाला, भवे—है, से—उसकी, वण्णओ—वर्ण रसओ—रस, फासओ—स्पर्श, उ, चेव, य--और, संठाणओ वि—

संस्थान से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए अर्थात् सुगन्ध वाले पुद्गल में पाँच वर्ण, पाँच रस, आठ स्पर्श और ५ संस्थान इन २३ बोलों की भजना है ॥२८॥

गंधओ जे भवे दुब्भी, भइए से उ वण्णओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२९॥

— गंधओ--गन्ध की अपेक्षा, जे—जो पुद्गल, दुब्भी—दुर्गन्ध वाला, भवे--है, से—उसकी, वण्णओ--वर्ण, रसओ-रस, फासओ—स्पर्श, उ, चेव, य--और, संठाणओ वि-संस्थान से, भएइ, भइए--भजना समझनी चाहिए अर्थात् दुर्गन्ध वाले पुद्गल में पाँच रस, आठ स्पर्श और पाँच संस्थान इन २३ बोलों की भजना है ॥२९॥

रसओ तित्तए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३०॥

— रसओ--रस की अपेक्षा, जे—जो पुद्गल तित्तए - तीखा है, से---उसकी, वण्णओ--वर्ण गंधओ —गन्ध, फासओ—स्पर्श, उ, उ, चेव, य-- और, संठाणओ वि— संस्थान से, भइए, भइए-भजना समझनी चाहिए अर्थात् पाँच वर्ण, दो गन्ध, पांच स्पर्श और पाँच संस्थान, इन २० बोलों की भजना है।३०।

रसओ कडुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३१॥

रसओ—रस की अपेक्षा, जे -जो पुद्गल कडुए---

कडुआ है, से—उसकी, वण्णओ--वर्ण, गंधओ—गन्ध, फासओ--स्पर्श, उ, उ, चेव, य--और, संठाणओ वि--संस्थान से, भइए भइए--भजना समझनी चाहिए ॥३१॥

रसओ कसाए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३२॥

— रसओ--रस की अपेक्षा, जे—जो पुद्गल, कसाए-कडुआ है, से-- उसकी, वण्णओ— वर्ण, गंधओ— गन्ध, फासओ--स्पर्श, उ, उ, चेव, य,—और, संठाणओ वि—संस्थान से, भइए, भइए--भजना समझनी चाहिए ॥३२॥

रसओ अंबिले जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३३॥

— रसओ—रस की अपेक्षा, जे--जो पुद्गल, अंबिले-आम्ल (खट्टा) है, से—उसकी, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, फासओ---स्पर्श, उ, उ, चेव, य—ओर, संठाणओ वि-संस्थान से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए ॥३३॥

रसओ महुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ।३४।

— रसओ---रस की अपेक्षा, जे--जो पुद्गल, महुए—मधुर है, से—उसकी, वण्णओ—वर्ण, गंधओ--गन्ध, फासओ-स्पर्श, उ, उ, चेव, य—और, संठाणओ वि--संस्थान से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए ॥३४॥

फासओ कक्खडे जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ।३५।

— फासओ—स्पर्श की अपेक्षा, जे--जो पुद्गल, कक्खडे-कर्कश (कठोर) स्पर्श वाला है, से--उसकी, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसओ—रस, उ, उ, चेव, य--और, संठाणओ वि-संस्थान से, भइए, भइए-भजना समझनी चाहिए अर्थात् पाँच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और पांच संस्थान, इन १७ बोलों की भजना समझनी चाहिए । जहाँ ६ स्पर्शों की विवक्षा की गई है वहाँ २३ बोलों की भजना समझनी चाहिए ॥३५॥

फासओ मउए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३६॥

— फासओ—स्पर्श की अपेक्षा, जे--जो पुद्गल, मउए-मृदु (कोमल) स्पर्श वाला है, से--उसकी, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसओ—रस, उ, उ, चेव, य--और, संठाणओ वि—संस्थान से, भइए--भजना समझनी चाहिए ॥३६॥

फासओ गुरुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३७॥

— फासओ--स्पर्श की अपेक्षा, जे—जो पुद्गल, गुरुए-गुरु (भारी) स्पर्श वाला है, से--उसकी, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसओ— रस, उ, उ, चेव, य--और, संठाणओ वि—संस्थान से, भइए भइए—भजना समझनी चाहिए ॥३७॥

फासओ लहुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३८॥

— फासओ—स्पर्श की अपेक्षा, जे—पुद्गल, लहुए—लघु है, से—उसकी वण्णओ—वर्ण गंधओ—गंध, रसओ—रस, उ, उ, चेव, य—और, संठाणओ—संस्थान से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए ॥३८॥

फासओ सीयए जे उ, भइए जे उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३९॥

फासओ—स्पर्श की अपेक्षा, जे—जो पुद्गल, सीयए—शीतल है, से—उसकी, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसओ—रस, उ, उ, चेव, य—और, संठाणओ वि—संस्थान से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए ॥३९॥

फासओ उण्हए जे उ, भइए जे उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥४०॥

— फासओ—स्पर्श की अपेक्षा, जे—जो पुद्गल, उण्हए—उष्ण है, से—उसकी, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसओ—रस, उ, उ, चेव, य—और, संठाणओ वि—संस्थान से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए ॥४०॥

फासओ णिद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥४१॥

— फासओ –स्पर्श की अपेक्षा, जे—जो पुद्‌गल, णिद्धए–स्निग्ध (चिकना) है, से--उसकी, वण्णओ —वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसओ— रस, उ, उ, चेव, य – और, संठाणओ वि—संस्थान से, भइए, भइए --भजना समझनी चाहिए ॥४१॥

फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥४२॥

— फासओ--स्पर्श की अपेक्षा, जे— जो पुद्‌गल, लुक्खए–रूक्ष स्पर्श वाला है, से—उसकी, वण्णओ— वर्ण, गंधओ—गन्ध रसओ—रस, उ, उ, चेव, य--और, संठाणओ वि—भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए, इस प्रकार स्पर्श के कुल १३६ भेद होते हैं ॥४२॥

परिमंडल-संठाणे, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ।४३।

— परिमंडल संठाणे—परिमण्डल संस्थान वाले, से—पुद्‌गल-स्कन्ध में, वण्णओ--वर्ण, गंधओ— गन्ध, रसओ--रस, उ, उ, चेव, य—और, फासओ —स्पर्श से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए अर्थात् पाँच, वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श, इन बीस बोलों की भजना होती है ॥४३॥

संठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ।४४।

— संठाणओ--संस्थान की अपेक्षा जो पुद्गल, वट्टे--वृत्ताकार (गोलाकार) भवे--होता है, से—उसकी, वण्णओ-वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसओ—रस, उ, उ, चेव, य--और, फासओ-स्पर्श से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए।४४।

संठाणओ भवे तंसे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य।४५।

— संठाणओ—संस्थान की अपेक्षा जो पुद्गल, तंसे—त्र्यस्र (त्रिकोण) भवे—होता है, से—उसकी, वण्णओ—वर्ण, गंधओ-गंध, रसओ-रस, उ, उ, चेव, य-और, फासओ वि-स्पर्श से, भइए, भइए--भजना समझनी चाहिए ।।४५।।

संठाणओ जे चउरंसे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य।४६।

— संठाणओ-- संस्थान की अपेक्षा, जे—जो पुद्गल, चउरंसे—चतुरस्र (चतुष्कोण) होता है, से—उसकी, वण्णओ-वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसओ—रस, उ, उ, चेव, य—और, फासओ वि— स्पर्श से, भइए, भइए— भजना समझनी चाहिए ।।४६।।

जे उ आययसंठाणे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ।।४७।।

जे—जो, पुद्गल-स्कन्ध, आययसंठाणे—आयत संस्थान

वाला है, से— उसकी, वण्णओ–वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसओ—रस, उ, उ, चेव, य— और, फासओ वि—स्पर्श से, भइए, भइए—भजना समझनी चाहिए ॥४७॥

भावार्थः— वर्ण के १००, गन्ध के ४६, रस के १००, स्पर्श के १३६ और संस्थान के १००, कुल मिलाकर ४८२ भेद होते हैं। किन्तु पन्नवणा सूत्र की वृत्ति में ५३० भेद बतलाये हैं। वहां पर प्रत्येक स्पर्श के २३ भेद माने गये हैं, तब आठ स्पर्शों के १८४ भेद होते हैं। इस प्रकार ५३० भेद बन जाते हैं।

एसा अजीव-विभत्ती, समासेण वियाहिया।
इत्तो जीवविभत्तिं, वुच्छामि अणुपुव्वसो।४८।

— एसा–यह, अजीवविभत्ती–अजीव-विभक्ति (विभाग) समासेण—संक्षेप से, वियाहिया—कहा गया है, इत्तो—इसके आगे, अणुपुव्वसो— क्रमपूर्वक, जीवविभत्ति— जीव-विभक्ति (जीव द्रव्य का विभाग) वुच्छामि—कहूँगा ॥४८॥

संसारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया।
सिद्धा णेगविहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण ॥४९॥

— जीवा—जीव, दुविहा—दो प्रकार के, वियाहिया—कहे गये हैं, संसारत्था—संसारी, य, य—और, सिद्धा—सिद्ध। सिद्धा—सिद्ध, अणेगविहा—अनेक प्रकार के, वुत्ता—कहे गये हैं। तं—उनका, कित्तयओ—वर्णन किया जाता है, अतः तुम, मे—मुझ से, सुण—सुनो ॥४९॥

इत्थी-पुरिस-सिद्धा य, तहेव य णपुंसगा।
सलिंगे अण्णलिंगे य, गिहिलिंगे तहेव य ॥५०॥

-- इत्थीपुरिस सिद्धा—स्त्रीलिंग-सिद्ध, पुरुषलिंग-सिद्ध, णपुंसगा--नपुंसकलिंग सिद्ध, सलिंगे-स्वलिंगसिद्ध, अण्णलिंगे-अन्यलिंग-सिद्ध, गिहिलिंगे--गृहस्थ-लिंग सिद्ध, य, तहेव, य, य, तहेव य—और तीर्थसिद्ध अतीर्थसिद्ध आदि सिद्धों के भेद हैं ॥५०॥

उक्कोसोगाहणाए य, जहण्णमज्झिमाइ य।
उड्ढं अहे य तिरियं च, समुद्दम्मि जलम्मि य ।५१।

— जहण्णमज्झिमाइ-- जघन्य, मध्यम, य— और, उक्कोसोगाहणाए--उत्कृष्ट प्रकार की अवगाहना में सिद्ध हो सकते हैं। उड्ढं—ऊर्ध्वलोक में (मेरु चूलिका आदि पर) अहे— अधोलोक, य--और, तिरियं—तिर्यग्लोक में, य—तथा, समुद्दम्मि--समुद्र में, च, य--और, जलम्मि--जलाशय में सिद्ध हो सकते हैं ॥५१॥

दस य णपुंसएसुं, बीसं इत्थियासु य ।
पुरिसेसु य अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई ॥५२॥

— णपुंसएसुं--नपुंसक-लिंग में, दस--दस, इत्थियासु--स्त्रीलिंग में, बीसं— बीसं, य, य, य-- और, पुरिसेसु—पुरुषलिंग में, अट्ठसयं—एक सो आठ, एगेण—एक, समएण—समय में, सिज्झई—सिद्ध हो सकते हैं ॥५२॥

चत्तारि य गिहिलिंगे, अण्णलिंगे दसेव य।
सलिंगेण अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई ॥५३॥

— गिहिलिंगे-गृहस्थ-लिंग में, चत्तारि-चार, अण्णलिंगे-अन्य-लिंग में, दसेव--दस, य, य--और, सलिंगेण—स्वलिंग से, अट्ठसयं--एक सौ आठ, एगेण--एक, समएण—समय में, सिज्झई—सिद्ध हो सकते हैं ।।५३।

उक्कोस्सोगाहणाए य, सिज्झंते जुगवं दुवे।
चत्तारि जहण्णाए, जवमज्झट्ठुत्तरं सयं ॥५४॥

— उक्कोसोगाहणाए—उत्कृष्ट अवगाहना से, दुवे—दो, जहण्णाए--जघन्य अवगाहना से, चत्तारि--चार, य—और, जवमज्झ—यवमध्य (मध्यम) अवगाहना से, अट्ठुत्तरं सयं—एक सो आठ, जुगवं--एक समय में एक साथ, सिज्झंते-सिद्ध हो सकते हैं ॥५४॥

चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे, तओ जले वीसमहे तहेव य।
सयं च अट्ठुत्तरं तिरिय लोए, समएणेगेण सिज्झई धुवं॥

— चउरुड्ढलोए—ऊर्ध्वलोक में (मेरु चूलिका आदि पर) चार, समुद्दे--समुद्र से, दुवे—दो, जले--नदी जल शय आदि के जल में, तओ—तीन, अहे—नीचे (खड्डे आदि) से, वीसं--वीस, य, तहेव य, च—और, तिरियलोए--तिर्यग्लोक से, अट्ठुत्तरं सयं—एक सो आठ, एगेग--एक, समएण--समय में, धुवं--निश्चय ही, सिज्झई--सिद्ध हो सकते हैं ॥५५॥

कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ।
कहिं बोंदिं चइत्ताणं, कत्थ गंतूण सिज्झई ।५६।

— सिद्धा—सिद्ध ऊपर जा कर, कहिं—कहाँ, पडिहया-रुके हैं ? सिद्धा— सिद्ध, कहिं—कहाँ, पइट्ठिया—स्थित है और, कहिं—कहाँ, बोंदि—शरीर को, चइत्ताणं—छोड़ कर, कत्थ—कहाँ जा कर, सिज्झई—सिद्ध होते है ? ॥५६॥

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ।
इहं बोंदि चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्झइ ।५७।

— सिद्धा—सिद्ध, अलोए—अलोक में (लोक के अन्त तक) पहुंच कर, पडिहया—रुके है, य—और, लोयग्गे—लोक के अग्रभाग में, पइट्ठिया—स्थित हैं, इहं—इस तिर्यग्लोक में, बोंदि—शरीर को, चइत्ताणं—छोड़ कर, तत्थ—लोक के अग्रभाग में, गंतूण—जा कर, सिज्झई—सिद्ध होते हैं ॥५७॥

बारसहिं जोयणेहिं, सव्वट्ठस्सुवरिं भवे ।
ईसिपब्भार-णामा उ, पुढवी छत्त-संठिया ॥५८॥

— सव्वट्ठस्स—सर्वार्थसिद्ध विमान के, बारसहिं—बारह, जोयणेहिं—योजन, उवरिं—ऊपर, छत्तसंठिया—उत्तान छत्र के आकार की, ईसिपब्भार णामा—ईषत्प्राग्भारा नाम वाली, पुढवी—पृथ्वी, भवे—है ॥५८॥

पणयालसयसहस्सा, जोयणाणं तु आयया ।
तावइयं चेव वित्थिण्णा, तिगुणो साहिय परिरओ ॥

—वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, जोयणाणं पणयालसयसहस्सा—पैंतालीस लाख योजन, आयया—लम्बी है, तु, चेव—और, तावइयं— उतनी ही अर्थात् पैंतालीस लाख योजन ही, वित्थिण्णा—विस्तीर्ण (चोड़ी) है और, परिरओ—उसकी परिधि, तिगुणोसाहिय—कुछ अधिक तीन गुणी है ॥५९॥

अट्ठजोयण-बाहल्ला, सा मज्झम्मि वियाहिया ।
परिहायंती चरिमंते, मच्छिपत्ताउ तणुयरी ॥६०॥

— सा—वह सिद्धशिला, मज्झम्मि—मध्य में, अट्ठ जोयण बाहल्ला—आठ योजन मोटी, वियाहिया—कही गई है और, परिहायंती—चारों ओर से कम होती हुई, चरिमंते—अन्त में, मच्छिपत्ताउ—मक्खी के पंख से भी, तणुयरी—पतली हो गई है ॥६०॥

अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी णिम्मला सहावेणं ।
उत्तणगच्छत्तयसंठिया य, भणिया जिणवरेहिं ॥६१॥

— सा—वह, पुढवी—ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, अज्जुण-सुवण्णगमई—श्वेत सोनेमयी है और, सहावेणं—स्वभाव से ही, णिम्मला—निर्मल हैं, य—और, उत्ताणच्छत्तसंठिया—उत्तान (ऊपर मुख वाले) छत्र के समान हैं। इस प्रकार, जिणवरेहिं—जिनेन्द्रों द्वारा भणिया—कही गई है ॥६१॥

संखककुंदसंकासा, पंडुरा णिम्मला सुहा ।
सीयाए जोयणे तत्तो, लोयंतो उ वियाहिओ ॥६२॥

— वह, संखंककुंदसंकासा--शंख अंकरत्न और कुन्द फूल के समान, पंडुरा—श्वेत, णिम्मला—निर्मल और शुभ्र है। तत्तो--उस, सीयाए—सीता (ईषत्प्राग्भारा) पृथ्वी से, जोयणे—एक योजन ऊपर, लोयंतो—लोक का अन्त वियाहिओ-कहा गया है ॥६२॥

जोयणस्स उ जो तत्थ, कोसो उवरिमो भवे ।
तस्स कोसस्स छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥६३॥

— तत्थ— वहाँ, जोयणस्स-- योजन का जो--जो, उवरिमो--ऊपर वाला, कोसो—कोस, भवे—है, तस्स—उस, कोसस्स—कोस के, छब्भाए--छठे भाग में, सिद्धाणोगाहणा-सिद्धों की अवगाहना (अवस्थिति) भवे--है ॥६३॥

तत्थ सिद्धा महाभागा, लोगग्गम्मि पइट्ठिया ।
भवप्पपंचओ मुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥६४॥

— भवप्पपंचओ—संसार के प्रपंच से, मुक्का—मुक्त, सिद्धिं--सिद्धिरूप, वरगइं--श्रेष्ठ गति को, गया---प्राप्त हुए, महाभागा—महा भाग्यशाली, सिद्धा—सिद्ध भगवान्, तत्थ—वहाँ, लोगग्गम्मि—लोक के अग्रभाग पर, पइट्ठिया—विराजमान हैं ॥

उस्सेहो जस्स जो होइ, भवम्मि चरिमम्मि उ ।
तिभागा हीणा तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे ।६५।

— जेसिं--जिन जीवों की, चरिमम्मि—अन्तिम, भवम्मि-

भव में, जो--जितनी, उस्सेहो--ऊँचाई, होइ—होती है, तत्तो-उससे, तिभागहीणा--तीन भाग कम, सिद्धाणोगाहणा--सिद्धों की अवगाहना, भवे---होती है ॥६५॥

एगत्तेण साइया, अपज्जवसिया वि य ।
पुहुत्तेण अणाइया, अपज्जवसिया वि य ॥६६॥

— एगत्तेण—एक सिद्ध की अपेक्षा, साइया—सिद्ध सादि, य--और, अपज्जवसिया वि--अनन्त हैं, पुहुत्तेण--बहुत जीवों की अपेक्षा, अणाइया--अनादि, य--और, अपज्जवसिया वि—अपर्यवसित हैं ॥६६॥

अरूविणो जीवघणा, णाणदंसण-सण्णिया ।
अउलं सुहं संपत्ता, उवमा जस्स णत्थि उ ।६७।

— वे सिद्ध कैसे हैं: -सिद्ध जीव, अरूविणो--अरूपी, जीवघणा—जीव प्रदेशों से सघन, णाणदंसणसण्णिया--ज्ञान-दर्शन सहित हैं, उ—और, अउलं--ऐसे अतुल, सुहं--सुख को, संपत्ता—प्राप्त हुए हैं, जस्स—जिसकी, उवमा-- उपमा, णत्थि--नहीं दी जा सकती अर्थात् सिद्ध भगवान् ऐसे अनन्त आत्मिक सुख युक्त हैं कि जिसकी उपमा संसार के किसी भी पदार्थ से नहीं दी जा सकती ॥६७॥

लोगेगदेसे ते सव्वे, णाणदंसण-सण्णिया ।
संसार-पार-णित्थिण्णा, सिद्धिं वरगइं गया ।६८।

— वह, संखंककुंदसंकासा--शंख अंकरत्न और कु
फूल के समान, पंडुरा—श्वेत, णिम्मला—निर्मल और शु
है। तत्तो--उस, सीयाए—सीता (ईषत्प्राग्भारा) पृथ्वी
जोयणे—एक योजन ऊपर, लोयंतो—लोक का अन्त वियाहिओ
कहा गया है ॥६२॥

जोयणस्स उ जो तत्थ, कोसो उवरिमो भवे ।
तस्स कोसस्स छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥६३॥

— तत्थ— वहाँ, जोयणस्स-- योजन का जो--जो
उवरिमो--ऊपर वाला, कोसो—कोस, भवे—है, तस्स—उस
कोसस्स—कोस के, छब्भाए--छठे भाग में, सिद्धाणोगाहणा-
सिद्धों की अवगाहना (अवस्थिति) भवे--है ॥६३॥

तत्थ सिद्धा महाभागा, लोगग्गम्मि पइट्ठिया ।
भवप्पपंचओ मुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥६४॥

— भवप्पपंचओ--संसार के प्रपंच से, मुक्का—मुक्त,
सिद्धिं--सिद्धिरूप, वरगइं--श्रेष्ठ गति को, गया--प्राप्त हुए,
महाभागा– महा भाग्यशाली, सिद्धा–सिद्ध भगवान्, तत्थ–वहाँ,
लोगग्गम्मि—लोक के अग्रभाग पर, पइट्ठिया–विराजमान हैं ॥

उस्सेहो जस्स जो होइ, भवम्मि चरिमम्मि उ ।
तिभागा हीणा तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे।६५।

— जेसि--जिन जीवों की, चरिमम्मि-अन्तिम, भवम्मि-

भव में, जो--जितनी, उस्सेहो--ऊँचाई, होइ—होती है, तत्तो—उससे, तिभागहीणा—तीन भाग कम, सिद्धाणोगाहणा--सिद्धों की अवगाहना, भवे---होती है ॥६५॥

एगत्तेण साइया, अपज्जवसिया वि य ।
पुहुत्तेण अणाइया, अपज्जवसिया वि य ॥६६॥

— एगत्तेण—एक सिद्ध की अपेक्षा, साइया—सिद्ध सादि, य—और, अपज्जवसिया वि--अनन्त हैं, पुहुत्तेण--बहुत जीवों की अपेक्षा, अणाइया--अनादि, य--और, अपज्जवसिया वि—अपर्यवसित हैं ॥६६॥

अरूविणो जीवघणा, णाणदंसण-सण्णिया ।
अउलं सुहं संपत्ता, उवमा जस्स णत्थि उ ।६७।

— वे सिद्ध कैसे हैं: -सिद्ध जीव, अरूविणो--अरूपी, जीवघणा—जीव प्रदेशों से सघन, णाणदंसणसण्णिया--ज्ञान-दर्शन सहित हैं, उ—और, अउलं—-ऐसे अतुल, सुहं--सुख को, संपत्ता—प्राप्त हुए हैं, जस्स—जिसकी, उवमा-- उपमा, णत्थि--नहीं दी जा सकती अर्थात् सिद्ध भगवान् ऐसे अनन्त आत्मिक सुख युक्त हैं कि जिसकी उपमा संसार के किसी भी पदार्थ से नहीं दी जा सकती ॥६७॥

लोगेगदेसे ते सव्वे, णाणदंसण-सण्णिया ।
संसार-पार-णित्थिण्णा, सिद्धिं वरगइं गया।६८।

— ते—वे, सव्वे—सभी सिद्ध, लोगेगदेसे—लोक के एक देश (लोक के अग्रभाग) में स्थित हैं, णाणदंसणसण्णिया—ज्ञान-दर्शन सहित हैं, संसारपारणित्थिण्णा—संसार के पार पहुँचे हुए हैं और, सिद्धिं—सिद्धि रूप, वरगइं—श्रेष्ठ गति को, गया—प्राप्त हुए हैं ॥६८॥

संसारत्था उ जे जीवा, दुविहा ते वियाहिया।
तसा य थावरा चेव, थावरा तिविहा तहिं।६९।

— संसारत्था—संसारी, जे—जो, जीवा—जीव हैं, ते—वे, दुविहा—दो प्रकार के, वियाहिया—कहे गये हैं, तसा—त्रस, उ उ चेव—और, थावरा—स्थावर। तहिं—उनमें, थावरा—स्थावर जीव, तिविहा—तीन प्रकार के हैं॥

पुढवी आउ-जीवा य, तहेव य वणस्सई।
इच्चेए थावरा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे।७०।

— पुढवी—पृथ्वीकाय, आउजीवा—अप्काय, य तहेव य—और, वणस्सई—वनस्पति काय, इच्चेए—इस प्रकार ये, तिविहा—तीन प्रकार के, थावरा—स्थावर हैं। अब, मे—मुझ से, तेसिं—उनके, भेए—भेदों को, सुणेह—सुनो ॥७०॥

दुविहा पुढवी जीवा य, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥७१॥

— पुढवी जीवा—पृथ्वीकाय के जीव, दुविहा—दो प्रकार के हैं, सुहुमा—सूक्ष्म, य, तहा—और, बायरा—बादर।

एवमेए--इसी प्रकार ये, पज्जत्तमपज्जत्ता—पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से, पुणो--पुनः, दुहा--दो प्रकार के हैं ॥७१॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया।
सण्हा खरा य बोधव्वा, सण्हा सत्तविहा तहिं ।७२।

— जे--जो, बायरा—बादर, पज्जत्ता--पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीव हैं ते—वे, दुविहा—दो प्रकार के, वियाहिया—कहे गये हैं, सण्हा—श्लक्ष्ण (कोमल) उ, य--और खरा--कठिन। तहिं—उन में, सण्हा-कोमल पृथ्वीकाय के, सत्तविहा-सात भेद, बोधव्वा--जानने चाहिए ॥७२॥

किण्हा णीला य रुहिरा, हालिद्दा सुक्किला तहा।
पंडुपणग-मट्टिया, खरा छत्तीसई विहा ॥७३॥

-- किण्हा-- काली, णीला—नीली, रुहिरा—लाल, हलिद्दा--पीली, सुक्किला--श्वेत, य--और, पंडु--पाण्डुर (चन्दन के समान श्वेत) तहा--तथा, पणगमट्टिया--पनकमृत्तिका (अत्यन्त सूक्ष्म रज रूपी मिट्टी)। खरा—खर पृथ्वी, छत्तीसईविहा—छत्तीस प्रकार की है ॥७३॥

पुढवी य सक्करा बालुया य, उवले सिला य लोणसे।
अयतंब तउय सीसग, रुप्पसुवण्णे य वइरे य ॥७४॥

हरियाले हिंगुलुए, मणोसिला सासगंजण-पवाले।
अब्भपडलब्भ बालुय, बायरकाए मणिविहाणा ।७५।

गोमेज्जए य रुयगे, अंके फलिहे य लोहियक्खे य।
मरगय-मसारगल्ले, भुयमोयग-इंदणीले य ॥७६॥
चंदणगेरुय-हंसगब्भे, पुलए सोगंधिए य बोधव्वे।
चंदप्पहवेरुलिए, जलकंते सूरकंते य ॥७७॥

— खर पृथ्वी के ३६ भेद इस प्रकार हैं:— १ पुढवी-शुद्ध पृथ्वी (खान की मिट्टी) २ सक्करा—शर्करा (कंकरीली मिट्टी, मुरड़ आदि) ३ वालुया—वालुका (नदी आदि की रेत) ४ उवले—उपल (पाषाण) ५ सिला—शिला, ६ लोण—लवण ७ ऊसे—ऊस (खारी मिट्टी) ८ अय—लोहा, ९ तंब—ताम्बा, १० तउय—कथीर, ११ सीसग—सीसा, १२ रुप्प—रूपा (चांदी) १३ सुवण्णे—सोना, १४ वइरे—वज्र (हीरा) १५ हरियाले—हरताल, १६ हिंगुलुए-हिंगलू १७ मणोसिला-मनःशिला (मेनसिल) १८ सासग—सासग (जस्त) १९ अंजण—अंजन (सुरमा) २० पवाले—प्रवाल (मूंगा) २१ अब्भपडल—अभ्रपटल (भोडल) २२ अब्भवालुय—अभ्रवालुका (भोडल सहित वालूका) बायरकाए—ये भेद बादर पृथ्वी काया के हैं तथा अब, मणिविहाणे—मणियों के भेद कहे जाते हैं, वे भी पृथ्वीकाया के अन्तर्गत हैं:— २३ गोमेज्जए—गोमेदक, २४ रुयगे—रुचक, २५ अंके—अंक, २६ फलिहे—स्फटिक, २७ लोहियक्खे—लोहिताक्ष, २८ मरगय—मरकत मणि, २९ मसारगल्ले—मसारगल्ल मणि, ३० भुयमोयग—भुजमोचक, ३१ इंदणीले—इन्द्रनील, ३२ चंणदगेरुयहंसगब्भे-

चन्दन रत्न, गेरु रत्न, हंसगर्भ रत्न, ३३ पुलए सोगंधिए—पुलक रत्न, सोगंधिक रत्न ३४ चंदप्पह वेरुलिए—चन्द्रप्रभ रत्न, वैडूर्य रत्न, ३५ जलकंते—जलकान्त मणि, य—और, ३६ सूरकंते—सूर्यकान्त मणि। ये खर पृथ्वीकाय के ३६ भेद, बोधव्वे—जानने चाहिए ॥७३-७७॥

नोट— यद्यपि यहां मणियों के १८ भेद बताये हैं, किन्तु उनका एक-दूसरे में अन्तर्भाव करके यहां १४ भेद ही गिनना चाहिए। ऐसा करने से ही ३६ भेदों की संख्या ठीक हो सकती है, अन्यथा ४० भेद हो जाते हैं।

एए खरपुढवीए, भेया छत्तीसमाहिया।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥७८॥

—एए—ये, खरपुढवीए—खर पृथ्वी के, छत्तीस—छत्तीस, भेया—भेद, आहिया—कहे गये हैं, तत्थ—उनमें, सुहुमा—सूक्ष्म पृथ्वीकाय, अणाणत्ता—भेद-रहित, एगविहं—एक प्रकार की, वियाहिया—कही गई है ॥७८।

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
इत्तो कालविभागं तु, वुच्छं तेसिं चउव्विहं ॥७९॥

—सुहुमा-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय के जीव, सव्वलोगम्मि-सर्व लोक में व्याप्त है, य, तु—और, बायरा—बादर पृथ्वीकाय के जीव लोग देसे—लोक के एक देश में व्याप्त हैं। इत्तो—यहां से आगे, तेसिं—उनका, चउव्विहं—चार प्रकार का, कालविभागं-कालविभाग, वुच्छं—कहूंगा ॥७९॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥८०॥

— संतइं--सन्तति (प्रवाह) की, पप्प--अपेक्षा पृथ्वी काय, अणाईया— अनादि, य--और, अपज्जवसिया वि- अपर्यवसित है। ठिइं--स्थिति की, पडुच्च--अपेक्षा, साईया सादि, य--और, सपज्जवसिया वि--सपर्यवसित है ॥८०॥

बावीससहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ।
आउठिई पुढवीणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ॥८१॥

— पुढवीणं—पृथ्वीकाय के जीवों की, आउठिई—आयु स्थिति, जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं-- अन्तर्मुहूर्त और उक्कोसिया—उत्कृष्ट, वासाण बावीस सहस्साइं-- बाईस हजार वर्ष की, भवे--होती है ॥८१॥

असंखकाल मुक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।
कायठिई पुढवीणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥८२॥

— तं कायं--उस पृथ्वीकाय को, अमुंचओ--न छोड़ने (पृथ्वीकाय से मर कर फिर पृथ्वीकाय में ही उत्पन्न होने) वाले, पुढवीणं--पृथ्वीकाय के जीवों की, कायठिई- कायस्थिति जहण्णिया— जघन्य, अंतोमुहुत्तं— अन्तर्मुहूर्त्त, तु-- और, उक्कोसा--उत्कृष्ट, असंखकालं--असंख्यात काल की है ।८२।

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए, पुढवी जीवाण अंतरं ।८३।

—सए काए—अपनी काया को, विजढम्मि—छोड़ देने पर, पुढवी जीवाण—पृथ्वीकाय के जीवों का, अंतरं—अन्तर, जहण्णयं—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त का और, उक्कोसं—उत्कृष्ट, अणंतकालं—अनन्त काल का है ॥८३॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।८४।

—एएसिं—इन पृथ्वीकाय के जीवों के, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध रसफासओ—रस, स्पर्श, चेव, वावि—और, संठाणादेसओ—संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो—हजारों, विहाणाइं—भेद होते हैं ॥८४॥

दुविहा आउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेव दुहा पुणो ॥८५॥

—आउजीवा—अप्काय के जीव, दुविहा—दो प्रकार के हैं—सुहुमा-सूक्ष्म, उ, तहा—और, बायरा-बादर, एवमेव-इसी प्रकार, ये अप्काय के जीव, पज्जत्तमपज्जत्ता—पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से, पुणो—फिर, दुहा—दो प्रकार के हैं॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, पंचहा ते पकित्तिया।
सुद्धोदए य उस्से य, हरतणू महिया हिमे ।८६।

—जे—जो, बायरा—बादर, पज्जत्ता—पर्याप्त हैं, ते—वे, पंचहा—पाँच प्रकार के; पकित्तिया—कहे गये हैं। यथा—१ सुद्धोदए—शुद्धोदक (मेघ का जल) २ उस्से—ओस, ३ हर-

तणू--हरतनु (प्रातःकाल तृण के ऊपर रही हुई जल की बूंद) ४ महिया—धूंअर, ५ हिमे—बर्फ का पानी ॥८६॥

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।८७।

— तत्थ—उनमें, सुहुमा—सूक्ष्म अप्काय के जीव, अणाणत्ता—भेद-रहित, एगविहं—एक ही प्रकार के, वियाहिया—कहे गये हैं, य—और, सुहुमा—वे सूक्ष्म जीव, सव्वलोगम्मि—सर्वलोक में व्याप्त हैं, बायरा—बादर, लोगदेसे—लोक के एक देश में व्याप्त हैं ॥८७॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साइया, सपज्जवसिया वि य।८८।

— संतइं—सन्तति की, पप्प—अपेक्षा अप्काय के जीव, अणाईया—अनादि, य—और, अपज्जवसिया वि—अपर्यवसित हैं, ठिइं—स्थिति की, पडुच्च—अपेक्षा, साइया—सादि, य—और, सपज्जवसिया वि—सपर्यवसित हैं ॥८८॥

सत्तेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।
आउठिई आऊणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।८९।

— आऊणं—अप्काय के जीवों की, आउठिई—आयुस्थिति, जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त और, उक्कोसिया—उत्कृष्ट, वासाण सत्तेव सहस्साइं—सात हजार वर्ष की है ॥८९॥

असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।
कायठिई आऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ।९०।

— तं कायं—उस अप्काय को, अमुंचओ—न छोड़ने वाले, आऊणं—अप्काय के जीवों की, कायठिई—कायस्थिति, जहण्णयं—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तमुहूर्त, तु- और, उक्कोसं-उत्कृष्ट, असंखकालं—असंख्यात वर्ष की है ॥९०॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।
विजढम्मि सए काए, आउजीवाण अंतरं ।९१।

— सए—अपनी, काए—काया, विजढम्मि—छोड़ कर अन्य काय में जाने और पुनः लौट कर, आउजीवाण—अप्काय के जीवों में आने का, अंतरं—अन्तर, जहण्णयं—जघन्य, अंतोमुहुत्तं-अन्तर्मुहूर्त का और, उक्कोसं-उत्कृष्ट, अणंतकालं-अनन्त काल का है ॥९१॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।९२।

— एएसिं—इन अप्काय के जीवों के, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसफासओ—रस स्पर्श, चेव, वावि—और, संठाणादेसओ— संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो— हजारों, विहाणाइं—भेद हो सकते हैं ॥९२॥

दुविहा वणस्सई जीवा, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ।९३।



— वणस्सई जीवा—वनस्पति काय के जीव, दुविहा-दो प्रकार के हैं-सुहुमा-सूक्ष्म, तहा-और, बायरा- बादर,एवमेए-इसी प्रकार ये वनस्पति काय के जीव, पज्जत्तमपज्जत्ता-पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से, पुणो—फिर, दुहा—दो प्रकार के हैं ।.९३।।

बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया ।
साहारण-सरीरा य, पत्तेगा य तहेव य ।९४।

— जे—जो, बायरा—बादर, पज्जत्ता—पर्याप्त हैं, ते—वे, दुविहा—दो प्रकार के, वियाहिया—कहे गये हैं—साहारणसरीरा--साधारण शरीर, उ, य, य, तहेव य—और, पत्तेगा—प्रत्येक शरीर ।।९४।।

पत्तेग-सरीराओ, णेगहा ते पकित्तिया ।
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य, लया वल्ली तणा तहा ।९५।

— जो वनस्पति जीव, पत्तेगसरीराओ—प्रत्येक शरीर हैं, ते--वे, अणेगहा—अनेक प्रकार के, पकित्तिया—कहे गए हैं। यथा:—रुक्खा—वृक्ष, गुच्छा— गुच्छे, गुम्मा— गुल्म (नवमल्लिका आदि) लया—लता (चम्पक लता आदि) वल्ली--बेल (ककड़ी आदि की बेल) य, य, तहा—और, तणा—तृण (घास) ।।९५।।

वलया-पव्वगा कुहणा, जलरुहा ओसही तहा ।
हरिय-काया उ बोधव्वा, पत्तेगाइ वियाहिया ।९६।

-- वलया--वलय (नारियल केल आदि) पव्वगा—पर्वज (गांठ से उत्पन्न होने वाले ईख बांस आदि) कुहणा-कुहणा (पृथ्वी को फोड़ कर उत्पन्न होने वाली छत्राकार वनस्पति) जलरुहा--जलरुह (जल में उत्पन्न होने वाले कमल आदि) ओसही--ओषधि (धान्य आदि) तहा, उ--और, हरियकाया-हरितकाय (हरे शाक आदि) बोधव्वा—जानने चाहिए। इस प्रकार, पत्तेगाइ—प्रत्येक वनस्पति के भेद, वियाहिया--कहे गये हैं ॥९६॥

साहारणसरीराओ, णेगहा ते पकित्तिया।
आलुए मूलए चेव, सिंगबेरे तहेव य ।९७।
हरिली सिरिली सिस्सरिली, जावई केयकंदली।
पलंडु-लसण कंदे य, कंदली य कुहुव्वए ।९८।
लोहिणी हूयथी हूय, कुहगा य तहेव य।
कण्हे य वज्जकंदे य, कंदे सूरणए तहा ।९९।
अस्सकण्णी य बोधव्वा, सीहकण्णी तहेव य।
मुसुंढी य हलिद्दा य, णेगहा एवमायओ ।१००।

— जो वनस्पति जीव, साहारणसरीराओ-- साधारण शरीर वाले हैं, ते—वे, अणेगहा--अनेक प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं। यथा:--आलुए—आलू, मूलए-- मूला, सिंगबेरे-शृंगबेर (अदरक) हरिली— हरिली, सिरिली--सिरिली सिस्सरिली—सिसरिली, जावई--जावंत्रीकन्द, केयकन्दली--

केतकन्दली, पलंडु--प्याज (कांदा) लसणकंदे—लहसन कन्द, कंदली--कन्दली, कुहुव्वए— कुहुव्रत, लोहिणी-- लोहिणी, हूयथी--हुताक्षी, हूय—हुत, कुहगा--कुहक, कण्हे--कृष्ण-कन्द, वज्जकंदे-वज्रकन्द, सुरणएकंदे—सुरण कन्द, अस्सकण्णी-अश्वकर्णी, सीहकण्णी— सिहकर्णी, मुसुंढी— मुसुण्ढी, चेव, तहेव, य, य, य, य, तहेव य, य, य, तहा, य, तहेव य--ओर, हलिद्दा—हलदी, एवमायओ--इत्यादि, अणेगहा—अनेक प्रकार के भेद, बोधव्वा—जानने चाहिए ।।९७-१००।।

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ।१०१।

— तत्थ—उनमें, सुहुमा—सूक्ष्म वनस्पति काय के जीव, अणाणत्ता--भेद-रहित, एगविहं-एक ही प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं। सुहुमा-सूक्ष्म वनस्पतिकाय के जीव, सव्वलोगम्मि-सर्व लोक में व्याप्त हैं, य--और, बायरा—बादर जीव, लोगदेसे—लोक के एक देश में व्याप्त हैं ।।१०१।।

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साइया, सपज्जवसिया वि य ।१०२।

— संतइं—सन्तति (प्रवाह) की, पप्प--अपेक्षा वनस्पति-काय के जीव, अणाईया—अनादि, य- ओर, अपज्जवसिया वि-अनन्त हैं, य—और, ठिइं—स्थिति की, पडुच्च-- अपेक्षा, साइया—सादि और, सपज्जवसिया वि--सान्त हैं ।।१०२।।

दस चेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ।
वणस्सईण आउं तु, अंतोमुहुत्तं जहण्णियं ।१०३।

— वणस्सईण—वनस्पतिकाय के जीवों को, उक्कोसिया—उत्कृष्ट, आउ—आयु, वासाण दस सहस्साइं—दस हजार वर्ष, चेव, तु—और, जहण्णियं—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त की, भवे—है ।।१०२।

अणंतकालमुक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहण्णया ।
कायठिई पणगाणं, तं कायं तु अमुंचओ ।१०४।

— तं कायं—उस वनस्पतिकाय को, अमुंचओ—न छोड़ते हुए, पणगाणं—पनक, लीलण-फूलण निगाद आदि) की, उक्कोसा—उत्कृष्ट, कायठिई—कायस्थिति, अणंतकालं—अनन्त काल की, तु—और, जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त की है ।।१०४।।

असंखकालमुक्कोसं, अंत्तोमुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए, पणगजीवाण अंतरं ।१०५।

— सए—अपनी, काए—काया को, विजढम्मि—छोड़ देने पर, पणगजीवाण—पनक (लीलण फूलण निगोद आदि) जीवों का, उक्कोसं—उत्कृष्ट, अंतरं—अन्तर, असंखकालं—असंख्यात काल, जहण्णयं—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त है।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।१०६।

— एएसिं—इन वनस्पतिकाय के जीवों के, वण्णओ-वर्ण, गंधओ--गन्ध, रसफासओ--रस, स्पर्श, चेव, वावि-और, संठाणादेसओ--संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो--हजारं विहाणाइं--भेद होते हैं ॥१०६॥

इच्चेए थावरा तिविहा, समासेण वियाहिया ।
इत्तो उ तसे तिविहे, वुच्छामि अणुपुव्वसो ।१०७।

— इच्चेए--इस प्रकार इन, तिविहा--तीन प्रकार के, थावरा--स्थावर जीवों का, समासेण--संक्षेप से, वियाहिया-वर्णन किया गया है उ--और अब, इत्तो--इसके आगे, तिविहे-तीन प्रकार के, तसे--त्रस जीवों का, अणुपुव्वसो--अनुक्रम से, वुच्छामि—वर्णन करूँगा ॥१०७॥

तेऊ वाऊ य बोधव्वा, उराला य तसा तहा ।
इच्चेए तसा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ।१०८।

— तेऊ— तेउकाय (अग्निकाय) वाऊ-- वायुकाय, य, य, तहा--और, उराला—प्रधान, तसा—त्रस । इच्चेए—इस प्रकार ये, तिविहा—तीन प्रकार के, तसा--त्रस जीव हैं । तेसिं--उनके, भेए—भेदों को, मे--मुझ से, सुणेह—सुनो ॥

दुविहा तेऊ जीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ।१०९।

-- तेऊ जीवा--अग्निकाय के जीव, दुविहा--दो प्रकार

के, सुहुमा—सूक्ष्म, उ, तहा—और, बायरा—बादर पुणो—पुनः एवं—इसी प्रकार, पज्जत्तमपज्जत्ता—पर्याप्त और अपर्याप्त, एए—ये, दुहा—दो प्रकार के कहे गये हैं ॥१०९॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, णेगहा ते वियाहिया।
इंगाले मुम्मुरे अगणी, अच्चिजाला तहेव य ।११०।

— जे—जो, बायरा—बादर, पज्जत्ता—पर्याप्त अग्निकाय के जीव हैं, ते—वे अणेगहा-अनेक प्रकार के, वियाहिया—कहे हैं। यथा:— इंगाले—अंगार (धूम-रहित अग्नि) मुम्मुरे—मुर्मुर (अग्निकण) अगणी—अग्नि, अच्चि—अर्चि (अग्नि-शिखा) उ, तहेव य—और, जाला—ज्वाला। ११०॥

उक्का विज्जू य बोधव्वा, णेगहा एवमायओ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया ।१११।

— उक्का—उल्कापात की अग्नि, य—और, विज्जू—विद्युत् की अग्नि, एवमायओ—इस प्रकार अग्नि के, अणेगहा—अनेक भेद, बोधव्वा—जानने चाहिए। ते—वे, सुहुमा—सूक्ष्म अग्निकाय के जीव। अणाणत्ता—नाना भेद-रहित, एगविहं—एक ही प्रकार के, वियाहिया—कहे गये हैं ॥१११॥

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ।११२।

— सुहुमा—सूक्ष्म अग्निकाय के जीव, सव्वलोगम्मि—

सर्व लोक में व्याप्त हैं, तु, य--और, बायरा--बादर जीव, लोगदेसे--लोक के एक देश में व्याप्त हैं। इत्तो--अब आगे, तेसिं--उन जीवों का, चउव्विहं-चार प्रकार का, कालविभागं-कालविभाग, वुच्छं--बताऊंगा ॥११२॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ।११३।

— अग्निकाय के जीव, संतइं—परम्परा की, पप्प--अपेक्षा, अणाइया—अनादि, य—और, अपज्जवसिया वि—अनन्त हैं। ठिइं--स्थिति की, पडुच्च—अपेक्षा, साईया--सादि, य--और, सपज्जवसिया वि—सान्त हैं ॥११३॥

तिण्णेव अहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई तेऊणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।११४।

— तेऊणं--अग्निकाय के जीवों की, उक्कोसेण—उत्कृष्ट, आउठिई—आयु-स्थिति. तिण्णेव--तीन, अहोरत्ता—अहोरात्र (दिन-रात) और, जहण्णिया--जघन्य, अंतोमुहुत्तं-अन्तर्मुहूर्त्त की, वियाहिया--कही गई हैं ॥११४॥

असंखकालमुक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।
कायठिई तेऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ।११५।

— तं कायं—उस अग्निकाय को, अमुंचओ—न छोड़ते हुए, तेऊणं—अग्निकाय के जीवों की, कायठिई—कायस्थिति, उक्कोसा—उत्कृष्ट, असंखकालं--असंख्यात काल की, तु—

ओर, जहण्णिया--जघन्य, अंतोमुहुत्तं--अन्तर्मुहूर्त्त की है।११५।

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।
विजढम्मि सए काए, तेऊ जीवाण अंतरं।११६।

-- सए--अपनी, काए--काया को, विजढम्मि--छोड़ देने पर, तेऊजीवाण--अग्निकाय के जीवों का, उक्कोसं--उत्कृष्ट, अंतरं--अन्तर, अणंतकालं--अनन्त काल का ओर, जहण्णयं--जघन्य, अंतोमुहुत्तं--अन्तर्मुहूर्त्त का है ॥११६॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो।११७।

-- एएसिं--इन अग्निकाय के जीवों के, वण्णओ--वर्ण, गंधओ--गन्ध, रसफासओ--रस, स्पर्श, चेव, वावि--और, संठाणादेसओ - संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो-- हजारों, विहाणाइं--भेद होते हैं ॥११७॥

दुविहा वाउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेव दुहा पुणो।११८।

-- वाउजीवा- वायुकाय के जीव, दुविहा- दो प्रकार के हैं। सुहुमा-सूक्ष्म, उ, तहा-ओर, बायरा--बादर। पुणो-पुनः, एवं--इसी प्रकार, पज्जत्तमपज्जत्ता--पर्याप्त ओर अपर्याप्त के भेद से, एए-- ये वायुकाय के जीव, दुहा-- दो प्रकार के हैं ॥११८॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, पंचहा ते पकित्तिया।
उक्कलिया मंडलिया, घणगुंजा सुद्धवाया य।११९।

— जे--जो, बायरा--बादर, पज्जत्ता--पर्याप्त वायु-काय के जीव हैं, ते--वे, पंचहा--पाँच प्रकार के पकित्तिया-कहे गये, हैं। यथा:--उक्कलिया—उत्कलिका (ऐसी वायु जो रुक-रुक कर चले) मंडलिया—मंडलिका (ऐसी वायु जो चक्र खाती हुई चले), घण--घनवायु, गुंजा-गुंजा वायु (जो चलती हुई गुंजार शब्द करे) उ, य—और, सुद्धवाया--शुद्ध वायु॥

संवट्टगवाया य, णेगहा एवमायओ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया।१२०।

—संवट्टगवाया--संवर्तक वायु (जो तृणादि को उड़ा कर विवक्षित क्षेत्र में डाल देती है) एवमायओ—इस प्रकार वायुकाय के, अणेगहा—अनेक भेद हैं। तत्थ—उनमें, सुहुमा-सूक्ष्म वायुकाय, अणाणत्ता—नाना भेद-रहित, एगविहं--एक ही प्रकार की, वियाहिया—कही गई है॥१२०॥

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं।१२१।

— सुहुमा—सूक्ष्म वायुकाय के जीव, सव्वलोगम्मि--सर्व लोक में व्याप्त हैं, य—और, बायरा—बादर, लोगदेसे-लोक के एक देश में व्याप्त हैं। इत्तो--अब इसके आगे, तेसिं—उन वायुकाय के जीवों के, चउव्विहं--चार प्रकार

के, कालविभागं—कालविभाग, वुच्छं--बतलाऊँगा ॥१२१॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ।१२२।

— संतइं--परम्परा की, पप्प- अपेक्षा वायुकाय के जीव, अणाईया--अनादि, य--और, अपज्जवसिया वि—अनन्त हैं और, ठिइं-- स्थिति की, पडुच्च--अपेक्षा, साईया--सादि, य--ओर, सपज्जवसिया वि—सान्त हैं ॥१२२॥

तिण्णेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ।
आउठिई वाऊणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।१२३।

— वाऊणं—वायुकाय के जीवों की, उक्कोसिया—उत्कृष्ट, आउठिई--आयुस्थिति, वासाण तिण्णेव सहस्साइं—तीन हजार वर्ष और, जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं--अन्तर्मुहूर्त्त की, भवे--होती है ॥१२३॥

असंखकालमुक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहण्णया ।
कायठिई वाऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ।१२४।

— तं कायं--उस वायुकाय को, अमुंचओ—न छोड़ने वाले, वाऊणं--वायुकाय के जीवों की, उक्कोसा—उत्कृष्ट, कायठिई—कायस्थिति, असंखकालं--असंख्यात काल की और, जहण्णया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं--अन्तर्मुहूर्त्त की है ॥१२४॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए, वाऊजीवाण अंतरं ।१२५।

— सए--अपनो, काए-- काया विजढम्मि--छोड़ने पर वाऊजीवाण--वायुकाय के जीवों का, उक्कोसं--उत्कृष्ट, अंतरं--अन्तर, अणंतकालं—अनन्त काल का है और, जहण्णयं-जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त का ॥१२५॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो।१२६।

— एएसिं-- इन वायुकाय के, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसफासओ--रस, स्पर्श, चेव, वावि—और, संठाणादेसओ—संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो—हजारों, विहाणाइं-भेद हो जाते है ॥१२६॥

उराला तसा जे उ, चउहा ते पकित्तिया।
बेइंदिया तेइंदिया, चउरो पंचिंदिया चेव।१२७।

— जे—जो, उराला—प्रधान, तसा—त्रस हैं, ते--वे, चउहा—चार प्रकार के, पकित्तिया—कहे हैं। यथा—-बेइंदिया- बेइन्द्रिय, तेइंदिया--त्रीन्द्रिय, चउरो--चतुरिन्द्रिय, उ, चेव--और, पंचिंदिया--पञ्चेन्द्रिय ॥१२७॥

बेइंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे।१२८।

— जे--जो, बेइंदिया—बेइन्द्रिय, जीवा--जीव हैं, ते-वे, दुविहा--दो प्रकार के, पकित्तिया—कहे गये हैं यथा—पज्जत्तमपज्जत्ता--पर्याप्त और अपर्याप्त। उ—अब, तेसिं—

नके, भेए—भेद, मे—मुझसे, सुणेह—सुनो ॥१२८॥

किमिणो सोमंगला चेव, अलसा माइवाहया ।
वासीमुहा य सिप्पीया, संखा संखणगा तहा ॥१२९॥
पल्लोयाणुल्लया चेव, तहेव य वराडगा ।
जलूगा जालगा चेव, चंदणा य तहेव य ॥१३०॥
इह बेइंदिया एए, णेगहा एवमायओ ।
लोगेगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया ॥१३१॥

— किमिणो—कृमि (विष्ठादि में उत्पन्न होने वाले कीड़े) सोमंगला—सुमंगल, अलसा—अलसिया (वर्षा के समय उत्पन्न होने वाला जीव) माइवाहया—मातृवाहक (काष्ठादि में लगने वाला घुन) वासीमुहा—वासीमुख, सिप्पिया—सीप, संखा—शंख, संखणगा—शंखानक (शंख के आकार के छोटे जीव) पल्लोया—पल्लक, अणुल्लया—अनुल्लक, वराडगा—वराटक (कौड़ी) जलूगा—जोंक, जालगा—जालक, चेव, य, तहा, चेव, तहेव य, चेव, य तहेव य—और, चंदणा—चंदनिया। इह—इस प्रकार, एए—ये, एवमायओ—इत्यादि, बेइंदिया—द्वीन्द्रिय जीव, अणेगहा—अनेक प्रकार के हैं, ते—वे, सव्वे—सभी, लोगेगदेसे—लोक के एक देश मे, वियाहिया—कहे गये हैं, किन्तु, ण सव्वत्थ—सर्वत्र व्याप्त नहीं हैं ॥१२९-१३१॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१३२॥

— द्वीन्द्रिय जीव संतइं--संतति की, पप्प- अपेक्षा, अणाईया--अनादि य -और, अपज्जवसिया वि-- अनन्त हैं, य—और, ठिइं--स्थिति की, पडुच्च--अपेक्षा, साईया—सादि और सपज्जवसिया वि--सान्त हैं ।१३२।

वासाइं बारसा चेव, उक्कोसेण वियाहिया ।
बेइंदिय-आउठिई, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।१३३।

— बेइंदिय—द्वीन्द्रिय जीवों की, उक्कोसेण—उत्कृष्ट, आउठिई—आयुस्थिति, बारसा—बारह, वासाइं- वर्ष है, चेव-और, जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त, है ॥१३३॥

संखिज्जकालमुक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।
बेइंदिय कायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ।१३४।

— तं कायं—उस काय को, अमुंचओ—न छोड़ने वाले अर्थात् द्वीन्द्रिय जीव यदि द्वीन्द्रिय जाति में ही जन्म-मरण करते रहे तो, बेइंदिय— उन द्वीन्द्रिय जीवों की, कायठिई—काय स्थिति, जहण्णिया--जघन्य अंतोमुहुत्तं--अन्तर्मुहूर्त और, उक्कोसा—उत्कृष्ट, संखिज्जकालं—संख्यात काल है ॥१३४॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।
बेइंदिय-जीवाणं, अंतरं च वियाहियं ।१३५।

— बेइंदिय जीवाणं—द्वीन्द्रिय जीवों का, जहण्णयं—जघन्य, अंतरं—अन्तर, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त, च—और, उक्कोसं- उत्कृष्ट, अणंतकालं—अनन्त काल का, वियाहियं—कहा गया है ॥१३५॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।१३६।

— एएसि—इन द्वीन्द्रिय जीवों के वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध रसफासओ—रस स्पर्श, चेव, वावि—और, संठाणादेसओ—संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो—हजारों, विहाणाइं—भेद होते हैं ॥१३६॥

तेइंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ।१३७।

तेइंदिया—तेइन्द्रिय जे—जो, जीवा—जीव हैं, ते-वे, पज्जत्तमपज्जत्ता—पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से, दुविहा—दो प्रकार के, पकित्तिया—कहे गये हैं। उ—अब, मे—मुझसे, तेसिं—उनके, भेए—भेदों को सुणेह—सुनो ॥१३७॥

कुंथुपिवीलिउड्डंसा, उक्कलुद्देहिया तहा।
तणहारा कट्ठहारा य, मालूगा पत्तहारगा ।१३८।
कप्पासट्ठिम्मिजाया, तिंदुगा तउसमिंजगा।
सदावरी य गुम्मी य, बोधव्वा इंदगाइया ।१३९।
इंदगोवगमाइया, णेगहा एवमायओ।
लोगेगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया ।१४०।

— कुंथु—कुन्थुवा, पिवीलि—पिपीलिका (कीड़ी) उड्डंसा—उद्दंस (चांचड़) उक्कल—उक्कलिया, उद्देहिया—उदई, तणहारा—तृणहारक, कट्ठहारा—काष्ठहारक, मालूगा-

मालूक, पत्तहारगा—पत्रहारक, कप्पासट्ठिमिंजाया--कपास के बीज में उत्पन्न होने वाले जीव, तिंदुगा--तिन्दुक, तउसमिंजगा--त्रपूष मिंजक, सदावरी--सदावरी, गुम्मी--गुल्मी (कानखजूरा) इंदगाइया—इन्द्रकायिक, तहा य, य, य—और, इंदगोवगमाइया--इन्द्रगोप, एवमायओ—इत्यादि, अणेगहा—अनेक प्रकार के तेइन्द्रिय जीव, बोधव्वा—जानने चाहिए। ते-- वे, सव्वे— सब, लोगेगदेसे—लोक के एक देश में, वियाहिया--कहे गये हैं किन्तु, ण सव्वत्थ—सर्वत्र नहीं हैं ॥

संतइं पप्पणाईया, अप्पज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साइया, सप्पज्जवसिया वि य ।१४१।

— ये सभी तेइन्द्रिय जीव, संतइं—सन्तति की, पप्प--अपेक्षा, अणाईया—अनादि, य--ओर, अपज्जवसिया वि—अनन्त हैं, य—और, ठिइं—स्थिति की, पडुच्च—अपेक्षा, साईया—सादि और, सपज्जवसिया वि—सान्त हैं ॥१४१॥

एगूणपण्णहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया ।
तेइंदिय-आउठिई, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।१४२।

-- तेइंदिय-तेइन्द्रिय जीवों की, उक्कोसेण--उत्कृष्ट, आउठिई— आयु-स्थिति, एगूणपण्णहोरत्ता-- उनपचास दिन है और, जहण्णिया--जघन्य, अंतोमुहुत्तं— अन्तर्मुहूर्त्त की, वियाहिया—कही गई है ॥१४२॥

संखिज्जकालमुक्कोसा, अंतोमहुत्तं जहण्णिया।
तेइंदिय-कायठिई, तं कायं तु अमुंचओ।१४३।

— तं—उस, कायं—काया को, अमुंचओ—न छोड़ने वाले, तेइंदिय—तेइन्द्रिय जीवों की, उक्कोसा— उत्कृष्ट, कायठिई—कायस्थिति संखिज्जकालं—संख्यात काल की है, तु—और जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त की है॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।
तेइंदिय-जीवाणं, अंतरं तु वियाहियं।१४४।

— तेइंदिय जीवाणं—तेइन्द्रिय, जीवों का, उक्कोसं—उत्कृष्ट अंतरं—अन्तरकाल, अणंतकालं—अनन्त काल का है और जहण्णयं—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त का है।१४४।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो।१४५।

— एएसिं—इन तेइन्द्रिय जीवों के, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसफासओ—रस स्पर्श, चेव, वावि—और, संठाणादेसओ— संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो— हजारों विहाणाइं—भेद होते हैं॥१४५॥

चउरिंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे।१४६।

— जे—जो, जीवा—जीव, चउरिंदिया— चोरिन्द्रिय

मालूक, पत्तहारगा—पत्रहारक, कप्पासट्ठिम्मिजाया--कपास के बीज में उत्पन्न होने वाले जीव, तिंदुगा--तिन्दुक, तउस मिजगा--त्रपूप मिजक, सदावरी--सदावरी, गुम्मी--गुल्मी (कानखजूरा) इंदगाइया—इन्द्रकायिक, तहा य, य, य—और, इदगोवगमाइया--इन्द्रगोप, एवमायओ—इत्यादि, अणेगहा—अनेक प्रकार के तेइन्द्रिय जीव, बोधव्वा—जानने चाहिए। ते-- वे, सव्वे— सब, लोगेगदेसे—लोक के एक देश में, वियाहिया--कहे गये हैं किन्तु, ण सव्वत्थ—सर्वत्र नहीं हैं॥

संतइं पप्पणाईया, अप्पज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साइया, सप्पज्जवसिया वि य।१४१।

— ये सभी तेइन्द्रिय जीव, संतइं—सन्तति की, पप्प--अपेक्षा, अणाईया—अनादि, य--और, अपज्जवसिया वि—अनन्त हैं, य—और, ठिइं--स्थिति की, पडुच्च—अपेक्षा, साईया—सादि और, सपज्जवसिया वि—सान्त हैं॥१४१॥

एगूणपण्णहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
तेइंदिय-आउठिई, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।१४२।

-- तेइंदिय-तेइन्द्रिय जीवों की, उक्कोसेण--उत्कृष्ट, आउठिई— आयु-स्थिति, एगूणपण्णहोरत्ता-- उनपचास दिन है और, जहण्णिया--जघन्य, अंतोमुहुत्तं— अन्तर्मुहुर्त्त की, वियाहिया—कही गई है॥१४२॥

संखिज्जकालमुक्कोसा, अंतोमहुत्तं जहण्णया ।
तेइंदिय-कायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ।१४३।

— तं—उस, कायं—काया को, अमुंचओ—न छोड़ने वाले, तेइंदिय—तेइन्द्रिय जीवों की, उक्कोसा— उत्कृष्ट, कायठिई—कायस्थिति संखिज्जकालं—संख्यात काल की है, तु—और जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त की है ॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।
तेइंदिय-जीवाणं, अंतरं तु वियाहियं ।१४४।

— तेइंदिय जीवाणं—तेइन्द्रिय, जीवों का, उक्कोसं—उत्कृष्ट अंतरं—अन्तरकाल, अणंतकालं—अनन्त काल का है और जहण्णयं—जघन्य, अंत्तोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त का है ।१४४।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।१४५।

—एएसिं—इन तेइन्द्रिय जीवों के, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसफासओ—रस स्पर्श, चेव, वावि—और, संठाणादेसओ— संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो— हजारों विहाणाइं—भेद होते हैं ॥१४५॥

चउरिंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ।१४६।

— जे—जो, जीवा—जीव, चउरिंदिया— चौरिन्द्रिय

मालूक, पत्तहारगा—पत्रहारक, कप्पासट्ठिम्मिजाया—कपास के बीज में उत्पन्न होने वाले जीव, तिंडुगा—तिन्दुक, तउसमिजगा—त्रपुष मिंजक, सदावरी—सदावरी, गुम्मी—गुल्मी (कानखजूरा) इंदगाइया—इन्द्रकायिक, तहा य, य, य—और, इंदगोवगमाइया—इन्द्रगोप, एवमायओ—इत्यादि, अणेगहा—अनेक प्रकार के तेइन्द्रिय जीव, बोधव्वा—जानने चाहिए। ते—वे, सव्वे—सब, लोगेगदेसे—लोक के एक देश में, वियाहिया—कहे गये हैं किन्तु, ण सव्वत्थ—सर्वत्र नहीं हैं॥

संतइं पप्पणाईया, अप्पज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साइया, सप्पज्जवसिया वि य।१४१।

— ये सभी तेइन्द्रिय जीव, संतइं—सन्तति की, पप्प—अपेक्षा, अणाईया—अनादि, य—और, अपज्जवसिया वि—अनन्त हैं, य—और, ठिइं—स्थिति की, पडुच्च—अपेक्षा, साईया—सादि और, सपज्जवसिया वि—सान्त हैं॥१४१॥

एगूणपण्णहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
तेइंदिय-आउठिई, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।१४२।

— तेइंदिय-तेइन्द्रिय जीवों की, उक्कोसेण—उत्कृष्ट, आउठिई—आयु-स्थिति, एगूणपण्णहोरत्ता—उनपचास दिन है और, जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त की, वियाहिया—कही गई है॥१४२॥

संखिज्जकालमुक्कोसा, अंतोमहुत्तं जहण्णिया।
तेइंदिय-कायठिई, तं कायं तु अमुंचओ।१४३।

— तं—उस, कायं—काया को, अमुंचओ—न छोड़ने वाले, तेइंदिय—तेइन्द्रिय जीवों की, उक्कोसा— उत्कृष्ट, कायठिई—कायस्थिति संखिज्जकालं—संख्यात काल की है, तु—और जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त की है॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।
तेइंदिय-जीवाणं, अंतरं तु वियाहियं।१४४।

— तेइंदिय जीवाणं—तेइन्द्रिय, जीवों का, उक्कोसं—उत्कृष्ट अंतरं—अन्तरकाल, अणंतकालं—अनन्त काल का है और जहण्णयं—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त का है।१४४।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो।१४५।

—एएसिं—इन तेइन्द्रिय जीवों के, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसफासओ—रस स्पर्श, चेव, वावि—और, संठाणादेसओ— संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो— हजारों विहाणाइं—भेद होते हैं॥१४५॥

चउरिंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे।१४६।

— जे—जो, जीवा—जीव, चउरिंदिया— चोरिन्द्रिय

(शरीर, रसना, घ्राण और चक्षु इन चार इन्द्रियों वाले) हैं, ते—वे, दुविहा—दो प्रकार के, पकित्तिया--कहे गये हैं। यथा:—पज्जत्तमपज्जता-- पर्याप्त और अपर्याप्त, उ—अब, मे--मुझसे, तेसिं—उनके, भेए--भेद, सुणेह--सुनो ॥१४६॥

अंधिया पोत्तिया चेव, मच्छिया मसगा तहा।
भमरे कीडपयंगे य, ढिंकुणे कुंकुणे तहा।१४७।
कुक्कुडे सिंगिरीडी य, णंदावत्ते य विच्छुए।
डोले भिंगिरीडो य, विरिली अच्छिवेहए।१४८।
अच्छिले माहले अच्छि, रोडए विचित्ते चित्तपत्तए।
ओहिंजलिया जलकारी य, णियया तंबगाइया।१४९।
इय चउरिंदिया एए, णेगहा एवमायओ।
लोगेगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया।१५०।

— अंधिया--अन्धिक, पोत्तिया—पोतिक, मच्छिया—मक्षिका (मक्खी) मसगा – मच्छर, भमरे-- भ्रमर, कीड – कीड़ा, पयंगे-पतंगिया, ढिंकुणे—ढिंकुण, कुंकणे— कुंकण, कुक्कुडे--कुकुट, सिंगिरीडी – सिंगरीटी, णंदावत्ते—नन्दावर्त्त, विच्छुए-- बिच्छू, डोले-- डोला, भिंगिरीडी— भृंगरिटी (झिंगुर) विरिली—विरली, अच्छिवेहए--अक्षिवेधक (अँख फोड़ा) अच्छिले—अक्षिल, माहले--माहल, अच्छिरोडए--अक्षिरोड़क, विचित्ते चित्तपत्तए– विचित्रचित्रपत्रक, (रंग बिरंगी तितलियाँ) ओहिंजलिया—उपधिजलक, जलकारी—जलकारी

णीयया- नीचक, चेव, तहा, य, तहा, य—और, तंबगाइया—ताम्रक, इय एवमायओ—आदि, एए—ये, चउरिंदिया—चतुरिन्द्रिय जीव अणेगहा—अनेक प्रकार के हैं ते—वे, सव्वे—सब लोगेगदेसे—लोक के एक देश में व्याप्त हैं किन्तु, सव्वत्थ—सर्वत्र, ण—नहीं, वियाहिया- कहे गये हैं ‡ ॥१४७-१५०॥

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ।१५१।

— संतइं—प्रवाह की, पप्प—अपेक्षा चतुरिन्द्रिय जीव, अणाईया—अनादि, य—और, अपज्जवसिया वि—अनन्त हैं, य—और, ठिइं—स्थिति की, पडुच्च—अपेक्षा, साईया—सादि और, सपज्जवसिया वि—सान्त हैं ॥१५१॥

छच्चेव य मासा उ, उक्कोसेण वियाहिया ।
चउरिंदिय आउठिई, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।१५२।

— चउरिंदिय—चतुरिन्द्रिय जीवों की, उक्कोसेण—उत्कृष्ट, आउठिई—आयु-स्थिति, छच्चेव—छह, मासा—महीने की, य—और, जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त की, वियाहिया—कही गई है ॥१५२॥

संखिज्जकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णियं ।
चउरिंदिय-कायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ।१५३।

‡ उपरोक्त चतुरिन्द्रिय जीवों में कुछ नाम तो प्रसिद्ध हैं और कुछ अप्रसिद्ध हैं ।

— तं—उस, कायं--काया को, अमुंचओ—न छोड़ने वाले, चउरिंदिय--चतुरिन्द्रिय जीवों की, उक्कोसा--उत्कृष्ट, कायठिई—कायस्थिति संखिज्जकालं--संख्यात काल और, जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं--अन्तर्मुहूर्त्त की है ॥१५३॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।
विजढम्मि सए काए, अंतरं च वियाहियं ।१५४।

— सए--अपनी, काए--काया को, विजढम्मि--छोड़ने पर चतुरिन्द्रिय जीवों का, उक्कोसं--उत्कृष्ट, अंतरं--अन्तर, अणंतकालं--अनन्त काल का है, च—और, जहण्णयं—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त का है ॥१५४॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।१५५।

— एएसिं--इन चतुरिन्द्रिय जीवों के, वण्णओ--वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसफासओ—रस, स्पर्श, चेव, वावि—और, संठाणादेसओ— संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो-- हजारों, विहाणाइं--भेद होते हैं ॥१५५॥

पंचिंदिया उ जे जीवा, चउव्विहा ते वियाहिया।
णेरइया तिरिक्खा य, मणुया देवा य आहिया ।१५६।

— जे—जो, जीवा— जीव, पंचिंदिया-- पञ्चेन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कान, इन पांच इन्द्रियों वाले

ते—वे, चउव्विहा—चार प्रकार के, वियाहिया—कहे हैं। णेरइया—नारकी, तिरिक्खा—तिर्यञ्च, मणुया—मनुष्य, य—और, देवा—देव ॥१५६॥

णेरइया सत्तविहा, पुढवीसु सत्तसू भवे।
रयणाभसक्कराभा, वालुयाभा य आहिया ।१५७।
पंकाभा धूमाभा, तमा तमतमा तहा।
इइ णेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया ।१५८।

— णेरइया-नैरयिक जीव, सत्तविहा- सात प्रकार के, आहिया- कहे गये हैं जो, सत्तसु- सात, पुढवीसु—पृथ्वियों में, भवे-होते हैं। उन सात पृथ्वियों के नाम इस प्रकार हैं:— रयणाभसक्कराभा—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुयाभा—वालुकाप्रभा, पंकाभा-पंकप्रभा, धूमाभा—धूमप्रभा, तमा-तमः प्रभा, य, तहा—और, तमतमा—तमतमा प्रभा, इइ- इस प्रकार, एए- ये, सत्तहा— सात प्रकार के, णेरइया-नैरयिक, परिकित्तिया—कहे गये हैं ॥१५८॥

घम्मा वंसगा सिला, तहा अंजणरिट्ठगा।
मघा माघवई चेव, णारया य वियाहिया ।१५९।
रयणाईगोत्तओ चेव, तहा घम्माई णामओ।
इइ णेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया ।१६०। ❋

— घम्मा-घम्मा, वंसगा- वंशा, सिला- शिला, अंजणा-

❋ ये दो गाथाएँ किसी किसी प्रति में नहीं हैं

अंजणा, रिट्ठगा-- रिष्ठा, मघा- मघा, तहा चेव, य—और, माघवई-- माघवती ये सात, णारया—नारकी के नाम, वियाहिया--कहे गये हैं। रयणाई- रत्नप्रभा आदि तो नारकियों के, गोत्तओ--गोत्र हैं, चेव, तहा—और, घम्माई- घम्मा आदि नारकियों के, णामओ—नाम हैं। इइ-- इस प्रकार, एए- ये, सत्तहा—सात प्रकार के, णेरइया--नैरयिक, परिकित्तिया--कहे गये हैं ॥१५९-१६०॥

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे उ वियाहिया।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥१६१॥

— ते--वे, सव्वे—सब, लोगस्स-लोक के, एगदेसम्मि- एक देश में, वियाहिया--कहे गये हैं, तु—अब, इत्तो--इसके आगे, तेसिं--उनका, चउव्विहं- चार प्रकार का, कालविभागं- कालविभाग, वुच्छं—कहूँगा ॥१६१॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया य ॥१६२॥

— संतइं--प्रवाह की, पप्प—अपेक्षा नैरयिक जीव, अणाईया--अनादि, य—और, अपज्जवसिया वि--अनन्त हैं, य—और, ठिइं--स्थिति की, पडुच्च--अपेक्षा, साईया—सादि और, सपज्जवसिया वि-सान्त हैं ॥१६२॥

सागरोवममेगं तु, उक्कोसेण वियाहिया।
पढमाए जहण्णेणं, दसवाससहस्सिया ॥१६३॥

— पढमाए—पहली नारकी में, जहण्णेणं– जघन्य-स्थिति, दसवाससहस्सिया--दस हजार वर्ष की है और, उक्कोसेण— उत्कृष्ट, एगं--एक, सागरोवमं—सागरोपम की है।।१६३॥

तिण्णेव सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
दोच्चाए जहण्णेणं, एगं तु सागरोवमं ।१६४।

— दोच्चाए-दूसरी नारकी में, जहण्णेणं– जघन्य-स्थिति, एगं--एक, सागरोवमं—सागरोपम की और, उक्कोसेण— उत्कृष्ट, तिण्णेव—तीन, सागराऊ– सागरोपम की, वियाहिया– कही गई है ॥१६४॥

सत्तेव सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
तइयाए जहण्णेणं, तिण्णेव सागरोवमा ।१६५।

— तइयाए— तीसरी नारकी में, जहण्णेणं—जघन्य-स्थिति, तिण्णेव—तीन, सागरोवमा— सागरोपम की है और, उक्कोसेण— उत्कृष्ट, सत्तेव--सात, सागराऊ— सागरोपम की, वियाहिया—कही गई है ॥१६५॥

दस सागरोवमाऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
चउत्थीए जहण्णेणं, सत्तेव सागरोवमा ।१६६।

— चउत्थीए– चोथी नारकी में, जहण्णेणं–जघन्य-स्थिति, सत्तेव—सात, सागरोवमा—सागरोपम की है और, उक्कोसेण– उत्कृष्ट, दस--दस, सागरोवमाऊ- सागरोपम की, वियाहिया– कही गई है ॥१६६॥

सत्तरस सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
पंचमाए जहण्णेणं, दस चेव सागरोवमा।१६७।

— पंचमाए— पांचवीं नारकी में, जहण्णेणं—जघन्य-स्थिति, दस—दस, सागरोवमा—सागरोपम की है, चेव— और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट, सत्तरस—सतरह, सागराऊ—सागरोपम की, वियाहिया—कही गई ॥१६७॥

बावीस सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
छट्ठीए जहण्णेणं, सत्तरस सागरोवमा।१६८।

— छट्ठीए—छठी नारकी में, जहण्णेणं—जघन्य-स्थिति, सत्तरस— सतरह, सागरोवमा— सागरोपम की है और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट, बावीस— बाईस, सागराऊ— सागरोपम की, वियाहिया-कही गई है ॥१६८॥

तेतीस सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
सत्तमाए जहण्णेणं, बावीसं सागरोवमा।१६९।

— सत्तमाए—सातवीं नारकी में, जहण्णेणं—जघन्य-स्थिति, बावीस—बाईस, सागरोवमा—सागरोपम की है और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट, तेत्तीस—तेतीस, सागराऊ—सागरोपम की, वियाहिया—कही गई ॥१६९॥

जा चेव य आउठिई, णेरइयाणं वियाहिया।
सा तेसिं कायठिई, जहण्णुक्कोसिया भवे।१७०।

—णेरइयाणं—नैरयिक जीवों की, जा—जो, जहण्णुक्कोसिया—जघन्य और उत्कृष्ट, आउठिई—आयुस्थिति, वियाहिया—कही गई है, सा—वही, तेसिं—उन जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट, कायठिई—कायस्थिति, भवे—होती है ॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए, णेरइयाणं तु अंतरं ।१७१।

—सए—अपनी, काए—काया को, विजढम्मि—छोड़ देने पर, णेरइयाणं—नैरयिक जीवों का, उक्कोसं—उत्कृष्ट, अंतरं—अन्तर, अणंतकालं—अनन्त काल का है और, जहण्णयं—जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त का है ॥१७१॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।१७२।

—एएसिं—इन नारकी जीवों के, वण्णओ—वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसफासओ—रस स्पर्श, चेव, वावि—और, संठाणादेसओ—संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो—हजारों, विहाणाइं—भेद हो जाते हैं ॥१७२॥

पंचिंदियतिरिक्खाओ, दुविहा ते वियाहिया ।
समुच्छिम-तिरिक्खाओ, गब्भवक्कंतिया तहा ।१७३।

—जो, पंचिंदियतिरिक्खाओ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च हैं, ते—वे, दुविहा—दो प्रकार के, वियाहिया—कहे गये हैं।

समुच्छिमतिरिक्खाओ- सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च, तहा- और, गब्भवक्कंतिया —गर्भव्युत्क्रान्त (गर्भज) तिर्यञ्च ॥१७३॥

दुविहा ते भवे तिविहा, जलयरा थलयरा तहा।
णहयरा य बोधव्वा, तेसिं भए सुणेह मे।१७४।

—दुविहा—दो प्रकार के, ते—उन तिर्यञ्चों के भी प्रत्येक के, तिविहा— तीन-तीन भेद, बोधव्वा— जानने चाहिये। यथा: — जलयरा—जलचर, थलयरा-- स्थलचर, य, तहा–और, णहयरा--नभचर (खेचर) अब, तेसिं- उनके, भेए- भेदो को, मे- मुझसे, सुणेह- सुनो।।

मच्छा य कच्छभा य, गाहा य मगरा तहा।
सुंसुमारा य बोधव्वा, पंचहा जलयराहिया।१७५।

— जलयरा—जलचर जीव, पंचहा- पांच प्रकार के, आहिया--- कहे गये हैं, वे इस प्रकार, बोधव्वा — जानने चाहिए। यथा:– मच्छा—मच्छ, कच्छभा– कच्छप (कच्छुआ) गाहा-- ग्राह, मगरा— मकर, य, य, य, तहा, य— और, सुंसुमारा—सुंसुमार ॥१७५॥

लोएगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं।१७६।

— ते– वे, सव्वे—सभी जलचर जीव, लोएगदेसे– लोक के एक देश में, वियाहिया—कहे गये हैं, ण सव्वत्थ---वे सर्वत्र नहीं हैं। तु—अब, इत्तो—आगे, तेसिं-- उन जीवों के,

चउव्विहं--चार प्रकार के, कालविभागं--कालविभाग को, वुच्छं--कहूँगा ॥१७६॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य।१७७।

— संतइं--प्रवाह की, पप्प--अपेक्षा वे जलचर जीव, अणाईया--अनादि, य--और, अपज्जवसिया वि--अनन्त हैं। य--और, ठिइं--स्थिति की, पडुच्च--अपेक्षा, साईया--सादि और, सपज्जवसिया वि--सान्त हैं ॥१७७॥

एगा य पुव्वकोडी उ, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई जलयराणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।१७८।

— जलयराणं--जलचर जीवों की, जहण्णिया--जघन्य, आउठिई--आयु-स्थिति अंतोमुहुत्तं--अन्तर्मुहूर्त्त की, य, उ--और, उक्कोसेण--उत्कृष्ट, एगा--एक, पुव्वकोडी--पूर्व-करोड़ की, वियाहिया--कही गई है ॥१७८॥

पुव्वकोडिपुहुत्तं तु, उक्कोसेण वियाहिया।
कायठिई जलयराणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।१७९।

— जलयराणं- जलचर जीवों की, जहण्णयं- जघन्य, कायठिई- काय-स्थिति, अंतोमुहुत्तं- अन्तर्मुहूर्त और, उक्कोसेण- उत्कृष्ट, पुव्वकोडिपुहुत्तं--पृथक्त्व पूर्व करोड़ को, वियाहिया- कही गई है ॥१७९॥

नोट:— 'पृथक्त्व' यह पारिभाषिक शब्द है। दो से लेकर नौ-तक की संख्या 'पृथक्त्व' कहलाती है।

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।
विजढम्मि सए काए, जलयराणं अंतरं ।१८०।

— सए— अपनी, काए –काया को, विजढम्मि—छोड़ कर पुन: प्राप्त करने का, जलयराणं--जलचर जीवों का, जहण्णयं--जघन्य, अंतरं--अन्तर, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त का और, उक्कोसं– उत्कृष्ट, अणंतकालं- अनन्त काल का है।१८०।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।१८१।

— एएसिं--इन जलचर जीवो के, वण्णओ-- वर्ण, गंधओ—गन्ध, रसफासओ—रस, स्पर्श, चेव, वावि--और, संठाणादेसओ-- संस्थान की अपेक्षा, सहस्ससो— हजारों, विहाणाइं—भेद हो जाते हैं ॥१८१॥

चउप्पया य परिसप्पा, दुविहा थलयरा भवे।
चउप्पया चउव्विहा, ते मे कित्तयओ सुण ।१८२।

— थलयरा—स्थलचर जीव, दुविहा--दो प्रकार के, भवे--होते हैं। यथा:— चउप्पया— चतुष्पद, य--और, परिसप्पा—परिसर्प इनमें, चउप्पया- चतुष्पद जीव चउव्विहा- चार प्रकार के हैं। अब, मे—मैं, ते—उनका, कित्तयओ— वर्णन करता हूँ, सुणेह--तुम ध्यानपूर्वक सुनो ॥१८२॥

एगखुरा दुखुरा चेव, गंडीपय सणप्पया।
हयमाई गोणमाई, गयमाई सीहमाइणो ।१८३।

— एगखुरा-- एक खुर वाले जैसे, हयमाई--घोड़ा गदहा आदि, दुखुरा—दो खुर वाले, जैसे, गोणमाई—गाय, बैल आदि, गंडीपय—गंडीपद (सुनार की एरण अथवा कमल की कर्णिका के समान गोल पांव वाले जीव) जैसे, गयमाई—हाथी आदि, चेव--और, सणप्पया—सनखपदा (जिनके पांवों में नख हों) जैसे, सीहमाइणो—सिंह, कुत्ता, बिल्ली आदि ।१८३।

भुओरगपरिसप्पा य, परिसप्पा दुविहा भवे ।
गोहाई अहिमाई य, एक्केक्का णेगहा भवे ।१८४।

— परिसप्पा--परिसर्प, दुविहा--दो प्रकार के, भवे--होते हैं। भुअ--भुजपरिसर्प, जैसे, गोहाई--गोह, नकुल, चूहे आदि य--और, उरगपरिसप्पा- उरःपरिसर्प, जैसे, अहिमाई-साँप आदि। य--और, एक्केक्का--इन प्रत्येक के, अणेगहा-अनेक भेद, भवे--होते हैं ॥१८४॥

लोएगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ।१८५।

— ते—वे, सव्वे—सब स्थलचर जीव, लोएगदेसे—लोक के एक देश में व्याप्त हैं, ण सव्वत्थ--सर्वत्र नहीं हैं, ऐसा, वियाहिया—कहा गया है। तु—अब, इत्तो--इसके आगे, तेसिं—उन जीवों के, चउव्विहं--चार प्रकार के, कालविभागं—काल विभाग को, वुच्छं—कहूँगा ॥१८५॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ।१८६।

— संतइं—प्रवाह की, पप्प—अपेक्षा स्थलचर जीव, अणाईया—अनादि, य—और, अपज्जवसिया वि—अनन्त हैं। य—और ठिइं—स्थिति की पडुच्च—अपेक्षा, साईया—सादि और, सपज्जवसिया वि—सान्त हैं ॥१८६॥

पलिओवमाइं तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।
वाउठिई थलयराणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।१८७।

— थलयराणं—स्थलचर जीवों की, जहण्णिया—जघन्य, आउठिई—आयुस्थिति, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त की, उ—और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट तिण्णि—तीन, पलिओवमाइं—पल्योपम की, वियाहिया—कही गई है ॥१८७॥

पलिओवमाइंतिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।
पुव्वकोडीपुहुत्तेणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।
कायठिई थलयराणं, अंतरं तेसिमं भवे ।१८८।

— थलयराणं- स्थलचर जीवों की, उक्कोसेण- उत्कृष्ट, कायठिई—कायस्थिति, तिण्णि—तीन, पलिओवमाइं- पल्योपम सहित, पुव्वकोडीपुहुत्तेणं- पृथक्त्व कोटि-पूर्व की, उ—और, जहण्णिया—जघन्य, अंतोमुहुत्तं- अन्तर्मुहूर्त की, वियाहिया- कही गई है, तेसिमं- उनका, अंतरं- अन्तरकाल निम्न- लिखित, भवे- है ॥१८८॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।
विजढम्मि सए काए, थलयराणं तु अंतरं ।१८९।

— सए- अपनी, काए- काया को, विजढम्मि- छोड़ने पर, थलयराणं-स्थलचर जीवों का, उक्कोसं- उत्कृष्ट, अंतरं- अन्तर, अणंतकालं—अनन्तकाल का, तु- और, जहण्णयं— जघन्य, अंतोमुहुत्तं- अन्तर्मुहूर्त का है ॥१८९॥

एएसि वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।१९०।

—वण्णओ—वर्ण, गंधओ- गन्ध, रसफासओ- रस, स्पर्श, चेव, वावि- और संठाणादेसओ- संस्थान की अपेक्षा एएसि- इन स्थलचर जीवों के, सहस्ससो- हजारों, विहाणाइं- भेद हो जाते हैं ॥१९०॥

चम्मे य लोमपक्खी य, तइया समुग्गपक्खिया ।
विययपक्खी य बोधव्वा, पक्खिणो य चउव्विहा ।१९१।

— चम्मे- चर्मपक्षी (जिनके पंख चमड़े के हों, जैसे चमगादड़ आदि) लोमपक्खी—रोमपक्षी (रोम के पंख वाले, जैसे राजहंस आदि) तइया—तीसरे, समुग्गपक्खिया—समुद्गपक्षी (जिनके पंख सदैव बन्द रहते हैं) य—और, विययपक्खी- विततपक्षी (जिनके पंख सदैव खुले रहते हैं) इस प्रकार, चउव्विहा- चार प्रकार के, पक्खिणो - पक्षी, बोधव्वा- जानने चाहिए ॥१९१॥

नोट:— समुद्गपक्षी और विततपक्षी ये दोनों प्रकार के पक्षी मनुष्यक्षेत्र के वाहर के द्वीपसमुद्रों में होते हैं, यहाँ नहीं होते ।

लोएगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विह ।।१९२।

— ते--वे, सव्वे--सभी पक्ष , लोएगदेसे--लोक के एक देश में, वियाहिया—कहे गये हैं, ण सव्वत्थ--वे सर्वत्र नहीं हैं। तु--अब, इत्तो—आगे, तेसिं--उनका, चउव्विह--चार प्रकार का, कालविभागं—कालविभाग, वुच्छं--कहूँगा ।१९२।

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ।१९३।

— संतइं—प्रवाह की, पप्प—अपेक्षा से सभी पक्षी, अणाईया--अनादि, य—और, अपज्जवसिया वि--अनन्त हैं, य—और, ठिइं---स्थिति की, पडुच्च—अपेक्षा, साईया—सादि और, सपज्जवसिया वि—सान्त हैं ।।१९३।।

पलिओवमस्स भागो, असंखेज्जइमो भवे।
आउठिई खहयराणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।।१९४।।

— खहयराणं– खेचर जीवों की, आउठिई— उत्कृष्ट आयुस्थिति, पलिओवमस्स--पल्योपम का, असंखेज्जइमो-- असंख्यातवां, भागो-- भाग है और, जहण्णयं— जघन्य, अंतोमुहुत्तं---अन्तर्मुहूर्त है ।।१९४।।

असंखभागो पलियस्स, उक्कोसेण उ साहिया।
पुव्वकोडि पुहुत्तेणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।१९५।

कायठिई खहयराणं, अंतरं तेसिमं भवे।
अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।१९६।

— खहयराणं—खेचर जीवों की, उक्कोसेण--उत्कृष्ट, कायठिई--कायस्थिति, पलियस्स—पल्योपम का, असंखभागो-असंख्यातवाँ भाग, साहिया-- अधिक, पुव्वकोडीपुहुत्तेणं-- पृथक्त्व पूर्व कोटि है, जहण्णयं-- जघन्य, अंतोमुहुत्तं--अन्तर्मुहूर्त है, तेसिमं—उनका उक्कोसं--उत्कृष्ट, अंतरं—अन्तर, अणंतकालं--अनन्त काल का है और, जहण्णयं--जघन्य, अंतोमुहुत्तं--अन्तर्मुहूर्त का है ॥१९५-१९६॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।१९७।

— वण्णओ--वर्ण, गंधओ-- गन्ध, रसफासओ—रस, स्पर्श, चेव वावि—और, संठाणादेसओ--संस्थान की अपेक्षा एएसिं—इन पक्षियों के, सहस्ससो--हजारों, विहाणाइं--भेद हो जाते हैं ॥१९७॥

मणुया दुविहभेया उ, ते मे कित्तयओ सुण।
सम्मुच्छिमा य मणुया, गब्भवक्कंतिया तहा।१९८।

— मणुया—मनुष्य, दुविहभेया—दो प्रकार के हैं, यथा:-सम्मुच्छिमा—सम्मूर्च्छिम, मणुया—मनुष्य, उ, य, तहा--और, गब्भवक्कंतिया— गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) मे--में, ते—

उनका, कित्तयओ--कथन करता हूँ अतः सावधान होकर, सुण—सुनो ॥१९८॥

गब्भवक्कंतिया जे उ, तिविहा ते वियाहिया ।
कम्मअकम्मभूमा य, अंतरदीवया तहा ।१९९।

— जे--जो, गब्भवक्कंतिया-गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) मनुष्य हैं, ते—वे, तिविहा—तीन प्रकार के, वियाहिया--कहे गये हैं, कम्मअकम्मभूमा—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, उ, य, तहा--और, अंतरदीवया-- अन्तरद्वीपक ॥१९९॥

पण्णरस-तीसइविहा, भेया दुअट्ठवीसइं ।
संखा उ कमसो तेसिं, इइ एसा वियाहिया ।२००।

— पण्णरस—कर्मभूमि के पन्द्रह, तीसइविहा—अकर्मभूमि के तीस, उ—और, दुअट्ठवीसइं भेया—अन्तरद्वीप के छप्पन भेद, इइ--इस प्रकार, तेसिं--उनकी, कमसो--क्रमशः एसा—यह, संखा—संख्या, वियाहिया—कही गई है ॥२००॥

सम्मुच्छिमाण एसेव, भेओ होइ वियाहिओ ।
लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे वि वियाहिया ।२०१।

— एसेव— ये ही, भेओ— भेद, सम्मुच्छिमाण—सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के, होइ--होते हैं ऐसा, वियाहिओ--कहा गया है, ते—वे, सव्वे वि—सभी मनुष्य, लोगस्स—लोक के, एगदेसम्मि—एक देश में, वियाहिया—कहे गये हैं ॥२०१॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य।२०२।

— संतइं--प्रवाह की, पप्प— अपेक्षा सभी मनुष्य, अणाईया--अनादि, य—और, अपज्जवसिया वि—अनन्त हैं, ठिइं—स्थिति की, पडुच्च—अपेक्षा, साईया-सादि, य—और, सपज्जवसिया वि—सान्त हैं ।।२०२।।

पलिओवमाइं तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई मणुयाणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।२०३।

— मणुयाणं-- मनुष्यों की, उक्कोसेण— उत्कृष्ट, आउठिई—आयुस्थिति तिण्णि--तीन, पलिओवमाइं-पल्योपम, की है और, जहण्णिया--जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त की, वियाहिया—कही गई है ।।२०३।।

पलिओवमाइं तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।
पुव्वकोडिपुहुत्तेणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।२०४।

कायठिई मणुयाणं, अंतरं तेसिमं भवे।
अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।२०५।

— मणुयाणं— मनुष्यों की, उक्कोसेण— उत्कृष्ट, कायठिई—कायस्थिति, तिण्णि--तीन, पलिओवमाइं—पल्योपम सहित, पुव्वकोडिपुहुत्तेणं--पृथक्त्व पूर्व-कोटि की है और, जहण्णिया--जघन्य, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त्त की, वियाहिया-

कही गई है। तेसिमं-- उनका, उक्कोसं—उत्कृष्ट, अंतरं--अन्तर, अणंतकाल—अनन्त काल का है और, जहण्णयं—जघन्य, अंतोमुहुत्तं--अन्तर्मुहूर्त्त का है ॥२०४-२०५॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो।२०६।

— वण्णओ--वर्ण, गंधओ-- गन्ध, रसफासओ-- रस स्पर्श, चेव वावि--और, संठाणादेसओ—संस्थान की अपेक्षा, एएसिं--इनके, सहस्ससो--हजारों, विहाणाइं-भेद होते हैं॥

देवा चउव्विहा वुत्ता, ते मे कित्तयओ सुण।
भोमिज्ज वाणमंतर, जोइस वेमाणिया तहा।२०७।

— देवा—देव, चउव्विहा—चार प्रकार के, वुत्ता- कहे गये हैं, यथा:—भोमिज्ज--भवनपति, वाणमंतर—वाणव्यन्तर, जोइस--ज्योतिषी, तहा--और, वेमाणिया—वैमानिक अब, मे—मैं, ते—उन देवों के भेदों का, कित्तयओ—वर्णन करता हूं सो सावधान होकर, सुण—सुनो ॥२७०॥

दसहा उ भवणवासी, अट्ठहा वणचारिणो।
पंचविहा जोइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा।२०८।

-- भवणवासी--भवनवासी (भवनपति) दसहा—दस प्रकार के, वणचारिणो--वाणव्यन्तर, अट्ठहा--आठ प्रकार के, जोइसिया—ज्योतिषी, पंचविहा--पाँच प्रकार के, उ, तहा—और, वेमाणिया – वैमानिक, दुविहा—दो प्रकार के कहे गये हैं॥

असुरा नाग-सुवण्णा, विज्जू अग्गी य आहिया ।
दीवोदहि-दिसा वाया, थणिया भवणवासिणो ।२०९।

— असुरा—असुरकुमार, नाग—नागकुमार, सुवण्णा—सुवर्णकुमार, विज्जू—विद्युतकुमार, अग्गी—अग्निकुमार, दीव—द्वीपकुमार, उदहि—उदधिकुमार, दिसा—दिशाकुमार, वाया—वायुकुमार, य—और, थणिया—स्तनितकुमार । ये दस प्रकार के, भवणवासिणो—भवनवासी देव, आहिया—कहे गये हैं ।।२०९।।

पिसाय-भूया जक्खा य, रक्खसा किण्णरा किंपुरिसा ।
महोरगा य गंधव्वा, अट्ठविहा वाणमंतरा ।२१०।

— पिसाय—पिशाच, भूया—भूत, जक्खा-यक्ष, रक्खसा-राक्षस, किण्णरा—किन्नर, किंपुरिसा—किंपुरुष, महोरगा—महोरग, य—और, गंधव्वा—गन्धर्व, अट्ठविहा—ये आठ प्रकार के, वाणमंतरा—वाणव्यन्तर देव कहे गये हैं ।२१०।।

चंदा सूरा य णक्खत्ता, गहा तारागणा तहा ।
ठिया विचारिणो चेव, पंचहा जोइसालया ।२११।

— चंदा—चन्द्र, सूरा—सूर्य, णक्खत्ता—नक्षत्र, गहा—ग्रह, य, तहा—और, तारागणा—तारागण । ये पंचहा—पाँच प्रकार के, जोइसालया-ज्योतिषी देव हैं। ठिया-ये स्थिर, चेव-और, विचारिणो-चर दो प्रकार के हैं (ढ़ाई द्वीप के बहार के ज्योतिषी देव स्थिर हैं और ढ़ाई द्वीप के अन्दर के ज्योतिषी

देव चर हैं। ये सदेव मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए गति १ रहते हैं ॥२११॥

वेमाणिया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।
कप्पोवगा य बोधव्वा, कप्पाईया तहेव य।२१२

— जे--जो वेमाणिया--वैमानिक, देवा—देव हैं, ते वे, दुविहा- दो प्रकार के, वियाहिया—कहे गये हैं। वे इ प्रकार, बोधव्वा---जानने चाहिए. कप्पोवगा--कल्पोपपन्न उ, य, तहेव य--और, कप्पाईया---कल्पातीत ॥२१२॥

कप्पोवगा य बारसहा, सोहम्मिसाणगा तहा।
सणंकुमारमाहिंदा, बंभलोगा य लंतगा।२१३।
महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा।
आरणा अच्चुया चेव, इइ कप्पोवगा सुरा।२१४।

— कप्पोवगा—कल्पोपपन्न देव, बारसहा—बारह प्रकार के हैं, यथा:- सोहम्म-सौधर्म, ईसाणगा- ईशान, सणंकुमारा-सनत्कुमार, माहिंदा--- माहेन्द्र, बंभलोगा---ब्रह्मलोक, लंतगा-लान्तक, महासुक्का---महाशुक्र, सहस्सारा---सहस्रार, आणया-आणत, पाणया-प्राणत, आरणा---आरण, तहा, य, तहा, चेव-और, अच्चुया---अच्युत। इइ---ये, कप्पोवगा—कल्पोपपन्न, सुरा--- देव हैं ॥२१३-२१४॥

कप्पाईया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।
गेविज्जाणुत्तरा चेव, गेविज्जा णवविहा तहि।२१५।

-- जे—जो,कप्पाईया- कल्पातीत, देवा—देव हैं, ते- वे, दुविहा—दो प्रकार के, वियाहिया--कहे गये हैं- गेविज्जा--- ग्रैवेयक, उ, चेव--और, अणुतरा—अनुत्तर, तहि-- इनमें, गेविज्जा—ग्रैवेयक देव, णवविहा--नो प्रकार के हैं। २१५॥

हेट्ठिमाहेट्ठिमा चेव, हेट्ठिमामज्झिमा तहा ।
हेट्ठिमा उवरिमा चेव, मज्झिमाहेट्ठिमा तहा ।२१६।
मज्झिमामज्झिमा चेव, मज्झिमा उवरिमा तहा ।
उवरिमा हेट्ठिमा चेव, उवरिमामज्झिमा तहा ।२१७।
उवरिमा उवरिमा चेव, इय गेविज्जगा सुरा ।
विजया वेजयंता य, जयंता अपराजिया ।२१८।
सव्वट्ठसिद्धगा चेव, पंचहाणुत्तरा सुरा ।
इय वेमाणिया एए, णेगहा एवमायओ ।२१९।

-- नो ग्रैवेयक देवों की तीन त्रिक (श्रेणियां) हैं--- १ ऊपर की, २ मध्य की, ३ नीचे की। प्रत्येक त्रिक में पुनः ऊपर मध्य और नीचे, इस प्रकार तीन-तीन भेद हैं। उनके नाम इस प्रकार हैः- हेट्ठिमाहेट्ठिमा-- १- अधस्तनाधस्तन (नीचे की त्रिक का नीचे वाला) हेट्ठिमा मज्झिमा— १ अधस्तनमध्य (नीचे की त्रिक का मध्यम) हेट्ठिमा उवरिमा- ३ अधस्तनउपरितन (नीचे की त्रिक का ऊपर वाला) मज्झिमाहेट्ठिमा-- ४ मध्यम अधस्तन (बीच की त्रिक का नीचे वाला) मज्झिमा मज्झिमा— ५ मध्यममध्यम (बीच की

देव चर हैं। ये सदेव मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए गति कर रहते हैं ॥२११॥

वेमाणिया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।
कप्पोवगा य बोधव्वा, कप्पाईया तहेव य।२१२।

— जे--जो वेमाणिया--वैमानिक, देवा—देव हैं, ते-वे, दुविहा- दो प्रकार के, वियाहिया—कहे गये हैं। वे इस प्रकार, बोधव्वा--जानने चाहिए. कप्पोवगा--कल्पोपपन्न, उ, य, तहेव य--और, कप्पाईया--कल्पातीत ॥२१२॥

कप्पोवगा य बारसहा, सोहम्मिसाणगा तहा।
सणंकुमारमाहिंदा, बंभलोगा य लंतगा।२१३।
महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा।
आरणा अच्चुया चेव, इइ कप्पोवगा सुरा।२१४।

— कप्पोवगा—कल्पोपपन्न देव, बारसहा—बारह प्रकार के हैं, यथा:- सोहम्म-सौधर्म, ईसाणगा- ईशान, सणंकुमारा-सनत्कुमार, माहिंदा-- माहेन्द्र, बंभलोगा--ब्रह्मलोक, लंतगा-लान्तक, महासुक्का--महाशुक्र, सहस्सारा--सहस्रार, आणया-आणत, पाणया-प्राणत, आरणा--आरण, तहा, य, तहा, चेव-और, अच्चुया--अच्युत। इइ--ये, कप्पोवगा—कल्पोपपन्न, सुरा-- देव हैं ॥२१३-२१४॥

कप्पाईया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।
गेविज्जाणुत्तरा चेव, गेविज्जा णवविहा तहिं।२१५।

—— जे—जो, कप्पाईया– कल्पातीत, देवा—देव हैं, ते– वे, दुविहा—दो प्रकार के, वियाहिया——कहे गये हैं– गेविज्जा——ग्रैवेयक, उ, चेव——और, अणुतरा—अनुत्तर, तहिं—— इनमें, गेविज्जा—ग्रैवेयक देव, णवविहा——नौ प्रकार के हैं । २१५॥

हेट्ठिमाहेट्ठिमा चेव, हेट्ठिमामज्झिमा तहा ।
हेट्ठिमा उवरिमा चेव, मज्झिमाहेट्ठिमा तहा ।२१६।
मज्झिमामज्झिमा चेव, मज्झिमा उवरिमा तहा ।
उवरिमा हेट्ठिमा चेव, उवरिमामज्झिमा तहा ।२१७।
उवरिमा उवरिमा चेव, इय गेविज्जगा सुरा ।
विजया वेजयंता य, जयंता अपराजिया ।२१८।
सव्वट्ठसिद्धगा चेव, पंचहाणुत्तरा सुरा ।
इय वेमाणिया एए, णेगहा एवमायओ ।२१९।

—— नौ ग्रैवेयक देवों की तीन त्रिक (श्रेणियां) हैं——
१ ऊपर की, २ मध्य की, ३ नीचे की । प्रत्येक त्रिक में पुनः ऊपर मध्य और नीचे, इस प्रकार तीन-तीन भेद हैं । उनके नाम इस प्रकार हैः– हेट्ठिमाहेट्ठिमा—— १– अधस्तनाधस्तन (नीचे की त्रिक का नीचे वाला) हेट्ठिमा मज्झिमा—
१ अधस्तनमध्य (नीचे की त्रिक का मध्यम) हेट्ठिमा उवरिमा–
३ अधस्तनउपरितन (नीचे की त्रिक का ऊपर वाला) मज्झिमाहेट्ठिमा—— ४ मध्यम अधस्तन (बीच की त्रिक का नीचे वाला) मज्झिमा मज्झिमा— ५ मध्यममध्यम (बीच की

संतइं पप्पणाईया अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ।२२१।

-- संतइं--प्रवाह का, पप्प- अपेक्षा ये सब, अणाईया-अनादि, य—और, अपज्जवसिया वि—अनन्त हैं, य—और, ठिइं—स्थिति की पडुच्च—अपेक्षा, साईया--सादि और, सपज्जवसिया वि--सान्त हैं ।।२२१।।

साहियं सागरं इक्कं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
भोमेज्जाणं जहण्णेणं, दसवाससहस्सिया ।२२२।

— भोमेज्जाणं—भवनपति देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई--स्थिति. दसवाससहस्सिया— दस हजार वर्ष और, उक्कोसेण---उत्कृष्ट. एक्क -एक, सागरं—सागर से, साहियं-कुछ अधिक भवे---होती है ।।२२२।।

पलिओवम दोऊणा, उक्कोसेण वियाहिया ।
असुरिंदवज्जेत्ताणं, जहण्णा दस सहस्सगा ‡।२२३।

— असुरिंदवज्जेत्ताणं—असुरकुमारों के इन्द्रों को छोड़ कर शेष भवनपति देवों की, जहण्णा---जघन्य आयु, दससहस्सगा— दस हजार वर्ष है और, उक्कोसेण--- उत्कृष्ट, पलिओवम दोऊणा--दो पल्योपम कम एक सागरोपम की, वियाहिया-- कही गई है ।।२२३।।

‡ यह गाथा बहुत सी प्रतियों में नहीं है, किसी प्रति में है। इसलिए यहाँ दे दी गई है।

त्रिक का मध्यम) मज्झिमा उवरिमा— ६ मध्यम उपरितन (बीच की त्रिक का ऊपर वाला) उवरिमाहेट्ठिमा–७ उपरितन अधस्तन (ऊपर की त्रिक का नीचे वाला) उवरिमा मज्झिमा–८ उपरितन मध्यम (ऊपर की त्रिक का मध्यम) चेव, तहा, चेव, तहा, चेव, तहा, चेव, तहा, चेव- और, उवरिमा उवरिमा–उपरितनउपरितन (ऊपर की त्रिक का ऊपर वाला) इय— इस प्रकार ये, गेविज्जगा--ग्रैवेयक, सुरा— देव हैं। इनके नाम क्रमश: इस प्रकार हैं—भद्र, सुभद्र, सुजात, सुमानस, सुदर्शन, प्रियदर्शन, अमोघ, प्रतिभद्र और यशोधर। अनुत्तर वैमानिक देवों के नाम— विजया— विजय, वेजयंता—वेजयंत, जयंता--जयंत, अपराजिया—अपराजित, चेव—और, सव्वट्ठसिद्धगा-- सर्वार्थसिद्ध, पंचहा-- ये पांच प्रकार के, अणुत्तरा—अनुत्तर, सुरा—देव हैं, इय—इस प्रकार, एए-- ये सब वेमाणिया--वैमानिक देव हैं। एवमायओ--इस प्रकार वैमानिक देवों के, अणेगहा--अनेक भेद हैं ॥२१६-२१९॥

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे वि वियाहिया।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ।२२०।

-- ते—वे, सव्वे वि—सभी देव, लोगस्स—लोक के, एगदेसम्मि--एक देश में, वियाहिया--कहे गये हैं। तु--अब, इत्तो--इसके आगे, तेसिं---उनका, चउव्विहं--चार प्रकार का, कालविभागं—काल विभाग, वुच्छं--कहूँगा ॥२२०॥

संतइं पप्पणाईया अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ।२२१।

-- संतइं--प्रवाह का, पप्प- अपेक्षा ये सब, अणाईया-अनादि, य—और, अपज्जवसिया वि—अनन्त हैं, य—और, ठिइं—स्थिति की पडुच्च—अपेक्षा, साईया--सादि और, सपज्जवसिया वि--सान्त हैं ।।२२१।।

साहियं सागरं इक्कं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
भोमेज्जाणं जहण्णेणं, दसवाससहस्सिया ।२२२।

— भोमेज्जाणं—भवनपति देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई--स्थिति दसवाससहस्सिया— दस हजार वर्ष और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट, एक्क -एक, सागरं—सागर से, साहियं-कुछ अधिक भवे--होती है ।।२२२।।

पलिओवम दोऊणा, उक्कोसेण वियाहिया ।
असुरिंदवज्जेत्ताणं, जहण्णा दस सहस्सगा ‡ ।२२३।

— असुरिंदवज्जेत्ताणं—असुरकुमारों के इन्द्रों को छोड़ कर शेष भवनपति देवों की, जहण्णा--जघन्य आयु, दससहस्सगा— दस हजार वर्ष है और, उक्कोसेण-- उत्कृष्ट, पलिओवम दोऊणा--दो पल्योपम कम एक सागरोपम की, वियाहिया-- कही गई है ।।२२३।।

---

‡ यह गाथा बहुत सी प्रतियों में नहीं है, किसी प्रति में है। इसलिए यहाँ दे दी गई है।

पलिओवममेगं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
वंतराणं जहण्णेणं, दसवाससहस्सिया ।२२४।

— वंतराणं— व्यन्तर देवों की, जहण्णेणं— जघन्य, ठिई— स्थिति, दसवाससहस्सिया— दस हजार वर्ष और, उक्कोसेणं—उत्कृष्ट, एगं— एक, पलिओवमं—पल्योपम की, भवे—है ॥२२४॥

पलिओवममेगं तु, वासलक्खेण साहियं।
पलिओवमट्ठभागो, जोइसेसु जहण्णिया ।२२५।

— जोइसेसु— ज्योतिषी देवों की, जहण्णिया—जघन्य-स्थिति, पलिओवमट्ठभागो—पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट स्थिति, वासलक्खेण साहियं—लाख वर्ष अधिक, एगं—एक, पलिओवमं—पल्योपम की है ॥२२५॥

दो चेव सागराइं, उक्कोसेण वियाहिया।
सोहम्मम्मि जहण्णेणं, एगं च पलिओवमं ।२२६।

— सोहम्मम्मि—सौधर्म देवलोक में देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, स्थिति, एगं—एक, पलिओवमं—पल्योपम है, चेव, च—और, उक्कोसेण— उत्कृष्ट स्थिति, दो—दो, सागराइं—सागर की, वियाहिया—कही गई है ॥२२६॥

सागरा साहिया दुण्णि, उक्कोसेण वियाहिया।
ईसाणम्मि जहण्णेणं, साहियं पलिओवमं ।२२७।

— ईसाणम्मि—ईशान देवलोक में देवों की, जहण्णेणं—जघन्य-स्थिति, साहियं पलिओवमं--कुछ अधिक एक पल्योपम और, उक्कोसेण--उत्कृष्ट-स्थिति, साहिया दुण्णि सागरा—कुछ अधिक दो सागरोपम को, वियाहिया--कही गई है ।२२७।

सागराणि य सत्तेव, उक्कोसेण ठिई भवे ।
सणंकुमारे जहण्णेणं, दुण्णि उ सागरोवमा ।२२८।

— सणंकुमारे—सनत्कुमार देवलोक में देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई—स्थिति, दुण्णि—दो, सागरोवमा—सागरोपम की है, य—ओर, उक्कोसेण— उत्कृष्ट, सत्तेव— सात, सागराणि—सागरोपम की, भवे--है ।।२२८।।

साहिया सागरा सत्त, उक्कोसेण ठिई भवे ।
माहिंदम्मि जहण्णेणं, साहिया दुण्णि सागरा ।२२९।

— माहिंदम्मि—माहेन्द्र देवलोक में देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई--स्थिति, साहिया दुण्णि सागरा—कुछ अधिक दो सागरोपम की है और, उक्कोसेण— उत्कृष्ट स्थिति, साहिया सत्त सागरा— कुछ अधिक सात सागरोपम की भवे—है ।।२२९।।

दस चेव सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
बंभलोए जहण्णेणं, सत्त उ सागरोवमा ।२३०।

— बंभलोए—ब्रह्मलोक में देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई--स्थिति, सत्त—सात, सागरोवमा—सागरोपम की है,

चेव, उ— और, उक्कोसेण— उत्कृष्ट स्थिति, दस—दस, सागराइं—सागरोपम की, भवे—है ॥२३०॥

चउद्दस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
लंतगम्मि जहण्णेणं, दस उ सागरोवमा ।२३१।

— लंतगम्मि—लान्तक देवलोक में देवों की, जहण्णेणं-जघन्य, ठिई— स्थिति, दस—दस, सागरोवमा—सागरोपम है और, उक्कोसेण— उत्कृष्ट स्थिति, चउद्दस-चोदह, सागराइं-सागरोपम की, भवे—होती है ॥२३१॥

सत्तरस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
महासुक्के जहण्णेणं, चउद्दस सागरोवमा ।२३२।

— महासुक्के—महाशुक्र देवलोक में देवों की, जहण्णेणं-जघन्य, ठिई—स्थिति, चउद्दस—चोदह, सागरोवमा—सागरोपम की है और, उक्कोसेणं—उत्कृष्ट स्थिति, सत्तरस—सतरह, सागराइं—सागरोपम की, भवे—होती है ॥२३२॥

अट्ठारस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
सहस्सारम्मि जहण्णेणं, सत्तरस सागरोवमा ।२३३।

— सहसारम्मि—सहस्रार देवलोक में देवों की जहण्णेणं-जघन्य, ठिई—स्थिति, सत्तरस—सतरह, सागरोवमा—सागरोपम की है और, उक्कोसेण— उत्कृष्ट, अट्ठारस—अठारह, सागराइं—सागरोपम की, भवे—होती है ॥२३३॥

सागरा अउणवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
आणयम्मि जहण्णेणं, अट्ठारस सागरोवमा ।२३४।

— आणयम्मि—आणत देवलोक मे देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई—स्थिति, अट्ठारस—अठारह, सागरोवमा—सागरोपम की है और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट, अउणवीसं—उन्नीस, सागरा—सागरोपम की, भवे—होती है ॥२३४॥

वीसं तु सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
पाणयम्मि जहण्णेणं, सागरा अउणवीसई ।२३५।

-- पाणयम्मि--प्राणत देवलोक में देवों की, जहण्णेणं-जघन्य, ठिई—स्थिति, अउणवीसई—उन्नीस, सागरा--सागरोपम की और, उक्कोसेणं—उत्कृष्ट, वीसं--बीस, सागराइं--सागरोपम की, भवे—होती है ॥२३५॥

सागरा इक्कवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
आरणम्मि जहण्णेणं, वीसई सागरोवमा ।२३६।

-- आरणम्मि---आरण देवलोक में देवों की, जहण्णेणं-जघन्य, ठिई--स्थिति, वीसई—बीस, सागरोवमा—सागरोपम की होती है और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट, इक्कवीसं—इक्कीस, सागरा—सागरोपम की, भवे—होती है ॥२३६॥

बावीसं सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
अच्चुयम्मि जहण्णेणं, सागरा इक्कवीसई ।२३७।

— अच्चुयम्मि—अच्युत देवलोक में देवों की, जहण्णेणं-

जघन्य ठिई—स्थिति इक्कवीसई--इक्कीस, सागरा--सागरोपम की होती है और उक्कोसेण— उत्कृष्ट बावीसं—बाईस, सागराइं--सागरोपम की, भवे—होती है ॥२३७॥

तेवीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
पढमम्मि जहण्णेणं, बावीसं सागरोवमा।२३८।

— ग्रैवेयक देवों की आयु का वर्णन किया जाता है:--पढमम्मि-प्रथम ग्रैवेयक मे देवों की, जहण्णेणं--जघन्य, ठिई-स्थिति, बावीसं--बाईस, सागरोवमा--सागरोपम की है और, उक्कोसेण-उत्कृष्ट, तेवीस--तेईस, सगराइं--सागरोपम की, भवे--होती है ॥२३८॥

चउवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
बिइयम्मि जहण्णेणं, तेवीसं सागरोवमा।२३९।

-- बिइयम्मि--दूसरे ग्रैवेयक मे देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई--स्थिति, तेवीसं--तेईस, सागरोवमा--सागरोपम की होती है और, उक्कोसेण— उत्कृष्ट स्थिति, चउवीस—चोवीस, सागराइं--सागरोपम की, भवे--होती है ॥२३९॥

पणवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
तइयम्मि जहण्णेणं, चउवीसं सागरोवमा।२४०।

— तइयम्मि—तीसरे में देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई--स्थिति, चउवीसं—चोवीस, सागरोवमा—सागरोपम की है और, उक्कोसेण--उत्कृष्ट, पणवीस—पच्चीस, सागराइं-

सागरोपम की, भवे--होती है ॥२४०॥

छव्वीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउत्थम्मि जहण्णेणं, सागरा पणवीसई ।२४१।

— चउत्थम्मि—चौथे ग्रैवेयक में देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई-- स्थिति, पणवीसई— पच्चीस, सागरा—सगरोपम की, और, उक्कोसेण— उत्कृष्ट, छव्वीस—छव्वीस, सागराइं —सागरोपम की, भवे--होती है ॥२४१॥

सागरा सत्तवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
पंचमम्मि जहण्णेणं, सागरा उ छवीसई ।२४२।

— पंचमम्मि—पाँचवें ग्रैवेयक में देवों की, जहण्णेणं--जघन्य ठिई--स्थिति, छवीसइ— छब्बीस, सागरा—सागरोपम की और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट स्थिति, सत्तवीसं—सत्ताईस, सागरा--सागर, भवे—होती है ॥२४२॥

सागरा अट्ठवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
छट्ठम्मि जहण्णेणं, सागरा सत्तवीसई ।२४३।

— छट्ठम्मि--छठे ग्रेवेयक में देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई-- स्थिति, सत्तवीसई— सत्ताईस, सागरा--सागरोपम की और, उक्कोसेण--उत्कृष्ट, स्थिति. अट्ठवीसं—अट्ठाईस, सागरा--सागरोपम की, भवे--होती है ।२४३।

सागरा अउणतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
सत्तमम्मि जहण्णेणं, सागरा अट्ठवीसई ।२४४।

— सत्तमम्मि--सातवें ग्रैवेयक में देवों की. जहण्णेणं—जघन्य. ठिई--स्थिति, अट्ठवीसई--अट्ठाईस, सागरा—सागरोपम की और उक्कोसेण –उत्कृष्ट, अउणतीसं--उनतीस, सागरा--सागरोपम की, भवे—होती है ॥२४४॥

तीसं तु सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
अट्ठमम्मि जहण्णेणं, सागरा अउणतीसई ।२४५।

— अट्ठमम्मि—आठवें ग्रैवेयक में देवों की, जहण्णेणं--जघन्य, ठिई--स्थिति, अउणतीसई–उनतीस, सागरा—सागरोपम की और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट स्थिति, तीसं--तीस सागराइं--सागर, भवे—होती है ॥२४५॥

सागरा इक्कतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
णवमम्मि जहण्णेणं, तीसई सागरोवमा ।२४६।

— णवमम्मि—नौवें ग्रैवेयक में देवों की, जहण्णेणं—जघन्य, ठिई--स्थिति, तीसई--तीस, सागरोवमा--सागरोपम की और, उक्कोसेण—उत्कृष्ट स्थिति, इक्कतीसं--इकत्तीस, सागरा—सागरोपम की, भवे--होती है ॥२४६॥

तेत्तीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
चउसुं पि विजयाईसु, जहण्णेणेक्कतीसई ।२४७।

— विजयाईसु--विजय, वैजयन्त जयन्त और अपराजित, चउसुंपि--इन चारों अनुत्तर देवों की, जहण्णेण—जघन्य, ठिई--स्थिति, एक्कतीसई—इकत्तीस सागरोपम की, उक्को-

सेण—उत्कृष्ट स्थिति तेत्तीस—तेत्तीस, सागराइं—सागरोपम की, भवे—होती है ॥२४७।

अजहण्णमणुक्कोसा, तेत्तीसं सागरोवमा।
महाविमाणे सव्वट्ठे, ठिई एसा वियाहिया ।२४८।

— सव्वट्ठे—सर्वार्थसिद्ध, महाविमाणे—महाविमान में देवों की. अजहण्ण मणुक्कोसा— अजघन्य-अनुत्कृष्ट, ठिई—स्थिति तेत्तीसं— तेत्तीस, सागरोवमा—सागरोपम की होती है, एस—ऐसा, वियाहिया—कहा गया है ॥२४८॥

जा चेव उ आउठिई, देवाणं तु वियाहिया।
सा तेसिं कायठिई, जहण्णुक्कोसिया भवे ।२४९।

— देवाणं—देवों का जा— जो, जहण्णुक्कोसिया—जघन्य और उत्कृष्ट, आउठिई—आयु-स्थिति, वियाहिया-कही गई है, सा—वही, तेसिं-उनकी जघन्य और उत्कृष्ट, कायठिई—कायस्थिति, भवे—होती है ॥२४९॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।
विजढम्मि सए काए, देवाणं हुज्ज अंतरं ।२५०।

— सए—अपनी, काए—काया को, विजढम्मि —छोड़ . . पर, देवाणं— देवों का पुनः उन्हीं में आगमन का, जहण्णयं—जघन्य, अंतरं—अन्तर, अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्त और, उक्कोसं—उत्कृष्ट, अणंतकालं—अनन्त काल का, हुज्ज—होता है।२५०।

अणंतकालमुक्कोसं, वासपुहुत्तं जहण्णयं।
आणयाईणं देवाणं, गेविज्जाणं तु अंतरं ।२५१।

— आणयाईणं– आणत आदि, (आणत, प्राणत, आरण अ
अच्युत) देवलोकों के, देवाणं--देवों का और, गेविज्जाणं
नव-ग्रैवेयक देवों का, जहण्णयं— जघन्य, अंतरं— अन्त
वासपुहुत्तं--पृथक्त्व वर्ष का है और, उक्कोसं--उत्कृ
अणंतकालं--अनन्त काल का है ॥२५१॥

संखेज्जसागरुक्कोसं, वासपुहुत्तं जहण्णयं ।
अणुत्तराणं देवाणं, अंतरेयं वियाहियं ।२५२।

— अणुत्तराणं—विजय, वैजयंत जयन्त और अपराजि
इन चार अनुत्तर-विमानों में उत्पन्न होने वाले, देवाणं—दे
का, जहण्णयं—जघन्य. अंतरेयं—अन्तर, वासपुहुत्तं—पृथक्त
वर्ष और, उक्कोसं—उत्कृष्ट, संखेज्जसागर—संख्यात साग
का, वियाहियं-- कहा गया है ।२५२।

नोट-- सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देव एक भवावतारी होते
अतः उनका अन्तर नहीं होता ।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ।२५३।

— वण्णओ--वर्ण, गंधओ---गन्ध, रसफासओ— रस,
स्पर्श, चेव, वावि—और, संठाणादेसओ—संस्थान की अपेक्षा,
एएसिं— इनके, सहस्ससो— हजारों, विहाणाइं-- भेद हो
जाते हैं ॥२५३॥

संसारत्था य सिद्धा य, इय जीवा वियाहिया ।
रूविणो चेवारूवी य, अजीवा दुविहा वि य ।२५४।

— संसारत्था—संसारी, य—और, सिद्धा--सिद्ध, इय-इस प्रकार जीवा—जीवों के दो भेद, य--तथा, अजीवा--अजीवों के, रूविणो--रूपी, चेव, य, य—और, अरूवी—अरूपी, दुविहा वि--ये दो भेद, वियाहिया- कहे गये हैं।२५४॥

इय जीवमजीवे य, सोच्चा सद्दहिऊण य।
सव्वणयाणमणुमए, रमेज्ज संजमे मुणी।२५५।

— इय—इस प्रकार, जीवमजीवे य--जीव और अजीव के स्वरूप को, सोच्चा--सुन कर, य—और, सद्दहिऊण—उन पर दृढ़ श्रद्धा करके, मुणि— मुनि, सव्वणयाणमणुमए—सर्व नयों से अनुमत (सम्यग्ज्ञान दर्शन युक्त) संजमे—संयम में, रमेज्ज--रमण करे ॥२५५॥

तओ बहूणि वासाणि, सामण्णमणुपालिया।
इमेण कम्मजोगेण, अप्पाणं संलिहे मुणी।२५६।

-- तओ—इसके बाद, बहूणि—बहुत, वासाणि--वर्षों तक, सामण्णं—श्रमण-पर्याय का, (साधुताका) अणुपालिया-पालन करके, मुणि— मुनि, इमेण--आगे कहे जाने वाले, कम्मजोगेण--क्रमयोग से—तप से, अप्पाणं--अपनी आत्मा को, संलिहे--संलिखित करे (द्रव्य से शरीर को और भाव से क्रोधादि कषाय को पतला करे) ॥२५६॥

बारसेव उ वासाइं, संलेहुक्कोसिया भवे।
संवच्छरं मज्झिमिया, छम्मासा य जहण्णिया।२५७।

— उक्कोसिया—उत्कृष्ट, संलेहा—संलेखना, बारसेव—बारह, वासाइं—वर्षों की, मज्झिमिया—मध्यम, संवच्छरं—एक वर्ष की, उ, य—और, जहण्णिया—जघन्य, छम्मासा—छः महीने की, भवे—होती है ॥२५७॥

पढमे वासचउक्कम्मि, विगई णिज्जूहणं करे।
बिइए वासचउक्कम्मि, विचित्तं तु तवं चरे ।२५८।

— पढमे— पहले के, वासचउक्कम्मि—चार वर्षों में, विगईणिज्जूहणंकरे—घी दूध आदि विगयों का त्याग करे और, बिइए—दूसरे, वासचउक्कम्मि— चार वर्षों में, विचित्तं—विचित्र, तवं—तप का, चरे—आचरण करे ॥२५८॥

एगंतरमायामं, कट्टु संवच्छरे दुवे ।
तओ संवच्छरद्धं तु, णाइविगिट्ठं तवं चरे ।२५९।

— इसके बाद, दुवे—दो, संवच्छरे—वर्ष तक, एगंतर—एकान्तर उपवास और पारणे के दिन, आयामं—आयम्बिल, कट्टु—करके पुनः, संवच्छरद्धं—छः महीने तक, अइविगिट्ठं—अति उत्कृष्ट, तवं—तप, ण चरे—न करे (तेला पचोला आदि न करे)॥२५९॥

तओ संवच्छरद्धं तु, विगिट्ठं तु तवं चरे।
परिमियं चेव आयामं, तम्मि संवच्छरे करे ।२६०।

— तओ— इसके बाद, संवच्छरद्धं—छः महीने तक, विगिट्ठं—उत्कृष्ट, तवं—तप, चरे— (बेला तेला आदि) करे,

देव—और फिर, तम्मि—उस ग्यारहवें, संवच्छरे—वर्ष में, परिमियं—परिमित, आयामं—आयम्बिल तप, करे—करे ॥

कोडीसहियमायामं, कट्टु संवच्छरे मुणी ।
मासद्धमासिएणं तु, आहारेणं तवं चरे ।२६१।

— संवच्छरे—बारहवें वर्ष में, मुणी-मुनि, कोडीसहियं-कोटिसहित, आयामं—आयम्बिल तप, कट्टु—करके फिर, मासद्धमासिएणं—एक मास या आधा मास तक, आहारेणं—आहार का त्याग करके, तवं—अनशन तप, चरे-करे ।२६१।

नोट— एक दिन आयम्बिल करके दूसरे दिन कोई दूसरा तप करके फिर तीसरे दिन आयम्बिल करना यह कोटिसहित तप कहलाता है।

कंदप्पमाभिओगं, किव्विसियं मोहमासुरत्तं च ।
एयाओ दुग्गईओ, मरणम्मि विराहिया होंति ।२६२।

— कंदप्पं—कन्दर्पभावना, आभिओगं—आभियोगिकी भावना, किव्विसियं—किल्विषी भावना, मोहं—मोहभावना, च—और, आसुरत्तं—आसुरी भावना, एयाओ—ये भावनाएँ, दुग्गईओ—दुर्गति की हेतुभूत और, मरणम्मि—मरण के समय इन भावनाओं से जीव, विराहिया—विराधक, होंति—हो जाते हैं ॥२६२॥

मिच्छादंसणरत्ता, सणियाणा हु हिंसगा ।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ।२६३।

— जे—जो, जीवा—जीव, मिच्छादंसणरत्ता—मिथ्या-

दर्शन में अनुरक्त हैं, सणियाणा—निदान सहित क्रियानुष्ठान करते हैं और जो हिंसगा—हिंसा में प्रवृत्त हैं, इय--इस प्रकार से--जो, जीवा—जीव, मरंति—मरते हैं, तेसिं—उनको, पुण—पुनः, बोही--बोधि (सम्यक्त्व) की प्राप्ति होना, दुल्लहा--अत्यन्त दुर्लभ है ॥२६३।

सम्मद्दंसणरत्ता, अणियाणा सुक्कलेसमोगाढा।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं सुलहा भवे बोही।२६४।

— सम्मद्दंसणरत्ता—सम्यग्दर्शन में अनुरक्त, अणियाणा-निदान-रहित क्रियानुष्ठान करने वाले, सुक्कलेसमोगाढा--शुक्ललेश्या को प्राप्त, इय—इस प्रकार, जे—जो, जीवा--जीव, मरंति--मरते हैं, तेसिं--उनको परलोक में, बोही—बोधि (सम्यक्त्व) की प्राप्ति, सुलहा--सुलभ, भवे—होती है।

मिच्छादंसणरत्ता, सणियाणा कण्हलेसमोगाढा।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही।२६५।

— मिच्छादंसण रत्ता—मिथ्यादर्शन में अनुरक्त, सणियाणा—निदान-सहित क्रियानुष्ठान करने वाले, कण्हलेसमोगाढा--कृष्ण-लेश्या को प्राप्त हुए इय--इस प्रकार, जे--जो, जीवा--जीव, मरंति—मरते हैं, तेसिं--उनको, पुण--पुनः परलोक में, बोही--बोधि (सम्यक्त्व) की प्राप्ति होना, दुल्लहा--अत्यन्त दुर्लभ है ॥२६५॥

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेण।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्त-संसारी।२६६।

— जे--जो जीव, जिणवयणे—जिनेन्द्र भगवान् के वचनों में, अणुरत्ता--अनुरक्त हैं जो, जिणवयणं--जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित क्रियानुष्ठानों को, भावेण--भावपूर्वक (श्रद्धापूर्वक), करेंति—करते हैं, अमला—जो मिथ्यात्वादि भावमल से रहित हैं और, असंकिलिट्ठा--रागद्वेषादि संक्लेश से रहित हैं, ते—वे, परित्तसंसारी--परित्तसंसारी, होंति--होते हैं।

नोट— संसार को परिमित (मर्यादित) करने वाले जीव परित्तसंसारी कहलाते हैं। वे थोड़े ही भव करके मोक्ष में चले जाते हैं।

बालमरणाणि बहुसो, अकाममरणाणि चेव य बहूणि।
मरिहंति ते वराया, जिणवयणं जे ण जाणंति।२६७।

— जे—जो, जिणवयणं--जिन वचनों को, ण जाणंति-नहीं जानते हैं, ते—वे, वराया--विचारे, बहुसो—अनेक वार, बालमरणाणि--बालमरण, चेव, य—और, बहूणि--बहुत वार, अकाममरणाणि— अकाम मरण से, मरिहंति—मृत्यु को प्राप्त होंगे ॥२६७॥

बहुआगम-विण्णाणा, समाहिउप्पायगा य गुणगाही।
एएणं कारणेणं, अरिहा आलोयणं सोउं।२६८।

— अपने दोषों की आलोचना ज्ञानी पुरुषों के पास कैसे करनी चाहिए, उनके गुण बतलाते हैं:-- अबहुागमविण्णाणा-जो बहुत-से शास्त्रों के एवं उनके रहस्यों के जानकार हो, समाहिउप्पायगा—जो देश-कालादि की अपेक्षा मधुर वचनों से

समाधि उत्पन्न करने वाले हों, य--और, गुणगाही—जो गुणग्राही हों, एएणं—इन, कारणेणं—कारणों से उपरोक्त गुणों को धारण करने वाले आचार्य आदि ही, आलोयणं--अलोचना, सोउं—सुनने के, अरिहा--योग्य हैं ॥२६८॥

कंदप्पकुक्कुयाइं, तह सीलसहावहासविगहाहिं ।
विम्हावेंतो य परं, कंदप्पं भावणं कुणइ ॥२६९॥

— कंदप्प—हास्य और विषय-विकार उत्पन्न करने वाली बातें कहना कुक्कुयाइं--भांड के समान दूसरों को हँसने वाले वचन बोलना एवं मुख-नेत्रादि द्वारा विकार भाव प्रकट करने की चेष्टा करना, तह--और, **सीलसहावहासविगहाहिं**-शील-स्वभाव, हास्य-विकथा आदि करना, इत्यादि चेष्टाओं से, **परं**--दूसरों को, **विम्हावेंतो** वि— विस्मित करता हुआ जीव, **कंदप्प**— कन्दर्प भावना, (कन्दर्प जाति के देवों में उत्पन्न होने की भावना) **कुणइ**--करता है ।२६९।

— गाथा में आये हुए 'सीलसहावहासविगहाहि' शब्दों का यहां पर इस प्रकार अर्थ है-- शील (फल-रहित प्रवृत्ति अर्थात् हास्य को उत्पन्न करने वाली चेष्टा करने की आदत-स्वभाव--दूसरों को विस्मय उत्पन्न करने के अभिप्राय से मुखविकारादि करना । हास्य--खिलखिला कर जोर से हँसना या अट्टहास करना । विकथा— दूसरों को विस्मय उत्पन्न करने वाले विविध प्रकार के वचन बोलना एवं ऐसी कथा कहना ।

मंता जोगं काउं, भूइकम्मं च जे पउंजंति ।
सायरसइड्डिहेउं, अभिओगं भावणं कुणइ ॥२७०॥

—जे—जो जीव, सायरसइड्ढिहेउं—साता, रस और समृद्धि के लिए, मंताजोगं—मंत्र और योग, काउं—कर के, भूइकम्मं—भूतिकर्म का, पउंजंति—प्रयोग करते हैं वे, अभिओगं—आभियोगिकी भावना, कुणइ—करते हैं (आभियोगी भावना का सम्पादन करने वाला पुरुष आभियोगी देवों-सेवक जाति के देवों में उत्पन्न होता है) ॥२७०॥

णाणस्स केवलीणं, धम्मायरियस्स संघसाहूणं।
माई अवण्णवाई, किव्विसियं भावणं कुणइ।२७१।

—णाणस्स—ज्ञान का, केवलीणं—केवली भगवान् का, धम्मायरियस्स—धर्माचार्य का, संघसाहूणं—साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ का, अवण्णवाई—अवर्णवाद करने वाला, माई—मायावी (माया कपट करने वाला) पुरुष, किव्विसियं—किल्विषी, भावणं—भावना, कुणइ—करता है। उपरोक्त किल्विषी भावना का सम्पादन करने वाला पुरुष किल्विषी जाति के देवों में उत्पन्न होता है ॥२७१॥

अणुबद्धरोसपसरो, तह य णिमित्तम्मि होइ पडिसेवी।
एएहिं कारणेहिं, आसुरियं भावणं कुणइ।२७२।

—जो, अणुबद्धरोसपसरो—निरन्तर क्रोध का विस्तार करता है, तह य—और जो, णिमित्तम्मि—निमित्त में, पडिसेवी—प्रवृत्ति करने वाला होइ—होता है (जो सदा क्रोधयुक्त रहता है और ज्योतिषशास्त्र द्वारा अथवा भूकम्पादि निमित्तों

के द्वारा शुभाशुभ फल का कथन करता है) वह जीव, एएहिं—इन उपरोक्त, कारणेहिं—कारणों से, आसुरियं—आसुरी, भावणं—भावना, कुणइ—करता है। इस भावना से भावित पुरुष असुरकुमारों में उत्पन्न होता है। ये देव वैमानिक देवों की अपेक्षा बहुत कम सुख और समृद्धि वाले होते हैं तथा परमाधार्मिक देव भी इन्हीं की जाति में से होते हैं ॥२७२॥

सत्थगहणं विसभक्खणं च, जलणं च जलपवेसो य।
अणायारभंडसेवी, जम्मणमरणाणि बंधंति ।२७३।

— सत्थगहणं—शस्त्रग्रहण करना (शस्त्र द्वारा आत्मघात करना), विसभक्खणं—विषभक्षण करना, जलणं—अग्नि में प्रवेश करना जलपवेसो—जल में डूब कर मरना, च, च, य—और, अणायारभंडसेवी—अनाचार का सेवन करने वाला (ग्रहण न करने योग्य भण्डोपकरणों का सेवन करने वाले पुरुष), जम्मणमरणाणि—अनेक जन्म-मरण के निमित्तभूत कर्मों को बंधंति—बांधते हैं (बालमरण से मरने वाले पुरुष अनेक जन्म-मरण की वृद्धि करते हैं और चिर काल तक संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं) ॥२७३॥

इइ पाउकरे बुद्धे, णायए परिणिव्वुए ।
छत्तीसं उत्तरज्झाए, भवसिद्धीयसंमए।२७४। त्तिबेमि॥

— इइ—इस प्रकार, भवसिद्धीयसंमए—भव्य जीवों के सम्मत (मान्य है) ऐसे, उत्तरज्झाए—उत्तराध्ययन सूत्र के,

छत्तीसं--छत्तीस अध्ययनों को, पाउकरे—प्रकट कर के, बुद्धे-तत्त्वज्ञ केवलज्ञानी, णायए—ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर स्वामी परिणिव्वुए—निर्वाण को प्राप्त हो गये। किसी किसी प्रति में, भवसिद्धीय संमए—के स्थान पर, भवसिद्धीयसंवुडे--ऐसा पाठ हैं। जिसका अर्थ इस प्रकार है भवसिद्धीय--उसी भव में मोक्ष जाने वाले, संवुडे—संवृत-संवर वाले भगवान् महावीर स्वामी इस उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययनों को प्रकट करके निर्वाण को प्राप्त हो गये ॥२७४॥ त्तिबेमि—श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू ! मैने जैसा भगवान् महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही कहा है ॥

॥ छत्तीसवां अध्ययन समाप्त ॥

॥ श्री उत्तराध्ययन सूत्र समाप्त ॥